मानव-शरीर-रचना-विज्ञान

डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा
बी० एस्सी०, एम० बी० बी० एस०
प्रिन्सिपल,
आयुर्वेदिक कॉलेज

लेखक
स्वास्थ्य-विज्ञान, संक्षिप्त शल्य-विज्ञान, मानव-शरीर-रहस्य,
विष-विज्ञान इत्यादि

प्रकाशक
काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय
सं० २०१३ विक्रम
द्वितीय संस्करण

मुद्रक :—बलदेवदास
संसार प्रेस, काशीपुरा, बनारस ।

प्रास्ताविक उपोद्घात

हमारे देश में नवीन शिक्षा की स्थापना हुए एक शताब्दी हो चुकी; पर शोक है कि अद्यापि हमको शिक्षा—विशेषतः उच्च शिक्षा—अँगरेज़ी भाषा द्वारा ही दी जाती है।

ई० सं० १८३५ में कलकत्ता की 'जनरल कमिटी आफ़ एड्युकेशन' ने अपना मत प्रकट किया था कि—

"We arer deeply sensible of the importance of encouraging the cultivation of Vernacular languages.................We conceive the formation of a Vernacular Literature to be the ultimate object to which all our efforts must be directed."

अर्थात्, देश का साहित्य बढ़ाना ही हमारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है।

सन् १८३८ में सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने "हिन्दुस्तान में शिक्षा" विषयक जो लेख लिखा था उसमें भी उस विद्वान् ने कहा है—

"Our main object is to raise up a class of persons, who will make the learning of Europe intelligible to the people of Asia in their owm languages."

अर्थात् हमारा उद्देश्य ऐसे सुशिक्षित जन तैयार करने का है जो यूरोप की विद्या को एशिया के लोगों की बुद्धि में अपनी भाषा द्वारा उतार दें।

ई० सं० १८३९ में लार्ड आकलैंड (गवर्नर-जनरल) ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा था कि—

"I have not stopped to state that correctness and elegance in Vernacular composition ought to be sedulously attended to in the superior colleges."

अर्थात्, उच्च विद्यालयों में मातृभाषा के निबन्धों में वाणी का यथार्थ रूप और लालित्य लाने पर विशेष ध्यान देने की बात मैं बिना कहे नहीं रह सकता।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने आशा की थी कि अँगरेज़ी शिक्षा पाये हुए लोगों के संसर्ग से साधारण जनता में नवीन विद्या का आप ही आप अवतार होगा। लेकिन यह आशा सफल न हुई। अतएव ईस्ट इंडिया कम्पनी के अन्तिक समय (१८५४) में कम्पनी के 'बोर्ड आफ़ कंट्रोल' (निरीक्षण समिति) के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड ने एक चिर-स्मरणीय लेख लिखा, जिसमें उन्होंने प्राथमिक शिक्षा से लेकर युनिवर्सिटी तक की शिक्षा का प्रबन्ध सूचित किया। पश्चात् कम्पनी से हिन्दुस्तान का राज्याधिकार महारानी विक्टोरिया के हाथ में आया और बड़े समारोह से नवीन शिक्षा की व्यवस्था हुई—तथापि पूर्वोक्त उद्देश्य बहुशः सफल नहीं हुआ। यूनिवर्सिटी के स्थापनानन्तर २५-३० वर्ष बाद भी सर जेम्स पील (बम्बई के कुछ समय तक शिक्षाधिकारी) निम्नलिखित रूप में आक्षेप कर सके थे—

"The dislike shown by University graduates to writing in their vernacular, can only be attributed to the concsiousness of an imperfect command of it. I cannot otherwise explain the fact that graduates do not compete for any of the prizes of greater money-value than Chancellor's or Arnold's Prize at Oxford, or Smith's or the Members' Prizes at Cambridge. So curiouse an apathy, so discouraging a want of patriotism, is inexplicable, if the transfer of English thought to the native idiom were, as it should be, a pleasant exercise, and not, as I fear it is, a tedious and repulsive trial."

हमारे नव शिक्षित बन्धुओं ने देशभाषा द्वारा देश का साहित्य बढ़ाया है। इससे इनकार करना अकृतज्ञता करना है तथापि इतना कहना पड़ता है कि वह साहित्य समृद्धि जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं हुई है।

इसका कारण क्या है? कई विद्वानों ने इसका कारण देशी भाषा का अज्ञान और विश्वविद्यालयों में देशी भाषा के पठन-पाठन का अभाव माना है। लेकिन वास्तविक कारण इससे भी आगे जाकर देखना चाहिए। मूल में बात यह है कि परभाषा द्वारा विद्यार्थियों को जो विद्या पढ़ाई जाती है वह उनकी बुद्धि और आत्मा से मेल नहीं खाती। परिणाम यह होता है कि सब पाठ उनकी बुद्धि में—भूमि में पत्थर के टुकड़े के समान—पड़े रहते हैं, बीज के समान भूमि में मिलकर अंकुर नहीं उत्पन्न करने पाते।

यह सुसिद्धान्तित और सुविदित है कि बालक मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा में सफलता पा सकते हैं क्योंकि मातृभाषा शिक्षा का स्वाभाविक वाहन है। इसलिए हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा मातृभाषा द्वारा ही होनी चाहिए। केवल सिद्धान्त रूप में ही हम ऐसा नहीं कहते, बल्कि यह व्यवहार में भी हिन्दुस्तान की सब प्राथमिक और अनेक माध्यमिक शिक्षणशालाओं में स्वीकृत हो चुकी है। तथापि उच्च शिक्षा के लिए इस विषय में अभी तक कुछ उपक्रम नहीं हुआ है। विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब महाविद्यालय में प्रवेश करता है तब भी मातृभाषा द्वारा ही उच्च शिक्षा ग्रहण करना उसके लिए स्वाभाविक देख पड़ता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान ऐसा विशाल देश है कि इसकी एकता साधने के लिए हर एक प्रान्त की (मातृ) भाषा के अतिरिक्त समस्त देश की एक राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है। ऐसी राष्ट्रभाषा होने का जन्मसिद्ध और व्यवहारसिद्ध अधिकार देश की सब भाषाओं में हिन्दीभाषा को ही है। उचित है कि हिन्द के सब विद्यार्थी जब विश्वविद्यालय में प्रवेश करें तो स्वाभाविक मातृ भाषा से आगे बढ़ के राष्ट्र भाषा—हिन्दी—द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करें। वस्तुतः प्राचीन काल में जैसे संस्कृत और पीछे पाली राष्ट्रभाषा थी उसी प्रकार अर्वाचीन काल में हिन्दी है। इस प्रान्त में हिन्दी का ज्ञान मातृभाषा के रूप में होता ही है। लेकिन जिन प्रान्तों की यह मातृभाषा नहीं है वे भी इसको राष्ट्रभाषा होने के कारण माध्यमिक शिक्षा के क्रम में एक अधिक भाषा के रूप में सीख लें और विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा इसी भाषा में प्राप्त करें; यही उचित है। तामिल देश को छोड़कर हिन्दुस्तान की प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत प्राकृतादि क्रम से एक ही मूल भाषा या भाषामंडल में से उत्पन्न हुई हैं। अतएव उनमें एक कौटुम्बिक साम्य है। इसलिए अन्य प्रान्तीय भी, अपनी मातृभाषा न होने पर भी, हिन्दी सहज ही में सीख सकते हैं। ज्ञान द्वार की स्वाभाविकता में इससे कुछ न्यूनता ज़रूर आती है तथापि एक राष्ट्र की सिद्धि के लिए इतनी अल्प अस्वाभाविकता सह लेना आवश्यक है। उत्तम शिक्षा की कक्षा में यह दुष्कर भी नहीं है; क्योंकि मनुष्य की बुद्धि जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे स्वाभाविकता के पार जाने का सामर्थ्य भी कुछ सीमा तक बढ़ता है।

आधुनिक ज्ञान की उच्च शिक्षा में उपकारक ग्रन्थ हिन्दी में, क्या हिन्दुस्तान की किसी भाषा में, अद्यापि विद्यमान नहीं हैं—इस प्रकार का आक्षेप करके अँगरेज़ी द्वारा शिक्षा देने की प्रचलित रीति का कितने ही लोग समर्थन करते हैं। किन्तु इस युक्ति का अन्योन्याश्रय दोष स्पष्ट है, क्योंकि जब तक देश की भाषा द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती तब तक भाषा के साहित्य का प्रफुल्लित होना असम्भव है और जब तक यथेष्ट साहित्य न मिल सके तब तक देश की भाषा द्वारा शिक्षा देना असम्भव है। इस अन्योन्याश्रय दोषापत्ति का उद्धार तभी हो सकता है जब अपेक्षित साहित्य यथाशक्ति उत्पन्न करके तद्द्वारा शिक्षा का आरम्भ किया जाय। आरम्भ में ज़रूर पुस्तकें छोटी-छोटी ही होंगी। लेकिन इन पर अध्यापकों के उक्त-अनुक्त दुरुक्त आदि विवेचन रूप एवं इष्टपूर्तिरूप वार्तिक, तात्पर्यविवरण-रूप वृत्ति, भाष्यटीका, खंडनादि ग्रन्थों के होने से यह साहित्य बढ़ता जायगा और बीच में अहरहः प्रकटित अँगरेज़ी पुस्तकों का उपयोग सर्वथा नहं छूटेगा। प्रत्युत अच्छी तरह से वह भी साथ साथ रहकर काम ही करेगा। इस रीति से अपनी भाषा की समृद्धि भी नवीनता और अधिकता प्राप्त करती जायगी।

इस इष्ट दिशा में काशी विश्वविद्यालय की ओर से जो कार्य करने का आरम्भ किया जाता है वह दानवीर श्रीयुत घनश्यामदासजी बिड़ला के दिये हुए ५०,००० रुपये का प्रथम फल है। आशा की जाती है कि इस प्रकार और धन भी मिला करेगा और उससे अधिक कार्य भी होगा। इति शिवम्।

अहमदाबाद
वैशाख शुक्ल पूर्णिमा
वि० सं० १९८७

आनंदशङ्कर बापूभाई ध्रुव
प्रो० वाइस चांसलर, काशी विश्वविद्यालय,
अध्यक्ष, श्री काशी-विश्वविद्यालय हिन्दी-ग्रन्थमाला-समिति

प्रथम संस्करण की भूमिका

शरीर-रचना-विज्ञान आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाखा है। वास्तव में रोग-चिकित्सा का आधार ही अङ्गों की रचना तथा उनके कार्य का पूर्ण ज्ञान है। रचना तथा कार्य से अभिज्ञ न होने पर चिकित्सा में निपुणता नहीं आ सकती। विशेष कर शल्य-चिकित्सा करनेवाले शल्य-कोविदों के लिए तो शरीर-रचना का अत्यन्त गम्भीर और सूक्ष्म ज्ञान अनिवार्य है। शरीर का प्रत्येक अङ्ग तथा रचनाएँ, धमनी, शिरा, नाड़ी इत्यादि की स्थिति तथा उनका आपस में स्थिति के अनुसार सम्बन्ध तथा अन्य समीपवर्ती अङ्गों के साथ सम्बन्ध, इन सबका पूर्ण परिचय हुए बिना शस्त्र कर्म नहीं किये जा सकते। बृहद् शल्य-कर्म में ऐसी अनेक रचनाएँ, धमनी, नाड़ी तथा अन्य अंग बीच में आ जाते हैं कि वह निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने में बाधित होते हैं। इन सब रचनाओं तथा अंगों को इस प्रकार बचाना तथा उनकी व्यवस्था करनी कि उनको कोई क्षति भी न पहुँचे तथा इच्छित स्थान तक पहुँचकर शल्य, अर्बुद तथा रुग्ण अंग का छेदन भी किया जा सके इसीको शस्त्र कर्म कहते हैं तथा शल्य कोविद की सफलता इसी पर निर्भर होती है। रचनाओं तथा अंगों को जितनी कम क्षति पहुँचेगी शस्त्र-कर्म में उतनी ही सफलता होगी।

आयुर्वेद में शरीर-स्थान को बड़ा महत्त्व दिया गया है। प्रत्येक प्राचीन संहिता में इसका विशेष स्थान है। और यद्यपि अनेक संहिताएँ लुप्त हो गई हैं तथा जो मिलती हैं उनमें से कुछ अपूर्ण हैं और शेष में अज्ञानवश असङ्गत श्लोकों का समावेश हो गया है तो भी उनके अध्ययन से स्पष्टतया विदित होता है कि कुछ संहिताएँ केवल शारीर-शास्त्र ही से सम्बन्ध रखती थीं। उनमें शरीर के प्रत्येक अङ्ग की रचना का सूक्ष्मतर विवेचन किया गया था तथा शवच्छेद की विधि का पूर्ण वर्णन था। प्राचीन समय में शल्य-कोविदों तथा शस्त्र-चिकित्सकों की श्रेणी ही पृथक् थी। और उन लोगों को इन शारीर सम्बन्धी संहिताओं का अध्ययन आवश्यक था।

जो आयुर्वेदीय संहिताएँ इस समय उपलब्ध हैं उनमें चरक और सुश्रुत ही प्राचीनतम और महत्त्व-पूर्ण मानी जाती हैं। इनमें भी शारीर के सम्बन्ध में सुश्रुत ही प्रमाणिक ग्रन्थ है। शस्त्र-चिकित्सा तथा शारीर का विशेष विवेचन इसी संहिता में किया गया है। किन्तु उसमें भी बहुत से ऐसे असङ्गत पाठ मिलते हैं जो शवच्छेद करने पर यथार्थ नहीं प्रतीत होते। उनमें जो वर्णन है, मानव शरीर में उसके अनुसार न अङ्गों की रचना ही पाई जाती है और न प्रयोगों द्वारा उनका वह कार्य ही सिद्ध होता है। कहीं-कहीं तो पाठ अत्यन्त दूषित हो गया है।

इस सबका कारण यह हुआ है कि इन संहिताओं का संशोधन तथा संस्करण उन व्यक्तियों के द्वारा होता रहा है जो स्वयं इस विषय के विज्ञ नहीं थे और शारीर-शास्त्र का जिनको परिचय नहीं था। अतएव जहाँ पर भी जो पाठ उनकी समझ में नहीं आया वहीं पर उन्होंने पाठ का रूपान्तर कर दिया और अपनी ओर से कुछ श्लोकों का समावेश कर दिया। यही क्रम शताब्दियों तक चलता रहा। परिणाम यह हुआ कि पाठ का रूप बिलकुल बदल गया और जो सङ्गत था वह असङ्गत हो गया।

शारीर-शास्त्र के ज्ञान के लिए शवच्छेद अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन संहिताओं में शवच्छेद को आवश्यक बताया गया है तथा उसकी विधि का वर्णन किया गया है। उस समय आयुर्वेद के प्रत्येक विद्यार्थी को शवच्छेद करना पड़ता था। किन्तु बीच के समय में, विशेष कर बौद्ध-समय में, इसको बुरा समझा जाने लगा। मनु ने भी इसका निषेध कर दिया और शल्य-कोविदों को भी नीचे की श्रेणी में रख दिया। इस कारण शवच्छेद बन्द हो गया और शारीर-ज्ञान का ह्रास होने लगा। इसके अतिरिक्त अनेक संहिताएँ नष्ट हो गई। परिणाम यह हुआ कि शारीर लुप्तप्राय हो गया।

शरीर-रचना-विज्ञान अत्यन्त विस्तृत और कठिन है। शवच्छेद के बिना इसका अध्ययन असम्भव और असंगत है। इसी कारण मेडिकल कालेज और नवीन प्रणाली के आयुर्वेदिक कालेजों में विद्यार्थी के लिए दो वर्ष तक शवच्छेद करना अनिवार्य है। केवल पाठ से इस शास्त्र का ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। शवच्छेद और ध्यानपूर्वक अध्ययन दोनों विधियों द्वारा इस शास्त्र का अनुशीलन आवश्यक है।

यह पुस्तक विशेष कर आयुर्वेदिक कालेज के विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। इसके लिखने में अनेक नवीन पर्यायवाची शब्द बनाने पड़े हैं जिनकी तालिका पुस्तक के अन्त में दी गई है। यह शास्त्र पारिभाषिक शब्दों से ओत-प्रोत है जिनकी संख्या सहस्रों है। इस कार्य में जो कठिनाई पड़ी है उसका सहज में अनुमान किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय कविराज श्री गणनाथसेन सरस्वती का मैं विशेष अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस क्षेत्र में इतना अमूल्य कार्य किया है। जहाँ तक हो सका है मैंने उनके बनाये हुए शब्दों को जैसे का तैसा रक्खा है जिससे पर्यायवाची शब्दावली में समानता रहे।

पुस्तक में बहुत से ब्लाक अँगरेज़ी की पुस्तकों से लिये गये हैं जिनके लिए उन पुस्तकों के प्रकाशकों ने मुझे सहर्ष स्वीकृति दी है। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

मुकुन्दस्वरूप वर्मा

मानव-शरीर-रचना विज्ञान

दूसरे संस्करण की भूमिका

लेखक के लिये यह सन्तोष और हर्ष का विषय है कि मानव-शरीर-रचना विज्ञान जैसे अत्यन्त नीरस और क्लिष्ट विषय की पुस्तक का एक संस्करण समाप्त होकर दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इस विषय में साधारण जनता अभिरुचि नहीं ले सकती। इसका केवल इस विषय के विद्यार्थियों द्वारा ही अध्ययन किया जा सकता है। यह हिन्दी भाषा के प्रचार और सर्वप्रिय होने और विज्ञान की जिज्ञासा के प्रसरित होने ही का फल है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

इस संस्करण के प्रथम खण्ड को दो भागों में विभाजित करना पड़ा है। अतएव पाठकों के पास यह पुस्तक दो भागों में पहुँचेगी। इस कारण शब्दानुक्रमणिका दूसरे भाग के अन्त में छापी गई है। पहिले संस्करण में छपने में जो त्रुटियाँ रह गई थीं उनको भी दूर करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कि यदि पाठकों की अभिरुचि इस प्रकार बनी रही तो तीसरा संस्करण प्रकाशित करने का अवसर शीघ्र ही मिलेगा।

मुकुन्द स्वरूप वर्मा

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

सूक्ष्म रचना

जीव-कोषाणु—आद्यसार—आद्यसार के गुण—कोषाणुओं का विभजन सम तथा विषम विभजन—धातु—उपकला :—सामान्य वल्की, स्तम्भाकार, रोमिकामय, स्तरित तथा स्थायी। संयोजक धातु :—सौत्रिक, श्लेष्मवत्, श्वेतसौत्रिक, पीत स्थितिस्थापक, सान्तगित, वसामय, जालक। स्नक्ति :—सन्धिक, पर्शुकीय, श्वेत सौत्रिक, सन्ध्यान्तरित, संयोजक, स्थिति-स्थापक। अस्थि :—अस्थिसेयंकला, मज्जा, सूक्ष्मरचना, अस्थि-कोषाणु, अस्थि-विकास। रक्त—रक्तकण, श्वेत तथा लाल; रक्त-कणिका, लसीका मांसधातुः—ऐच्छिक मांसपेशी, सूक्ष्म रचना, अनैच्छिक पेशी, हार्दिक मांसधातु। नाड़ी-धातु :—नाड़ी-कोषाणु, नाड़ी-सूत्र। मेदसपिधान सहित तथा रहित सूत्र। पृष्ठ १-५५

द्वितीय खण्ड

अस्थि प्रकरण

अस्थियों का कर्म—नर-कङ्काल—ऊर्ध्व शाखा की अस्थियों का वर्णन :—अक्षक, अंसफलक, प्रगण्डास्थि, बहिःप्रकोष्ठिका, अन्तःप्रकोष्ठिका, मणिबन्ध की छोटी अस्थियाँ :—नौनिभ, अर्धचन्द्र, त्रिकोणाकार, वर्तुलक, पर्याणक, कूटक, मध्यकूट, फणधर, कर्मास्थियाँ तथा अंगुल्यस्थि। निम्नशाखा की अस्थियाँ :—श्रोणिफलक, उर्विका, जान्विका, बहिः तथा अन्तर्जङ्घिका, पाद कूर्चास्थियाँ :—पार्ष्णि, कूर्चशिर, धर्म, नौनिभ, तीनों कोणकास्थियाँ, प्रपादिकाएँ, पादांगुलिका। पर्शुकाएँ—प्रथम, द्वितीय तथा सामान्य। पर्शुकीय स्नक्ति। वक्षिका या उरःफलक। पृष्ठवंश—कशेरुक आदर्श, भिन्न-भिन्न प्रान्त—ग्रीवा, वक्ष, कटिप्रान्त के कशेरुक, त्रिकास्थि, अनुत्रिकास्थि। करोटि की अस्थियाँ :—पूर्विका, पार्श्विका, पश्चादिका, शङ्खिका, जतूकास्थि, झर्झरास्थि, अधः शुक्तिका, अश्रविका, नासास्थि, सीरिका, ऊर्ध्वहन्विका, गण्डिका, तालविका, अधोहन्विका, कण्ठिका। करोटि के भिन्न पृष्ठों का वर्णन। ५७-२७१

मानव-शरीर-रचना-विज्ञान

प्रथम खण्ड

सूक्ष्म रचना[1]

शरीर की रचना एक मकान की भाँति है। जिस प्रकार शिल्पकार ईंटों को एक दूसरे पर चुनकर और चूने या सीमेन्ट का प्लास्टर लगाकर मकान बना देता है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के शरीर सूक्ष्म जीवित ईंटों के बने हुए हैं। प्रत्येक अङ्ग में इन जीवित ईंटों की एक असीम संख्या स्थित है। इनको जीवकोषाणु[2] कहा जाता है। वृक्ष, लता, सूक्ष्म तथा वृहत् आकारवाले जन्तु, सबके शरीर इन कोषाणुओं के केवल समूह मात्र हैं। सूक्ष्म शरीरवाले जन्तुओं तथा वृक्षों में इन कोषाणुओं की संख्या कम होती है। जिनके शरीर का आकार बड़ा होता है उनमें कोषाणुओं की संख्या भी अधिक होती है। मनुष्य की अपेक्षा चूहे और चूहे की अपेक्षा चींटी में इनकी संख्या अत्यल्प है। किन्तु हाथी अथवा घोड़े में अधिक है। कुछ जन्तु तथा वृक्ष ऐसे होते हैं जिनका शरीर केवल एक कोषाणु का बना होता है। शेष जन्तुओं तथा वृक्षों के शरीर में अनेक कोषाणु उपस्थित पाये जाते हैं। इस प्रकार जीवित सृष्टि दो बड़े भागों में विभक्त की जा सकती है—

(१) **एक-कोषाणु-धारी**[3]—जैसे अमीबा[4], पेरेमीशियम[5], ऐल्गी[6]।

(२) **बहु-कोषाणु-धारी**[7]—जैसे मनुष्य, गौ, घोड़ा, बड़े आकारवाले वृक्ष इत्यादि।

इन दोनों भाँति के जीवों में जीवन की सब क्रियाएँ एक समान होती हैं। दोनों भोजन ग्रहण करते हैं, वायु से आक्सिजन को लेते हैं, भोजन का आत्मीकरण करने के पश्चात् मलोत्सर्ग करते हैं और उत्पत्ति भी करते हैं। किन्तु जहाँ बहु-कोषाणुधारी जीव में प्रत्येक कर्म के लिए भिन्न-भिन्न अङ्ग उपस्थित हैं अथवा यों कहना चाहिए कि कोषाणुओं के भिन्न-भिन्न समूह निर्दिष्ट हैं वहाँ एक कोषाणु-धारी जीव के शरीर में एक ही कोषाणु इन सब कर्मों का सम्पादन करता है। अमीबा, जिसका शरीर केवल एक कोष का बना हुआ है, जीवन के सब कर्म मनुष्य ही की भाँति करता है।

---

१. Histology. २. Cell. ३. Unicellular. ४. Amœba. ५. Paramecium, ६. Algæ. ७. Multicellular.

जीव-कोषाणु—इसकी व्याख्या 'आद्यसार का केन्द्रक-युक्त समूह' है क्योंकि आद्यसार और केन्द्रक इसके मुख्य अवयव हैं। यह आकार में इतना छोटा है कि केवल सूक्ष्म-दर्शक[१] के द्वारा देखा जा सकता है। यह परिधि में १/३००० से १/३०० इञ्च तक होते हैं। यद्यपि भिन्न-भिन्न अङ्गों में कोषाणुओं के आकार में भिन्नता पाई जाती है किन्तु उनकी रचना का आधार एक ही समान है। उपयुक्त रङ्गों से रँगने के पश्चात् सूक्ष्मदर्शक द्वारा ध्यान से देखने से कोषाणु में निम्नलिखित अवयव दिखाई देते हैं—

(१) सारे कोषाणु में एक गाढ़ा अर्धतरल रचनायुक्त पदार्थ भरा दिखाई देता है जिसको आद्यसार[२] कहते हैं।

(२) कोषाणु के बीच में एक केन्द्रक[३] होता है। कुछ कोषाणुओं में, विशेषतया वानस्पतिक कोषाणु में, यह एक ओर को स्थित पाया जाता है।

(३) आकर्षकमण्डल[४] और आकर्षक[५] बिन्दु ;

आद्यसार—यह एक गाढ़ा लसदार पदार्थ है जो सारे कोषाणु में भरा रहता है। जीवित अवस्था में यह समांशी[६] और पारदर्शी प्रतीत होता है। कोष के आद्यसार में (केन्द्रक के अतिरिक्त, जो एक भाँति के आद्यसार ही का बना होता है), जिसको कोषसार[७] भी कहते हैं, दशाओं के अनुसार अपनी अवस्था में परिवर्त्तन करने की अत्यन्त शक्ति होती है। अतएव इन परिवर्तनों के कारण भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उसकी रचना में भी भिन्नता दिखाई देने लगती है। इस प्रकार किसी समय पर वह नितान्त रचनाविहीन अत्यन्त समांशी और स्वच्छ दिखाई देता है जिसमें किसी भी भाँति के अवयव नहीं होते। दूसरे समय पर आद्यसार में यतस्ततः सूक्ष्म कणों के समूह एकत्र पाये जाते हैं और कोषसार को कणयुक्त[८] कहा जाता है। कभी-कभी ऐसा दिखाई देता है जैसे तरल वस्तु के गोल बड़े-बड़े कण
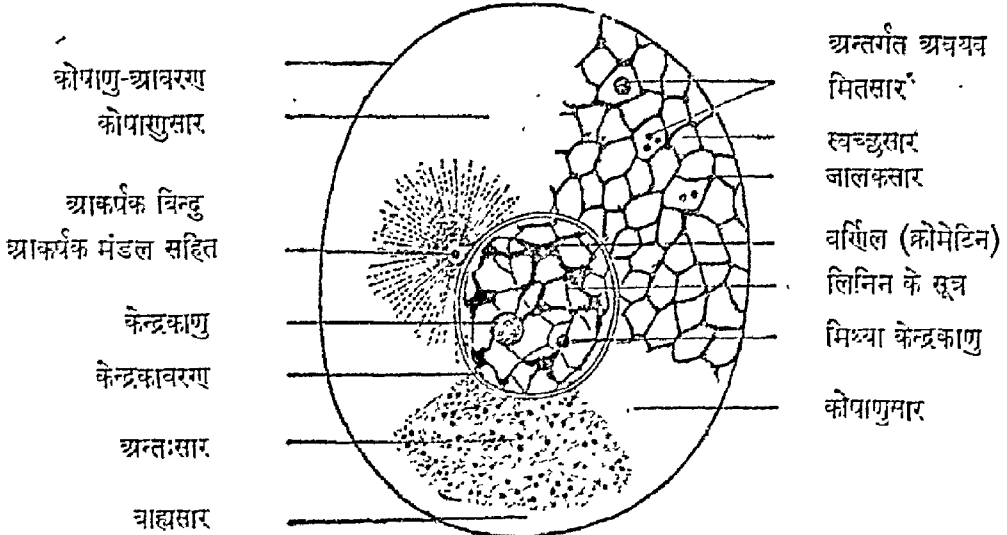
चित्र नं० १—जान्तव कोषाणु

१. Microscope. २. Protoplasm. ३. Nucleus. ४. Centrosome. ५. Centriole. ६. Homogeneous. ७. Cytoplasm. ८. Granular. ९. Mitochohdria.

चारों ओर विस्तृत गाढ़ी वस्तु के भीतर स्थित हों। ऐसी रचना को फेनिल[1] कहते हैं। यदि चारों ओर की गाढ़ी वस्तु में सूत्रों के समान जाल दिखाई देता है तो जालाकार[2] रचना कही जाती है।

कोषाणु की परीक्षा प्रायः उसको रङ्गों से रँगने के पश्चात् की जाती है जिससे आद्यसार रासायनिक वस्तुओं से प्रभावित हो जाता है। इस कारण उसके आकार का परिवर्तित हो जाना अत्यन्त सम्भव मालूम होता है। ऐसे कोषाणु के कोषसार में जालाकार रचना दिखाई देती है। तरल समांशी स्वच्छ पदार्थ के कणों के चारों ओर स्थित सघन पदार्थ में तन्तुओं का जाल सा फैला हुआ दिखाई देता है। इस जालमय भाग को जालकसार[3] और भीतर के समांशी भाग को स्वच्छसार[4] कहा जाता है। किन्तु यह कहना कठिन है कि साधारण कोषाणुसार की, जिस पर रासायनिक रङ्गों की क्रिया नहीं हुई है, ऐसी ही रचना होती है। सम्भावना इसके विपरीत मालूम होती है। अन्वेषण-कर्त्ताओं ने इसकी रचना के सम्बन्ध में यह महत्त्वपूर्ण खोज की है कि आद्यसार की रचना परिवर्त्तनशील है। यह भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें परिवर्त्तित हो सकती है। इसी कारण भिन्न-भिन्न लेखकों के लेखों में इस सम्बन्ध में इतनी भिन्नता पाई जाती है। किन्तु वह सब इस बात पर एकमत हैं कि आद्यसार के दो भाग होते हैं—एक सक्रिय और दूसरा निष्क्रिय। यद्यपि दोनों भाग जीवित हैं तो भी आद्यसार की क्रियाओं—जैसे संकोचत्व, उत्तेजितत्व इत्यादि—का कारण सक्रिय भाग है।

अधिकतर परिपक्व कोषाणुओं में जालाकार रचना पाई जाती है। कुछ विद्वानों ने बिना रँगे हुए अथवा रासायनिक क्रियाओं से अप्रभावित कोषाणुओं में भी जालाकार रचना का वर्णन किया है। इस कारण रचना के सम्बन्ध में इसी मत के अधिक अनुयायी हैं।

इस प्रकार कोषसार में दो भाग दिखाई देते हैं—एक जालकसार और दूसरा स्वच्छसार। जालकसार में तन्तुओं के मिलने के स्थान पर सूक्ष्म ग्रन्थियाँ दिखाई देती हैं जिनके कारण वह कणयुक्त मालूम होता है। इनके अतिरिक्त कोषसार में कुछ ठोस कण भी उपस्थित होते हैं। स्वच्छ-सार में स्थित कुछ अन्य वस्तुओं के कण भी पाये जाते हैं जिनमें वसा के कण, तैल, उद्रेचित पदार्थ तथा रङ्गकण मुख्य हैं। **ग्लायकोजिन**[5] के कण भी कभी-कभी उपस्थित होते हैं। यह वस्तुएँ वास्तव में कोषाणु के भाग नहीं हैं किन्तु बाहरी अवयव हैं जो किसी प्रकार से कोषाणु में पहुँच गये हैं।

भिन्न-भिन्न कोषाणुओं में जालकसार के कोष्ठों के आकार में भिन्नता पाई जाती है। कभी-कभी एक ही कोषाणु के भिन्न भागों का जालकसार भिन्न आकार का होता है। कुछ कोषों में जालकसार की अधिकता होती है, स्वच्छसार कम होता है। अन्य कोषों में जालकसार की न्यूनता और स्वच्छसार की अधिकता पाई जाती है। नवजात कोषाणुओं में प्रायः स्वच्छसार अधिक होता है; जालकसार बहुत कम होता है। किन्तु ज्यों-ज्यों कोषाणु के आकार में वृद्धि होती है और वह प्रौढ़ होता जाता है त्यों-त्यों जालकसार की मात्रा बढ़ती जाती है।

आद्यसार का रासायनिक संघटन—यह वस्तु जीवित अवस्था में परिवर्त्तनशील पदार्थों की बनी होती है जिनका ठीक-ठीक संघटन जानना अत्यन्त कठिन है। यह वस्तु इतनी कोमल होती है कि रासायनिक वस्तुओं की क्रिया होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है और उसके अवयवों का रूप बदल जाता है। इस कारण विश्लेषण से केवल मृत वस्तु की रचना का पता लगता है जिसका जीवित वस्तु से पृथक् होना अत्यन्त सम्भव है।

कोषसार में तीन-चौथाई भाग जल होता है और शेष एक चौथाई ठोस पदार्थ। ठोस पदार्थों में प्रोटीन, वसा और खनिज पदार्थ हैं जिनमें [illegible]यम, पुटाशियम, कालसियम के फ़ास्फ़ेट और

---

१. Alveolar. २. Reticular. ३ [illegible]m. ४. Hyaloplasm. ५. Glycogen.

क्लोराइड लवण विशेष हैं। यह वस्तुएँ शरीर में ऐन्द्रिक रूप में वर्त्तमान हैं जो कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सिजन, नाइट्रोजन, गन्धक तथा फ़ास्फ़ोरस के संयोग से बनती हैं।

आद्यसार के गुण—आद्यसार जीवन का आधार है। शरीर में अथवा जीवित सृष्टि में जो कोई गुण पाये जाते हैं वह आद्यसार ही के गुण हैं। आद्यसार के जीवित होने के लक्षण को जीवन के नाम से पुकारा जाता है। उसकी मृत्यु हो जाने पर शरीर की मृत्यु हो जाती है।

(१) **उत्तेजितत्व**[1]—उत्तेजना को ग्रहण करना आद्यसार का मुख्य गुण है। यदि अमीबा जन्तु के शरीर को विद्युत्-धारा द्वारा उत्तेजित किया जाय अथवा अम्ल के बिन्दु से उसके शरीर
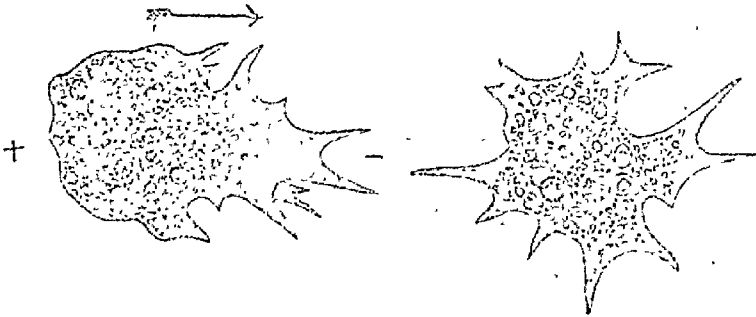
चित्र नं० २
अमीबा एक-कोषाणवीय जीव है जो गति करने में अपना रूप परिवर्त्तित करता रहता है।

का सम्पर्क कराया जाय तो वह तुरन्त दूसरी ओर को भागने लगेगा। विद्युत्धारा अथवा अम्ल-बिन्दु से उसके शरीर का आद्यसार उत्तेजित हो जाता है और वह क्रिया करने लगता है। शरीर में काँटा चुभने पर तुरन्त उसका अनुभव कर लेना उत्तेजितत्व का बहुत बड़ा उदाहरण है।

(२) **समीकरण**[2]—भोजन को ग्रहण करके उससे बने हुए रस के आत्मीकरण द्वारा अपने शरीर तथा शक्ति को बढ़ाना समीकरण कहलाता है। निर्जीव पदार्थों में यह गुण नहीं होता।

(३) **वर्धन**[3]—समीकरण का फल वर्धन है। प्रत्येक जीवित वस्तु की वृद्धि होती है। निर्जीव वस्तुओं की भी वृद्धि होती है, किन्तु वह समीकरण का फल नहीं होता। यदि पत्थर या स्फटिक कुछ समय तक एक ही स्थान पर पड़ा रहे तो उस पर धूल इत्यादि के एकत्र होने से उसका आकार बढ़ जायगा। किन्तु उसके भीतर के भाग ज्यों के त्यों रहेंगे। जीवित शरीर में उसके प्रत्येक भाग की समीकरण तथा विभजन[4] द्वारा वृद्धि होती है।

(४) **उत्पादन**[5]—इस क्रिया द्वारा प्रत्येक जीव अपने समान दूसरा जीव उत्पन्न करके अपने वंश की रक्षा तथा वृद्धि करता है जिससे उसका अस्तित्व संसार से लुप्त न होने पावे। निर्जीव तथा मृत पदार्थों में यह शक्ति नहीं होती।

(५) **मलोत्सर्ग**[6]—भोजन के आत्मीकरण तथा कार्य से उत्पन्न हुए निकृष्ट पदार्थों के त्यागने को मलोत्सर्ग कहते हैं। कार्य करते समय आद्यसार के भीतर रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं। उनके फल-स्वरूप कुछ ऐसे पदार्थ बन जाते हैं जो हानिकारक होते हैं। इनका त्याग करना जीवित वस्तुओं का गुण है। यदि एक-कोषाणु-धारी जीव अमीबा को ध्यान से देखा जाय तो उसके शरीर में ऐसे ही निकृष्ट पदार्थ स्थित मिलेंगे जो कुछ समय के पश्चात् स्वभावतः उसके शरीरसे निकल जाते हैं।

---

१. Excitability. २. Assimilation. ३. Growth. ४. Division. ५. Reproduction. ६. Excretion.

इन पाँच लक्षणों द्वारा, जो आद्यसार के गुण हैं, चेतन और अचेतन सृष्टि में भेद किया जा सकता है।

केन्द्रक[१]—कोषाणु के प्रायः बीच में केन्द्रक पाया जाता है। कुछ कोषाणुओं में, विशेषतया वनस्पति के कोषाणुओं में, केन्द्रक एक ओर को स्थित होता है। इसका आकार गोल अथवा अंडे के समान होता है। कोषाणु के आकार के समान केन्द्रक का बड़ा या छोटा होना आवश्यक नहीं है। बड़े आकार के कोषाणु में छोटा केन्द्रक और छोटे आकार के कोषाणु में बड़ा केन्द्रक पाया जा सकता है। एक कोषाणु में एक से अधिक केन्द्रक उपस्थित मिल सकते हैं। केन्द्रक कोषाणु के जीवन के लिए उसी भाँति है जिस भाँति जीवन के लिए आद्यसार है। कोषाणु का जीवन केन्द्रक पर निर्भर करता है। कोषाणु की वृद्धि, उत्पादन सब क्रियाएँ केन्द्रक ही पर अवलम्बित रहती हैं। यदि कोषाणु को इस प्रकार दो भागों में विभक्त किया जाय कि एक भाग में समस्त केन्द्रक हो और दूसरा केन्द्रक-हीन हो तो केन्द्रक-युक्त भाग जीवित रहेगा और वह कुछ ही समय में सम्पूर्ण हो जायगा। किन्तु केन्द्रक-रहित भाग की मृत्यु हो जायगी। जब कोषाणु में उत्पत्ति होती है तो प्रथम केन्द्रक के विभाजन से दो केन्द्रक बन जाते हैं जिनके चारों ओर आद्यसार के एकत्र हो जाने से दो कोषाणु उत्पन्न होते हैं।

कोषाणु में केन्द्रक चारों ओर के आद्यसार से केन्द्रकावरण[२] द्वारा पृथक् रहता है जो केन्द्रक पर चढ़ा रहता है। इसके भीतर दो भाग होते हैं। एक कोषसार की भाँति स्वच्छ लसदार अर्धतरल पदार्थ होता है जो केन्द्रक में भरा रहता है। इसको केन्द्रकसार[३] कहते हैं। दूसरा भाग कोषजालकसार की भाँति तन्तुओं या सूत्रों का बना होता है जो केन्द्रकसार में जाल की भाँति चारों ओर को फैले रहते हैं। यह केन्द्रकसूत्र[४] कहलाते हैं और लिनिन[५] नामक वस्तु के बने होते हैं। जालकसार की अपेक्षा यह अधिक मोटे होते हैं और सुगमता से दिखाई देते हैं। इनकी संख्या भी अधिक होती है। हीमेटौक्सलिन[६] या सेफ्रेनिन[७] के समान भास्मिक रङ्गों द्वारा रँगने से इन सूत्रों पर गहरे रङ्ग की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ दिखाई देती हैं जो क्रोमेटिन[८] नामक वस्तु की बनी होती हैं। इन्हीं की अधिकता से लिनिन के सूत्र रङ्गमय दिखाई देते हैं। वास्तव में वे रङ्ग-रहित होते हैं और भास्मिक रङ्गों को ग्रहण नहीं करते। क्रोमेटिन के समूह भिन्न-भिन्न आकार के पाये जाते हैं। कुछ ग्रन्थियों की भाँति दिखाई देते हैं, जो गोल, चौकोर या षट्कोणाकार होती हैं; कुछ मुड़े हुए सूत्रों की भाँति होते हैं। क्रोमेटिन केन्द्रक का मुख्य अवयव है। इसमें न्यूक्लीन[९] नामक प्रोटीन होती है जिसमें फ़ास्फ़ोरस का भाग अधिक होता है।

केन्द्रक के भीतर एक बड़ा गोल कण पाया जाता है जिसको केन्द्रकाणु[१०] कहते हैं। कभी-कभी कई केन्द्रकाणु पाये जाते हैं। यद्यपि यह केन्द्रक के सूत्रजाल में स्थित होता है किन्तु इसका सूत्रों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह स्वतन्त्रतया सूक्ष्म सूत्रों द्वारा केन्द्रक के आवरण से जुड़ा रहता है और रंजकों[११] के प्रयोग के पश्चात् इसके रङ्ग में केन्द्रक से कुछ भिन्नता आ जाती है। वह ईओसीन[१२] अथवा अम्लयुक्त फ़क्सिन[१३] के समान रञ्जकों को, जिनसे लिनिन और कोषसार विशेषतया रञ्जित हो जाते हैं, सहज में ग्रहण करता है।

केन्द्रकाणु के कार्य के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित मत स्थिर नहीं हो सका है। कुछ विद्वान् उसको कोषाणु-विभजन के समय क्रोमोसोमों के बनने में जो वस्तुएँ काम में आती हैं उनका संग्रह मानते

---

१. Nucleus. २. Nuclear Membrane. ३. Karyoplasm. ४. Nuclear fibrils. ५. Linin. ६. Hœmotoxylin. ७. Saffranin. ८. Chromatin. ९. Nuclein. १०. Nucleolus. ११. Stains. १२. Eosin. १३. Acid Fuchsin.

हैं। किन्तु दूसरे मत के अनुसार वह केन्द्र का निकृष्ट भाग है जो बहुधा केन्द्रक से त्यागा जाकर कोषसार में पहुँच जाता है और वहाँ नष्ट हो जाता है।

क्रोमेटिन की ग्रन्थियाँ कभी-कभी केन्द्रकाणु के समान दीखने लगती हैं। वास्तविक केन्द्रकाणु केन्द्रकनार में स्थित होता है और आम्लिक रङ्गों को ग्रहण करता है। किन्तु यह ग्रन्थियाँ क्रोमेटिन के जाल पर स्थित दिखाई देती हैं।

केन्द्रक प्रोटीन सदृश पदार्थों से बना होता है। उसके मुख्य पदार्थ का नाम न्यूक्लीन है जो क्रोमेटिन के बहुत कुछ समान होता है। साधारण प्रोटीन में कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सिजन और गन्धक होती है। किन्तु न्यूक्लीन में इन अवयवों के साथ फ़ास्फ़ोरस का बहुत भाग मिला रहता है। कभी कभी उसमें लौह भी पाया जाता है। न्यूक्लीन क्षारीय पदार्थों में घुल जाता है किन्तु आम्लिक पदार्थों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। इसी कारण वह आमाशय में नहीं घुलता यद्यपि अन्य प्रोटीन घुल जाते हैं।

आकर्षक-मंडल[1]—यह सब कोषाणुओं में नहीं पाया जाता है। जिनमें विभजन और उत्पत्ति होती है उनमें यह अवश्य पाया जाता है। ऐसे कोषाणुओं में मण्डल केन्द्रक के पास स्थित होता है। बीच में एक बिन्दु होता है जो **आकर्षक-बिन्दु**[2] कहलाता है। उसके चारों ओर एक स्वच्छ कुण्डल होता है। इस कुण्डल के चारों ओर आद्यसार की रेखाएँ सी दिखाई देती हैं। यह रेखाएँ आकर्षक बिन्दु के चारों ओर उसी भाँति स्थित होती हैं जिस प्रकार सूर्य या चन्द्रमा की किरणों से रश्मियों का एक मण्डल निकलता हुआ दीखता है। आकर्षक-बिन्दु में आद्यसार अथवा आद्यसार के कणों को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति होती है। इसी कारण इस प्रकार का दृश्य उत्पन्न हो जाता है। इस समस्त मण्डल को आकर्षक मण्डल कहते हैं। कोषाणुओं में विभाग होने से पूर्व यह मण्डल दो भागों में विभक्त हो जाता है। तत्पश्चात् कोषाणु का विभाग प्रारम्भ होता है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि आकर्षक-बिन्दु कोषाणु की कर्म-शक्ति का केन्द्र है और कोषाणु के जिस भाग में क्रिया अधिक होती है वहीं यह मण्डल स्थित होता है। जिस कोषाणु में विभाग होता है उसमें यह मण्डल केन्द्रक के पास स्थित होता है, क्योंकि विभाग के समय केन्द्रक ही में सबसे अधिक परिवर्तन होते हैं। किन्तु रोमश कला[3] के कोषाणुओं में यह बिन्दु केन्द्रक से दूर जाकर, कोषाणु के उस सिरे पर जहाँ रोम[4] लगे रहते हैं, स्थित हो जाता है। इन कोषाणुओं में सबसे अधिक परिवर्तन रोमों में होते हैं। इस कारण महाशय ज़िमरमान[5] ने इन बिन्दुओं को 'कोषाणु के गति केन्द्र या शक्ति-केन्द्र'[6] के नाम से अभिहित किया है।

कोषाणुओं का विभजन

कोषाणुओं के विभजन से नवीन कोषाणु उत्पन्न होते हैं। विभजन द्वारा एक कोषाणु के दो भाग हो जाते हैं जिनमें से प्रत्येक में केन्द्रक, कोषसार और कोषाणु-आवरण होता है।

यह विभजन दो प्रकार से होता है—एक सम विभजन और दूसरा विषम विभजन। सम विभजन में केन्द्रक और कोषसार सीधे दो भागों में विभक्त हो जाते हैं। निम्न श्रेणी के जीवों में—एककोषधारी तथा उनके समीपवर्ती में इसी प्रकार का विभजन होता है। मनुष्य तथा उच्च श्रेणी के

---

१. Centro-sphere. २. Centrosome. ३. Ciliated epithelium. ४. Cilia. ५. Zimmerman. ६. Dynamic centre or Kinocentre.

जन्तुओं में केन्द्रक में कई गूढ़ परिवर्त्तनों के पश्चात् कोषाणु दो भागों में विभक्त होता है। यहाँ पर केन्द्रक के क्रोमेटिन में सबसे महत्त्व के परिवर्त्तन होते हैं जिनसे उसके दो समान भाग बन जाते हैं। प्रत्येक भाग में क्रोमेटिन के सूत्रों की ठीक बराबर संख्या उपस्थित होती है। विभजन से चाहे एक बड़ा और दूसरा छोटा कोषाणु बने; किन्तु क्रोमेटिन के सूत्रों की, जिनको क्रोमोसोम कहते हैं, दोनों कोषाणुओं में समान संख्या होगी। ये सूत्र माता-पिता के गुणों को सन्तान में उद्भूत करनेवाले माने जाते हैं, इसी कारण मातृ-कोषाणु के क्रोमेटिन का ठीक आधा-आधा भाग दोनों नवजात कोषाणुओं में पहुँचता है।

सम विभजन[1] या अवितन्त्रण[2]—इस विधि में कोषाणु दो भागों में विभक्त हो जाता है। प्रथम केन्द्रक के बीच में एक संकुचन उत्पन्न होता है जो धीरे-धीरे गहरा होता चला जाता है। यहाँ तक कि केन्द्रक के दो पूर्ण भाग बन जाते हैं, जो प्रथम आपस में जुड़े रहते हैं, किन्तु कुछ समय के पश्चात् एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। साथ ही कोषाणु का कोषसार भी विभाजित होने लगता है। कोषाणु कुछ लम्बा सा हो जाता है और केन्द्रक की भाँति कोषाणु के आवरण पर, लगभग कोषाणु के बीच में, संकुचन उत्पन्न होता है जिसके गहरे होने पर कोषाणु पूर्णतया दो भागों में विभक्त हो जाता है। यह भाग कुछ समय तक जुड़े रहते हैं, किन्तु तत्पश्चात् स्वतन्त्र हो जाते हैं। इस प्रकार दो कोषाणु बन जाते हैं। प्रत्येक में एक केन्द्रक और उसके चारों ओर कोषसार स्थित होता है। यह कोषाणु प्रारम्भ में मातृकोषाणु से छोटे होते हैं। किन्तु धीरे-धीरे इनका आकार बढ़ जाता है और वह मातृ-कोषाणु ही के समान हो जाते हैं।

दोनों केन्द्रकों को जोड़े हुए सूत्राणु का गुच्छा

कोषसार

शिशुकेन्द्रकाणु

चित्र नं० ३—सम विभजन

इस प्रकार के विभजन में केन्द्रक के क्रोमेटिन में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं होते। केवल केन्द्रक का शरीर दो भागों में विभक्त हो जाता है। किन्तु उसके विशिष्ट अवयवों में किसी नियंत्रित रूप से विभाग नहीं होता। कभी-कभी इस विधि से केन्द्रक का तो विभजन हो जाता है, किन्तु कोष-सार विभक्त नहीं होता। ऐसे कोषाणुओं में दो या इससे भी अधिक केन्द्रक पाये जाते हैं।

रक्त के श्वेताणु; अस्थि-कोषाणु और मूत्राशय की उपकला के कोषाणुओं में इस प्रकार के विभजन का होना माना जाता है।

विषम विभजन[3] या वितन्त्रण[4]—इस प्रकार के विभजन में केन्द्रक, आकर्षक-मण्डल तथा कोषसार में बहुत से परिवर्त्तन होते हैं। केन्द्रक और आकर्षक-मण्डल में यह परिवर्त्तन विशेषकर महत्त्व के होते हैं। कोषसार अधिकतया निष्क्रिय ही रहता है। इन दोनों भागों में साथ ही साथ परिवर्त्तन होते हैं यद्यपि वह एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। इस प्रकार जिस समय केन्द्रक में परिवर्त्तन होते हैं उस समय आकर्षक-मण्डल का रूप भी परिवर्त्तित होता रहता है और अन्त में दोनों भागों

१. Direct Division. २. Amitosis. ३. Indirect Division. ४. Mitosis.

के परिवर्त्तनों का परिणाम एक साथ स्पष्ट होता है। केन्द्रक में विशेषतया क्रोमेटिन के क्रम में परिवर्त्तन होते हैं जिनसे उसके सूत्रों का लम्बाई की ओर से विभाग होता है। इस प्रकार इस विभाग से क्रोमेटिन के सूत्रों की संख्या ठीक दुगुनी हो जाती है। आकर्षक-मण्डल के परिवर्त्तनों से वह रेखाएँ बन जाती हैं जिनके द्वारा क्रोमेटिन के विभक्त सूत्रखण्डों की आधी-आधी संख्या कोषाणु के एक सिरे से दूसरे सिरे को चली जाती है और इस भाँति प्रत्येक नवीन कोषाणु में सूत्रखण्डों की समान संख्या पहुँच जाती है।

इन सब परिवर्त्तनों के क्रम को वितन्त्रण या विषम विभजन कहा जाता है। व्याख्या की सुविधा के लिए इनको चार अवस्थाओं में बाँट दिया गया है, जिनको (१) पूर्वावस्था[1], (२) विभिन्नावस्था[2], (३) परावस्था[3] और (४) अन्तावस्था[4] कहते हैं।

पूर्वावस्था—इस अवस्था में क्रोमेटिन के क्रम में परिवर्त्तन होकर वह एक गुच्छे के रूप में आ जाता है। समस्त गुच्छा एक ही सूत्र का बना हो सकता है जो साधारण तागे की पिण्डी के समान होता है। अथवा एक सूत्र के खण्डित होने से अनेक छोटे-छोटे सूत्र उत्पन्न हो जाते हैं और वे फिर से मिलकर क्रोमेटिन का गुच्छा बना देते हैं। इस दशा को 'संहत गुच्छ'[5] की अवस्था भी कहते हैं। तत्पश्चात् गुच्छे के सूत्र छोटे, मोटे और एक दूसरे से पृथक् होने प्रारम्भ होते हैं। यदि प्रथम क्रोमेटिन का एक ही सूत्र था तो अब वह कई भागों में विभक्त हो जाता है और प्रत्येक भाग मोटा, संकुचित और पृथक् होने लगता है। इसको 'विच्छिन्न गुच्छ'[6] कहते हैं। कुछ समय के पश्चात् वह सूत्र भी कई खण्डों में विभक्त हो जाते हैं। यह खण्ड मुड़े हुए मोटे डण्डे की भाँति गहरे रङ्गयुक्त दिखाई देते हैं। इनको क्रोमोसोम[7] कहते हैं। इन्हीं के द्वारा माता-पिता के गुणों का सन्तान में अवतीर्ण होना माना जाता है। जन्तुओं की प्रत्येक जाति में इनकी एक विशिष्ट संख्या पाई जाती है। न केवल जन्तु किन्तु वृक्षों में भी इनकी संख्या निर्दिष्ट होती है जिसमें कभी भिन्नता नहीं पाई जाती। मनुष्य में इनकी संख्या २४ पाई जाती है। यह भी देखा गया है कि उच्च श्रेणी के जन्तुओं में यह संख्या सम अर्थात् २ से विभाज्य होती है। इस समय केन्द्रक का आवरण और केन्द्रकाणु दोनों नष्ट हो जाते हैं और केन्द्रक-सार कोष-सार में मिल जाता है। इस कारण क्रोमेटिन के खण्ड भी, जिनका आकार V के समान होता है, कोषसार में स्वतन्त्रतया स्थित होते हैं। V का शिखर कोषाणु के ध्रुव की ओर तथा V के खुले हुए मुख मध्यरेखा की ओर रहते हैं।

जिस समय केन्द्रक के क्रोमेटिन में यह सब परिवर्त्तन होते हैं उस समय आकर्षक-मण्डल भी निष्क्रिय नहीं रहता। आकर्षक बिन्दु के विभाग से दो बिन्दु बन जाते हैं। दोनों बिन्दुओं के चारों ओर प्रोटोप्लाज़्म उसी प्रकार स्थित हो जाता है जैसे पहले बिन्दु के चारों ओर था। अर्थात् बिन्दु के चारों ओर आद्यसार सूर्य की रश्मियों की भाँति रेखाओं में स्थित हो जाता है। यह अवस्था 'द्वितारका'[8] कहलाती है। तारक एक दूसरे से पृथक् होने लगते हैं और प्रत्येक तारक कोषाणु के ध्रुव की ओर को गति करने लगता है। उनके साथ ही उनका रश्मि या रेखा-मण्डल भी कोषाणु के ध्रुव की ओर को सरकता है। किन्तु दोनों तारकों की रेखाएँ बीच में एक दूसरे की रेखाओं से मिली रहती हैं। इस कारण दोनों तारकों के बीच की रेखाएँ तर्कु के समान दिखाई देने लगती हैं। तारका और यह तर्कु रङ्गकों को भली भाँति नहीं ग्रहण करते। इस कारण इनको 'अवर्णग्राही तर्कु'[9] कहते हैं। इस तर्कु की रेखाओं द्वारा ही क्रोमोसोम कोषाणु के विरुद्ध ध्रुवों पर अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचकर नवीन केन्द्रक बना देते हैं।

---

१. Prophase. २. Metaphase. ३. Anaphase. ४. Telophase. ५. Close spirem.
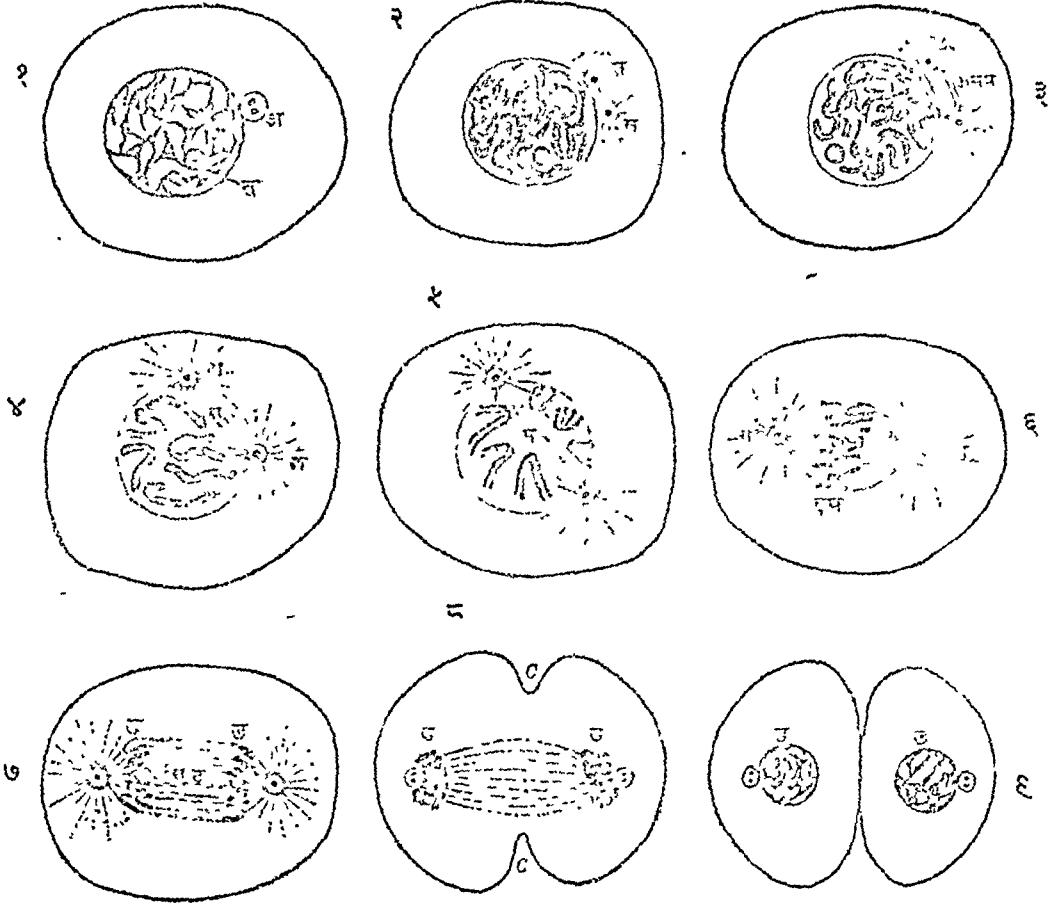
चित्र नं० ४—विषम विभजन (After Piersol)

(१) कोषाणु की विश्राम अवस्था—क्रोमेटिन का क्रमहीन वितरण । अ. आकर्षक मण्डल । त. केन्द्रकाणु ।

(२) क्रोमेटिन संहत गुच्छ की अवस्था में । स स. आकर्षक मण्डल, अवर्णग्राही तर्कुसहित (Achromatic spindle) ।

(३) क्रोमेटिन का विच्छिन्न गुच्छ । अ म य. द्वितारकामय अवर्णग्राही तर्कु ।

(४) क्रोमेटिन के टूटने से क्रोमोसोमों की उत्पत्ति । केन्द्रकावरण और केन्द्रकाणु का नाश । द्वितारक और अवर्णग्राही तर्कु की वृद्धि । अ अ. आकर्षक बिन्दु, मण्डल सहित । स. अवर्णग्राही तर्कु ।

(५) क्रोमोसोमों का अनुदैर्घ्य विभाग जो तर्कु के चारों ओर क्षेत्रमें स्थित है । प. ध्रुवीय क्षेत्र ।

(६) क्रोमोसोम के खण्डों की नवजात शिशु-केन्द्रकों की ओर गति । स व. दोनों आकर्षक मण्डल नवीन केन्द्रकों की स्थिति को निर्धारित करते हैं । इन दोनों तारकों के बीच अवर्णग्राही तर्कु के मध्य रेखा पर स्थित क्रोमोसोम के समूह, जो मध्यस्थ पट्ट (equitorial plate) बनाते हैं ।

(७) ड ड. शिशु-क्रोमोसोमों के समूह, जो एक दूसरे से पृथक् हो रहे हैं, किन्तु स द. तर्कु द्वारा आपस में जुड़े हैं ।

(८) ड ड. शिशु-क्रोमोसोम आकर्षक बिन्दुओं के चारों ओर केन्द्रक के रूप में स्थित हो रहे हैं । साथ में कोषाणु और कोषसार में विभाग हो रहा है ।

(९) ड ड, शिशु-केन्द्रक जो पूर्ण हो चुके हैं । कोषसार भी विभक्त हो चुका है ।

विभिन्नावस्था—इस अवस्था में क्रोमेटिन के खण्ड अथवा क्रोमोसोम अपनी लम्बाई की ओर से दो भागों में विभक्त हो जाते हैं जिससे पूर्व खण्ड की लम्बाई के समान दो खण्ड बन जाते हैं। इस प्रकार क्रोमोसोमों की संख्या ठीक दुगनी हो जाती है और क्रोमेटिन की मात्रा भी समान दो भागों में विभक्त हो जाती है।

इस समय दोनों तारक भी कोषाणु के विरुद्ध ध्रुवों की ओर अपनी यात्रा को जारी रखते हैं। उनके बीच का अन्तर अधिक हो जाता है और तर्कु भी लम्बा हो जाता है। क्रोमोसोम के खण्ड भी इस तर्कु की रेखाओं पर स्थित हो जाते हैं जो उनके लिए पथ-प्रदर्शक का सा काम करती हैं।

परावस्था—इस अवस्था में क्रोमेटिन के विभिन्न हुए खण्ड तारकों की ओर को गति करना आरम्भ कर देते हैं और अन्त को तारक के पास पहुँच जाते हैं। इसमें विशेषता यह है कि प्रत्येक क्रोमोसोम के विभक्त होने से उत्पन्न हुए दो खण्डों में से एक खण्ड एक तारक की ओर और दूसरा खण्ड दूसरे तारक की ओर को जाता है। गति प्रारम्भ करने के पूर्व यह खण्ड अवर्णग्राही तर्कु की मध्यस्थ रेखा पर एक विशेष क्रम में स्थित पाये जाते हैं। इनका आकार V के समान होता है और V का खुला हुआ मुख मध्यस्थ रेखा की ओर और शिखर (जहाँ दोनों दण्ड जुड़े रहते हैं) तारका की ओर रहता है। गति के समय भी खण्डों की यही दशा होती है और तारक के पास इसी दशा में स्थित देखे जा सकते हैं। दोनों तारकों के बीच में सूक्ष्म रेखाएँ दिखाई देती हैं जिनके द्वारा दोनों तारक आपस में जुड़े हुए दीखते हैं।

अन्तावस्था—इस अवस्था में वह सब परिवर्त्तन, जो केन्द्रक के क्रोमेटिन के विभाग से दो केन्द्रकों के बनने में हुए थे, फिर से होते हैं, किन्तु उनका क्रम विरुद्ध होता है जिससे क्रोमेटिन के भिन्न-भिन्न खण्ड मिल जाते हैं और केन्द्रक बन जाता है। कोषाणु के गात्र में सङ्कोच उत्पन्न हो जाता है। कोषसार के दो भागों में भिन्न होने के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। यह सङ्कोच गहरा होता चला जाता है। अन्त में कोषाणु तर्कु की मध्यस्थ रेखा पर दो पूर्ण भागों में विभक्त होता है। इस प्रकार एक कोषाणु से दो कोषाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जिनमें से प्रत्येक में एक केन्द्रक, केन्द्रकाणु, कोषसार, आकर्षक विन्दु और आधा अवर्णग्राही तर्कु होता है। कुछ समय में यह तर्कु नष्ट हो जाता है और आकर्षक बिन्दु अपने मण्डल सहित कभी-कभी दो भागों में विभक्त होकर केन्द्रक के पास स्थित दिखाई देता है।

विषम विभाग में परिवर्त्तनों का संक्षेप

१—**पूर्वावस्था**—केन्द्रक में परिवर्त्तन—

१—क्रोमेटिन का पूर्व क्रम नष्ट हो जाता है।

२—संहत और तत्पश्चात् विच्छिन्न गुच्छिका का बनना।

३—गुच्छिका से क्रोमोसोमों का बनना।

४—केन्द्रक और केन्द्रकावरण का नष्ट होना।

कोषसार में परिवर्त्तन—

१—आकर्षक बिन्दुओं का विभाग।

२—तारकाओं का बनना।

३—क्रोमोसोम की गति।

४—अवर्णग्राही तर्कु का बनना।

२—विभिन्नावस्था—क्रोमोसोमों का अनुदैर्घ्य विभाग।

३—परावस्था—क्रोमोसोमों का दो समूहों में सामूहित होना। प्रत्येक समूह की एक तारक की ओर गति। समूहों के बीच में रेखाओं का बनना जिनसे तारक संयुक्त दीखते हैं। केन्द्रकों का बनना आरम्भ हो जाता है।

४—अन्तावस्था—तर्कु की मध्यरेखा पर कोषाणु में सङ्कोच उत्पन्न होता है। क्रोमोसोम से गुच्छों का बनना; केन्द्रक और केन्द्रकावरण का पुनः बनना; कोषाणु का पूर्ण विभाग। तर्कु का नष्ट होना। आकर्षक बिन्दु, एक या दो, का केन्द्रक के पास स्थित होना।

धातु

शरीर के भिन्न-भिन्न भागों की सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने से पता चलता है कि वे सब चार प्रकार की धातुओं से बने हुए हैं जिनको उपकला, संयोजक, पेशी और नाड़ी धातु कहते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न धातुओं की अधिकता पाई जाती है। पेशी और नाड़ी धातु शरीर में स्वतः संस्थान के रूप में विद्यमान हैं, जो पेशी और नाड़ी या वात संस्थान कहलाते हैं। शेष दोनों धातुओं के कोई विशेष संस्थान नहीं हैं। वह प्रायः प्रत्येक अङ्ग में पाई जाती हैं और उनके बनाने में भाग लेती हैं।

(१) उपकला

शरीर के पृष्ठ—बहिः और अन्तः—उपकला से ढके हुए हैं। यह एक प्रकार का आवरण बनाती है जो सब पृष्ठों को आच्छादित किये है। शरीर के चर्म पर उपकला का एक स्तर फैला हुआ है जहाँ वह उपत्वक् कहलाता है। इसी प्रकार पाचन-नलिका को भीतर की ओर से भी उपकला आच्छादित करती है।

इस प्रकार उपकला कोषाणुओं का एक समूह है जिसमें कोषाणुओं की एक या इससे अधिक पंक्तियाँ होती हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों में उपकला का कार्य भिन्न होता है। उपकला निम्नलिखित स्थानों में पाई जाती है—

(१) चर्म का बाहरी स्तर, जहाँ उपकला को **उपत्वक्**[1] के नाम से पुकारा जाता है। यहाँ पर इसका कर्म चर्म के नीचे के भागों को आघात से बचाना है। बाह्य आघात या रगड़ इत्यादि से उपकला के बहिःस्थ कोषाणु नष्ट होते रहते हैं। ज्यों-ज्यों उनका नाश होता जाता है त्यों-त्यों नीचे के कोषाणु आगे बढ़कर सामने आते जाते हैं। इस प्रकार उपकला के भाग सदा बदलते रहते हैं जिससे नीचे की धमनियाँ, नाड़ी इत्यादि आघात से बची रहती हैं।

(२) श्वास-प्रणाली, नासिका और मुख-कुहर के अन्तःपृष्ठ भी उपकला से आच्छादित हैं। यहाँ उपकला तापक्रम को एक सा रखती है और तरल द्रव्य के निरन्तर उद्रेचन से सारे पृष्ठ को गीला किये रहती है।

(३) पाचन-प्रणाली, आमाशय, पक्वाशय, अन्त्रियाँ, गुदा इत्यादि का अन्तःपृष्ठ भी उपकला से ढका हुआ है जहाँ इसके कोषाणु पाचक रसों को बनाते हैं। पचे हुए भोजन का शोषण भी उपकला द्वारा होता है।

(४) शरीर की स्नैहिक गुहाएँ[2] भी उपकला से आच्छादित होती हैं जहाँ उनसे एक प्रकार का तरल द्रव्य निकलकर कला के पृष्ठों को आर्द्र और चिकना रखता है।

---

१. Epidermis. २. Serous cavities.

(५) जननेन्द्रियाँ और मूत्र-मार्ग का अन्तःपृष्ठ।

(६) शरीर की सब ग्रन्थियों और उनकी नलिकाओं का भीतरी पृष्ठ।

(७) रक्त और रसवाहिनी नलिकाओं का अन्तःपृष्ठ।

(८) मस्तिष्क के कोष्ठों का भीतरी आवरण।

(९) सुषुम्ना की मध्यनलिका और उसका अन्तःस्तर।

(१०) ज्ञानेन्द्रियों के अन्तिम सूक्ष्म भागों में भी उपकला के सूत्र होते हैं।

उपकला के प्रकार—उपकला कोषाणुओं की एक या अधिक पंक्तियों से बनी हुई है। कोषाणुओं के बीच में संयोजक पदार्थ होता है। कोषाणुओं की एक पंक्ति से बनी हुई उपकला को सामान्य[1] और कई पंक्तियों द्वारा निर्मित कला को स्तरित[2] कहते हैं।

सामान्य उपकला—यह तीन प्रकार की होती है—(१) शल्की[3], (२) स्तम्भाकार[4] और (३) रोमकमय[5]।

(१) सामान्य शल्की उपकला—यह कला दो भाँति की पाई जाती है। प्रथम प्रकार की कला चपटे, प्रायः पञ्च या षट्कोणाकार केन्द्रकयुक्त कोषाणुओं की बनी होती है। किन्तु कोषाणुओं का केवल एक ही स्तर रहता है। देखने में इस भाँति की कला सङ्गमरमर के 'मोज़ेक' नामक फर्श के समान दिखाई देती है। कोषाणु, अपने चपटे पृष्ठों से एक दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं। केन्द्रक प्रायः चपटा दिखाई देता है, यद्यपि वह कुछ गोल भी हो सकता है। कोषाणुओं के आद्यसार में कुछ तन्तु सरीखे दीखते हैं। यह तन्तु एक कोषाणु से दूसरे कोषाणु में जाते हुए प्रतीत होते हैं। फुस्फुस के वायुकोष इसी प्रकार की उपकला से ढके हुए हैं।
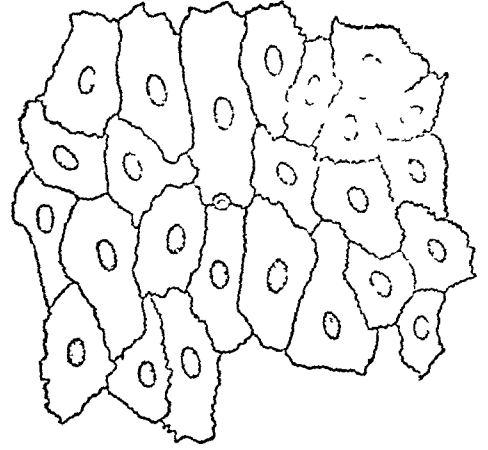
चित्र नं० ५—शल्की उपकला

दूसरे प्रकार की शल्की उपकला, जो शरीर के बहुत से स्थानों में पाई जाती है, कई स्तरों की बनी होती है। इस प्रकार की उपकला के नीचे के स्तरों के कोषाणु बहुत कुछ स्तम्भाकार होते हैं। इनके नीचे आधार-कला[6] रहती है। इस कला से ऊपर की ओर को कोषाणुओं का आकार बदलता जाता है। सबसे नीचे की पंक्ति के कोषाणु स्तम्भाकार होते हैं। उससे ऊपर की ओर वे पञ्च या षट्कोणाकार होने लगते हैं और अन्त के स्तर के कोषाणु पूर्णतया षट्कोणाकार हो जाते हैं।

(२) स्तम्भाकार उपकला—यह कला लम्बे-लम्बे आकार के कोषाणुओं की बनी होती है, जिनके बीच में एक स्पष्ट केन्द्रक स्थित होता है। यह कोषाणु आधार कला पर समकोण स्थित होते हैं। इनका केन्द्रक प्रायः अण्डाकार होता है, जिसके भीतर तन्तुओं का जाल सा दिखाई देता है।

---

१. Simple. २. Stratified. ३. Squamous. ४. Columnar. ५. Ciliated. ६. Basement membrane.

कोषाणु के आद्यसार में भी इसी प्रकार की रचना दिखाई देती है। जहाँ पर उपकला कोषाणुओं के कई स्तरों की बनी होती है वहाँ केवल सबसे ऊपर की पंक्ति के कोषाणुओं ही में उनका विशिष्ट रूप पाया जाता है। इन कोषाणुओं का निचला भाग प्रायः सङ्कुचित और लम्बा होता है। इस प्रकार उत्पन्न हुए कोषाणुओं के निम्न भागों के बीच के अन्तर में निचले कोषाणुओं का ऊपरी भाग रहता है।

चित्र नं० ६—स्तम्भाकार उपकला

इस प्रकार की उपकला पाचन-संस्थान की श्लैष्मिक कला और उसकी ग्रन्थियों के अन्तःपृष्ठ को आच्छादित किये हुए है। पुरुष के मूत्रमार्ग, शुक्र-वाहिनी नलिका, पौरुषग्रन्थि की नलिका तथा कुछ अन्य ग्रन्थियाँ भी इसी कला से आच्छादित हैं।
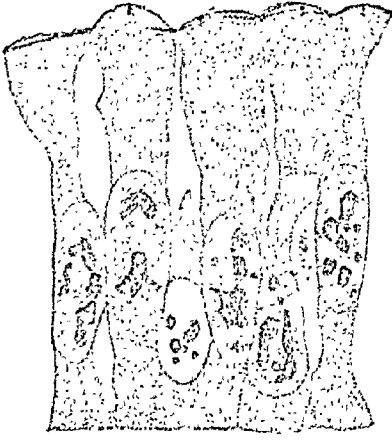
इस कला के ऊपरी पृष्ठ के कुछ कोषाणुओं में एक प्रकार का परिवर्तन भी पाया जाता है। उनकी चौड़ाई अधिक हो जाती है जिससे वह मद्यपात्र के समान दिखाई देने लगते हैं। और उनके भीतर एक श्लेष्मा के समान पदार्थ भर जाता है, जिसको "म्यूसिनोजिन" कहते हैं। यह पदार्थ केन्द्रक को कोषाणुओं में नीचे की ओर ढकेल देता है और ऊपरी भाग को इतना फुलाता है कि वह कोषाणु के फटने से बाहर निकल आता है। इस प्रकार के कोषाणुओं के श्लेष्मोत्पादक भाग में प्रायः दो आकर्षक बिन्दु पाये जाते हैं।

इस प्रकार के कोषाणु आमाशय, आमाशय की श्लैष्मिक कला और बृहदन्त्र की ग्रन्थियों में अधिक पाये जाते हैं। श्वास-मार्ग तथा क्षुद्रान्त्र के अंकुरों को आच्छादित करनेवाली उपकला में भी यह कोषाणु उपस्थित रहते हैं। इनको पिटक कोषाणु कहते हैं।
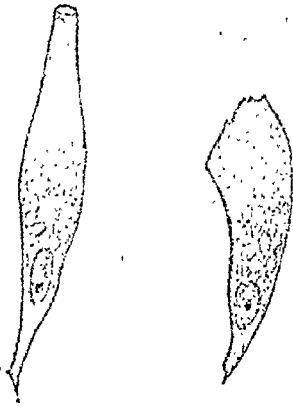
चित्र नं० ७—पिटक कोषाणु

चित्र नं० ८—ग्रन्थिक उपकला

ग्रन्थियों की उपकला प्रायः इसी प्रकार की होती है। किन्तु कहीं कहीं कोषाणुओं के आकार में रूपान्तर भी पाया जाता है। कुछ ग्रन्थियों में कोषाणु चतुष्कोण अथवा षट्कोणयुक्त हो जाते हैं। इन कोषाणुओं का आद्यसार कणयुक्त होता है और उसमें जाल के समान दृश्य दिखाई देता है। इनमें प्रायः ग्रन्थि के उद्रेचन के कण भी भरे रहते हैं जो उद्रेचन के निकल जाने के पश्चात् नहीं दिखाई देते।

(३) रोमकमय उपकला[२]—इस उपकला के कोषाणुओं के ऊपरी पृष्ठ से अत्यन्त सूक्ष्म गति-सम्पन्न तन्तु निकले रहते हैं जिनको 'रोमक'[३] कहते हैं। ये रोमक कोषाणु के ऊपरी भाग के कोषसार ही से बने होते हैं। कोषाणुओं में रोमकों की संख्या के सम्बन्ध में भिन्नता पाई जाती है। इनकी संख्या एक से चौबीस तक हो सकती है। रोमकों मे कोषाणु के सम्पर्क के स्थान पर कुछ बिन्दु होते हैं जहाँ से कणयुक्त अत्यन्त सूक्ष्म तन्तु आद्यसार के द्वारा कोषाणुओं के दूसरे सिरे की ओर जाते हुए दिखाई देते हैं।

कोषाणुओं से निकले हुए रोमकों में गति करने की शक्ति होती है और वह सदा किसी न किसी ओर को हिला करते हैं। रोमकमय कला के कुछ भाग को लवण-विलयन में रखकर सूक्ष्म-दर्शक द्वारा रोमकों की गति को देखा जा सकता है। यदि इन कोषाणुओं को एक दूसरे से पृथक् कर दिया जाय तो रोमकों की गति के कारण कोषाणु भी इधर-उधर को चलते हुए दिखाई पड़ेंगे।
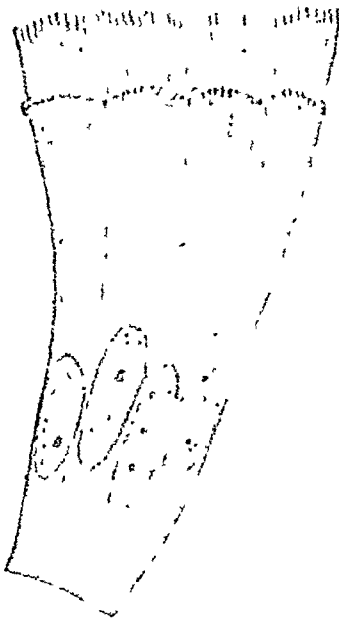
चित्र नं० ९—रोमकमय उपकला
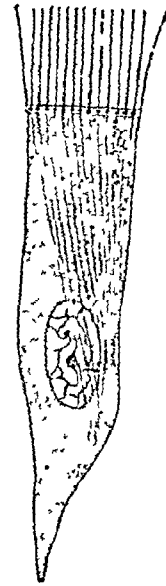
चित्र नं० १०—रोमक कोषाणु

कला के एक टुकड़े को सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी खेत में उगी हुई अन्न की बालें तीव्र वायु से हिल रही हों।

इस प्रकार की उपकला सम्पूर्ण श्वास-मार्ग में, नासिका से लेकर सूक्ष्म श्वासप्रणालिकाओं की शाखा तक में, पाई जाती है। किन्तु ग्रसनिका के निचले भाग और स्वरकपाट पर इस प्रकार के कोष

---

१. Goblet. २. Ciliated epithelium. ३. Cilia.

नहीं होते। श्रोत्रगुहा[1], श्रोत्रनलिका[2], शुक्रवाहिनी,[3] गर्भाशय का गात्र[4] और उसकी गुहा, डिम्बवाहिनी

चित्र नं० ११—स्तरित उपकला।

नलिकाएँ[5], मस्तिष्क के कोष्ठ[6] और सुषुम्नादण्ड की मध्यनलिका[7], इसी प्रकार की उपकला से ढकी हुई हैं।
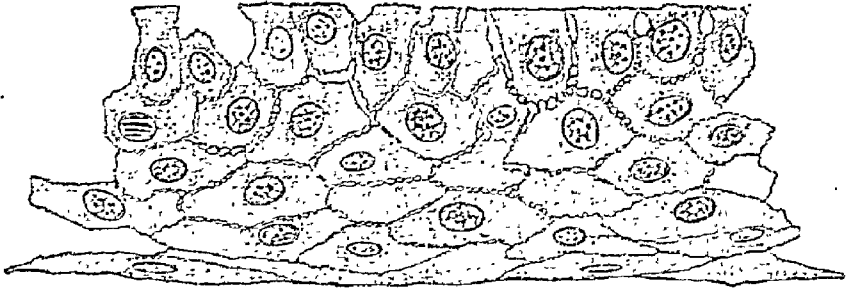
चित्र नं० १२—हथेली के चर्म का व्यत्यस्त परिच्छेद जिसमें दो अंकुर और उपकला (स्तरित) के गहरे भाग दीखते हैं। एक अंकुर में स्पर्शकरण स्थित है।

स्तरित उपकला[8]

यह कोषाणुओं की कई पंक्तियों की बनी होती है। भिन्न-भिन्न स्तरों के कोषाणु आकार में एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। आधारकला पर स्थित सबसे नीचे के कोषाणु प्रायः स्तम्भाकार होते हैं। उसके ऊपर बहुकोणीय कोषाणुओं की कई पंक्तियाँ होती हैं। सबसे ऊपर के कोषाणु प्रायः चपटे हो जाते हैं। सबसे नीचे के कोषाणु एक प्रकार के कोषान्तरिक पदार्थ द्वारा एक दूसरे से कुछ पृथक् रहते हैं, यद्यपि आद्यसार के प्रवर्धन या सूत्र एक से दूसरे कोषाणु में जाते हुए देखे जा सकते हैं। यह कंटकी कोषाणु[9] कहे जाते हैं। इस प्रकार की उपकला त्वचा, नेत्राच्छादनी[10], नासिका, मुखकुहर, ग्रसनिका के अधो-भाग और पाचन-प्रणाली[11] में पाई जाती है।

---

१. Tymapanic cavito. २. Auditary tube. ३. Ductul Deferens. ४. Fundus of uterus. ५. Fallopian tubes. ६. Ventricles of Brain. ७. Spinal Canal. ८. Strattified epithelium. ९. Prickle-cells. १०. Conjunctiva. ११. Alimentary Canal.

अस्थायी उपकला[1]

इस प्रकार की उपकला गवीनी और मूत्राशय में पाई जाती है। सबसे नीचे के कोषाणु लम्बे अथवा स्तम्भाकार होते हैं जिनका ऊपरी भाग गोल और उभरा हुआ होता है। इनसे ऊपर के कोषाणु ऊपर की ओर से चपटे तथा नीचे की ओर से दबे हुए होते हैं, जिससे निचले कोषाणुओं के उन्नत भाग ऊपरी कोषाणुओं के नत भागों में बैठ जाते हैं। निचले कोषाणुओं के बीच में छोटे-छोटे कोषाणुओं का एक स्तर पाया जाता है। इस प्रकार की कला के कोषाणुओं के आकार में सहज ही में परिवर्तन होता रहता है।
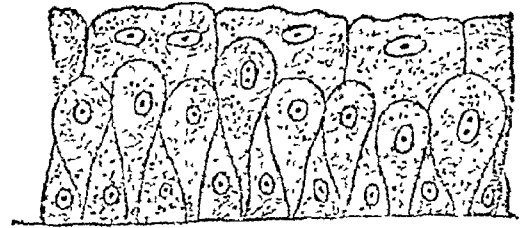
चित्र नं० १३—अस्थायी उपकला

(२) संयोजक धातु

इस धातु का काम भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुओं और भागों को दृढ़तापूर्वक एक दूसरे के साथ संबंधित करना है। अन्य धातुओं की अपेक्षा शरीर में इस प्रकार की धातु अधिक पाई जाती है। संयोजक धातुओं के आकार में बहुत भिन्नता होती है, जिसका विशेष कारण धातु के कोषान्तरिक पदार्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार के अवयवों का एकत्र होना है। उन्हीं के अनुसार इन धातुओं के गुणों में भी भिन्नता पाई जाती है। संयोजक धातु विशेषकर तीन प्रकार की होती है—(१) सौत्रिक धातु[2], (२) सुक्ति धातु[3], (३) अस्थि धातु[4]। कुछ विद्वान् रक्त तथा लसीका को भी संयोजक धातु का ही भेद मानते हैं।

सौत्रिक धातु

सौत्रिक धातु अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रों के गुच्छों की बनी होती हैं। वे सूत्र इतने बारीक होते हैं कि उनमें किसी प्रकार की चौड़ाई नहीं कही जा सकती। ये सूत्र एक अर्धतरल समांशी पदार्थ में स्थित होते हैं, जिसके द्वारा वे एक दूसरे से मिले रहते हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुओं में इस पदार्थ की मात्रा में भी भिन्नता होती है। कहीं पर वह इतनी थोड़ी होती है कि वह सूत्र और कोषाणुओं को आपस में केवल मिलाये रखने के लिए पर्याप्त होती है। किन्तु दूसरे प्रकार की धातुओं में उसकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि समस्त कोषान्तरिक पदार्थ उसी का बना हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में इस पदार्थ की मात्रा ही की भिन्नता के कारण संयोजक धातु को कई प्रकारों में विभक्त कर दिया गया है।

निम्नलिखित प्रकार की संयोजक धातु पाई जाती हैं।

(१) अपरिपक्व संयोजक धातु अथवा पिच्छिल धातु[5], (२) श्वेत सौत्रिक धातु[6], (३) पीत स्थितिस्थापक धातु[7], (४) सान्तरित धातु[8], (५) जालक धातु[9]।

---

१. Transitional epithelium. २. Fibrous Tissue. ३. Cartilage. ४. Bone. ५. Mucoid Tissue. ६. White Fibrous Tissue. ७. Yellow elastic Tissue. ८. Areolar. ९. Retiform Tissue.

पिच्छिल धातु—यह धातु नवजात शिशु के नाल में अधिक पाई जाती है। वह भ्रूण में भी उस समय उपस्थित होती है जब संयोजक धातु का विकास होता है। इसमें भूमिपदार्थ[1] का भाग अधिक होता है, जिसमें केन्द्रकयुक्त शाखान्वित कोषाणु भी स्थित होते हैं। इस धातु में सूत्रों की बहुत न्यूनता होती है। युवा व्यक्ति के शरीर में इस प्रकार की धातु नेत्र के 'पश्चिम कक्ष'[2] में पाई जाती है। नाल के भीतर यद्यपि इस धातु की अधिकता होती है, किन्तु जन्म के पश्चात् वहाँ सूत्रों का विकास हो जाता है।
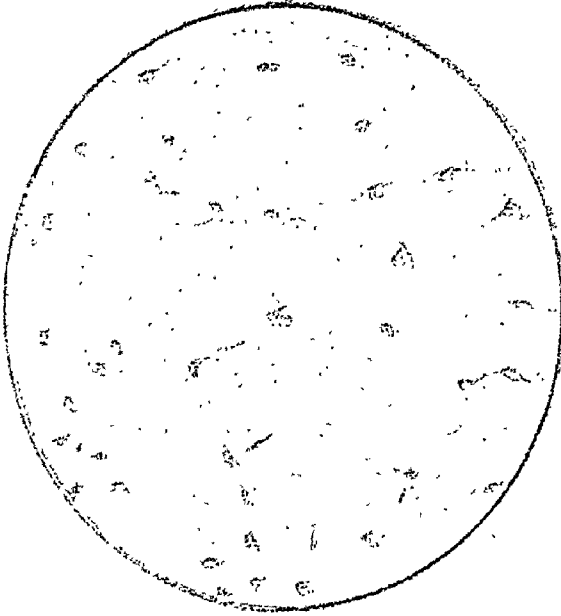
चित्र नं० १४—पिच्छिल धातु।

सौत्रिक धातु—सौत्रिक धातु पिच्छिल धातु के कोषाणुओं से बनती है। कोषाणुओं के सिरों से सूत्र निकलने आरम्भ होते हैं जो बढ़कर चारों ओर फैलकर एक जाल सा बना देते हैं। ये सूत्र दो प्रकार के होते हैं—(१) पीले और (२) श्वेत। और उसी के अनुसार पीत और श्वेत सौत्रिक धातु कहलाती है।
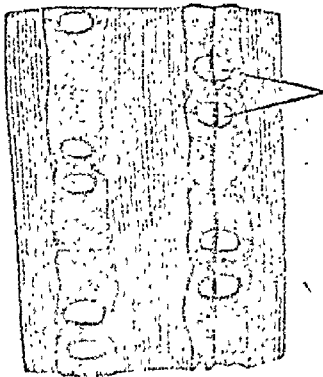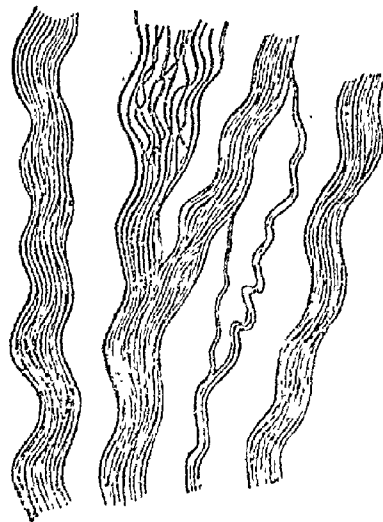
चित्र नं० १५—श्वेत सौत्रिक धातु। कण्डरा, ग्लोड-क्लोराइड से रँगा हुआ।

चित्र नं० १६—श्वेत सौत्रिक धातु।

श्वेत सौत्रिक धातु—इस धातु में श्वेत सूत्रों की प्रधानता होती है, किन्तु कुछ पीत सूत्र भी पाये जाते हैं। कोषाणुओं का क्रम कुछ विशेष प्रकार का होता है और भूमि-वस्तु थोड़ी होती है। सूत्र

१. Ground substance. २. Posterior chamber.

सूक्ष्म, समांशी, पारदर्शी और समानान्तर तथा तरङ्गवत् गुच्छों में पाये जाते हैं। प्रायः इनसे शाखाएँ नहीं निकलतीं किन्तु एक सूक्ष्म सूत्र द्वारा दो बड़े सूत्र आपस में संयुक्त पाये जा सकते हैं। यह धातु अत्यन्त चमकीली, श्वेत, दृढ़ और स्थिति-स्थापकता-रहित होती है। कण्डराएँ, स्नायु तथा प्रावरणी और पेश्यन्तरिक फलक इसी धातु से बनते हैं। कण्डराओं में सूत्र समानान्तर होते हैं। किन्तु वह प्रावरणी या फलक में क्रमहीन प्रकार से चारों ओर को फैले रहते हैं। कण्डराओं में इस धातु के विशेष आकार के कोषाणु पाये जाते हैं जिनको 'कण्डरा-कोषाणु'[१] कहा जाता है। इनमें केन्द्रक एक ओर को स्थित होता है और प्रायः दूसरे कोषाणु के केन्द्रक के पास ही स्थित पाया जाता है। यह कोषाणु चतुष्कोणाकार दीखते हैं।
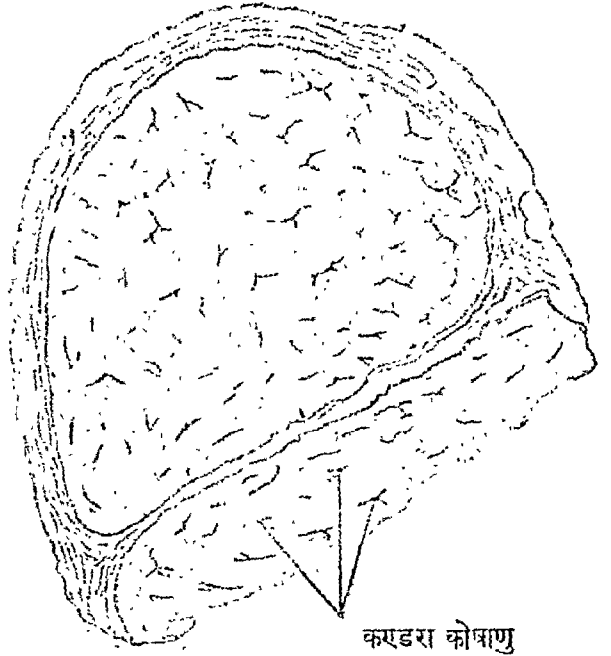
चित्र नं० १७—कण्डरा का व्यत्यस्त परिच्छेद

श्वेत सौत्रिक धातु को जल में उबालने से जिलोटिन बन जाती है।

पीत स्थितिस्थापक धातु[२]—इस धातु में पीत स्थितिस्थापक सूत्रों की अधिकता होती है जिनके कारण धातु में स्थितिस्थापकता का गुण आ जाता है। यह खींचने से फैल जाती है और छोड़ देने से फिर अपनी पूर्व स्थिति में आ जाती है। यह पीत स्नायु[३], स्वरकपाट, श्वासप्रणाली की श्लैष्मिक कला, रक्त-नलिकाओं के स्तर (विशेषतया बड़ी धमनियों के) और स्वरयन्त्र से सम्बद्ध स्नायु में अधिक होती है।
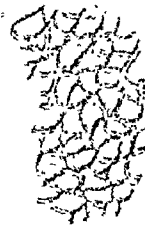
चित्र नं० १८—पीत स्थिति-स्थापक धातु; सूत्रों के अनुदैर्घ्य और व्यत्यस्त परिच्छेद

इन सूत्रों का रासायनिक संघटन श्वेत सूत्रों से पृथक् होता है। उनकी भाँति इनपर एसिटिक अम्लका कोई प्रभाव नहीं होता।

सान्तरित धातु[४]—इस धातु का विशेष गुण स्थितिस्थापकता और विस्तार है। इसके कारण जिस स्थान में वह उपस्थित होती है उसका विस्तार हो सकता है। किन्तु कुछ समय के पश्चात् वह स्थान या अंग फिर अपने पूर्व रूप में आ जाता है। यह धातु त्वचा के नीचे स्थित है तथा पाचन-प्रणाली में श्लैष्मिक कला के नीचे अधःश्लैष्मिक स्तर की भाँति पाई जाती है। पेशी, रक्त-

---

१. Tendon cells. २. Yellow elastic tissue. ३. Ligment Flava. ४. Areolar tissue.

नलिकाएँ तथा नाड़ियों के पिधान बनाने में यह धातु भाग लेती है तथा उनको समीप स्थित अन्य अंगों के साथ जोड़ती है। इसी प्रकार शरीर के भीतर स्थित अङ्गों के भिन्न-भिन्न भागों को आपस में जोड़ने तथा अंगों के आवरणों के स्तर बनाने में भी यह धातु भाग लेती है।

यह धातु भी सूत्र और कोषाणुओं की बनी होती है। यह दोनों वस्तुएँ एक समांशी पदार्थ में स्थित होती हैं। सूत्र सूक्ष्म-दर्शक द्वारा देखने से लम्बे रेशम के समान चमकीले और चारों ओर को फैले हुए दिखाई देते हैं। धातु के कोषाणु, जो सूत्रों के पास अथवा सूत्रों के गुच्छों के भीतर स्थित होते हैं, विशेषतया चार प्रकार के पाये जाते हैं।
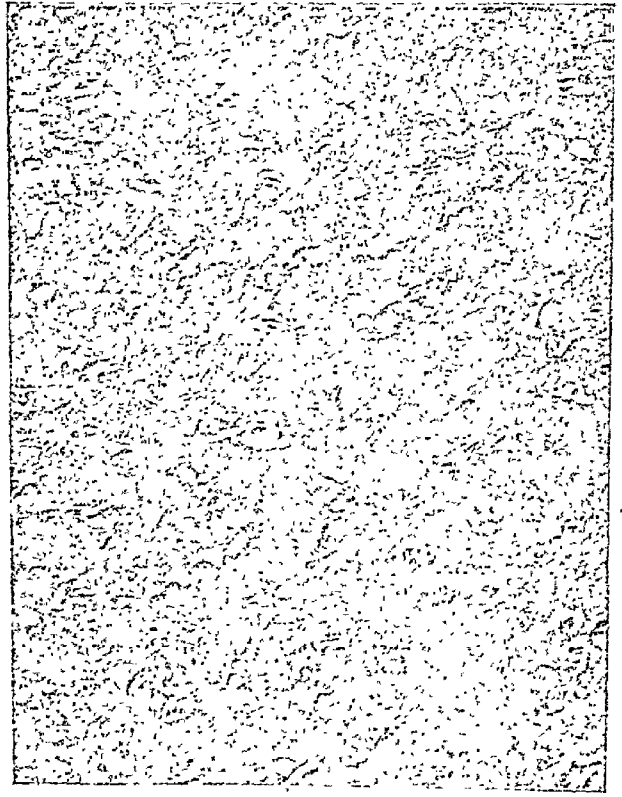
चित्र नं० १९—सान्तरित धातु; कोषाणु स्वच्छ श्वेत स्थानों की भाँति दिखाई दे रहे हैं।

(१) स्तरित कोषाणु[1]—ये चपटे होते हैं और जहाँपर बहुत से कोषाणु एक साथ मिल जाते हैं वहाँ वे उपकला की भाँति दीखने लगते हैं। इनमें कुछ कोषाणु शाखायुक्त होते हैं। ये शाखाएँ अन्य कोषाणुओं की शाखाओं से जुड़ी रहती हैं जिससे एक जाल सा बन जाता है, जैसे नेत्र की कनीनिका[2] में। इन कोषाणुओं में स्वच्छ आद्यसार होता है और उसका केन्द्रक अण्डे के आकार का होता है।
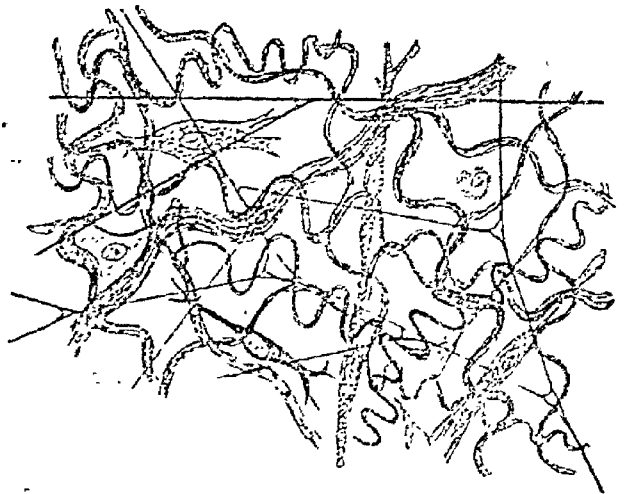
चित्र नं० २०—अधस्त्वक् सान्तरित धातु

(२) शकली कोषाणु[3]—ये कोषाणु लम्बे क्रमहीन आकार के होते हैं, जिनमें लम्बा केन्द्रक और शल्ययुक्त आद्यसार होता है।

---

१. Lamellar cells. २. Cornea. ३. Clasmocytes.

(३) **सलिल-कोषाणु**[1]—इनमें एक ओर को स्थित छोटा गोल केन्द्रक पाया जाता है। आद्यसार में बहुत से शून्य स्थान होते हैं, जिनमें कुछ तरल भरा रहता है। इन स्थानों के बीच का आद्यसार स्वच्छ होता है।

(४) **कणमय कोषाणु**[2]—ये अण्डाकार या गोल होते हैं। इनका आद्यसार भस्मग्राही होता है।

इनके अतिरिक्त इस धातु में रक्त के श्वेत कण भी पाये जाते हैं जो पास की रक्त-नलिकाओं से वहाँ पर पहुँच जाते हैं।
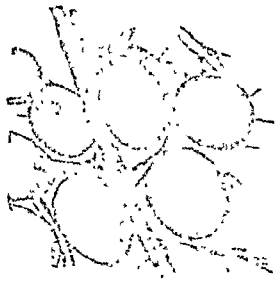
वसामय धातु[3]—शरीर के किसी-किसी भाग में सान्तरित धातु वसा के कणों से युक्त पाई जाती है, यद्यपि उसका विन्यास सारे शरीर में एक समान नहीं होता। उदर के अधस्त्वक् भाग, वृक्क के चारों ओर तथा अस्थियों की मज्जा में वसा की मात्रा अधिक होती है। किन्तु नेत्रपटल, शिश्न, अण्डकोष और लघु भगोष्ठ के अधस्त्वक् भाग में तथा कर्णेटिगुहा और फुस्फुसों में वसा नहीं होती।

चित्र नं० २१—वसामय धातु

यह धातु वसा-कोषाणुओं की बनी होती है। प्रत्येक कोषाणु के चारों ओर एक कोमल कला चढ़ी रहती है, और उसके भीतर वसापदार्थ भरा रहता है। कला के नीचे एक छोटा केन्द्रक स्थित होता है जो वसापदार्थ से दब जाने के कारण कभी-कभी दिखाई भी नहीं देता। यह वसापदार्थ जीवन में तरल अवस्था में रहता है, किन्तु मृत्यु के बाद जम जाता है। ये कोषाणु सान्तरित धातु के सूत्रों के जाल में स्थित पाये जाते हैं।
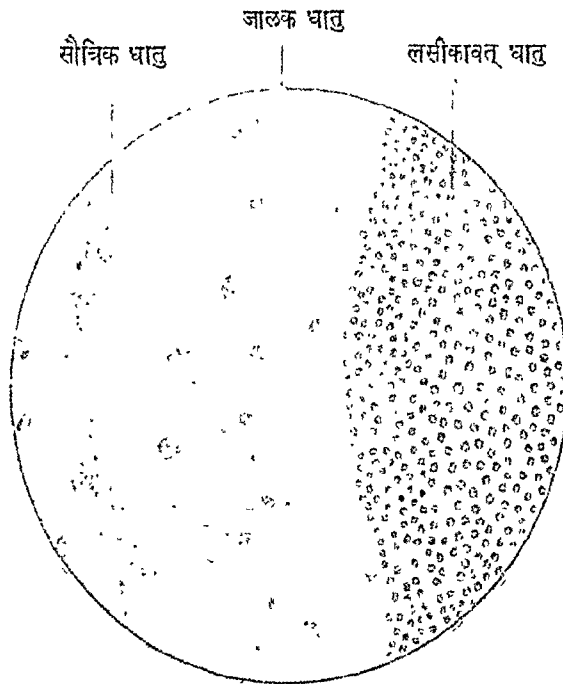
चित्र नं० २२—जालक और लसीकावत् धातु, लसीका ग्रन्थि से

१. Plasma cells. २. Granular cells. ३. Adipose Tissue.

जालक धातु—यह शरीर में कई स्थानों में पाई जाती है।

कुछ इन्द्रियों का कलेवर इसी धातु का बना होता है तथा बहुत सी श्लैष्मिक कलाओं के बनाने में भी यह भाग लेती है। शेष सौत्रिक धातुओं से इसमें भिन्नता होती है। इसका भूमि-पदार्थ तरल होता है जिसके भीतर संयोजक धातु के अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रों का जाल सा फैला रहता है। इन सूत्रों में कहीं-कहीं पर संयोजक धातु के कोषाणु भी पाये जाते हैं जो सूत्रों को ढक लेते हैं।

कुछ स्थानों में जालक धातु के जाल में इस प्रकार के कण पाये जाते हैं जो रक्त तथा लसीका के श्वेताणुओं के समान होते हैं। इस कारण इनको 'लसीका या ग्रन्थि धातु[१]' कहते हैं। शरीर की साधारण लसीका ग्रन्थियों, अन्त्रियों की ग्रन्थियों तथा गलग्रन्थियों[२] में यह धातु अधिक पाई जाती है।

आधार कला[३]

यह कलाएँ कुछ परिवर्तित संयोजक धातुओं के सूक्ष्म स्तरों की बनी होती हैं और उपकला के कोषाणुओं के नीचे पाई जाती हैं। इनके कोषाणु चपटे और एक दूसरे से सटे हुए रहते हैं। कुछ कोषाणुओं के कोनों से सूक्ष्म शाखाएँ निकली रहती हैं जो समान शाखाओं के साथ मिलकर एक जाल सा बना देती हैं। कुछ आधार कलाएँ स्थितिस्थापक धातु की बनी होती हैं, जैसे नेत्र की कनीनिका।

संयोजक धातु की रक्त-नलिकाएँ और नाड़ियाँ

संयोजक धातु में रक्त-नलिकाओं की न्यूनता होती है। सान्तरित धातु में रक्त ले जानेवाली नलिकाएँ बहुत कम होती हैं, यद्यपि उसमें होकर अनेकों नलिकाएँ अपने निर्दिष्ट स्थान को चली जाती हैं। श्वेत सौत्रिक धातु में औरों की अपेक्षा फिर भी रक्त का अधिक सञ्चार पाया जाता है।
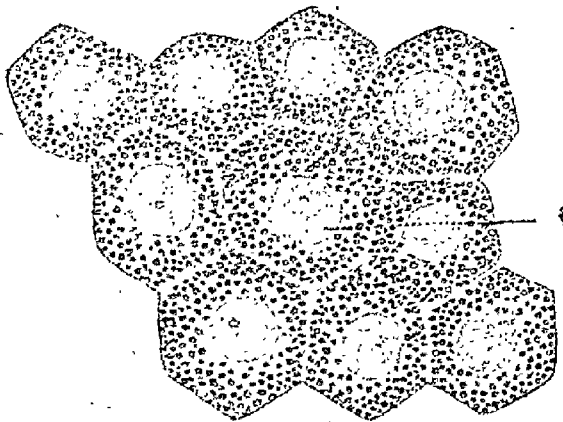
चित्र नं० २३—कला का पृष्ठ

१. केन्द्रक
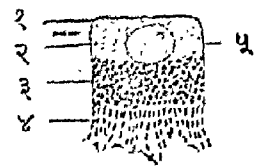
चित्र नं० २४—एक कोषाणु

रञ्जक कणों से युक्त उपकला—

१. पृष्ठ ३. रञ्जकयुक्त कोषसार
२. केन्द्रक ४. रञ्जक-रहित कोषसार
५. केन्द्रक

---

१. Lymphoid Tissue. २. Tonsils. ३. Basement membrane.

उनमें रक्त-नलिकाओं की शाखाएँ सूत्रों के समानान्तर गुच्छों के बीच में होती हुई जाती हैं और उनकी अन्तिम शाखाएँ सूत्रों पर फैली रहती हैं।

संयोजक धातुओं में लसीका वाहनियों की प्रधानता होती है। विशेषकर कण्डराओं और उनके आवेष्टनों में उनकी पर्याप्त संख्या पाई जाती है।

संयोजक धातु में नाड़ियाँ पाई जाती हैं। किन्तु सान्तरित प्रकार की धातु में नाड़ियों का वितरण नहीं होता। इस कारण वह चेतना-रहित होती है।

रङ्गयुक्त संयोजक धातु-कोषाणु

रंग के कणों से युक्त कोषाणु नेत्र के अन्तःपटल के बाह्य स्तर तथा आयरिस[१] के पश्चिम पृष्ठ, नासिका के गन्धग्राहक प्रान्त और अन्तःकर्ण के कलामय भाग में पाये जाते हैं। बाह्य चर्म के भीतरी स्तर के कोषाणुओं और बालों में भी रङ्ग के कण पाये जाते हैं। श्यामकाय जातियों की त्वचा में इन कणों की अधिकता होती है किन्तु श्वेताङ्गों में यह स्तनमुख के चारों ओर एकत्र रहते हैं।

रङ्गयुक्त कोष आकार में बड़े और शाखामय होते हैं। इनकी शाखाओं में भी रङ्ग के कण भरे रहते हैं। रङ्ग के कण केन्द्र के चारों ओर कोषाणु में स्थित होते हैं। इन कणों का रङ्ग गाढ़ा, भूरा या काला[२] अथवा कभी-कभी पीला होता है। इन रङ्गकणों अथवा कोषाणुओं का अभिप्राय नीचे के अङ्गों को तीव्र सूर्य-प्रकाश से बचाना है।

तरुणास्थि[३]

यह एक प्रकार की संयोजक धातु है जिसमें रक्त का सञ्चार नहीं होता तथा कोषान्तरिक पदार्थ[४] अत्यन्त सघन हो जाता है और समांशी दिखाई देता है। तरुणास्थि का टुकड़ा अपारदर्शी और सीप के समान नीलिमामय श्वेत दिखाई देता है। कुछ तरुणास्थि पीले रंग की भी होती हैं। तीव्र धार के चाकू से यह कट जाती है, यद्यपि यह कठिन और स्थितिस्थापक होती है। इस गुण के कारण दबाव पड़ने पर वह लचक जाती है। किन्तु दबाव हटा लेने पर वह फिर अपने पूर्व-रूप में आ जाती है। तरुणास्थि का सूक्ष्म भाग पारदर्शी दिखाई देता है।

शरीर में बहुत से स्थानों—सन्धियों, वक्ष, श्वास-नलिका, श्वास-प्रणालिका, नासिका और कर्ण—में तरुणास्थि पाई जाती है। भ्रूणावस्था में कङ्काल अधिकतर तरुणास्थि ही का बना होता है। ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है त्यों-त्यों तरुणास्थि भी अस्थि में परिणत हो जाती है। किन्तु कुछ स्थानों की तरुणास्थि जीवन भर वैसी ही बनी रहती है।

सूक्ष्म-दर्शक द्वारा देखने से तरुणास्थि कोषाणुओं की बनी हुई दीखती है जो पारदर्शी और समांशी भूमि पदार्थ[५] में स्थित होते हैं। कभी-कभी यह पदार्थ कुछ कणयुक्त और धुँधला सा दिखाई देता है।

तीन प्रकार की तरुणास्थि पाई जाती हैं—(१) शुभ्र तरुणास्थि[६], (२) श्वेत सौत्रिक तरुणास्थि[७] और (३) पीत सौत्रिक तरुणास्थि[८]।

---

१. Iris. २. Melanin. ३. Cartilage. ४. Intercellular substance. ५. Ground substance. ६. Hyaline cartilage. ७. White Fibro-cartilage. ८. Yellow Fibrocartilage.

इनके अतिरिक्त एक और प्रकार की स्नायु होती है जिसे 'कोषमय स्नायु'[1] कहते हैं। यह स्नायु केवल कोषों ही की बनी होती हैं जो केवल बाह्यावरण द्वारा एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। इस प्रकार की स्नायु चूहे और कुछ स्तनधारी जन्तुओं के बाह्य कर्ण की पाली में पाई जाती है। मानव-भ्रूण के पृष्ठदण्ड[2] में भी ऐसी ही स्नायु होती है।

स्नायुओं का वर्गीकरण शरीर में उनकी स्थिति और उनके कार्य के अनुसार भी किया गया है, जैसे सन्धिक स्नायु,[3] सन्धिकान्तरिक स्नायु,[4] पर्शुकीय[5] स्नायु तथा कलावत् स्नायु[6]।

शुभ्र स्नायु

शरीर में इस प्रकार की स्नायु अधिक पाई जाती है। इसका भूमिपदार्थ स्वच्छ और सूत्र रहित दिखाई देता है और उसमें स्नायु के कोषाणु स्थित होते हैं। अस्थियों के सन्धायक स्थल, पर्शुकीय स्नायु, श्वास-नलिका तथा प्रणालिकाएँ, नासिका तथा असनिका नलिका[7] इसी प्रकार की स्नायु से बनी हुई हैं। भ्रूण का समस्त कङ्काल, करोटि के अतिरिक्त, ऐसी ही स्नायु का होता है।

चित्र नं० २५—शुभ्र स्नायु

रासायनिक पदार्थों[8] की क्रिया से स्नायु का भूमिपदार्थ सौत्रिक धातु के गुच्छों में विभक्त हो जाता है। किन्तु सामान्यतया यह सूत्र इस प्रकार से मिले रहते हैं कि उनकी स्थिति का पता भी नहीं चलता। भूमिपदार्थ में प्रायः कोणयुक्त कोषाणु, दो या अधिक के समूह में पड़े हुए, दिखाई देते हैं। जहाँ कोषाणु सम्पर्क में रहते हैं वहाँ वह चपटे हो जाते हैं; किन्तु उनका शेष भाग गोल रहता है। इन कोषाणुओं का आयसार अपारदर्शी और कणयुक्त होता है। कोषाणु के भीतर एक या दो केन्द्रक होते हैं जिनमें जाल सा दिखाई देता है। स्नायु के भूमिपदार्थ में एक प्रकार के गढ़े से उत्पन्न हो जाते हैं जिनको 'गर्त्तिका'[8] कहते हैं। इन गर्त्तिकाओं में कोषाणु स्थित होते हैं। युवावस्था में एक ही गर्त्तिका में कई कोषाणु स्थित मिल सकते हैं। प्रत्येक गर्त्तिका के चारों ओर का भूमिपदार्थ कुछ परिवर्तित सा हो जाता है और इस कारण गर्त्तिका का कोष बन जाता है। यह भाग भास्मिक रङ्गों को ग्रहण करता है। कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि स्नायु में अत्यन्त सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं जो एक गर्त्तिका को दूसरी से सम्बन्धित करती हैं और
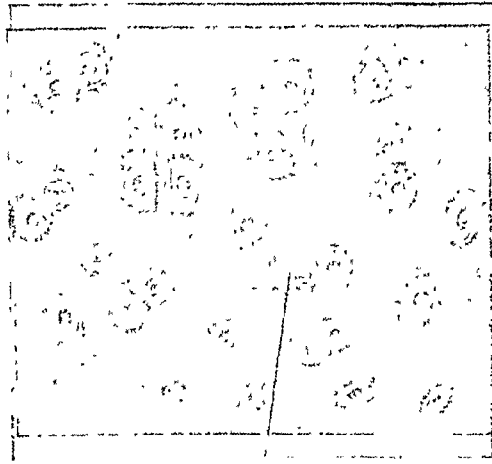
१. Cellular cartilage. २. Noto-chord. ३. Articular cartilage. ४. Inter-articular cartilage. ५. Costal cartilage. ६. Membrane-form Cartilage. ७. Eustachian Tube. ८. Lacunae.
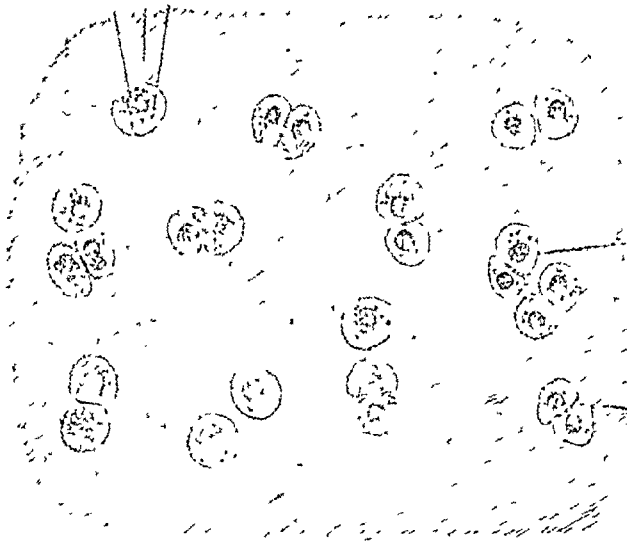
चित्र नं० २६—स्रुक्ति (सन्धिक)

ऊपर की ओर स्रुक्ति-धरा-कला[1] से मिली रहती है। इस प्रकार इन नलिकाओं द्वारा स्रुक्ति में पोषण पहुँचता रहता है। यह शुभ्र स्रुक्ति स्रुक्ति-धरा-कला से ढकी रहती है।

सन्धिधरा स्रुक्ति[2]

इसका भूमिपदार्थ सूक्ष्म परिच्छेद काटने पर धुँधला और कणमय दिखाई देता है। इसके कोषाणु और केन्द्रक छोटे होते हैं। स्रुक्ति के ऊपरी भाग में कोषाणु पृष्ठ के समानान्तर किन्तु निचले भाग में समकोण पर स्थित होते हैं। यह स्रुक्तिधरा कला से नहीं ढकी रहती किन्तु उनकी परिधि का अधिक भाग सन्धि की स्नैहिक-कला[3] से ढका रहता है। इस स्थान पर स्रुक्ति के कोषाणुओं से शाखा निकलती हुई दिखाई देती हैं जो बाहर की ओर स्नैहिक-कला और अस्थिधरा कला के कोषाणुओं की शाखाओं से मिल जाती हैं। स्रुक्ति के कुछ कोषाणुओं का आकार इस प्रकार परिवर्त्तित हो जाता है कि वह स्नैहिक कला के कोषों के समान दिखाई देने लगते हैं।

सन्धियों में स्रुक्ति अस्थियों के सन्धायक स्थलों को एक पतले स्तर के रूप में ढके रहती है। इसके कारण अस्थियों पर आघात का भार नहीं पहुँचने पाता। भिन्न-भिन्न स्थानों में स्रुक्ति की मोटाई में भिन्नता होती है। जहाँ सन्धि की दोनों अस्थियाँ उन्नतोदर होती हैं वहाँ स्रुक्ति बीच में मोटी और किनारों पर पतली होती है। किन्तु नतोदर अस्थियों में इससे विपरीत होता है। स्रुक्ति का पोषण स्नैहिक-कला और अस्थि से, जिस पर वह स्थित होती है, होता है।

पर्शुकीय स्रुक्ति[4]

पर्शुकीय स्रुक्ति में कोषाणु बड़े होते हैं। बहिःपृष्ठ के पास वे चपटे हो जाते हैं और समानान्तर रेखाओं में स्थित होते हैं। नीचे के भागों के कोषाणु स्तम्भों में स्थित होते हैं, जो पहिये के धुरों की भाँति एक केन्द्र की ओर जाते हुए मालूम होते हैं। किन्तु यह क्रम सदा नहीं पाया जाता। गहराई पर स्थित कोषाणुओं में प्रायः तैलीय वस्तु या वसा के कण पाये जाते हैं जो कभी-कभी केन्द्रक को पूर्णतया आच्छादित कर देते हैं। भूमिपदार्थ प्रायः स्वच्छ होता है। किन्तु जिस भाग में सूत्र उत्पन्न हो जाते हैं वह अपारदर्शी दीखने लगता है। ये सूत्र सूक्ष्म, समानान्तर और सरल होते हैं। सूत्रों की संख्या थोड़ी होने पर वह पारदर्शी दिखाई देते हैं।

---

१. Peri-choridrium २. Articular cartilage. ३. Synovial membrane.
४. Costal cartilage.

चित्र नं० २७—पर्शुकीय स्नुक्ति

पर्शुकीय स्नुक्तियों के गहरे भागों में एक या दो सूक्ष्म रक्त-नलिकाएँ देखी जा सकती हैं। किन्तु न तो वह स्नुक्ति में रक्त का सञ्चार करती हैं और न उनकी शाखाएँ ही स्नुक्ति में जाती हैं। उरःफलक के अग्रपत्रक, स्वरयन्त्र, श्वास-प्रणाली और नासिका की स्नुक्ति की रचना भी ठीक पर्शुकीय स्नुक्ति के समान होती है।

श्वेत सौत्रिक स्नुक्ति
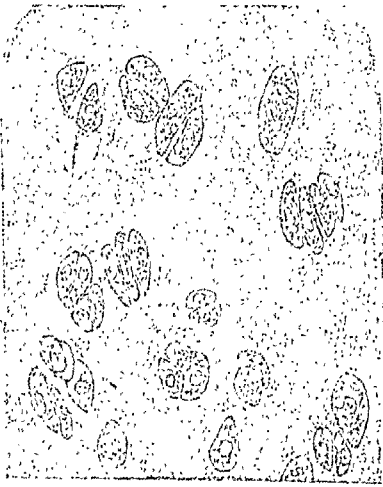
यह श्वेत सूत्रों के गुच्छे और स्नुक्ति के कोषाणुओं की बनी होती है। सूत्रों के बीच-बीच में कोषाणु स्थित होते हैं जिनका आकार कुछ गोल होता है। शुभ्र स्नुक्ति के समान इसमें स्थिति-स्थापकता और दृढ़ता दोनों गुण होते हैं। साथ में इसमें लचकीलापन भी बहुत होता है। इसको चार समूहों में विभक्त कर सकते हैं।

चित्र नं० २८—श्वेत सौत्रिक स्नुक्ति—सन्ध्यन्तरिक स्नुक्ति से तथा ऑरसकारमीन से रंजित
१. स्नुक्ति-कोषाणु
२. स्नुक्ति कोषाणु का भूमिपदार्थ

(१) सन्ध्यन्तरिक स्नुक्ति—यह सौत्रिक स्नुक्ति के चपटे, गोल अथवा त्रिकोण के समान पट्ट होते हैं जो कुछ सन्धियों में अस्थियों के सन्धायक पृष्ठों के बीच में रहते हैं। हनुशङ्खिक[1], उरोऽक्षक[2], अंसाक्षक[3], मणिबन्ध तथा जानु की सन्धियों में इसी प्रकार की स्नुक्ति पाई जाती है। सन्धि-कोष का स्नैहिक स्तर इनको ढके रहता है। इनका विशेष कार्य सन्धि में भाग लेनेवाली अस्थियों के सिरों के बीच का अन्तर कम करना, सन्धायक स्थलों की गहराई को बढ़ाना, उनकी गति में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न होने देना तथा गति को उत्तम प्रकार से करवाना है।

(२) संयोजक सौत्रिक स्नुक्ति[4]—इस प्रकार की स्नुक्ति उन

---

१. Temporo-Mandibular. २. Sterno-Clavicular. ३. Acromio-Clavicular.
४. Connecting Fibro-Cartilage.

सन्धियों में पाई जाती है जिनमें गति अत्यल्प होती है, जैसे कशेरुकों की सन्धि तथा भग-सन्धानिका। स्नायु के पट्ट अस्थि में सन्धायक स्तरों से घनिष्ठता से जुड़े होते हैं।

स्नायु का प्रत्येक पट्ट सौत्रिक धातु के एककेन्द्रिक चक्रों से बना होता है जिनके बीच में स्नायु धातु के भाग रहते हैं।

(३) परिधिस्थ सौत्रिक स्नायु[1]—कुछ सन्धियों में अस्थि के सिरों की परिधि पर स्नायु का एक कुण्डल सा लगा होता है जिसके कारण सन्धि की गहराई अधिक हो जाती है। स्कन्ध और वंक्षण-सन्धि में इसी प्रकार स्नायु स्थित पाई जाती है। इससे किनारों के ऊँचे हो जाने के कारण अस्थियों के भाग अपने स्थान से नहीं हटने पाते।

(४) स्तराकार सौत्रिक स्नायु[2]—इस प्रकार की स्नायु उन परिखाओं अथवा नलिकाओं पर, जिनमें होकर कण्डराएँ निकलती हैं, लगी रहती है। इस प्रकार इससे कण्डराओं का अस्थि के साथ संघर्षण नहीं होता।

कुछ पेशियों की कण्डराओं में, जहाँ वह अस्थि के साथ रगड़ा करती हैं, स्नायु के छोटे-छोटे टुकड़े[3] जिनको स्नायुचणक कहते हैं उत्पन्न हो जाते हैं।

पीत या स्थितिस्थापक सौत्रिक स्नायु

यह कर्णपालिका, श्रवण-नलिका, स्वरयन्त्र और स्वरयन्त्रच्छद[4] में पाई जाती हैं। स्नायु के भूमिपदार्थ में स्नायु-कोषाणु और पीले रङ्ग के सूत्र फैले रहते हैं। प्रत्येक सूत्र से शाखाएँ निकलती हैं जो दूसरे सूत्रों की शाखाओं में मिल जाती हैं। परन्तु प्रत्येक स्नायु-कोषाणु के चारों ओर सूत्र-रहित स्वच्छ पदार्थ रहता है।

स्नायु को उबालने से कोंड्रीन[5] नामक वस्तु निकलती है।
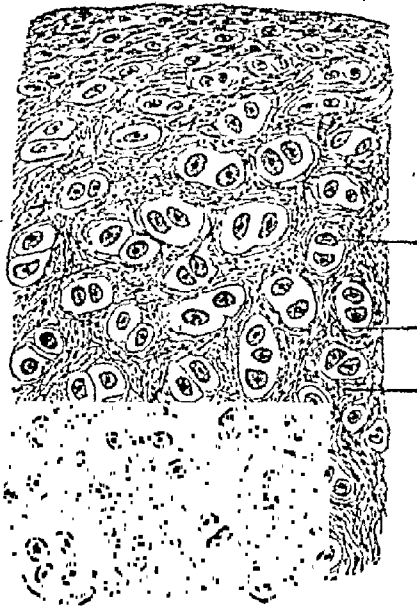
चित्र नं० २६—पीत या स्थिति-स्थापक सौत्रिक स्नायु—बिल्ली के स्वरयन्त्रच्छद से

१. Marginal Fibro-Cartilage. २. Stratiform Fibro-Cartilage. ३. Sesamoid Fibro-Cartilage. ४. Epiglotis. ५. Chondrin.

सूक्ति की रक्त-नलिकाएँ और नाड़ियाँ

सूक्ति में कोई रक्त-नलिकाएँ प्रवेश नहीं करतीं। इसमें पोषण तथा उसकी अन्य आवश्यक वस्तुएँ समीपवर्ती धातुओं, विशेषकर अस्थि से, पहुँचती प्रतीत होती हैं। सूक्ति की परिधि के पास स्नैहिक-कला के नीचे कुछ सूक्ष्म-नलिकाएँ पाई जाती हैं।

जहाँ सूक्ति की मोटाई अधिक होती है वहाँ सूक्ति के भीतर कुछ नलिकाएँ इस प्रकार की होती हैं जिनमें होकर रक्त-नलिकाएँ जाती हुई दिखाई देती हैं। किन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है और नलिकाओं के भीतर वे शाखाएँ भी नहीं देतीं, जिनसे सूक्ति में पोषण पहुँच सके। रक्त-नलिकाओं के अतिरिक्त इन सूक्ति की नलिकाओं में कुछ श्वेत कणों के समान कोषाणु, संयोजक धातु के कोषाणु तथा संयोजक धातु के सूत्र पाये जाते हैं। कभी-कभी इन वस्तुओं को सूक्ति की मज्जा कहा जाता है। सूक्ति में कोई नाड़ी नहीं होती।

अस्थि

शरीर का कलेवर अस्थियों का बना हुआ है। भिन्न-भिन्न अङ्गों को आश्रय देना इन्हीं का कर्म है। सन्धियों में जो गति होती हैं उनका आधार भी अस्थि ही हैं और इन्हीं पर मांसपेशी लगी रहती हैं। वास्तव में शरीर की आकृति अस्थियों पर ही निर्भर करती है। शरीर की सब अस्थियों को मिलाकर अस्थिकङ्काल कहते हैं।

अस्थि धातु यद्यपि अत्यन्त कठिन और दृढ़ होती है तथापि उसमें कुछ सीमा तक लचीलेपन का गुण पाया जाता है। उसके भीतर मज्जा भरी रहती है। अस्थियों का पोषण रक्त-नलिकाओं से होता है जो उसके भीतर फैली रहती हैं।

जीवित दशा में अस्थि का रङ्ग बाहर की ओर श्वेत होता है जिसमें नीले और गुलाबी रङ्ग की आभा मिली रहती है। किन्तु काटने पर भीतर से वह गहरी लाल दिखाई देती है।

अस्थि के सूक्ष्म स्तर को काटकर सूक्ष्म-दर्शक द्वारा देखने से उसमें दो प्रकार की धातु दिखाई पड़ती हैं। एक की अत्यन्त सघन और संहत रचना होती है; दूसरी धातु की रचना विच्छिन्न होती है और उसमें यतस्ततः सूक्ष्म छिद्र दिखाई देते हैं। प्रथम धातु संहत[1] और दूसरी शुषिर[2] कहलाती है। अस्थि को काटने पर साधारण नेत्रों से भी उसमें दो प्रकार की रचना दिखाई देती है। बाहर की ओर घना सघन भाग होता है और बीच में शुषिर भाग रहता है। भिन्न-भिन्न अस्थियों में इन दोनों प्रकार की धातुओं की आपेक्षिक मात्रा में भिन्नता पाई जाती है। छोटी कोमल अस्थियों में शुषिर धातु का अधिक भाग रहता है। दृढ़ अस्थियों में संहत धातु की मात्रा अधिक होती है। यद्यपि साधारणतया देखने से यह भेद मालूम होता है किन्तु ध्यानपूर्वक परीक्षा करने पर दोनों धातुओं में छिद्र दिखाई देते हैं। किन्तु संहत धातु के छिद्र छोटे होते हैं तथा छिद्रों के बीच में अस्थि-धातु का भाग अधिक रहता है। शुषिर भाग मे छिद्र बड़े और छिद्रों के बीच के फलक सूक्ष्म होते हैं। इस कारण दोनों भागों के बीच में सीमान्तक रेखा खींचना असम्भव है। शुषिर भाग के छिद्र संहत भाग की ओर को छोटे होते चले जाते हैं और अन्त में उसमें मिल जाते हैं। इसी भाँति संहत भाग के छिद्र बड़े और चौड़े होते जाते हैं और अन्त में शुषिर भाग में अन्त हो जाते हैं।

जीवित अवस्था में अस्थियाँ रक्त-नलिकाओं से परिपूरित होती हैं जो अस्थिधरा-कला में होकर अस्थि में पहुँचती हैं। अस्थि के भीतर एक लम्बी खोखली नली होती है जो अत्यन्त रक्तमय-कला से, जिसे 'मज्जाधरा-कला' कहते हैं, वेष्टित रहती है।

रासायनिक संघटन

अस्थि में सेन्द्रिय और निरीन्द्रिय दोनों प्रकार के पदार्थ मिले रहते हैं। निरीन्द्रिय पदार्थ के

१. Compact. २. Spongy.

कारण अस्थि में कठिनता और दृढ़ता उत्पन्न होती है और जान्तव पदार्थ कुछ लचीलेपन का गुण उत्पन्न करता है। जान्तव पदार्थ ⅓ और निरीन्द्रिय पदार्थ ⅔ भाग होता है।

यदि अस्थि को किसी धात्वीय अम्ल में डाल दिया जाय तो निरीन्द्रिय भाग घुलकर उससे बाहर निकल आता है और एक लचीली वस्तु रह जाती है। यदि इसे अधिक समय तक उबाला जाय तो उससे जिलेटीन नामक वस्तु बन जाती है। जान्तव पदार्थ कोलेजिन[1] नामक वस्तु का बना होता है।

निरीन्द्रिय भाग में चूने के लवण होते हैं जिनमें विशेषकर कालसियम-फास्फेट होता है और फ्लोराइड, क्लोराइड और कार्बोनेट लवणों का भी कुछ भाग रहता है। कुछ मैगनेसियम के लवण भी पाये जाते हैं।

अस्थिधरा-कला

अस्थि के सिरों के अतिरिक्त, जिन पर कोमलास्थि चढ़ी रहती है, सारी अस्थि अस्थिधरा-कला[2] से आवेष्टित होती है। इसके दो स्तर होते हैं जो आपस में जुड़े रहते हैं। बाह्य स्तर संयोजक धातु का बना होता है जिसमें कहीं-कहीं पर वसा के कोषाणु भी पाये जाते हैं। भीतरी स्तर में सूक्ष्म स्थिति-स्थापक सूत्रों का घना जाल सा फैला रहता है।

नवजात तथा तरुण अस्थियों में यह कला दृढ़, मोटी और अति रक्तमय होती है। अस्थि और इस कला के बीच में अस्थिजनक[3] धातु का एक स्तर रहता है जिसमें बहुत से कण होते हैं जिनको अस्थ्युत्पादक[4] कण कहते हैं। अस्थि-विकास इन्हीं से होता है। आयु के अधिक हो जाने पर यह धातु नष्ट हो जाती है और अस्थिधरा-कला भी पतली पड़ जाती है। उस समय इसका कर्म केवल रक्त-नलिकाओं का वितरण रह जाता है। इस कारण इस कला के नष्ट या क्षत हो जाने से अस्थि में बुरा रोग उत्पन्न हो सकता है। कला में रक्त-नलिकाओं के साथ सूक्ष्म नाड़ियाँ और रसवाहिनियाँ भी पाई जाती हैं।
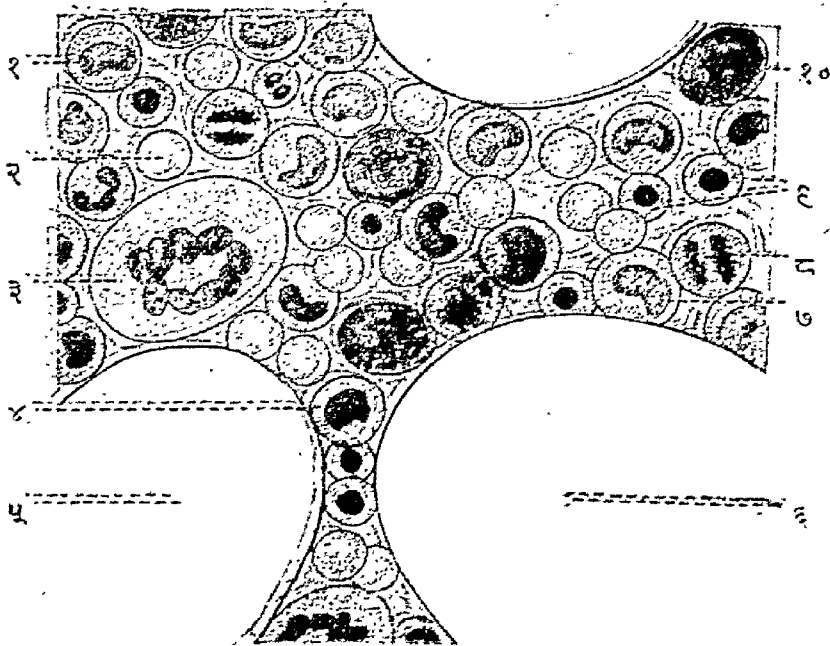
चित्र नं० ३०—अस्थि मज्जा

१. Collagen. २. Periostium. ३. Osteogenetic Tissue. ४. Osteoblast.

मज्जा

अस्थि के भीतर लम्बी नलिकाओं तथा शुषिर धातु के छिद्रों और हेवर्शियन नलिकाओं में मज्जा भरी रहती है। इसके संघटन में भिन्नता पाई जाती है। लम्बी नलिकाओं में इसका रङ्ग पीला होता है और उसमें अधिकतर वसा होती है, यद्यपि रक्त-नलिकाओं और कोषाणुओं को आश्रित किये हुए संयोजक-धातु भी पाई जाती है। शुषिर अस्थि की मज्जा लाल रङ्ग की होती है और उसमें वसा की बहुत अल्प मात्रा पाई जाती है। इसमें संयोजक धातु, रक्तनलिकाएँ और कोषाणु, जिनको मज्जा-कोषाणु कहते हैं, उपस्थित पाये जाते हैं। यह कोषाणु रक्त के श्वेताणुओं के समान ही होते हैं और उन्हीं के सदृश गति करते हैं।

यह मज्जा रक्त को उत्पन्न करने का विशेष अङ्ग है, इस कारण इसमें भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के विकासवाले रक्त-कण पाये जाते हैं।

अस्थि की सूक्ष्म रचना

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, अस्थि में दो भाग होते हैं,—संहत और शुषिर। अस्थि के एक सूक्ष्म व्यत्यस्त परिच्छेद की परीक्षा करने पर उसमें बहुत से गोल-गोल प्रान्त दिखाई देते हैं, जिनके बीच में एक बड़ा छिद्र होता है और उसके चारों ओर एक केन्द्रीय रेखाएँ स्थित होती

चित्र नं० ३१—संहत अस्थि का व्यत्यस्त परिच्छेद
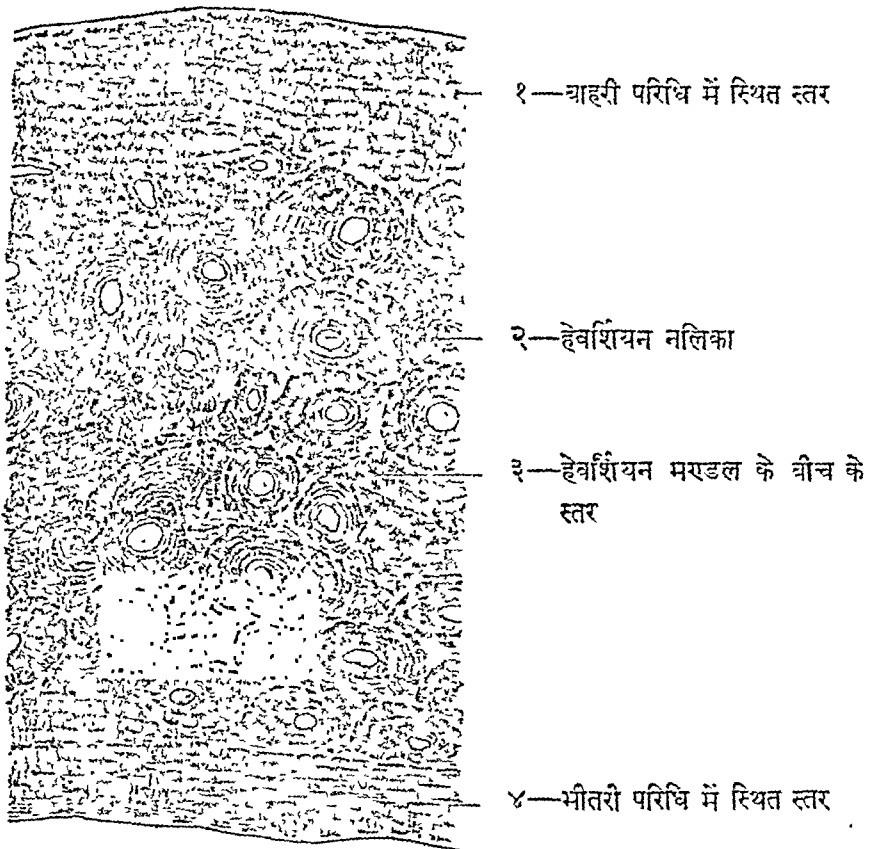
हैं। बीच का छिद्र वास्तव में एक नलिका का मुख है जिसको 'हेवर्शियन नलिका' कहते हैं। अस्थि के अनुदैर्घ्य परिच्छेद काटने पर उसमें इस प्रकार की बहुत सी नलिकाएँ चारों ओर को फैली हुई दिखाई देती हैं। इस नलिका के चारों ओर जो रेखाएँ हैं वह अस्थि धातु की स्तरांशिकाएँ[1] हैं जो बीच की नलिका के चारों ओर एक केन्द्रिक क्रम में स्थित हैं। इन स्तरांशिकाओं के बीच अथवा उन्हीं की
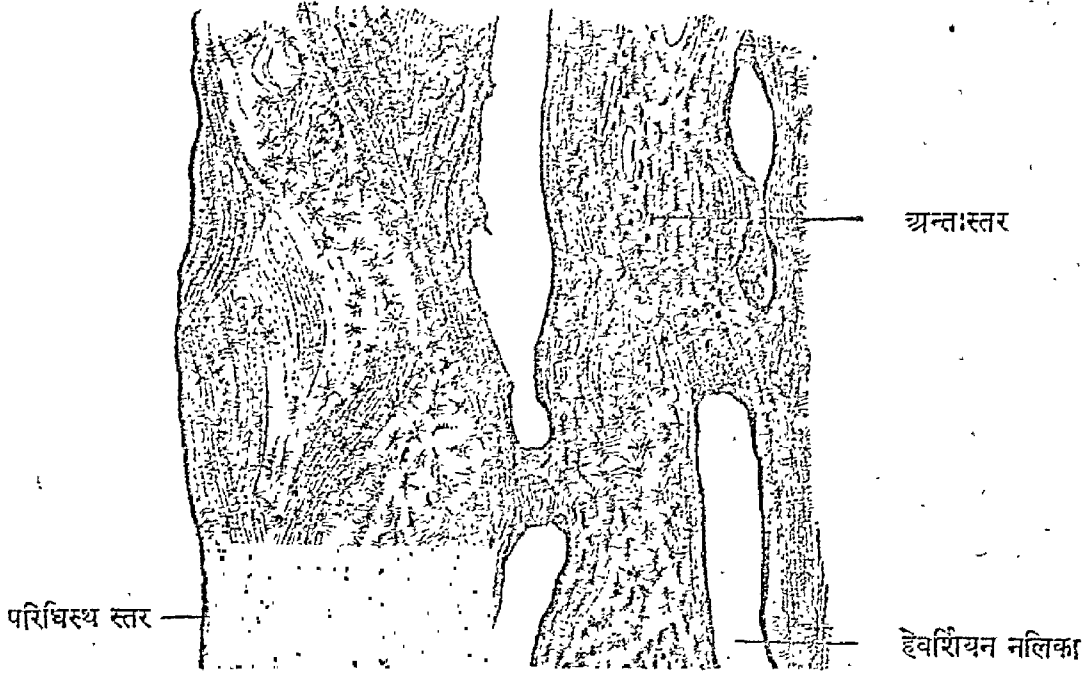
चित्र नं० ३२—संहत अस्थि का अनुदैर्घ्य परिच्छेद

रेखाओं पर गर्तिकाएँ स्थित हैं, जो आपस में तथा हेवर्शियन नलिका से अत्यन्त सूक्ष्म नलिकाओं[2] द्वारा सम्बन्धित हैं। प्रत्येक प्रांत 'हेवर्शियन मण्डल' कहलाता है। इन प्रांतों के बीच में भी अन्त-प्रान्तीय स्तरांशी हैं। इनमें भी गर्तिकाएँ और सूक्ष्म नलिकाएँ स्थित हैं। इनके अतिरिक्त अस्थि के पृष्ठ के समीप भी कुछ स्तरांशिकाएँ पाई जाती हैं।

हेवर्शियन नलिका

हेवर्शियन नलिका[3]—ये नलिकाएँ अस्थि में लम्बाई की ओर स्थित हैं और अस्थि के एक सिरे से दूसरे तक फैली रहती हैं। बीच-बीच में ये नलिकाएँ शाखाओं द्वारा एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ये $\frac{१}{२५००}$ से $\frac{१}{२००}$ इंच तक चौड़ी होती हैं। प्रायः मज्जा-नलिका के समीप ये नलिकाएँ अधिक चौड़ी हो जाती हैं। जो नलिकाएँ अस्थि के पृष्ठ के पास स्थित हैं वह बाहर की ओर अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों द्वारा खुलती हैं।

किन्तु भीतरी नलिकाओं का मुख हेवर्शियन नलिका में खुलता है। इस प्रकार अस्थि में इन नलिकाओं का एक जाल सा फैला हुआ है। प्रत्येक नलिका में रक्त-नलिकाएँ भी रहती हैं। इस

---

१. Lamellae. २. Canaliculi. ३. Haversian-canals.

प्रकार इन नलिकाओं के साथ रक्त-नलिकाओं का भी अस्थि में जाल सा फैल जाता है। रक्त-नलिकाओं के अतिरिक्त हेवर्शियन नलिकाओं में कुछ संयोजक धातु भी होती है जिसमें शाखायुक्त कोषाणु पाये जाते हैं। उनमें प्रायः नाड़ीसूत्र तथा रसवाहनियों की शाखाएँ भी उपस्थित होती हैं।

स्तरांशिकाएँ—हेवर्शियन नलिकाओं के चारों एककेन्द्रिक क्रम में स्तरांशिकाएँ स्थित हैं, जिनके कारण व्यत्यस्त परिच्छेद में हेवर्शियन नलिका के चारों ओर कुण्डल से दिखाई देते हैं। यह अस्थि-धातु के पतले स्तर हैं। यदि अस्थि को जलमिश्रित धात्वीद अम्ल में पर्याप्त समय तक भिगोया जाय तो इन स्तरांशिकाओं को, एक-एक करके, अस्थि के चारों ओर से उतारा जा सकता है। परीक्षा करने से इनमें सौत्रिक धातु के समान श्वेत सूत्र दिखाई देते हैं। सूत्रों के बीच में धात्वीय पदार्थ, कालसियम के लवण इत्यादि, एकत्र रहते हैं। भिन्न-भिन्न स्तरांशिकाओं के सूत्र, जो गुच्छों में स्थित होते हैं, आपस में बहुत से स्थानों पर मिले रहते हैं।

स्तरांशिकाओं के कुण्डल सब स्थानों में पूर्ण और समान आकार के नहीं होते; कहीं वे गोल, कहीं अण्डाकार तथा कहीं अपूर्ण होते हैं। हेवर्शियन नलिका के चारों ओर स्थित स्तरांशिकाओं के अतिरिक्त कुछ स्तरांशिकाएँ अस्थि के पृष्ठ के समानान्तर होती हैं। इनमें से अधिक पृष्ठ के समीप रहती हैं, किन्तु कुछ हेवर्शियन नलिकाओं के बीच में भी पाई जाती हैं।

गर्तिकाएँ[1]—अस्थि के परिच्छेद में स्तरांशिकाओं की रेखा पर काले मोटे बिन्दु दिखाई देते हैं। ये वास्तव में अस्थि-धातु में सूक्ष्म कोटरें हैं जो गर्तिकाएँ कहलाती हैं। प्रत्येक गर्तिका में जीवित अवस्था में एक अस्थि-कोषाणु स्थित होता है जिसके कोणों से शाखाएँ निकलकर सूक्ष्म नलिका में चली जाती हैं।

चित्र नं० ३३—अस्थि-कोषाणु

सूक्ष्म नलिकाएँ—इनके द्वारा स्तरांशिकाएँ आपस में और बीच की हेवर्शियन नलिका से जुड़ी रहती हैं। प्रायः एक हेवर्शियन मण्डल की नलिकाएँ दूसरे मण्डल की नलिकाओं से नहीं मिलतीं किन्तु अपने ही मण्डल के अन्य स्तरांशिकाओं से मिली रहती हैं। इस प्रकार हेवर्शियन नलिका से पोषक द्रव्य इन सूक्ष्म नलिकाओं में होता हुआ प्रत्येक स्तरांशिका में पहुँचता रहता है।

अस्थि-कोषाणु—प्रत्येक गर्तिका में एक अस्थि-कोषाणु स्थित होता है। यह कोषाणु चपटे और केन्द्रक-युक्त होते हैं और इनसे सूक्ष्म शाखाएँ निकली रहती हैं।

महाशय शार्पे के मतानुसार स्तरांशिकाओं में कुछ सूत्र पाये जाते हैं जो तिर्यक् या समकोण दिशा में स्तरांशिकाओं को भेदते हुए चले जाते हैं और इस प्रकार उनको आपस में संयुक्त कर देते हैं। इनको भेदकसूत्र[2] कहते हैं। स्तरांशिकाओं को पृथक् करने पर अथवा कालसियम रहित किसी लम्बी या करोटि की अस्थि के व्यत्यस्त परिच्छेद में इनको देखा जा सकता है। इस प्रकार की स्तरांशिका में कुछ सूत्र लम्बे और नोकीले तथा कुछ कटे हुए से मिलते हैं। ये स्तरांशिकाओं के पृष्ठ पर ऐसे दीखते हैं, जैसे उनमें कीलें ठोक दी गयी हों।

---

१. Lacunae. २. Perforating-fibres.

अस्थि की रक्त-नलिकाएँ

जैसा ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है, अस्थियों में रक्त-नलिकाओं का पर्याप्त वितरण होता है। अस्थियों के बाहरी पृष्ठ पर अस्थिधरा-कला के नीचे रक्त-नलिकाओं का जाल-सा फैला रहता है। इस जाल से बारीक शाखाएँ अस्थि के बाहरी मंडल भाग में चारों ओर फैल जाती हैं। कुछ शाखाएँ भीतरी शुषिर भाग में भी चली जाती हैं। अस्थि के बीच में स्थित मज्जा में प्रायः एक बड़े आकार की शाखा जाती है। लम्बी अस्थियों में बहुधा एक बड़ी रक्त-नलिका अस्थि के गात्र का भेदन करके मज्जा में पहुँचती है और वहाँ पर शाखाएँ देती है। इससे अत्यन्त सूक्ष्म शाखाएँ निकलकर फिर बाहर की ओर को चली जाती हैं। यह अस्थि की पोषक धमनी कहलाती है।

लसीका वाहनियाँ हेवर्शियन नलिकाओं में स्थित मिलती हैं और अस्थिधरा-कला की नलिकाओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं।

नाड़ियाँ अस्थिधरा-कला में फैली हुई हैं और वहाँ से पोषक धमनियों के साथ अस्थि के भीतर चली जाती हैं। अस्थियों के सन्धायक पृष्ठ, बड़ी चपटी अस्थियों तथा कशेरुकाओं में इनकी संख्या बहुत होती है।

अस्थि-विकास

भ्रूणावस्था में अस्थियों के उत्पन्न होने के पूर्व भ्रूण के शरीर में उनका कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। सारे शरीर की रचना एक ही समान होती है। किन्तु कुछ समय के पश्चात् अस्थियों के स्थान में स्नायु के समूह उत्पन्न होने लगते हैं और वृद्धि-क्रम में उपयुक्त समय पर इन स्नायु-समूहों से अस्थि बन जाती है।

यद्यपि साधारणतया स्नायु-ही से अस्थियों का विकास होता है, तथापि शरीर में बहुत-सी ऐसी अस्थियाँ हैं जिनकी उत्पत्ति स्नायु से नहीं होती। करोटि की चपटी अस्थियाँ भ्रूणावस्था की संयोजक धातु से, जो कला के रूप में फैली रहती है, उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार अस्थि-विकास दो प्रकार से होता है, जो **कलान्तरिक**[1] और **स्नाय्व-न्तरिक**[2] कहलाता है। और उनसे जो अस्थियाँ बनती हैं वे कलान्तरिक या स्नाय्वन्तरिक अस्थि कहलाती हैं।
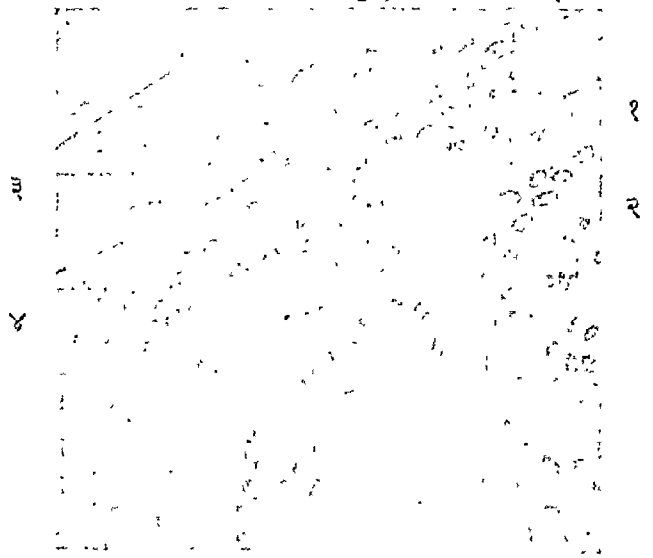
चित्र नं० २४—कलान्तरिक अस्थि-विकास
१-४. अस्थि। २. अस्थिजनक कोषाणु। ३. अस्थिजनक सूत्र।

---

१. Intra-membrenous. २. Intra-cartilagenous.

कलान्तरिक अस्थि-विकास—कला, जिससे अस्थियाँ उत्पन्न होती हैं, संयोजक धातु की बनी होती है। इसमें सूत्र और कणयुक्त कोषाणु भूमिपदार्थ में स्थित होते हैं, जिसमें रक्त का पर्याप्त वितरण होता है। ये सूत्र कला के बाहरी भाग में अधिक होते हैं, परन्तु भीतरी भाग में कोषाणुओं की प्रधानता होती है। यही **अस्थिजनक कोषाणु**[1] होते हैं। जब अस्थि-विकास प्रारम्भ होता है तो एक स्थान से, जो केन्द्र की भाँति काम करता है, चारों ओर को सूत्र निकलने लगते हैं और एक जाल-सा बना देते हैं जिसके बीच में कण और भूमिपदार्थ रहते हैं। यह सूत्र श्वेत सौत्रिक धातु के समान होते हैं और **अस्थिजनक सूत्र**[2] कहलाते हैं। इस समय कला में सूत्रों के बीच खटिक पदार्थ एकत्र होने लगता है। प्रायः कला का खटिकयुक्त पदार्थ कुछ अस्थिजनक कोषाणुओं को घेर लेता है। कला का रंग भी कुछ गहरा हो जाता है। कुछ समय में खटिक-कण आपस में मिलकर एक समान हो जाते हैं। इस समय सूत्र नहीं दिखाई देते और सारा पदार्थ पारदर्शी हो जाता है। अस्थिजनक कोषाणु ही अस्थि कोषाणु बन जाते हैं और जिस खटिक पदार्थ में ये स्थित थे वह गर्तिका का रूप ले लेता है।

ज्यों-ज्यों यह क्रम बढ़ता है त्यों-त्यों अस्थि-धातु का एक जाल-सा बन जाता है जिसमें रक्त-नलिकाएँ, अस्थिजनक कोषाणु और संयोजक धातु स्थित होती हैं। अस्थिजनक कोषाणुओं से नवीन अस्थि निरन्तर बनती रहती है और जाल के छिद्रों में भरती जाती है। बाहर की अस्थिधरा-कला के नीचे के स्तर से नवीन धातु बनती रहती है जो रक्त-नलिकाओं के चारों ओर स्थित हो जाती है। ये रक्त-नलिकाएँ हेवर्शियन नलिका बन जाती हैं।

सूक्त्यन्तरिक अस्थि-विकास—अधिकतर अस्थियों का विकास सुक्ति ही से होता है। प्रारम्भ में लम्बी अस्थियों के स्थान में उन्हीं के रूप का सुक्ति का टुकड़ा रहता है। अस्थि-विकास अथवा अस्थि का बनना इसके बीच के भाग में प्रारम्भ होता है, जो **प्राथमिक अस्थि-विकास-केन्द्र** कहलाता है। यहाँ से सिरों की ओर को अस्थि बनने लगती है। कुछ समय के पश्चात् सिरों में भी इसी प्रकार के केन्द्र उत्पन्न हो जाते हैं और अस्थि का बनना प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु बहुत समय तक सिरों पर सुक्ति का एक स्तर चढ़ा रहता है जो प्रान्तीय सुक्ति[3] कहलाता है।

अस्थि-विकास के केन्द्र-स्थान में सुक्ति-कोषाणु आकार में बड़े हो जाते हैं और अन्त को पहिये के अरों की भाँति क्रम-बद्ध हो जाते हैं। इस समय भूमिपदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है, जो कुछ समय में खटिक पदार्थ के एकत्र होने से दानेदार और अपारदर्शी दिखाई देने लगता है। इस समय सुक्ति के कोषाणुओं के चारों ओर कोटरें बन जाती हैं, जिनके भीतर सुक्ति-कोषाणु स्थित होते हैं। इन कोटरों की भित्ति खटिकयुक्त होने के कारण उनके भीतर पोषण नहीं पहुँच पाता, जिससे कोषाणु नष्ट होने लगते हैं। इनके नाश से वहाँ जो रिक्त स्थान उत्पन्न होता है वह प्राथमिक प्रान्त[4] कहलाता है।

जिस समय सुक्ति के भीतर यह परिवर्तन होते रहते हैं उस समय उसके बाहरी पृष्ठ पर भी सुक्तिधरा-कला के निचले स्तर से, जिसमें अस्थिजनक कोषाणु स्थित पाये जाते हैं, अस्थि बनने लगती है। इन कोषाणुओं की क्रिया से सुक्ति के बाहरी पृष्ठ पर अस्थि का अत्यन्त सूक्ष्म स्तर बन जाता है, जिसकी उत्पत्ति कलान्तरिक अस्थि की भाँति होती है। यह अस्थि की उत्पत्ति की प्रथम अवस्था है। इसमें दो क्रियाएँ होती हैं—सुक्ति के भीतर नष्टप्राय सुक्ति-कोषाणु-युक्त कोटरों की रचना और सुक्ति के बाहरी पृष्ठ पर कलान्तरिक अस्थि की उत्पत्ति।

दूसरी अवस्था में सुक्तिधरा-कला के प्रसर[5] और अस्थिधरा-कला के निचले पृष्ठ के प्रसर, जिनमें अस्थिभञ्जक और अस्थिजनक दोनों प्रकार के कोषाणु होते हैं, सुक्ति के भीतर प्रवेश करते हैं।

---

१. Osteogenetic Cells. २. Osteogenetic fibres. ३. Epiphysial cartilage. ४. Primary areolae. ५. Procoss.
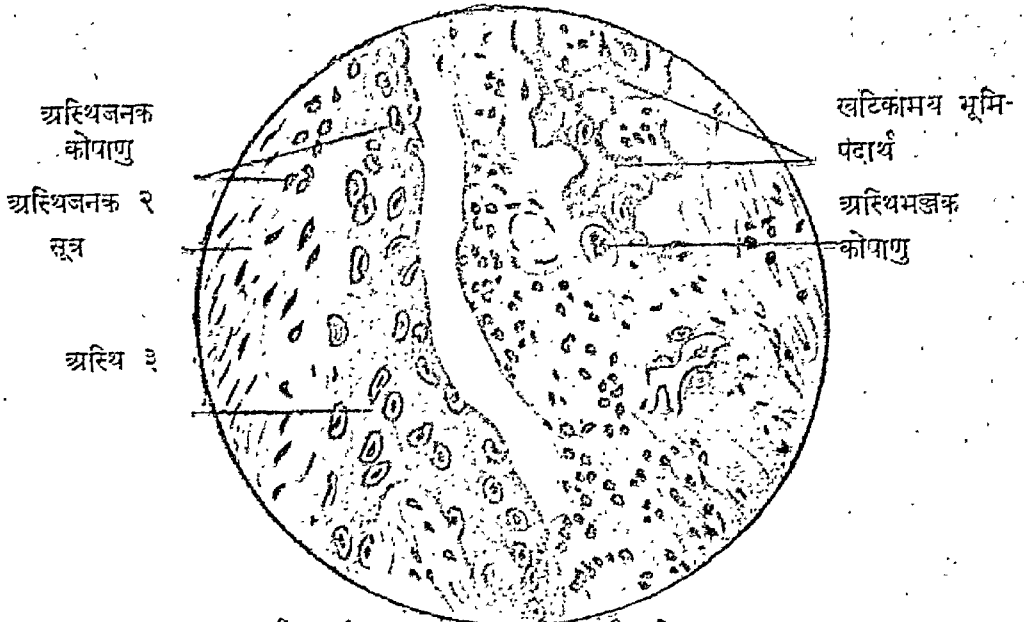
चित्र नं० ३५—सूत्रत्यन्तरिक अस्थि-विकास

अस्थिभञ्जक कोपाणु बहुकेन्द्रकयुक्त होते हैं और उनका काम अस्थि-शोषण का होता है। इस गुण के कारण वह सूक्ति के बाहरी भाग में होकर भीतर खटिकामय भूमिपदार्थ तक चले जाते हैं। जहाँ कहीं वह प्राथमिक प्रान्त की खटिकामय भित्तियों के सम्पर्क में आते हैं वहीं वह उसका शोषण करके अपना मार्ग बना लेते हैं। इससे कोटरों की भित्तियों के टूट जाने से बड़ी कोटरें बन जाती हैं जो गौण प्रान्त[1] अथवा मज्जकोष[2] कहलाते हैं। इनमें भ्रूणावस्था की मज्जा भरी रहती है जिसमें अस्थिजनक कोपाणु और रक्तनलिकाएँ होती हैं।

गौण प्रान्त की कोटरों की भित्ति दृढ़ और मोटी होने लगती है। मज्जा के अस्थिजनक कोपाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है और वह कोटरों के पृष्ठ पर अस्थि-स्तर के रूप में स्थित हो जाते हैं। इनमें अस्थिजनक कोपाणु भी होते हैं। इसके पश्चात् कोटरों की भित्तियों में स्थित पूर्वजात अस्थि के कणों का शोषण होता है। इस प्रकार जहाँ बाहर की ओर अस्थिधरा-कला के नीचे से नवीन अस्थि का निर्माण होता है वहाँ साथ ही प्रथम उत्पन्न हुए अस्थि के कणों का अस्थि-भञ्जक कोपाणुओं द्वारा नाश भी होता जाता है।

यद्यपि बीच के भाग में अस्थि बनती रहती है किन्तु सिरों पर सूक्ति की मात्रा बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि वह पूर्ण अस्थि के बराबर हो जाती है। कुछ समय में उसमें भी एक या इससे अधिक विकास-केन्द्र उत्पन्न हो जाते हैं और सूक्ति अस्थि में परिणत हो जाती है। किन्तु कुछ समय तक वह सिरे अस्थि के गात्र से सूक्ति द्वारा पृथक् रहते हैं। अन्त में यह सूक्ति भी अस्थि में परिणत होकर अस्थि पूर्ण हो जाती है। भिन्न-भिन्न अस्थियों में अस्थि-विकास केन्द्रों की संख्या में भिन्नता पाई जाती है। प्रायः छोटी अस्थियों में उनके मध्य-भाग में एक विकासकेन्द्र उत्पन्न होता है जिससे सारी अस्थि का विकास हो जाता है। लम्बी अस्थियों में एक केन्द्र बीच के भाग में और एक-एक केन्द्र दोनों सिरों में उदय होता है। ये केन्द्र भिन्न-भिन्न समय पर उदय होते हैं। सबसे प्रथम केन्द्र का उदय बीच के भाग में होता है।

---

१. Secondary-Areolæ. २. Medullary-Spaces.

रक्त

साधारणतया देखने से रक्त अपारदर्शी, गहरे चमकीले लाल रंग का तरल द्रव्य दीखता है, जो धमनियों में परिभ्रमण करता हुआ शिराओं में पहुँचकर गहरे अथवा नीलिमायुक्त लाल रंग का हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इससे विशेष प्रकार की गन्ध निकलती है।

इसका विशिष्ट गुरुत्व १०५५ से १०६२ तक होता है। इसका तापक्रम स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में ३७° सेंटिग्रेड अथवा ९८.५° फ़ैरनहीट होता है। यद्यपि देखने में यह समांशी ज्ञात होता है किन्तु सूक्ष्म-दर्शक द्वारा इसमें कई प्रकार के पदार्थ मिले हुए दीखते हैं। इसका तरल भाग, जिसको प्लाज़्मा कहते हैं, हलके पीले रंग का होता है। इसमें रक्तकण, जो विशेषतया दो प्रकार के होते हैं, तैरते रहते हैं। इस प्रकार रक्त में दो विशेष भाग होते हैं एक प्लाज़्मा[1] और दूसरे रक्तकण।

रक्तकण

ये मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं जिनको लाल कण[2] और श्वेत कण[3] कहा जाता है। इनके अतिरिक्त रक्त में अत्यन्त सूक्ष्म कण भी, जो उपर्युक्त कणों की अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं, पाये जाते हैं। इनको रक्तकणिका[4] कहते हैं।

लाल कण—ये परिधि की ओर से गोल किन्तु दोनों ओर पार्श्व में नतोदर होते हैं और मुद्रा के समान दिखाई देते हैं। स्लाइड पर रखकर देखने से इनके बीच में गढ़ा या गहरे रंग का भाग दिखाई देता है, जो केन्द्रक के समान प्रतीत होता है। किन्तु यह वास्तव में केन्द्रक नहीं होता। ये केन्द्रकहीन होते हैं। इनका व्यास ८μ और चौड़ाई लगभग २μ होती है, यद्यपि एक ही व्यक्ति के शरीर के रक्तकणों में इस सम्बन्ध में भिन्नता पाई जा सकती है। ये कण पृथक् होने पर गहरे पीले या हलके लाल रंग के दिखाई देते हैं। किन्तु जब वह मिले रहते हैं तो उनका रंग गहरा लाल होता है। वास्तव में रक्त का लाल रंग इन्हीं के कारण दिखाई देता है। इनको रक्त से पृथक् कर देने पर उसका रंग पीला हो जाता है।

चित्र नं० ३६

रक्त के लाल कण पृथक् और समूहित।

अ—उच्च लवण-विलयन की क्रिया के पश्चात्

१. Plasma. २. Red-corpuscle. ३. White-corpuscle. ४. Blood-platelettes.

रक्त के प्रत्येक घन मिलीमीटर में पुरुष में पचास लाख और स्त्री में ४५ लाख लाल कण पाये जाते हैं।

शरीर से रक्त निकालने पर लाल कणों में आपस में चिपक जाने की प्रवृत्ति होती है जिससे बहुत से कण अपने पार्श्व की ओर से एक दूसरे से मिले रहते हैं। शरीर के भीतर रक्त-नलिकाओं में प्रवाह करते समय उनमें इस प्रकार की कोई क्रिया नहीं देखी जाती। वे स्वतन्त्रतया प्रवाह करते रहते हैं। किन्तु रक्त-नलिका का प्रवाह बन्द कर देने पर वे नीचे की ओर अवस्थित हो जाते हैं। यदि किसी बड़ी शिरा के एक भाग को उस पर दोनों ओर से बन्धन बाँधकर शरीर से निकाल लिया जाय और कुछ समय तक निश्चल रक्खा जावे तो उसमें उपस्थित लाल कण समूहित होकर शिरा के निचले भाग में अवस्थित हो जावेंगे। रक्त को किसी भी पात्र में रखने पर यही होता है। लाल कण पात्र के तल में अवस्थित होकर आपस में मिल जाते हैं किन्तु रक्त को तनिक हिला देने पर पुनः चारों ओर फैल जाते हैं। ज्योंही रक्त स्थिर होता है त्योंही वे फिर पूर्वदशा में आ जाते हैं।

चित्र नं० ३७
१-५. रक्तकणों पर जल का प्रभाव। ६. शुष्क हुआ कण। ७. रैनिन की क्रिया।

जीवित अवस्था में लाल कणों में लचकीलेपन का गुण होता है। सूक्ष्म आकार की नलिका में पहुँचकर उसकी भित्ति के दबाव के कारण वे कुछ लम्बे और संकुचित हो जाते हैं। किन्तु उस नलिका से निकलने के पश्चात् फिर उनका रूप पूर्ववत् हो जाता है।

लाल कणों पर जिस वस्तु के सम्पर्क में वह आता है उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। यदि उनको जल में या सामान्य लवण-विलयन में रक्खा जावे तो वे द्रव का शोषण करके गेंद की भाँति फूल जाते हैं। किन्तु उच्च लवण-विलयन में रखने पर उनके भीतर का द्रव अभिसरण[२]-क्रिया द्वारा बाहर खिंच आता है और कण के पृष्ठ पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं।

लाल कण की रचना

लाल कण में दो भाग होते हैं जिनमें से एक रङ्गरहित और दूसरा हिमोग्लोबिन[१] नामक वस्तु का विलयन होता है। इसका रङ्ग गहरा लाल होता है। इसके साथ कुछ लवण भी मिले रहते हैं जिनमें पोटासियम की प्रधानता होती है। प्रत्येक कण में लगभग $\frac{2}{3}$ भाग जल होता है। शेष ठोस भाग में ९० % हिमोग्लोबिन होती है। यदि कण को दाबकर तोड़ दिया जाय तो हिमोग्लोबिन का विलयन कण से बाहर निकल जायगा और केवल आवरण, जिसमें विलयन भरा हुआ था, रह जायगा। यह आवरण रङ्ग-रहित होता है। वास्तव में विद्वानों का मत है कि यह आवरण केवल लिफ़ाफ़े की भाँति काम करता है और इसका कर्म केवल हिमोग्लोबिन के विलयन को धारण करना है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार कण के भीतर कुछ तन्तुओं का जाल होता है जिसमें हिमोग्लोबिन स्थित होती है।

---

१. Hæmoglobin. २. Osmosis.

श्वेत कण

ये कण वास्तव में साधारण कोषाणु की भाँति केन्द्रकयुक्त आद्यसार के पिंड होते हैं। और लाल कणों के विपरीत जीवित वस्तु की भाँति क्रिया करते हैं। रङ्गहीन और अल्प-संख्यक होने के कारण इनको बिना रँगे हुए पहिचानना कठिन होता है। इनके आकार-प्रकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। कुछ लाल कण से छोटे होते हैं। किन्तु अधिकतर बड़े होते हैं। साधारणतया इनका व्यास १०μ होता है। इनके केन्द्रक के आकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है और उसी के अनुसार इनको कई श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

चित्र नं० ३८

श्वेताणु जो अमीबा के सदृश गति करते समय रासायनिक द्रव्यों द्वारा स्थिर कर दिया गया है।

केन्द्रक के पास स्थित आकर्षक विन्दु बहुत से कोषाणुओं में देखा जा सकता है। कोषाणु के आद्यसार में कुछ कण, जो उचित रञ्जकों द्वारा रङ्ग ग्रहण करते हैं, उपस्थित पाये जाते हैं। उसके भीतर का दृश्य जालाकार दिखाई देता है। इन कोषाणुओं में गति करने की शक्ति होती है और वह अमीबा के समान गति करते हैं जिससे उनका रूप सदा परिवर्त्तित होता रहता है। छोटे आकार के श्वेताणुओं में यह गुण बहुत कम पाया जाता है। बड़े श्वेताणुओं के शरीर में बहुधा कुछ बाह्य वस्तुएँ मिलती हैं जिनको ये खा जाते हैं।

श्वेताणु निम्न-लिखित चार प्रकार के होते हैं—

(१) **बहुकेन्द्री श्वेत कण**[1]—इनका आकार अनियत होता है। गति करते समय इनके रूप में निरन्तर परिवर्त्तन होता रहता है। इनके केन्द्र दो, तीन या चार भागों में विभक्त होते हैं जो क्रोमेटिन के सूत्रों द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। इसके आद्यसार में सूक्ष्म कण होते हैं जिनमें से
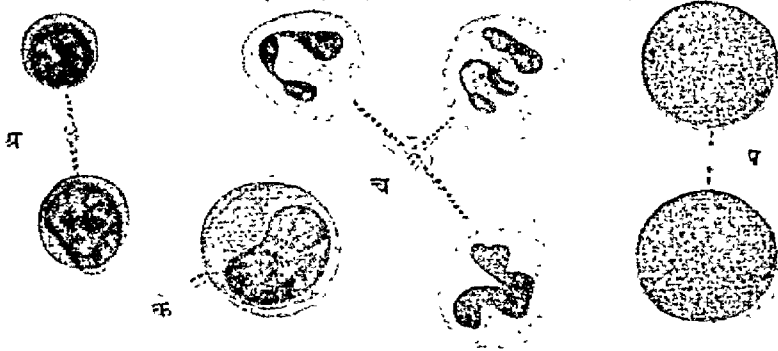
चित्र नं० ३९

अ—लसीकाणु क—वृहत् कण च—बहुकेन्द्री प—अम्लरंगग्राही

---

१. Polymorphonuclear.

कुछ आम्लिक और शेष उदासीन रञ्जकों को ग्रहण करते हैं। इनकी संख्या ६० से ७५% प्रतिशत होती है।

(२) बृहत् एककेन्द्री श्वेत कण[१]—इनकी संख्या १० प्रतिशत होती है। इनका केन्द्रक छोटा होता है किन्तु आद्यसार की मात्रा अधिक होती है, जो स्वच्छ होता है। केन्द्रक का आकार अण्डे या वृक्क के समान होता है।

(३) लघु लसीकाणु या एककेन्द्री श्वेताणु[२]—इनमें कोषाणु के आकार की अपेक्षा केन्द्रक बड़ा होता है और रङ्ग को भली भाँति ग्रहण करता है। इनका आकार छोटा होता है। इनकी संख्या २० से ३० प्रतिशत होती है।

(४) अम्लरङ्गग्राही[३]—इनका आकार बहुकेन्द्री कणों के समान होता है और केन्द्रक भी उन्हीं का सा होता है। इनके आद्यसार में बहुत से ऐसे कण होते हैं जो केवल आम्लिक रङ्गों को ग्रहण करते हैं। इनकी संख्या १ से ३ प्रतिशत होती है।

(५) परिवर्त्तनी श्वेत कण[४]—इनको लसीकाणु और श्वेत कणों का बीच का रूप माना जाता है। इनमें वृक्क के आकार का केन्द्रक होता है जो कोषाणु में एक ओर को स्थित पाया जाता है। इनका व्यास बृहत् एककेन्द्री श्वेताणुओं के समान होता है। इनका आद्यसार स्वच्छ होता है।

रक्तकणिका—ये छोटे गोल या अण्डाकार, रक्त-रहित चमकीले कण होते हैं जिनकी आकृति बहुत कुछ लाल कणों के समान होती है। इनका व्यास सामान्यतः ३μ होता है। रक्त के प्रत्येक घन मिलिमीटर में इनकी संख्या दो से तीन लाख तक पाई जाती है। इनमें कोई केन्द्रक या क्रोमेटिन का समूह नहीं होता। इनके एक समान, स्वच्छ आद्यसार में बहुत से चमकीले कण पाये जाते हैं। ये कण प्रायः बीच में स्थित होते हैं और कभी-कभी केन्द्रक के समान दिखाई देते हैं। इनमें चलने की शक्ति नहीं होती। रक्तस्राव के समय इनके विश्लेषण से थ्रोम्बोकाइनेज़[५] नामक वस्तु निकलती है जो रक्त को जमने में सहायता देती है। कुछ विद्वानों का मत था कि ये कणिकाएँ रक्त का स्वतन्त्र अवयव नहीं हैं; केवल लाल रक्तकणों के खण्डित भाग हैं। किन्तु खोज द्वारा यह ज्ञात हो चुका है कि ये वास्तव में रक्तकणों की भाँति ही रक्त के स्वतन्त्र अवयव हैं।
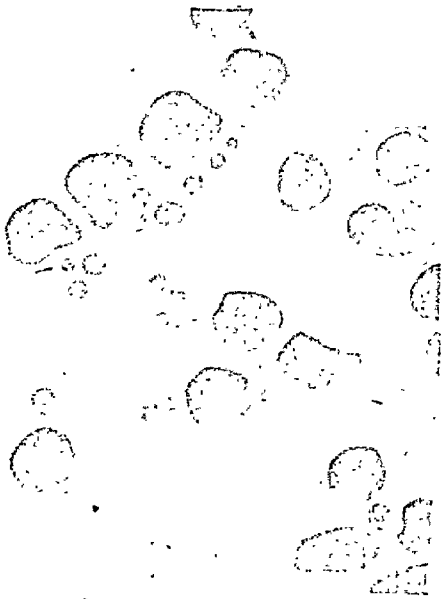
चित्र नं० ४०—रक्तकणिकाएँ

---

१. Large Mononuclear. २. Small Mononuclear or Lymphocyte. ३. Eosinophyle. ४. Transitional. ५. Thrombokinase.

लसीका

यह पारदर्शी स्वच्छ श्वेत अथवा बहुत हलके पीले रङ्ग का तरल पदार्थ है जो लसीका वाहनियाँ[1] नामक नलिकाओं में प्रवाह किया करता है। यह द्रव शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में वितरित रक्त से उनके पोषण के लिए निकलता है और रसवाहनियों की केशिकाओं द्वारा एकत्र होकर वृहत् रसवाहनियों में चला जाता है, जहाँ से वह शिराओं के रक्त में फिर से मिल जाता है। अधिकांश लसीका वाहनियाँ मुख्य रसकुल्या में मिल जाती हैं। यह कुल्या उदर में पृष्ठवंश के समीप प्रारम्भ होकर वक्ष में होती हुई ग्रीवा के मूल में पहुँचकर बाईं ओर अधोधरा शिरा में खुल जाती है।

लसीका जल की भाँति तरल पदार्थ है। इसका विशिष्ट गुरुत्व १०१५ है। सूक्ष्म-दर्शक द्वारा देखने से इसमें दो भाग दिखाई पड़ते हैं। एक जल की भाँति स्वच्छ तरल भाग और दूसरे उनमें तैरते हुए लसीकाणु जो रक्त के लघु एककेन्द्री कण[2] होते हैं। लसीका वाहनियों पर यतस्ततः छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जो लसीका ग्रन्थि[3] कहलाती हैं। इनमें लसीकाणु बनते हैं। जो लसीका इन ग्रन्थियों में होकर निकलती है उसमें लसीकाणुओं की संख्या अधिक होती है।

---

१. Lymphatics. २. Lymphyoctes. ३. Lymph Gland.

मांस-धातु

शरीर के चर्म के नीचे वसा और प्रावरणी से आच्छादित मांसपेशियाँ होती हैं। बाज़ार में साधारणतया जो मांस बिकता है वे मांसपेशी ही के टुकड़े होते हैं। यह धातु लाल रङ्ग के सूत्रों से बनी होती है। ये सूत्र अपनी लम्बाई की दिशा में एक दूसरे के साथ इस प्रकार मिले रहते हैं जैसे लकड़ियों के गट्ठों में लकड़ियाँ स्थित होती हैं। सूत्रों को पकड़कर खींचने से वे एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं।

मांस-धातु तीन प्रकार की होती हैं—एक रेखाङ्कित[1] अथवा ऐच्छिक[2], दूसरी अनङ्कित[3] या अनैच्छिक[4] और तीसरी हार्दिक[5]।

रेखाङ्कित धातु की क्रिया इच्छा के अधीन होती है। अस्थियों पर लगी हुई मांसपेशियाँ इसी प्रकार की धातु से बनी हुई हैं। अनङ्कित धातु आमाशय, अन्त्रियों, मूत्राशय, रक्त-नलिकाओं इत्यादि में पाई जाती हैं। इनकी क्रिया इच्छा से स्वतन्त्र है। हार्दिक मांसपेशी की स्थिति इन दोनों के बीच में है। यद्यपि वह रेखाङ्कित है किन्तु उसकी क्रिया इच्छा के अधीन नहीं है।

रेखाङ्कित अथवा ऐच्छिक मांसपेशी

मांसपेशी मांस-सूत्रों के गुच्छों अथवा गट्ठों से बनी हुई है जिनमें सूत्र समानान्तर रहते हैं। इन गुच्छों को पृथक् करने पर वह एक कोमल सान्तरित धातु के आवरण से ढके हुए दीखते हैं जिसे **परिमांसावरण**[6] कहा जाता है। इस प्रकार के सूत्रों के बहुत से समूह, जिनको गुच्छक[7] कहा जाता है, मांसपेशी के बनाने में भाग लेते हैं। इन गुच्छकों की भाँति मांसपेशी पर भी एक आवरण रहता है जिसको **बहिर्मांसावरण**[8] कहते हैं। यदि गुच्छकों के सूत्रों को एक दूसरे से पृथक् किया जाय तो प्रत्येक सूत्र पर भी एक आवरण मिलता है जो परिमांसावरण के भीतर की ओर को गये हुए भागों से बना होता है। यह **अन्तर्मांसावरण**[9] कहलाता है।

सूत्रों के गुच्छक प्रायः समानान्तर होते हैं और बहुधा पेशी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले रहते हैं। कण्डराओं के पास उनका समानान्तर क्रम जाता रहता है और वे बहुधा एककेन्द्राभिमुख दिशा में स्थित पाये जाते हैं। गुच्छकों के बीच में संयोजक धातु होती है जो सूत्रों और गुच्छकों को आपस में जोड़े रहती है। नाड़ियाँ तथा रक्त-नलिकाएँ इसी धातु में पाई जाती हैं।

---

१. Striped. २. Voluntary. ३. Unstriped. ४. Involuntary. ५. Cardiac. ६. Perimysium. ७. Fasciculi. ८. Epimysium. ९. Endomysium.
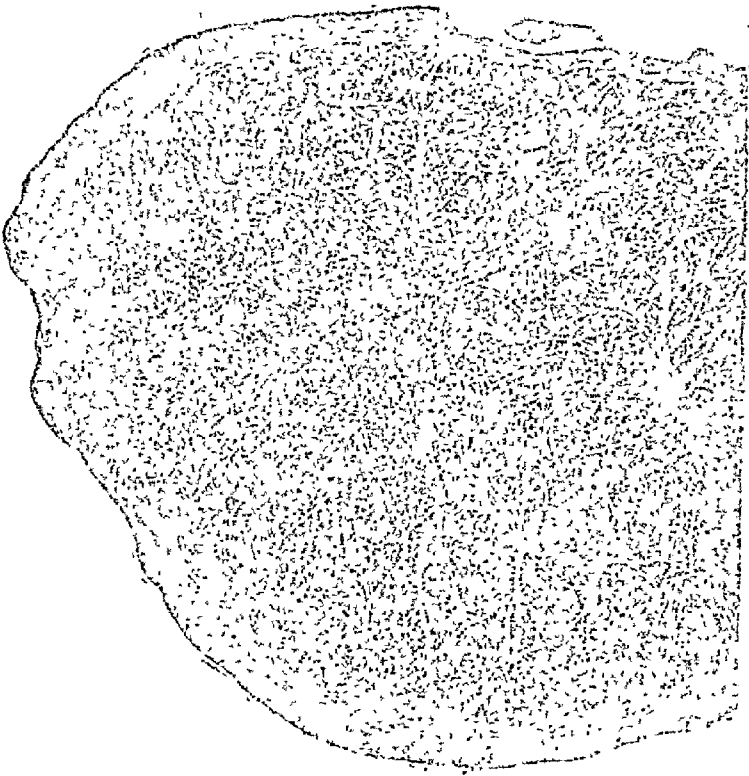
चित्र नं० ४१
दीर्घायामा पेशी का व्यत्यस्त परिच्छेद

मांस-सूत्रों की रचना—ये सूत्र वर्तुलाकार अथवा त्रिपार्श्व के समान होते हैं। इनकी लम्बाई और व्यास में भिन्नता पाई जाती है। मानव मांस-पेशी का सूत्र ०.१ मिलिमीटर से अधिक व्यास का नहीं होता। सबसे छोटा सूत्र लगभग इसका १०वाँ भाग होता है। उनकी लम्बाई ४० मिलिमीटर से अधिक नहीं पाई जाती। पुरुष में स्त्रियों की अपेक्षा और स्थूलकाय में दुर्बलशरीर की अपेक्षा ये सूत्र बड़े होते हैं। प्रायः सूत्रों से शाखाएँ नहीं निकलतीं किन्तु कभी-कभी, विशेषकर जिह्वा की पेशियों में, शाखायुक्त सूत्र भी पाये जाते हैं। साधारणतया प्रत्येक सूत्र लम्बा होता है और उसके सिरे चपटे या कटे हुए से दीखते हैं। सूत्र के भीतर एक कोमल संकोचनशील पदार्थ भरा रहता है जिस पर एक अत्यन्त सूक्ष्म परिधान चढ़ा रहता है। इसको **सूत्रावरण**[1] कहते हैं। सूत्रों के सिरे इसी के द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। कण्डरा[2] के पास पहुँचकर यह आवरण कण्डरा के संयोजक सूत्रों से मिल जाता है और सूत्रों के बीच की सान्तरिल धातु बढ़कर कण्डरा के सूत्रों के चारों ओर एक पिधान सा बना देती है।

सूत्रावरण पारदर्शी समांशी कला का बना होता है। इसमें लचकीलेपन का गुण होता है। इसमें दृढ़ता भी पर्य्याप्त होती है। यदि एक सूत्र को काँच के स्लाइड पर रखकर दूसरे स्लाइड या **काचाच्छादनी**[3] से दाबा जाय तो भीतर की संकुचनशील वस्तु दो भागों में टूट जाती है। किन्तु मांसावरण ज्यों का त्यों रहता है और दोनों टूटे हुए भागों के बीच में देखा जा सकता है। यह

---

१. Sarcolemma. २. Tendon, ३. Cover-glass.

आवरण भीतर की वस्तु के ऊपर चिपका रहता है और उसी के आकार के अनुसार इसका भी आकार दिखाई देता है। मांसावरण के भीतरी पृष्ठ पर लम्बे आकार के केन्द्रक स्थित होते हैं जिनके चारों ओर थोड़ा कणयुक्त आवसार रहता है। यह केन्द्रक-संकुचनशील पदार्थ के होते हैं।

यदि मांससूत्र के एक टुकड़े को सूक्ष्मदर्शक में देखा जाय तो वह व्यत्यस्त दिशा की ओर कई प्रकाशहीन और प्रकाशमय खण्डों में विभक्त दिखाई देता है जो क्रमानुसार एक दूसरे के पश्चात् स्थित प्रतीत होते हैं। प्रकाशहीन खण्ड के पश्चात् प्रकाशमय खण्ड और प्रकाशमय खण्ड के पश्चात् प्रकाशहीन खण्ड रहता है। मांसपेशी के प्रत्येक भाग में इसी प्रकार के खण्ड दिखाई देते हैं। ·०१५ मिलीमिटर ($\frac{१}{१७००}$ इंच) लम्बे पेशी सूत्र में ८ या ९ प्रकाशहीन खण्ड और इतने ही प्रकाशमय खण्ड दिखाई देंगे। इस प्रकार प्रत्येक खण्ड की चौड़ाई ३μ मानी जा सकती है। किन्तु भिन्न-भिन्न पेशी और भिन्न-भिन्न जातियों में इनके आयाम में बहुत भिन्नता पाई जाती है। सम्भव है कि उपर्युक्त लम्बाई में खण्डों की दुगुनी संख्या उपस्थित हो। संकुचित पेशी में खण्डों की लम्बाई कम हो जाती है।

यदि पेशी के गहरे भाग में प्रकाश को संसक्त किया जाय तो प्रत्येक प्रकाशमय खण्ड के बीच में एक ओर से दूसरे ओर तक एक अत्यन्त सूक्ष्म रेखा दिखाई देगी जो खण्ड को दो भागों में विभक्त कर देती है। इसे डाबी की रेखा[1] या क्रोज़े की कला[2] कहा जाता है। इसको एक भाँति की कला माना गया है जो बाहर की ओर सूत्रावरण से जुड़ी रहती है। यह रेखा पेशी के ऊपरी भागों में नहीं दिखाई देगी और न स्वाभाविक अवस्थाओं में ही दिखाई देती है। वह केवल उन सूत्रों में, जो शरीर से पृथक् करके रासायनिक रञ्जकों से रँगे गये हैं अथवा जिन पर रासायनिक वस्तुओं की क्रिया की गई है, देखी जा सकती है।
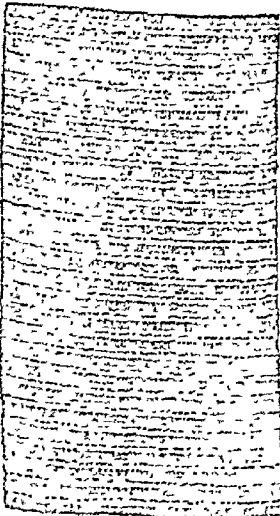
चित्र नं० ४२
ऐच्छिक पेशी का परिच्छेद
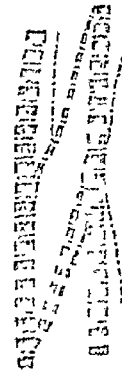
चित्र नं० ४३
गुच्छे के सूत्रों को पृथक् किया गया है।

१. Dobie's Line. २. Crause's Membrane.

इस कारण बहुत से विद्वानों की सम्मति है कि वास्तव में इस प्रकार की कोई रेखा या कला नहीं होती। वह केवल रासायनिक क्रियाओं के प्रभाव और प्रकाशके परावर्त्तन के कारण दिखाई देती है। कभी-कभी प्रकाशहीन खण्ड में भी इसी प्रकार की स्पष्ट स्वच्छ रेखा दिखाई देती है जिसे **हेन्सन की रेखा**[1] कहा जाता है।

इन रेखाओं के अतिरिक्त, जो पेशी सूत्र की केवल चौड़ाई की ओर दिखाई देती हैं, उसकी लम्बाई में भी कुछ रेखाएँ देखी जा सकती हैं। सूत्रों को एक दूसरे से पृथक् करने के पश्चात्, विशेषकर अलकोहल से कठिन कर देने पर, उनको लम्बाई की ओर अधिक सूक्ष्म भागों में विभक्त करना सम्भव है। प्रत्येक सूत्र अपनी लम्बाई की ओर से अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रों में विभक्त हो जाता है। ये सूत्रिकाएँ[2] कहलाती हैं और इनके भीतर सूत्रसार[3] रहता है। प्रत्येक सूत्रिका में लम्बाई की ओर वर्तुलाकार या डण्डे के समान लम्बे कणों की पंक्तियाँ दिखाई देती हैं जिनके दोनों सिरों पर स्वच्छ पारदर्शी पदार्थ होता है। इस प्रकार रङ्गयुक्त कणों की पंक्तियों के बीच में स्वच्छ वस्तु का खण्ड दिखाई देता है। यदि जल-मिश्रित अम्ल की क्रिया करने के पश्चात् सूत्रिकाओं को देखा जाय तो उनका सूत्रसार लम्बी सूक्ष्म समानान्तर रेखाओं के समान दिखाई देगा जिन पर प्रकाशहीन और प्रकाशमय खण्डों के सङ्गम-स्थान पर स्पष्ट बिन्दु स्थित होते हैं। इस प्रकार क्रोज़े की कला के दोनों ओर स्थित बिन्दु दीखते हैं जो आपस में सूत्रसार की रेखाओं से जुड़े रहते हैं।

सूत्रिकाओं के गुच्छे पेशीस्तम्भ[4] कहलाते हैं। इन गुच्छों के बीच में सूत्रसार की अधिक मात्रा रहती है यद्यपि यह प्रत्येक सूत्र के बीच में भी पाया जाता है।

महाशय शेफर ने, जिन्होंने इस विषय का बहुत अनुसन्धान किया है, प्रत्येक सूत्रिका को उसकी चौड़ाई की ओर से कई भागों में विभक्त किया है। यह दो क्रोज़े की कलाओं के बीच के पदार्थ को एक पूर्ण भाग मानते हैं। ऐसे भाग के बीच में एक काला खण्ड दिखाई देता है जो सम्पूर्ण सूत्र के प्रकाशहीन खण्ड का एक भाग है। इस खण्ड के दोनों ओर स्वच्छ प्रकाशमय खण्ड हैं जिनके द्वारा प्रकाशहीन खण्ड से क्रोज़े की कला तक सूक्ष्म रेखाएँ जाती हुई दिखाई देती हैं। इस भाग को सूत्रकाणु[5] का नाम दिया गया है और बीच का प्रकाशहीन खण्ड "सूत्रतत्त्व[6]" कहलाता है।

बीच के प्रकाशहीन खण्ड में वास्तव में दो भाग हैं, जो हेन्सन की स्वच्छ रेखा द्वारा दो भागों में विभक्त हैं। यह रेखा अथवा दोनों भागों का अन्तर प्रलम्बित पेशी में स्पष्टतया दिखाई देता है। किन्तु पेशी के सङ्कोच करने पर यह स्थान भी प्रकाशहीन हो जाता है। हेन्सन की रेखा तनिक भी नहीं दिखाई देती। इसी प्रकार प्रकाशमय भाग-प्रलम्बित अवस्था में विस्तृत दिखाई देते हैं किन्तु सङ्कोच होने पर यह भाग बहुत छोटे रह जाते हैं और क्रोज़े की कला और सूत्रतत्त्व का अन्तर घट जाता है।

महाशय शेफर का कथन है कि सूत्रतत्त्व में अत्यन्त सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं जो क्रोज़े की कला की ओर खुली हुई और हेन्सन की रेखा की ओर बन्द होती हैं। जब पेशी प्रलम्बित अवस्था में होती है तो पेशी पदार्थ का स्वच्छ भाग सूत्रकाणु के प्रकाशमय खण्ड में रहता है, किन्तु जब पेशी में सङ्कोच होता है तब यह पदार्थ प्रकाशमय खण्ड से सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा सूत्रतत्त्व में चला जाता है, जिससे वह मोटा होकर चौड़ाई में बढ़ जाता है और उसकी लम्बाई घट जाती है; सूत्रकाणुओं पर इसका यह प्रभाव होता है कि वह लम्बाई में कम और मोटाई में अधिक हो जाते हैं।

---

१. Hensen's Line. २. Sarcostyle. ३. Sarcoplasm. ४. Muscle-column. ५. Sarcomere. ६. Sarcous Element.
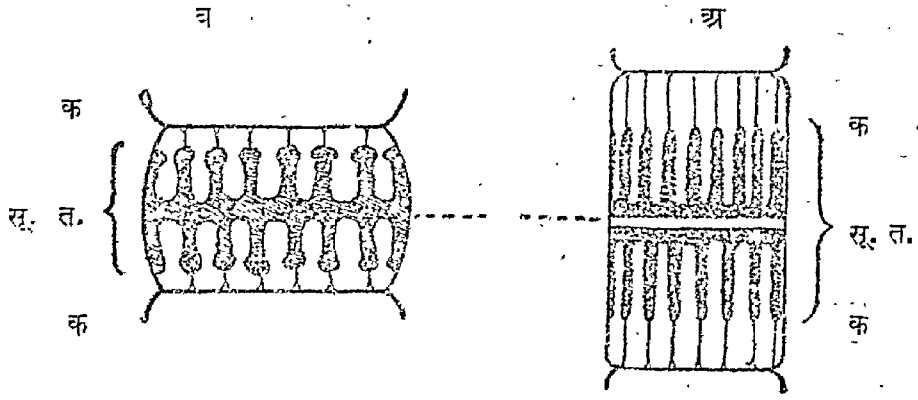
चित्र नं० ४४
सू. त. सूत्रतत्त्व क. कोज़े की कला व. संकुचित दशा में अ. प्रलम्बित दशा में

रेखाङ्कित मांसपेशियोंकी रक्त-नलिकाएँ और नाड़ियाँ

इन मांसपेशियों में रक्त-नलिकाओं की केशिकाओं का बाहुल्य पाया जाता है। इनका एक जाल सा फैला रहता है। पेशी-सूत्रों के बीच अन्तर्मांसावरण में होती हुई केशिकाएँ पेशी की लम्बाई की दिशा में चली जाती हैं। ये केशिकाएँ आपस में चौड़ाई की दिशा में छोटी केशिकाओं द्वारा जुड़ी रहती हैं। इस प्रकार नलिकाओं का जाल पूर्ण हो जाता है। केशिकाओं से बड़े आकार की धमनी या शिरा केवल परिमांसावरण में पाई जाती हैं।

इन पेशी-सूत्रों में नाड़ियों के सूत्र भी बहुतायत से फैले रहते हैं जिनका पेशी-सूत्रों में विशेष प्रकार से अन्त होता है। पेशी की वस्तु में लसीका-वाहनी नहीं पाई जातीं, यद्यपि वह पेशी के आवरण में होती हैं।

अनङ्कित अथवा अनैच्छिक पेशी

इन पेशियों के कोषाणुओं का आकार लम्बा होता है। ये एक संयोजक वस्तु द्वारा समूहित होते हैं। कुछ स्थानों में इन कोषाणुओं के गुच्छे संयोजक वस्तु द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं और विस्तृत स्तर के रूप में पाये जाते हैं।

प्रत्येक कोषाणु की लम्बाई ४०µ से ६०µ और चौड़ाई ६µ से ७µ तक होती है। इनका आकार तर्कु के समान होता है। प्रत्येक कोषाणु में उसकी लम्बाई की ओर सूक्ष्म रेखाएँ दिखाई देती हैं। कोष का आवरण स्थिति-स्थापक कला का बना होता है जिसके भीतर संकुचनशील पदार्थ भरा रहता है। कोषाणु के भीतर लम्बे अण्डाकार अथवा डण्डे के समान केन्द्रक मिलते हैं जिसके

चित्र नं० ४५—अनैच्छिक पेशी के सूत्र

पास आकर्षक बिन्दु रहता है। इन लम्बे कोषाणुओं के सिरे प्रायः नोकीले होते हैं। कभी-कभी वह दो भागों में विभक्त होते हैं। कुछ कोषाणु सूक्ष्म प्रसरों द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। साधारणतया उनके बीच में कुछ संयोजक पदार्थ रहता है जो सिलवर नाइट्रेट के विलयन से रञ्जित हो जाता है।

इन पेशियों के सूत्र भिन्न-भिन्न आकार के गुच्छों में एकत्र होते हैं, उनमें से कुछ बड़े और कुछ छोटे होते हैं। ये गुच्छे अपने दोनों सिरों की ओर से किसी दृढ़ कला से जुड़े होते हैं और इस प्रकार विस्तृत स्तर बना देते हैं। इन स्तरों में भिन्न-भिन्न स्थानों में क्रमानुसार सङ्कोचन होता रहता है। इस सङ्कोचन में विशेषता यह है कि वह ऐच्छिक पेशी की अपेक्षा धीमा होता है और सङ्कोचन की एक लहर सी उत्पन्न होकर अङ्ग के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चली जाती है। क्षुद्रान्त्र में इस प्रकार की लहर सहज में देखी जा सकती है। प्रथम एक भाग का सङ्कोच होता है। कुछ समय के पश्चात् वह समाप्त हो जाता है और वह स्थान फिर अपनी पूर्व दशा में आ जाता है। तत्पश्चात् तुरन्त ही उससे आगे के भाग में सङ्कोच होता है जो इसी प्रकार आगे की ओर बढ़ता जाता है।

हार्दिक मांस-धातु[1]

यह पेशी चौड़ाई और लम्बाई दोनों दिशा में रेखाङ्कित होती है। किन्तु ये रेखाएँ बहुत स्पष्ट नहीं होतीं। ये सूत्र चतुष्कोणाकार कोषाणुओं के बने होते हैं जो लम्बाई की ओर आपस में जुड़े रहते हैं। कोषाणुओं के भीतर मध्य में एक बड़ा अण्डाकार केन्द्रक दिखाई देता है। कभी-कभी दो केन्द्रक भी होते हैं।

कुछ जन्तुओं—यथा सूअर, भेड़, बकरा—में बहु-केन्द्रक-युक्त कोषाणु पाये जाते हैं। कुछ कोषाणुओं में से शाखा निकलकर दूसरे कोषाणु की समान शाखा के साथ जुड़ जाती हैं और इस प्रकार सारे कोषाणु एक दूसरे से मिले रहते हैं। सूत्रों के बीच में संयोजक धातु की मात्रा ऐच्छिक पेशी की अपेक्षा कम होती है। इनमें सूत्रावरण भी नहीं होता।
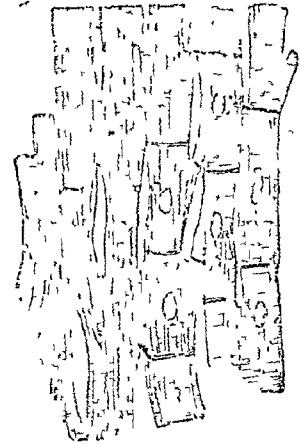
चित्र नं० ४६
हार्दिक मांस-धातु

निलयालिन्दीय गुच्छक[2]

यह सूत्र निलय और अलिन्द के बीच के फलक की पेशियों से प्रारम्भ होकर निलय के आधार तक चला जाता है। यहाँ पहुँचकर बहुत से जन्तुओं में इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं, जिनमें से एक बायें और दूसरी दाहिने निलय में चली जाती है। इस गुच्छक के कोषाणुओं का आकार सामान्य हार्दिक कोषाणुओं की अपेक्षा अधिक लम्बा और तर्कु के समान होता है। इनमें रक्त का वितरण भी अधिक होता है।

---

१. Carbiac Muscle. २. Atrio-ventricular bundle.

परकिंजी के सूत्र

यह हार्दिक मांस-धातु और हृदयाभ्यन्तरिक कला[1] के बीच में स्थित पाये जाते हैं। इनके चारों ओर कुछ संयोजक धातु रहती है। हृदय के साधारण कोषाणुओं की अपेक्षा ये बहुत बड़े होते

चित्र नं० ४७
परकिंजी के सूत्र—अनुदैर्घ्य दिशा में

हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई से दुगुनी होती है। अनुदैर्घ्य परिच्छेद में यह चतुष्कोणाकार दिखाई देते हैं। सूत्र के बीच के भाग में एक या अधिक केन्द्रक होते हैं। उसके चारों ओर आवसार में कण स्थित दिखाई देते हैं।

कोषाणु के मध्य भाग में रेखाएँ नहीं दिखाई देतीं। वह स्वच्छ होता है किन्तु बाहरी भाग में व्यत्यस्त रेखाएँ देखी जा सकती हैं। इन सूत्रों में शाखाएँ नहीं होतीं और न उन पर सूत्रावरण ही होता है। इस कारण कोषाणु आपस में मिले रहते हैं।

चित्र नं० ४८
परकिंजी के सूत्र—व्यत्यस्त दिशा में

हार्दिक मांस-धातु की रक्त-नलिकाएँ, रसवाहनियाँ और नाड़ियाँ—हार्दिक मांस-धातु में रक्त-नलिकाओं की संख्या बहुत अधिक होती है। केशिकाओं का क्रम साधारण पेशी ही के समान होता है। किन्तु साधारण पेशी के विपरीत हार्दिक पेशी में लसीका वाहनियों की पर्याप्त संख्या होती है। पेशी-सूत्रों के बीच की संयोजक धातु में इनका जाल सा फैला रहता है। उनसे जो बड़ी वाहनियाँ बनती हैं वे हृदयावरण के नीचे स्थित पाई जाती हैं। वहाँ से वे हृदय के आधार पर पहुँचकर लसीका ग्रन्थियों में प्रविष्ट हो जाती हैं।

नाड़ियाँ—हृदय में दो प्रकार के दो स्थानों से सूत्र आते हैं—एक पिधानयुक्त[2] सूक्ष्म-सूत्र, मस्तिष्कीय दशमी या वागस नाड़ी से और दूसरे पिधानरहित[3] सूत्र, ग्रैवेयक स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल से आकर हृदय के आधार के पास जालक बनाते हैं और वहाँ से दोनों अलिन्द और निलय

१. Endocardium. २. Medullated. ३. Non-medullated.

में चले जाते हैं। पेशी-सूत्रों के भीतर और भी छोटे-छोटे गण्ड पाये जाते हैं जिनसे निकलकर सूत्र चारों ओर फैल जाते हैं।

नाड़ी-धातु

शरीर में नाड़ी-धातु मस्तिष्क, सुषुम्नाशीर्षक, सुषुम्नादण्ड, मस्तिष्कीय तथा सौषुम्निक नाड़ियों और स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल तथा उसकी नाड़ियों के गण्ड में स्थित है। यह धातु (१) नाड़ी-कोषाणु[१], (२) नाड़ी-सूत्र[२], (३) नाड्याधार-कोषाणु[३] और नाड्याधार[४]-सूत्रों की बनी हुई है। नाड्याधार वस्तु[५] केवल मस्तिष्क और सुषुम्नाशीर्षक में नाड़ी-कोषाणुओं के बीच में स्थित पाई जाती है। नाड़ी-धातु का विशेष अवयव नाड़ी-कोषाणु हैं जो मस्तिष्क और सुषुम्नाशीर्षक तथा सुषुम्ना-दण्ड के धूसर भाग में एकत्र पाये जाते हैं। नाड़ियों पर जो गण्ड होते हैं उनमें भी कोषाणु स्थित होते हैं। नाड़ियाँ सूत्रों की बनी होती हैं जो नाड़ी-कोषाणुओं से निकलनेवाले लम्बे-लम्बे प्रसर होते हैं। ये ही नाड़ीसूत्र कहलाते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना का श्वेत भाग विशेषतः इन्हीं का बना होता है।

नाड़ी-कोषाणु—जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ये मस्तिष्क के केन्द्रों और गण्डों में पाये जाते हैं। इनकी आकृति में बहुत भिन्नता होती है, किन्तु सब कोषाणुओं से कम से कम एक लम्बा
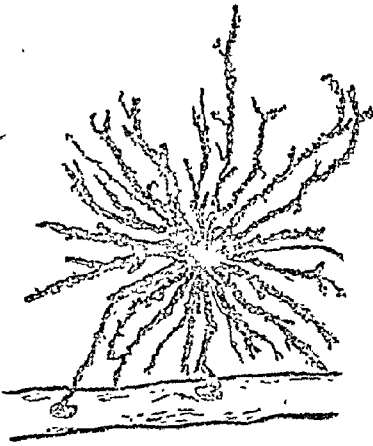
चित्र नं० ४६

नाड़ी-कोषाणु जिसके सूत्र शाखाओं में विभक्त हो रहे हैं।
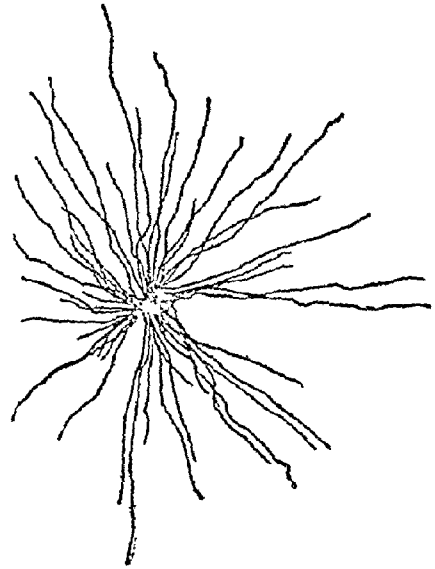
चित्र नं० ५०

नाड़ी-कोषाणु जिसका आकार मकड़ी के समान है। ये सूत्र शाखाओं में विभक्त नहीं होते।

प्रसर निकलता है जो नाड़ी-सूत्र का अक्ष बन जाता है। यद्यपि कुछ कोषाणुओं से केवल एक ही सूत्र निकलता है किन्तु अधिकतर कोषाणुओं में उनके कोनों से कई सूत्र निकलते हुए पाये जाते हैं।

---

१. Nerve cells. २. Nerve fibres. ३. Neuroglia cells. ४. Neuroglia fibres. ५. Neuroglia.

इनमें से केवल एक सूत्र नाड़ी का अक्ष[1] बनाता है। इससे बहुत सी शाखाएँ नहीं निकलतीं किन्तु शेष सूत्र बहुत सी शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं। इन शाखायुक्त सूत्रों को दन्द्र[2] कहा जाता है। यह सदा किसी समीपवर्त्ती कोषाणु के चारों ओर फैले रहते हैं।

कोषाणु का गात्र, दन्द्र और अक्ष सब मिलकर नाड्याणु कहलाते हैं। नाड्याणु[3] के दन्द्र वृक्ष की शाखाओं की भाँति फैले रहते हैं। इनके द्वारा कोषाणु में उत्तेजना आती है और अक्ष के द्वारा बाहर जाती है। कुछ कोषाणु ऐसे भी होते हैं जिनमें केवल दो कोण पाये जाते हैं। इस प्रकार तीन भाँति के कोषाणु पाये जा सकते हैं।

(१) एकध्रुवीय[4] कोषाणु—इससे केवल एक अक्ष निकलता है। प्रायः यह अक्ष आगे चलकर T आकार के समान दो भागों में विभक्त हो जाता है। यह माना जाता है कि उत्पत्ति के समय कोषाणु के दो ध्रुवों से दो अक्ष निकलते हैं, किन्तु आगे चलकर ये दोनों अक्ष आपस में मिल जाते हैं और उनके सङ्गम से ध्रुवों तक के भाग भी मिलकर एक हो जाते हैं जिससे कोषाणु एकध्रुवीय मालूम होने लगता है।

(२) द्विध्रुवीय[5] कोषाणु—इनके दोनों ध्रुवों से सूत्र निकलते हैं। इस प्रकार के कोषाणु नेत्र के अन्तःपटल और श्रवणनाड़ी के गण्ड में पाये जाते हैं।
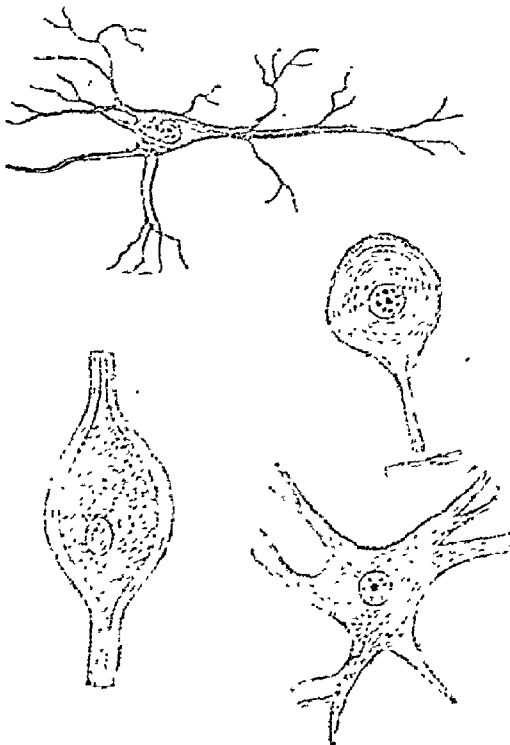
चित्र नं० ५१

भिन्न-भिन्न आकार के नाड़ी-कोषाणु—१. सूच्याकार (बहुध्रुवीय) । २. एकध्रुवीय । ३. द्विध्रुवीय । ४. बहुध्रुवीय ।

(३) बहुध्रुवीय कोषाणु[6]—इनका आकार प्रायः मीनार या तारे की भाँति होता है जिसके कई कोनों से सूत्र निकलते हुए दिखाई देते हैं। इनमें से केवल एक अक्ष होता है जो नाड़ी-सूत्र का अक्ष बन जाता है। शेष सूत्र, जो दन्द्र होते हैं, अनेक भागों में विभक्त हो जाते हैं। इनका अन्त सूक्ष्म शाखाओं में होता है।

रञ्जित नाड़ी-कोषाणुओं की परीक्षा करने से उनमें एक बड़ा और स्पष्ट केन्द्रक पाया जाता है जो प्रायः गोल या अण्डाकार और स्वच्छ होता है। केन्द्र के भीतर किसी प्रकार का जाल नहीं दिखाई देता; किन्तु उसमें केन्द्रकाणु अवश्य होता है, जिसकी संख्या कभी-कभी एक से अधिक होती है। इसकी स्थिति कोषाणु के बीच में होती है और इसके पास ही स्थित एक या अधिक आकर्षक बिन्दु भी पाये जाते हैं।

---

१. Axon. २. Dendron ३. Neurone. ४. Unipolar. ५. Bipolar. ६. Multipolar.
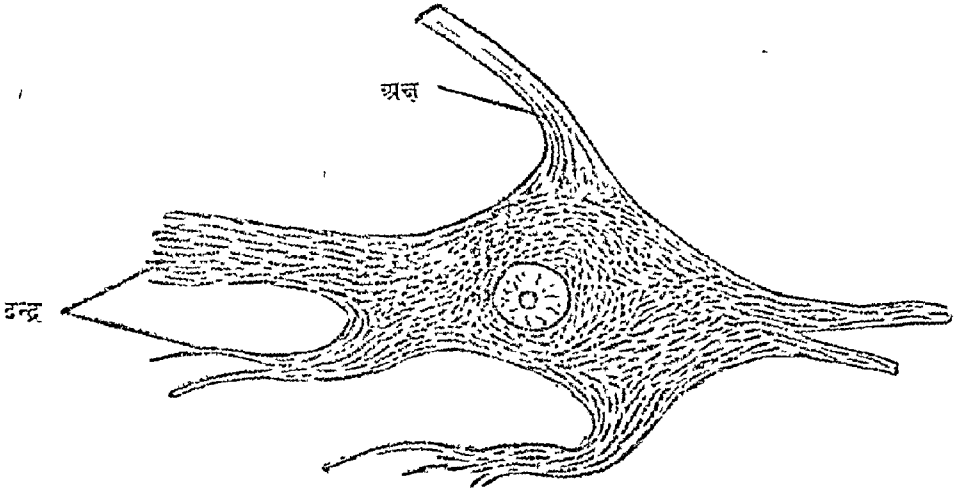
चित्र नं० ५२

सुषुम्ना-शीर्पक के पूर्व शृङ्ग का एक कोषाणु जिसमें तर्काकार 'निसिल के कण' दिखाई देते हैं।
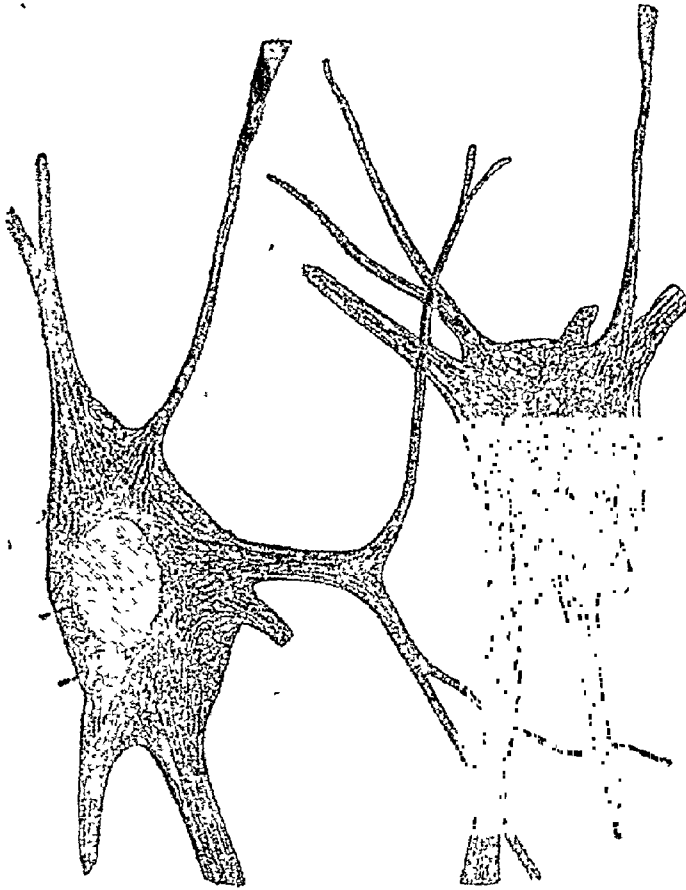
चित्र नं० ५३

नाड़ी-कोषाणु जिनके भीतर सूक्ष्म सूत्रिकाएँ दीखती हैं।

कोपाणु के कोपसार में जालक अथवा सूत्रों के समान रचना देखी जाती है। उसमें कभी-कभी रङ्गों के कण एकत्र मिलते हैं। इनके अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार के कणों के समूह, जिनमें कई कोण होते हैं, भी पाये जाते हैं। इनको 'निसिल के कण' कहते हैं। ये दन्द्रों में भी उपस्थित मिलते हैं; किन्तु अक्ष उनसे मुक्त होता है। परिश्रम करने पर अथवा सूत्र और कोपाणु का सम्बन्ध भिन्न कर देने पर ये कण लुप्त हो जाते हैं। इस कारण बहुत से विद्वान् इन कणों को शक्ति का संग्रह मानते हैं। कुछ नाड़ी-सम्बन्धी रोगों में इनकी मात्रा कम पाई जाती है अथवा नहीं पाई जाती। जिस स्थान पर कोपाणु से सूत्र निकलता है वहाँ ये कण उपस्थित नहीं होते। इस स्थान को अक्ष का उद्भवकोण[१] कहते हैं।
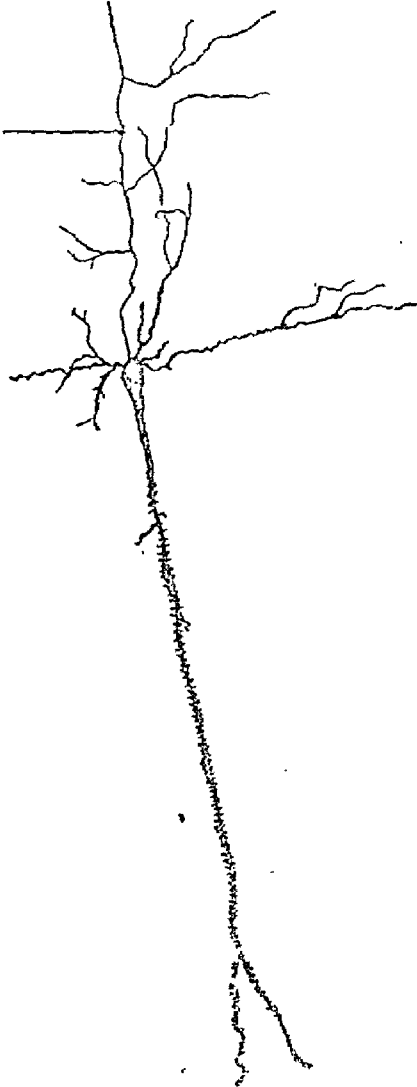
चित्र नं० ५४
सूच्याकार कोपाणु—बृहत् मस्तिष्क के बहिःस्तर से

चित्र नं० ५५
पर्किंझी का कोपाणु—लघु मस्तिष्क से

१. Cone of origin.
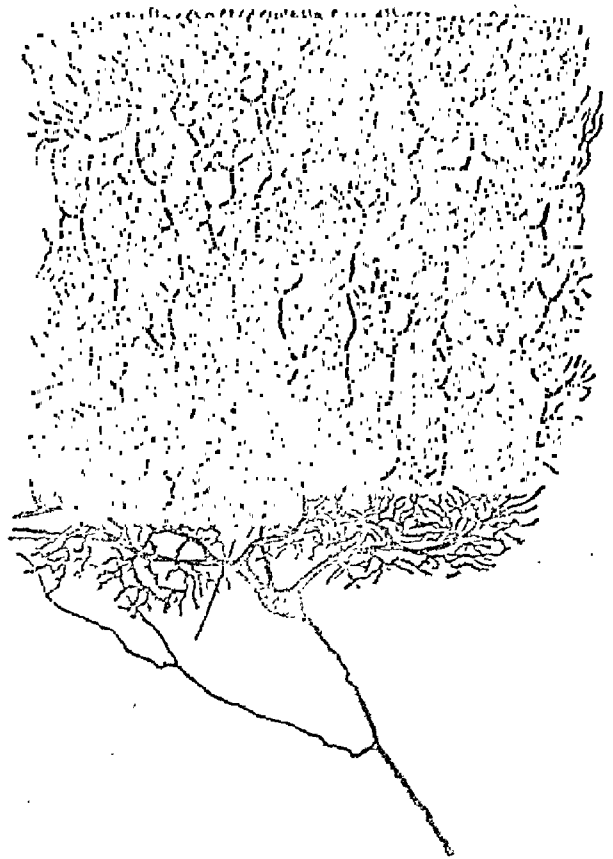
इन कणों और कोषरस के जालक के अतिरिक्त उसके भीतर अत्यन्त सूक्ष्म सूत्राणु भी अक्ष के सूत्रों में जाकर मिलते हुए दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं के द्वारा उत्तेजना की गति मानी जाती है।

कुछ विद्वानों का कथन है कि जीवित नाड़ी-कोषाणुओं में न तो निसिल के कण दिखाई देते हैं और न सूत्राणु ही दिखाई देते हैं। वे केवल रंजकों की क्रिया से दिखाई देने लगते हैं। किन्तु आजकल पूर्व मत ही माना जाता है।

नाड़ी-सूत्र—ये सूत्र नाड़ी-कोषाणुओं ही से निकलते हैं और कोषाणु से निकला हुआ अक्ष सूत्र का अक्ष या अक्षन बनाता है। ये सूत्र प्रान्तिक नाड़ियों तथा मस्तिष्क और सुषुम्ना के श्वेत भाग में पाये जाते हैं। ये सूत्र दो प्रकार के होते हैं—(१) पिधानयुक्त और (२) पिधानरहित। मस्तिष्क तथा

चित्र नं० ५६
नाड़ी-सूत्र का अनुदैर्घ्य और
व्यस्यस्त परिच्छेद
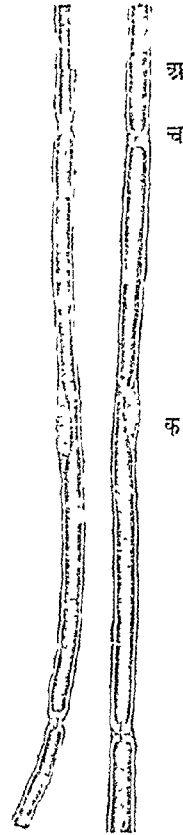
चित्र नं० ५७
अ—नाड़ी-सूत्रावरण।
क—सूत्रावरण का केन्द्रक जिसके भीतर की ओर
गहरे काले रङ्ग का मेदसपिधान स्थित है।
च—रेनवियर का नोड।

सुषुम्ना के श्वेत भाग में पिधानयुक्त सूत्र होते हैं। मस्तिष्कीय तथा सौषुम्निक नाड़ियों का अधिक भाग भी इन्हीं सूत्रों का बना हुआ है और इन्हीं के कारण नाड़ियाँ श्वेत और अपारदर्शी दिखाई देती हैं। साधारण अवस्था में ये सूत्र समांशी होते हैं, किन्तु शरीर से पृथक् करने के पश्चात् प्रकाश द्वारा देखने से उनमें दो भाग दीखने लगते हैं। नाड़ी-सूत्र के बीच में अक्षन रहता है और उसके चारों

और वसा-निर्मित आवरण चढ़ा रहता है जिसे मेदसपिधान[1] कहते हैं। इन सब पर एक सूक्ष्म आवरण होता है जो सूत्रावरण[2] कहलाता है। नाड़ी-सूत्रों की लम्बाई में बहुत भिन्नता पाई जाती है। कङ्काल-सम्बन्धी पेशियों को जानेवाले सूत्र बहुत लम्बे होते हैं। सबसे छोटे सूत्र स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल में उपस्थित मिलते हैं।

अक्ष[3] नाड़ी-सूत्र का मुख्य भाग है। जहाँ मेदसपिधान और सूत्रावरण उपस्थित नहीं होते वहाँ भी अक्ष पाया जाता है। यह सूत्र के प्रारम्भ से उसके अन्ततक समान प्रकार से उपस्थित होता है। यह किसी स्थान पर विच्छिन्न नहीं होता। इसको वास्तव में नाड़ी-कोषाणु ही का भाग मानना चाहिए। साधारणतया इससे शाखाएँ नहीं निकलतीं, किन्तु मस्तिष्क और सुषुम्ना में अक्ष से यतस्ततः उसके समकोण पर कुछ शाखाएँ निकलती हैं। ये सहायक शाखा[4] कहलाती हैं। ये अक्षसे निकलकर धूसर वस्तु में पहुँचकर दन्द्र की भाँति समाप्त हो जाती हैं।

अक्ष अति सूक्ष्म सूत्रों का बना होता है। अन्तिम स्थान पर पहुँचकर यह अत्यन्त सूक्ष्म सूत्रों में विभक्त हो जाता है। प्रत्येक नाड़ी-सूत्र का कमसे कम $\frac{1}{3}$ भाग अक्ष का बना होता है। भीतरी अङ्गों को जानेवाली नाड़ियों में इसका भाग और भी अधिक पाया जाता है। मेदसपिधान के भीतर अक्ष के चारों ओर आवसारमय वस्तु भरी रहती है।
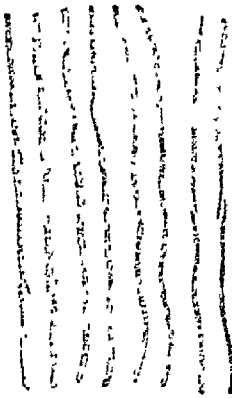
चित्र नं० ५८
मेदसपिधानयुक्त सूत्र
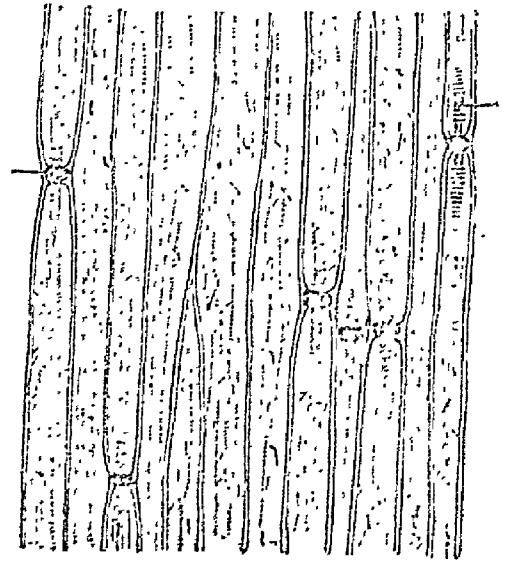
चित्र नं० ५९
मेदसपिधानयुक्त सूत्र—सिल्वर नाइट्रेट से रँगे हुए

मेदसपिधान—यह वसामय वस्तु का बना होता है जो तरल अवस्था में रहती है और अक्ष की चारों ओर से रक्षा करती है। परीक्षा करने से इसमें किसी विशेष प्रकार की रचना नहीं दिखाई देती। सूत्र में इस पिधान का भाग लगभग आधे के होता है। यदि सूत्र का एक व्यत्यस्त परिच्छेद काटा जाय तो उसके लगभग आधा भाग पिधान होगा। यह पिधान सूत्र की लम्बाई में निरन्तर नहीं रहता। स्थान-स्थान पर वह अनुपस्थित हो जाता है जिससे पिधान के दो

१. Medullary Sheath. २. Neuro-lema. ३. Axis cylinder. ४. Collaterals.

भागों के बीच अन्तर दिखाई देने लगता है। इन स्थानों को, जहाँ पिधान उपस्थित नहीं होता, 'रेनवियर के नोड'[1] कहते हैं। दो नोडों के बीच की लम्बाई लगभग एक मिलिमीटर होती है।

यह पिधान जिस वस्तु का बना होता है उसे 'मायलिन' कहते हैं। जब सूत्र कोपाणु से विभक्त कर दिया जाता है तो प्रथम इसी पिधान में ध्वंस[2] प्रारम्भ होता है और जहाँ-तहाँ मायलिन के बिन्दु पृथक् होने लगते हैं। प्रथम इनकी संख्या कम हो जाती है। किन्तु कुछ समय के पश्चात् सारा सूत्र इन बिन्दुओं से भरा हुआ दिखाई देने लगता है। ओज़िमक अम्ल से इसका रङ्ग गाढ़ी स्याही के समान हो जाता है।

सूत्रावरण—इस आवरण का स्तर सूत्र पर निरन्तर चढ़ा रहता है। वह यतस्ततः विच्छिन्न नहीं होता। यह समांशी कला का अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु दृढ़ स्तर होता है जो मेदसपिधान पर चढ़ा रहता है।

चित्र नं० ६०
स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल के मेदसपिधान-रहित सूत्रों का गुच्छ।

इसके भीतर की ओर आद्यसार की कुछ मात्रा से घिरे हुए केन्द्रक स्थित होते हैं जिनका आकार अण्डे के समान होता है। दो नोडों के बीच में एक केन्द्रक अवश्य पाया जाता है। यद्यपि यह केन्द्रक मेदसपिधान में पड़े हुए मालूम होते हैं, किन्तु वास्तव में उनका सम्बन्ध आवरण ही से होता है। जिन सूत्रों में यह आवरण नहीं होता उनमें केन्द्रक नहीं पाये जाते। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह आवरण वास्तव में निरन्तर नहीं होता किन्तु नोड पर दो भागों में आवरण आपस में संयोजक वस्तु द्वारा जुड़ जाते हैं। यदि सूत्र पर सिलवर नाइट्रेट के विलयन की क्रिया की जाय तो नोड पर विलयन आवरण में प्रविष्ट हो जाता है और प्रकाश डालने पर यह स्थान काला दिखाई देता है। इसके कारण अक्ष पर इन स्थानों में काले रङ्ग की स्वस्तिकाएँ बन जाती हैं जिनको **'रेनवियर की स्वस्तिकाएँ'** कहते हैं।

मेदसपिधान-रहित सूत्र

ये सूत्र स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल के गण्डकोपाणुओं[2] से सम्बद्ध होते हैं और उनके अक्ष बनाते हैं। प्रत्येक सूत्र केवल अक्ष का बना होता है जिसमें स्थान-स्थान पर केन्द्रक पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह केन्द्रक सूत्रावरण से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु परीक्षा करने से कोई आवरण नहीं पाया जाता। इस प्रकार के सूत्र हृदय की मांस-धातु, उद्रेचक ग्रन्थियों के कोपाणु और चर्म की रोम-प्रहर्षक पेशियों में वितरित हैं। अन्तिम स्थान पर ये सूक्ष्म शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं। ये पारदर्शी और कुछ धूसर वर्ण के होते हैं।

नाड्याधार वस्तु—यह कोपाणु और सूत्रों की बनी होती है और मस्तिष्क तथा सुषुम्ना-दण्ड में पाई जाती है।

इसके कुछ कोपाणु तारे के समान बहुकोणयुक्त होते हैं किन्तु उनका गात्र स्पष्ट नहीं होता। इनके सूक्ष्म सूत्र चारों ओर नाड़ी-कोपाणुओं और सूत्रों के बीच फैले रहते हैं और उनको आश्रित करते हैं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि सूत्रों का वास्तव में कोपाणुओं से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

---

१. Nodes of Ranuier. २. Ganglionic cells.

द्वितीय खंड

अस्थि प्रकरण
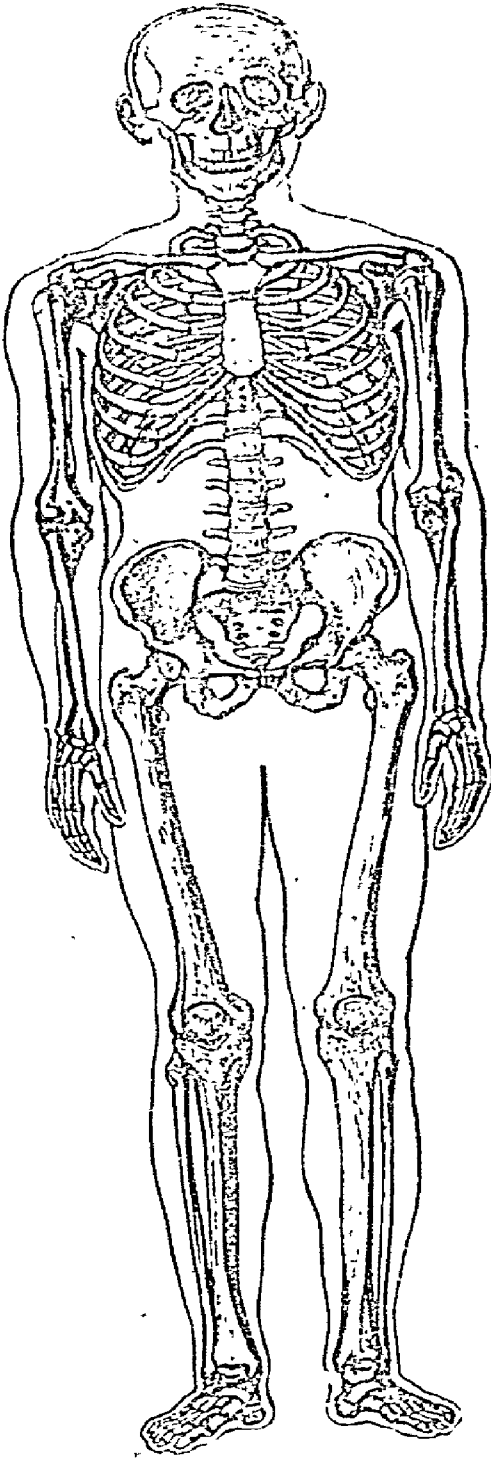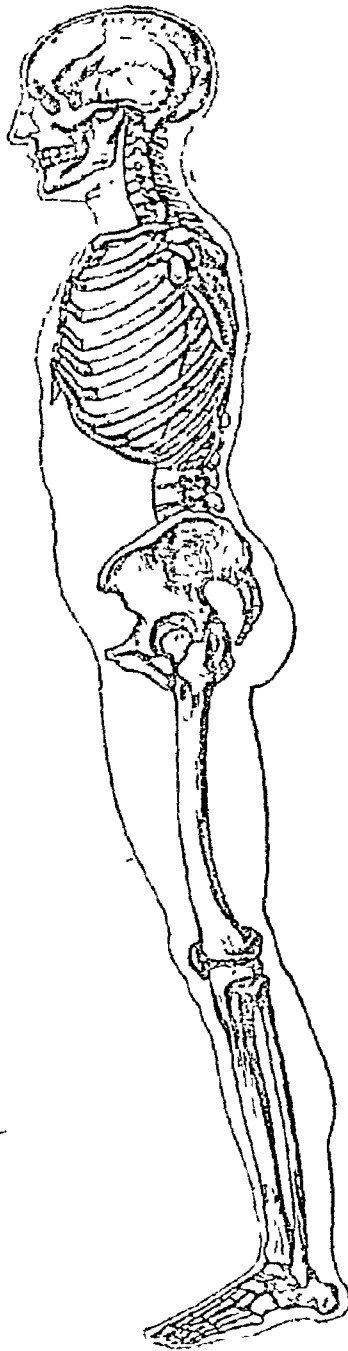
द्वितीय खण्ड

अस्थि प्रकरण

अस्थियाँ हमारे शरीर का आधार हैं। जिस प्रकार बड़े-बड़े मकान बनाने के पूर्व लोहे के शहतीरों द्वारा उनका ढाँचा या कंकाल तैयार कर लिया जाता है और तत्पश्चात् ईंट, पत्थर और चूने से उनके चारों ओर चुनाई करके मकान तैयार किये जाते हैं उसी प्रकार अस्थियों के कङ्काल के आधार पर शरीर-रूपी मकान आश्रित रहता है। यत्रतत्र: अस्थियों की सहायता के लिए शुक्ति भी उपस्थित रहती हैं। इन सब अस्थियों को मिलाकर अस्थिकङ्काल[1] कहते हैं।

यदि जन्तु-विज्ञान के अनुसार मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जन्तुओं का भी विचार किया जाय तो सृष्टि में दो प्रकार के कंकाल पाये जाते हैं—(१) बाह्य कङ्काल[2], जो शरीर के अङ्गों के बाहर की ओर स्थित होता है। मछली के शरीर पर के श्वेत चमकते हुए छैने, घोंघे के ऊपर का शङ्ख, कुछ कृमियों के ऊपर के कड़े पत्र तथा अन्य बहुत से कीटों के शरीर को आच्छादित करनेवाले वल्कल के समान भाग बाह्य कङ्काल के उदाहरण हैं। मनुष्य, गो तथा अन्य स्तनंधय जन्तु, पक्षी, सर्पीले जन्तु इत्यादि के शरीर के भीतर जो अस्थियाँ रहती हैं वह (२) आन्तरिक कङ्काल[3] कहलाती हैं। मानव-शरीर-रचना-विज्ञान में कङ्काल शब्द से केवल आन्तरिक कङ्काल ही का अर्थ लिया जाता है।

अस्थियों का कर्म

(१) अस्थियाँ शरीर को दृढ़ बनाती हैं। अङ्गों की दृढ़ता और कठिनता का कारण अस्थियाँ ही हैं।

(२) अस्थियाँ शरीर के आकार को स्थिर रखती हैं। अस्थियों के टूट जाने पर अङ्गों का आकार विकृत हो जाता है। यदि शरीर की सब अस्थियाँ कुचल जावें तो शरीर मांस के एक पिंड के समान हो जायगा।

(३) अस्थियाँ शरीर के कोमल अङ्गों को सुरक्षित रखती हैं। कपाल की अस्थियाँ आपस में इस प्रकार मिली रहती हैं कि उनसे एक अत्यन्त दृढ़ बक्स तैयार हो जाता है जिसके भीतर मस्तिष्क सुरक्षित रहता है। मस्तिष्क शरीर का सबसे कोमल अङ्ग है। इस कारण प्रकृति ने उसकी पूर्ण रक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया है। इसी प्रकार फुस्फुस और हृदय भी वक्षरूपी बक्स के भीतर, जो चारों ओर से पर्शुकाओं से ढका हुआ है, रहते हैं।

(४) अस्थियों के भागों से पेशियों का उदय होता है और उन्हीं के किसी भाग पर उनका कण्डरा के द्वारा निवेश होता है। इस प्रकार पेशियों द्वारा जितनी भी क्रियाएँ होती हैं उनका

---

१. Skeleton. २. External skeleton. ३. Internal skeleton.

आधार अस्थियाँ हैं। अस्थियों के भग्न हो जाने से पेशियों की क्रिया नष्ट हो जाती है। यदि बाहु की अस्थि भग्न हो जाय तो अग्रबाहु ऊपर की ओर न उठ सकेगी।

(५) अस्थि के भीतर रक्त के कण बनते हैं। लम्बी अस्थियों के भीतर नलिका में मज्जा रहती है। वहाँ ही इन कणों की उत्पत्ति होती है।

अस्थियों के अवयव—अस्थि, दाँत के अनेमल के अतिरिक्त, अन्य सब धातुओं की अपेक्षा अधिक कठिन होती है। साथ में अस्थि में लचक जाने का भी गुण होता है, जिससे वह सहज में नहीं टूटती।

अस्थियों में आधा भाग जल रहता है और शेष आधा भाग सेन्द्रिय या खनिज पदार्थों का बना होता है। सेन्द्रिय पदार्थों में श्वेत सौत्रिक धातु का मुख्य भाग होता है जिसके साथ खनिज लवण मिले रहते हैं। इन लवणों में मुख्य केल्सियम फास्फेट होता है। केल्सियम क्लोराइड, कार्बोनेट, मैगनेसियम फास्फेट और सोडियम क्लोराइड या साधारण लवण इत्यादि भी थोड़ी मात्रा में उपस्थित रहते हैं।

अस्थि में जल के अतिरिक्त जो अन्य अवयव पाये जाते हैं उनकी निम्नलिखित प्रतिशत निष्पत्ति होती है। अर्थात् शुष्क अस्थि के सौ भागों में भिन्न-भिन्न अवयवों के निम्नलिखित भाग पाये जाते हैं—

सेन्द्रिय अवयव (सौत्रिक धातु इत्यादि)—३३%	
खनिज पदार्थ—	
केल्सियम फास्फेट	५१·३४%
,, कार्बोनेट—	११·३० %
,, क्लोराइड—	२·०० %
मैगनेसियम फास्फेट—	१·१६ %
सोडियम क्लोराइड—	१·२० %
	६७ %

यदि अस्थि को किसी अम्ल में डाल दिया जाय तो उसके सारे खनिज लवण अम्ल में घुल जायँगे और केवल सौत्रिक धातु रह जायगी। किन्तु अस्थि का आकार वैसा ही बना रहेगा। हाँ, अस्थि इतनी नरम हो जायगी कि रस्सी की भाँति उसकी गाँठ बाँधी जा सकेगी। अस्थि की कठोरता के कारण केल्सियम के लवण होते हैं, जो अम्ल में घुल जाते हैं। वृद्धावस्था में सौत्रिक धातु में भी कठोरता आ जाती है जिसके कारण अस्थि की लचक जाती रहती है और वह सहज में टूट जाती है।

प्रत्येक अस्थि के ऊपर एक झिल्लीकृत पतला परत चढ़ा रहता है। इसको अस्थिधरा कला[१] कहते हैं। नवीन अस्थि के बनाने में यह कला विशेष भाग लेती है।

अस्थियों की संख्या—व्याख्या के लिए शरीर-शास्त्र के पण्डितों ने कङ्काल को मध्यस्थ और प्रान्तस्थ दो भागों में विभाजित किया है। कपाल, पृष्ठवंश, त्रिकास्थि, अनुत्रिकास्थि, वक्षोऽस्थि, कण्ठकास्थि और पर्शुकाएँ मध्यस्थ भाग में गिनी गई हैं। ऊर्ध्व और निम्न शाखाओं की अस्थियों की गणना प्रान्तस्थ भाग में की गई है।

---

१. Periosteum.

मानव शरीर में कुल २०६ अस्थियाँ होती हैं जिनकी गणना इस प्रकार है—

कपाल की अस्थियाँ—		२२
पृष्ठवंश या कशेरुकाएँ—		२६
वक्षोऽस्थि—		१
पर्शुकाएँ—		२४
कण्ठकास्थि—		१
		७४
ऊर्ध्व शाखा—	३२ × २ =	६४
निम्न शाखा—	३१ × २ =	६२
कर्ण—	३ × २ =	६
		१३२
		७४
		कुल २०६

प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थों में अस्थियों की संख्या इससे भिन्न मानी गई है। सुश्रुत ने शरीर में ३०० अस्थियों का होना लिखा है। भावप्रकाश भी यही संख्या बतलाता है, किन्तु चरक और वाग्भट्ट दोनों ३६० अस्थियाँ मानते हैं।

"त्रीणि सषष्टीन्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतन्त्रे तु त्रीण्येव शतानि, तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु, सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः, एवमस्थ्नां त्रीणि-शतानि पूर्य्यन्ते।"—सुश्रुत।

(१) इस मतभेद का मुख्य कारण यह ज्ञात होता है कि कदाचित् प्राचीन ग्रन्थकारों ने शरीर के सारे कठिन अवयवों को अस्थि मान लिया है। उन्होंने दाँत, अँगुलियों के नख और कार्टिलेज सबों को अस्थि ही माना है। किन्तु आधुनिक व्यवच्छेदक उनको अस्थि न मानकर भिन्न ही मानते हैं, क्योंकि उनकी रासायनिक तथा सूक्ष्म रचना, जो सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा ही देखी जा सकती है, अस्थि की रचना से बिलकुल भिन्न होती है।

(२) कहीं-कहीं अस्थियों के भागों को उन्होंने भिन्न अस्थि मान लिया है। चरक ने वक्ष में प्रत्येक ओर अस्थियाँ मानी हैं। भावप्रकाश ने भी ऐसा ही किया है। उन्होंने पर्शुका के अर्बुद और स्थालकों को पर्शुका से भिन्न माना है। इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक पर्शुका में तीन अस्थियाँ मानी हैं जिससे उनकी संख्या ३६ हो जाती है। किन्तु वास्तव में अर्बुद और स्थालक दोनों पर्शुका के भाग हैं, उनसे पृथक् नहीं हैं। इस कारण प्रत्येक ओर बारह पर्शुका ही मानना उचित है।

(३) इसी प्रकार सुश्रुत ने पाँव की प्रत्येक अँगुली में तीन-तीन अस्थियाँ बताई हैं और पाँचों अँगुलियों में १५ अस्थियाँ मानी हैं। किन्तु वास्तव में वे चौदह होती हैं। क्योंकि अँगूठे में केवल दो ही अस्थियाँ हैं।

(४) प्राचीन ग्रन्थकारों ने, किसी-किसी स्थान पर, कम अस्थियाँ मानी हैं। कपाल के ऊपरी भाग में उन्होंने केवल ६ अस्थियाँ मानी हैं किन्तु वास्तव में वहाँ आठ अस्थियाँ हैं। इसी प्रकार मुख

की कई अस्थियों को उन्होंने नहीं गिना है। सुश्रुत ने गुल्फ और पार्ष्णि प्रान्त में चार अस्थियाँ मानी हैं किन्तु वहाँ सात अस्थियाँ होती हैं। चरक ने इस प्रान्त में ६ अस्थियाँ मानी हैं।

अस्थियों की श्रेणियाँ—प्रायः अस्थियों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:—
(१) दीर्घास्थि[१], (२) लघ्वस्थि[२], (३) समास्थि[३] और (४) क्रमहीन अस्थि[४]।

(१) दीर्घास्थियाँ—प्रगंडास्थि और ऊर्वस्थि दीर्घास्थियों का उदाहरण हैं। ये अस्थियाँ लम्बी होती हैं। इनके दो सिरे और एक गात्र होते हैं। सिरे गात्र की अपेक्षा अधिक चौड़े होते हैं। गात्र लम्बा और वर्तुलाकार होता है। इसी के भीतर एक सिरे से दूसरे सिरे तक मज्जा-नलिका रहती है। बाहु और अग्रबाहु की दोनों अस्थियाँ, अक्षकास्थि, ऊर्वस्थि, हथेली और अँगुलियों की अस्थियाँ अथवा पादास्थियाँ सब दीर्घ अस्थियाँ हैं।

(२) लघ्वस्थि—ये अस्थियाँ छोटी और दृढ़ होती हैं। जहाँ पर अधिक दृढ़ता की आवश्यकता होती है किन्तु गति अधिक नहीं होती वहाँ पर लघु अस्थि पाई जाती है। मणिबन्ध तथा गुल्फ के प्रान्त में लघु अस्थियों की शृङ्खलाएँ स्थित हैं।

(३) समास्थि—इन अस्थियों की मोटाई लम्बाई और चौड़ाई से कम होती है। ये चपटी होती हैं। कपाल के ऊपरी भाग की अस्थियाँ, स्कन्धास्थि, नितम्बास्थि, जान्वस्थि, वक्षोऽस्थि और पर्शुकाएँ समास्थियाँ मानी जाती हैं। जिन स्थानों पर भीतर के अंगों को सुरक्षित रखने या विस्तृत पेशियों के लिए निवेशस्थान प्राप्त करने का प्रयोजन होता है वहाँ इस जाति की अस्थियाँ रहती हैं। इन अस्थियों को तोड़कर देखने से मालूम होगा कि उनमें संहतास्थि के दो स्तर होते हैं; एक आगे और दूसरा पीछे। इन दोनों परतों के बीच में थोड़ा शुषिर भाग होता है। कपाल में किसी-किसी स्थान पर इस भाग का शोषण हो जाता है और उसके स्थान पर एक खात, कोटर या पोला स्थान उत्पन्न हो जाता है जिससे अस्थि हलकी हो जाती है।

(४) क्रमहीन अस्थियाँ—जैसा नाम से विदित है, इनके आकार में किसी प्रकार का विशेष क्रम नहीं होता। अस्थि में किसी स्थान पर अर्बुद होता है, कहीं पर एक प्रवर्धन निकला रहता है, दूसरी ओर एक खात होता है, अस्थि कहीं पर चिपटी होती है तो दूसरे स्थान पर खुरदरी होती है। शङ्खास्थि, जतुका, हन्विका, झर्झरिका इस जाति की अस्थियाँ हैं। समास्थियों के समान इन अस्थियों में भी प्रायः दोनों ओर के पतले संहत स्तरों के बीच में शुषिर भाग रहता है।

अस्थियों के नाम—अस्थियों के नामकरण में कई बातों का विचार किया जाता है। कुछ अस्थियों के नाम उनकी स्थिति के अनुसार रखे जाते हैं जैसे नितम्बिका, ऊर्वस्थि, जंघिका। कुछ अस्थियों का नाम उनमें उपस्थित किसी विशेषता के अनुसार रखा जाता है जैसे झर्झरास्थि, क्योंकि यह अस्थि बहुत ही झर्झरी और हलकी होती है। कपाल के ऊपर की अस्थियों का नाम उनकी दिशा के अनुसार रखा गया है। आकार के अनुसार भी कुछ अस्थियों का नामकरण किया गया है; जैसे, अर्धचन्द्र, फणधर, वर्तुलक। कुछ अस्थियों के नाम किसी विशेष कारण से पड़ गये हैं; जैसे—कशेरुक, अक्षक, पर्शुका।

अस्थि सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्द—अस्थियों की व्याख्या करते समय निम्नलिखित शब्दों का बहुत प्रयोग किया जाता है—

---

१. Long Bones.　२. Short Bones.　३. Flat Bones.　४. Irregular Bones.

शिर[1] = अस्थि का ऊपरी गोल भाग जिसके द्वारा वह किसी दूसरी अस्थि के सम्पर्क में आती है।

ग्रीवा[2] = शिर और गात्र के बीच का भाग जो प्रायः पतला होता है।

गात्र[3] = अस्थि का मुख्य भाग अथवा उसका शरीर।

धारा[4] = किनारा।

कोण[5] = कोना।

खात[6] = गढ़ा, चौड़ा किन्तु गहरा नहीं।

नलिका[7] = नली, जो दोनों ओर के छिद्रों के अतिरिक्त मार्ग में चारों ओर से बन्द होती है।

उदूखल[8] = गहरा किन्तु संकुचित गढ़ा।

वायुविवर[9] = एक पोला स्थान, वायु से भरा हुआ और श्लैष्मिक कला से वेष्टित।

अर्बुद[10] = उभरा हुआ भाग।

पिण्डक[11] = उभरा हुआ भाग, जो अर्बुद की अपेक्षा छोटा और गोलाई लिये हुए होता है। कभी-कभी बहुत छोटे उभार को पिण्डक कह देते हैं।

शृङ्ग[12] = सींग के समान उभरे हुए भाग।

शिखा[13] = अस्थि की नोक जो उसके एक स्थान से आरम्भ होकर दूसरे स्थान तक चली जाय।

उपार्बुद[14] = अर्बुद के ऊपर अस्थि का छोटा-सा उभार।

स्थालक[15] = अस्थि पर का छोटा चिकना स्थान जहाँ वह दूसरी अस्थि से मिलती है।

छिद्र[16] = छेद।

ओष्ठ[17] = किनारा।

परिखा[18] = दो उभारों के बीच का संकीर्ण मार्ग।

पत्रक[19] = पतले-पतले पत्र।

तीरणिका[20] = पतला लम्बा उभार।

प्रवर्धन[21] = अस्थि से निकला हुआ भाग जो बिलकुल भिन्न प्रतीत हो सके।

कूट[22] = प्रवर्धन से छोटा उभार।

कण्टक[23] = नोकीला प्रवर्धन।

डमरुक[24] = डमरू के आकार का स्थान।

---

१. Head. २. Neck. ३. body. ४. Border. ५. Angle. ६. Fossa. ७. Cannal. ८. Alveolus. ९. Antrum. १०. Condyle. ११. Tubercle. १२. Cornua १३. Crest. १४. Epicondyle. १५. Facet. १६. Foramen. १७. Margin, lips, Labium. १८. Sulcus. १९. Laminae. २०. Linea. २१. Process. २२. Emminenoe. २३. Spine. २४. Trochlea.

शाखाएँ

मानव शरीर में ऊर्ध्व और निम्न दो शाखाएँ होती हैं। हाथ, अग्रबाहु और बाहु की अस्थियाँ, अक्षक और स्कन्ध की अस्थि मिलकर ऊर्ध्व शाखा बनाती है। इसी प्रकार नितम्बिका, ऊर्विका, जंघिका, अनुजङ्घिका और पाँव की अस्थियों से निम्न शाखा बनती है। अक्षक और स्कन्ध की
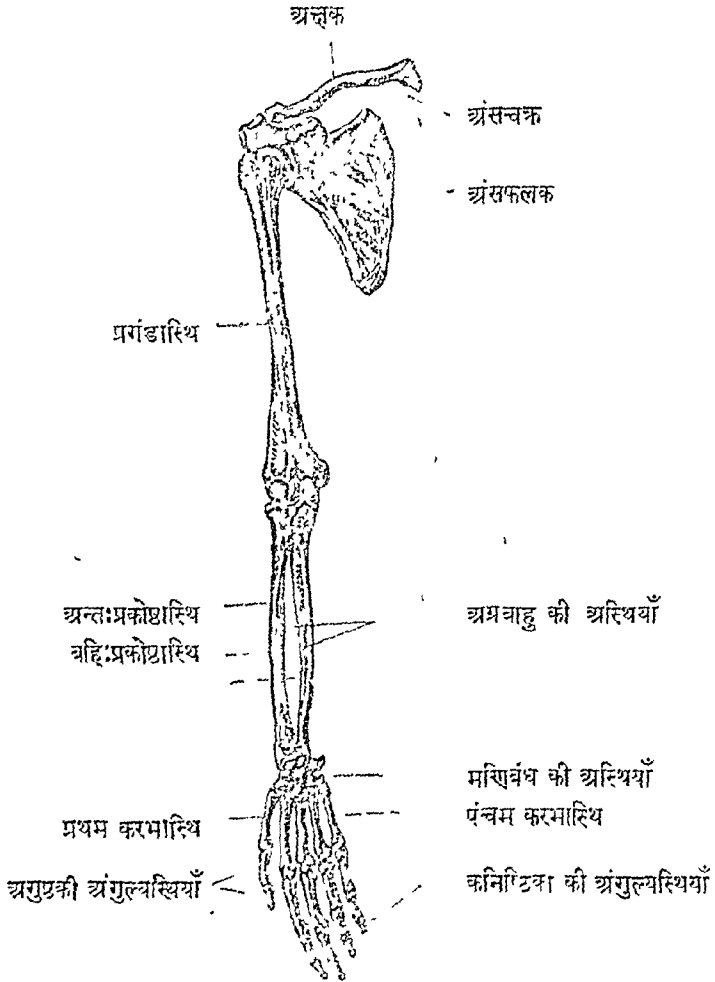
चित्र नं० ६१
ऊर्ध्व शाखा की अस्थियाँ

अस्थि, जिसको अंसफलक कहते हैं, मिलकर अंसचक्र[1] बनाते हैं। दोनों ओर की नितम्बिकाओं के मिलनेसे श्रोणिचक्र[2] बनता है। अंसचक्र पीछे की ओर अपूर्ण होता है किन्तु आगे की ओर दोनों अक्षकों के बीच में वक्षोस्थि के रहने से चक्र पूरा हो जाता है। पीछे की ओर किसी

---

१. Shoulder girdle. २. Pelvic girdle.

भी अस्थि से चक्र की पूर्ति नहीं होती। अंसफलक केवल पेशियों द्वारा शरीर से जुड़े रहते हैं। श्रोणिचक्र स्वतः पीछे की ओर से अपूर्ण होता है किन्तु नितम्बिकाओं के बीच में त्रिकास्थि के आ जाने से वह पूर्ण हो जाता है। यह चक्र अंसचक्र की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ और घना होता है।

ऊर्ध्व और निम्न दोनों शाखाओं की रचना एक ही समान है, यद्यपि कर्म की भिन्नता के अनुसार उनके आकार में भी भेद उत्पन्न हो गया है। दोनों शाखाएँ चक्रों के द्वारा शरीर से संयुक्त रहती हैं।

ऊर्ध्व शाखा[1] की अस्थियाँ

अक्षक[2]

इस अस्थि को साधारणतया हँसली कहा जाता है। यह अस्थि वक्षप्रांत में दाहिने और बायें दोनों ओर सबसे ऊपर रहती है। ग्रीवा के मूल में स्थित गढ़े के दोनों ओर दाहिनी और बाईं अक्षका-स्थियों को प्रतीत किया जा सकता है। प्रत्येक अस्थि का बाहरी भाग ऊपर को मुड़ा हुआ है। इस भागका बाहरी सिरा अंसफलक के अंसकूट के साथ मिलता है। अस्थि के इस भाग को अंसीय भाग कहते हैं। यह भाग अस्थिका तृतीयांश होता है। इस कारण व्याख्या करते समय इसको **पार्श्विक तृतीयांश[3]** के नाम से भी पुकारा जाता है। शेष भाग को **मध्यस्थ द्वि-तृतीयांश[4]** कहते हैं। जो स्थान वक्षोस्थि से मिलता है वह वक्षकीय[5] और अंसफलक से मिलनेवाला स्थान अंसीय प्रांत[6] कहलाता है।
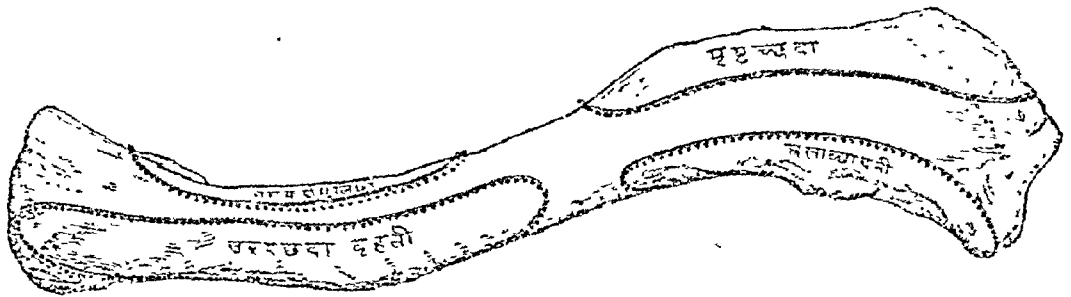
चित्र नं० ६२—अक्षक का पूर्वपृष्ठ

पार्श्विक तृतीयांश के समान मध्यस्थ द्वि-तृतीयांश भाग भी मुड़ा हुआ है किन्तु इसका मोड़ आगे की ओर को है और पार्श्विक भाग के मोड़ की अपेक्षा बड़ा है। इस कारण अँगुलियों द्वारा शरीर में अस्थि को प्रतीत करने पर पार्श्विक भाग का मोड़ आगे की ओर से नतोदर, और पीछे की ओर उन्नतोदर प्रतीत होता है। इसके विपरीत मध्यस्थ भाग आगे की ओर उन्नतोदर और पीछे की ओर नतोदर होता है। इन दो प्रकार के मोड़ों के कारण अस्थि अँगरेजी के *f* अक्षर के समान प्रतीत होती है।

पार्श्विक तृतीयांश भाग—इस चिपटे भाग का ढाल ऊपर से नीचे की ओर को होता है। इसमें ऊर्ध्व और अधः दो पृष्ठ होते हैं जिनको पूर्व और पश्चात् धाराएँ विभाजित करती हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ—यह चिपटा होता है जिस पर कई उभरी हुई रेखाएँ दिखाई देती हैं। इन रेखाओं

१. Superior Extremity. २. Clavicle. ३. Lateral Third. ४. Medial two-thirds. ५. Sternal end. ६. Acromial end.

पर आगे की ओर अंसच्छदा[1] का उदय और पीछे की ओर पृष्ठच्छदा[2] का निवेश होता है। इनके बीच का स्थान केवल चर्म से ढका होता है।

अधःपृष्ठ चिपटा और खुरदरा है। उस पर कोई पेशी नहीं लगी हुई है। उसकी पश्चात् धारा पर पार्श्विक और मध्यस्थ भाग के संयोजन-स्थान पर एक छोटा सा पिण्डक है जिस पर त्रिकोणिका[3]
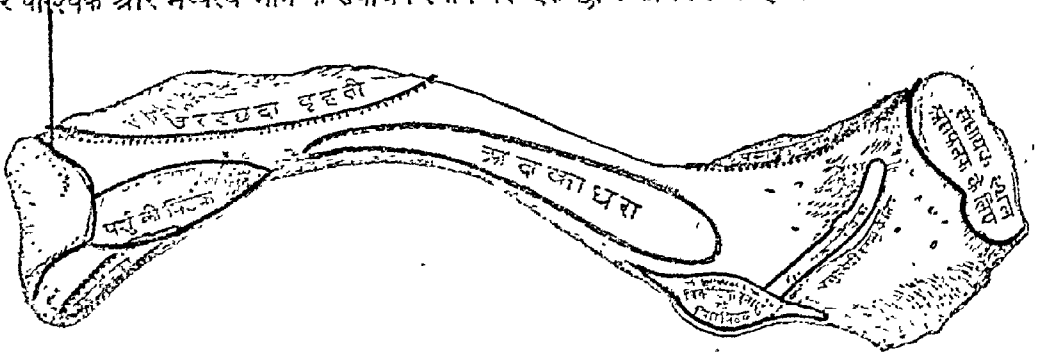
चित्र नं० ६३—अक्षक का पश्चिम पृष्ठ

स्नायु लगती है। इस पिण्डक को तुण्डीय पिण्डक[4] कहते हैं। इस पिण्डक से आगे और बाहर की ओर जाती हुई एक तीरणिका दिखाई देती है जिसके ऊपर चतुष्कोणिका स्नायु[5] लगती है। यह तीरणिका वक्र या चतुष्कोणीय तीरणिका[6] कहलाती है।

पूर्वधारा पतली और नतोदर है और उस पर से अंसच्छदा पेशी का उदय होता है।

पश्चात् धारा—यह मोटी, खुरदरी और उन्नतोदर है तथा पृष्ठच्छदा पेशी का निवेशस्थान है।

मध्यस्थ द्वि-तृतीयांश या वक्षीय भाग—यह भाग आगे की ओर उन्नतोदर और पीछे की ओर नतोदर है। इसमें तीन पृष्ठ और तीन धाराएँ हैं।

पूर्वपृष्ठ—ऊर्ध्व और पूर्व धाराओं के बीच का स्थान है। इसका पार्श्व भाग केवल चर्मगत है, किसी भी पेशी से आच्छादित नहीं है। इसका मध्यस्थ भाग चिकना और गोल है तथा ऊपर और नीचे के दो भागों में विभक्त है। ऊपरी भाग से उरःकर्णमूलिका[7] और नीचे के भाग से उरश्छदा बृहती[8] पेशी उदय होती हैं। इन दोनों के बीच में एक हलकी सी तीरणिका रहती है।

अधःपृष्ठ—आगे की ओर पूर्वधारा और पीछे की ओर पश्चिमधारा से परिमित है। भीतर की ओर इस पर पर्शुकीय पिण्डक[9] स्थित है, जिस पर पर्शुकाक्षक स्नायु[10] लगी हुई है। उसके शेष भाग में अक्षकाधरा[11] पेशी एक चौड़ी परिखा में लगी हुई है। इस परिखा के दोनों किनारों पर तुंडाक्षकी आवरणी[12] के दोनों स्तर लगे हुए हैं जिनके बीच में अक्षकाधरा पेशी रहती है।

पश्चिम पृष्ठ—पीछे की ओर रहता है। यह पृष्ठ चारों ओर से परिमित है। ऊपर की ओर ऊर्ध्वधारा, नीचे की ओर पश्चिमधारा, भीतर की ओर वक्षकीय भाग और बाहर या पार्श्व में तुण्डीय पिण्डक स्थित हैं। वक्षकीय भाग के पास उरःकण्ठिका[13] पेशी लगी हुई है। उसके बीच में एक छिद्र है जिसके द्वारा पोषक धमनी अस्थि के भीतर प्रवेश करती है। कभी-कभी दो छिद्र होते हैं।

---

१. Deltoideus. २. Trapezius. ३. Conoid Lig. ४. Coracoid Tuberosity. ५. Trapezoid Lig. ६. Oblique or Trapezoid ridge. ७. Sterooclcido-mastoideus ८. Pectoralis major. ९. Costal Tuberosity. १०. Costo-clavicular Lig. ११. Subclavius. १२. Coracoclavicular fascia. १३. Sterno-Hyoideus.

पूर्वधारा पार्श्विक भाग की पूर्वधारा के साथ मिली रहती है। धारा का पार्श्विक भाग चिकना होता है। इस भाग पर कोई पेशी नहीं लगती। इसके मध्यस्थ भाग के तनिक ऊपर की ओर से उरश्छदा वृहती पेशी उदय होती है।

पश्चिमधारा—यह धारा पश्चिम और अधःपृष्ठ को पृथक् करती है। पार्श्व में तुण्डीय पिण्डक से आरम्भ होकर पर्शुकीय पिण्डक तक चली जाती है जो इस धारा के दूसरी ओर के सिरे पर स्थित है। इस धारा पर वह कला लगी रहती है जो अंसकण्ठिका[1] पेशी को आच्छादित करती है।

ऊर्ध्वधारा—यह धारा पूर्व और पश्चिम पृष्ठ को विभाजित करती है और पार्श्विक भाग की पश्चिम धारा से मिली हुई है। इसका पार्श्विक भाग चिकना होता है किन्तु वक्षकीय प्रान्तको ओर धारा खुरदरी हो जाती है जहाँ उरःकर्णमूलिका पेशी से ढकी रहती है।

वक्षकीय भाग—यह वह छोटा भाग है जो वक्षकास्थि के साथ मिला रहता है। यह त्रिकोणाकार होता है और तनिक आगे और नीचे की ओर झुका रहता है। इसके मध्यस्थ पृष्ठ पर एक बड़ा स्थालक है जो वक्षकास्थि के साथ एक शुक्तिके पत्र के द्वारा सम्मेलन करता है। इस भाग के अधःपृष्ठ पर भी एक छोटा स्थालक है जो पूर्व स्थालक के साथ मिलता है। इस स्थालक के द्वारा अस्थि प्रथम पर्शुका की शुक्ति से मिल जाती है। स्थालकों के चारों ओर का भाग खुरदरा होता है क्योंकि उस पर स्नायु लगते हैं।

अंसीय भाग[2]—अस्थि के पार्श्विक भाग के उस प्रान्त को, जो अंसफलक के अंसकूट प्रवर्धन से मिलता है, अंसीय भाग कहते हैं। इस प्रान्त में एक गोल या अण्डाकार स्थालक होता है, जिसके द्वारा अस्थियाँ सम्पर्क करती हैं। वह स्थालक अस्थि के तनिक नीचे की ओर स्थित होता है। इस स्थालक के ऊपर की ओर कूटाक्षक स्नायु[3] लगती है।

सम्मेलन अंसफलक के अंसकूट, वक्षकास्थि और प्रथम पर्शुका से होता है।
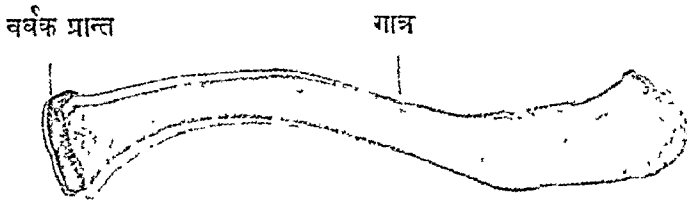
चित्र नं० ६४ अक्षक का अस्थि-विकास

अस्थि-विकास—शरीर की अन्य सब अस्थियों से पूर्व अक्षक का विकास आरम्भ होता है। इसका विकास तीन केन्द्रों से होता है। अस्थि के गात्र में अथवा मध्यस्थ भाग में भ्रूणावस्था के पाँचवें या छठे सप्ताह में दो केन्द्र निकलते हैं, जिनसे पार्श्विक और मध्यस्थ भाग का विकास होता है। वक्षीय भाग का केन्द्र १८ या २० वर्ष की आयु में उदय होता है। किन्तु यह भाग शेष अस्थि के साथ २५वें वर्ष में जुड़ता है।

क्रियात्मक—इस अस्थि की स्थिति ऐसी है कि उसका बहुधा भग्न हो जाता है। यह अस्थि स्वयं कोमल है और सामने की ओर केवल चर्म से ढकी हुई है। इसका भग्न प्रायः पार्श्विक और मध्य तृतीयांश भागों के सम्मेलन-स्थान पर, जहाँ दोनों मुड़े हुए भाग मिलते हैं, होता है। भग्नरेखा

---

१. Omo-hyoideus. २. Acromial and. ३. Acromio-clavicular Ligment.

तिर्यक् होती है और टूटा हुआ बाहरी भाग नीचे, आगे और भीतर की ओर को भ्रष्ट होता है। इस विकृति का कारण बाहु का भार होता है। भग्नास्थि के भीतर का भाग प्रायः अपनी पूर्व स्थिति में रहता है। कभी-कभी अस्थि ही पर आघात लगने से टूटे हुए भाग का सिरा भीतर की ओर को दबकर नाड़ियों तथा धमनियों को क्षत कर देता है।

इस अस्थि में घातक अर्बुद भी उत्पन्न हो जाते हैं जिनके कारण सम्पूर्ण अस्थि को निकालना पड़ता है। इस शस्त्र-कर्म में अस्थि के वक्षीय भाग को निकालने में विशेष कठिनाई पड़ती है। वहाँ बड़ी रक्त-नलिकाएँ और नाड़ियाँ स्थित हैं।

अंसफलक[१] अथवा स्कन्धास्थि

यह अस्थि स्कन्ध के पीछे की ओर रहती है और अंसचक्र का पश्चिम भाग बनाती है। इस अस्थि का गात्र बहुत पतला होता है। आकार में यह एक त्रिकोण के समान है, जिसमें तीन कोटि, तीन धाराएँ और दो पृष्ठ होते हैं। इसके पश्चिम पृष्ठ से एक बड़ा प्रवर्धन निकलता है जिसका सिरा स्कन्ध में सबसे ऊपर रहता है और हाथ से प्रतीत किया जा सकता है। दूसरा प्रवर्धन अस्थि की ग्रीवा से निकलता है, जो प्रथम प्रवर्धन की अपेक्षा छोटा और मोटा होता है। यह अस्थि बहिःकोटि के समीप मोटी और चौड़ी हो जाती है। इस भाग को अस्थि का शिर कहा जाता है और इसके पास का स्थान, जो कुछ संकुचित है, ग्रीवा कहलाता है।

गात्र—अत्यन्त पतला होता है। यहाँ तक कि किसी किसी स्थानपर उसके द्वारा दूसरी ओर का प्रकाश दिखाई देता है। इसमें दो पृष्ठ होते हैं। एक आगे अथवा वक्ष की ओर रहता है और इस कारण पूर्व अथवा पर्शुकीय पृष्ठ कहलाता है। दूसरा पीछेकी ओर को रहनेवाला पश्चिम पृष्ठ कहा जाता है। दोनों पृष्ठ विस्तृत पेशियों से आच्छादित हैं।

पूर्व अथवा पर्शुकीय पृष्ठ—यह पृष्ठ वक्ष अथवा पर्शुकाओं की ओर रहता है। यह कुछ नतोदर है, अर्थात् कुछ पीछेकी ओर मुड़ा हुआ है जिससे इसमें एक चौड़ा खात उत्पन्न हो जाता है, जिसे अंसान्तरिक खात[२] कहते हैं। इस खात के अधिक भाग में कुछ तीरणिकाएँ या रेखाएँ दिखाई देती हैं। किन्तु ग्रीवा के पास का भाग चिकना और तीरणिकाओं से रहित है। इन तीरणिकाओं और इनके बीच के स्थानपर अंसान्तरिका[३] पेशी लगी रहती है। किन्तु बहिःस्थ चिकना स्थान पेशी के सूत्रों से केवल ढका होता है। यह पृष्ठ ऊपर पहुँचकर ग्रीवा के पास कुछ आगे की ओर को मुड़ जाता है जिससे अस्थिपृष्ठ के ऊपरी और नीचे के भाग के बीच में एक कोण बन जाता है। इसको अंसान्तरिक कोण[४] कहते हैं। इसके दूसरी ओर, अर्थात् पश्चिम पृष्ठ पर, अंसप्राचीरक[५] प्रवर्धन का तल रहता है। इस पृष्ठ के अन्तः और अधः कोटि पर जो पृष्ठवंश की ओर रहते हैं दो चिकने सम त्रिकोणाकार स्थान पाये जाते हैं जो एक तीरणिका से जुड़े हुए हैं। इन त्रिकोणाकार स्थानों और तीरणिका पर अरित्रा-पूर्वी[६] पेशी लगती है।

पश्चिमपृष्ठ—यह पृष्ठ उन्नतोदर है और अंस प्राचीरक प्रवर्धन के द्वारा दो खातों में विभक्त है। प्राचीर के ऊपर का ऊर्ध्वप्राचीरक[७] और नीचे का अधःप्राचीरक[८] खात कहलाता है। अधः-प्राचीरक ऊर्ध्वप्राचीरक की अपेक्षा बहुत बड़ा है।

---

१. Scapula. २. Subscapular fossa. ३. Subscapularis. ४. Subscapular Angle. ५. Spine of Scapula. ६. Surratus Anterior. ७. Supraspinatus and. ८. Infraspinatus fossa.

ऊर्ध्वप्राचीरक खात वंशानुगा धारा[1] के पास चौड़ा है, किन्तु ग्रीवा के पास पहुँचकर संकुचित हो जाता है। यह चिकना और नतोदर है। यहाँ अंसपृष्ठिका उत्तरा[2] पेशी उदय होती है।

अधःप्राचीरक खात बीच में उन्नतोदर है किन्तु कक्षानुगा धारा के पास पहुँचकर वह कुछ भीतर की ओर दब जाता है। खात के मध्यस्थ द्वि-तृतीयांश भाग से अंसपृष्ठिकाअधरा[3] पेशी के सूत्रों का उदय होता है किन्तु बहिःस्थ तृतीयांश भाग केवल सूत्रों से ढका हुआ है। कक्षीय धारा के पास एक गहरी परिखा दिखाई देती है जो ऊपर से नीचे की ओर को जाती है। इसके समानान्तर ही एक

चित्र नं० ६५—अंसफलक का पूर्वपृष्ठ

१. Vertebral Border. २. Supraspinatus. ३. InfrasPinatus.

चौड़ी तोरणिका है जो अस्थि के उस स्थान से, जिसे अंसपीठ[1] कहते हैं, नीचे की ओर अधःकोटि से लगभग एक इंच ऊपर तक चली जाती है। इस तोरणिका और कक्षानुगा धारा के बीच में ऊपर की ओर अंसाधरिका लघ्वी[2] और नीचे की ओर अंसाधरिका बृहती[3] पेशी लगी हुई हैं।

ये दोनों पेशियाँ प्रावरणी के फलक के द्वारा एक दूसरी से पृथक् रहती हैं। इसी प्रकार तोरणिका पर लगी हुई कला अंसाधारिका पेशियों को अंसपृष्ठिका अधरा से पृथक् करती है। इस तोरणिका के ऊपरी भाग में एक छोटी व्यत्यस्त परिखा है जिसके द्वारा अंसवेष्टनिका धमनी और शिराएँ[4] जाती हैं। अंसाधरिका बृहती के नीचे अधः कोटि पर कुछ स्थान कटिपार्श्वच्छदा[5] पेशी के सूत्रों से ढका हुआ है।

कोण या कोटि—अस्थि के तीन कोणों या कोटि के नाम बहिः, अन्तः और अधः कोटि हैं।

बहिः कोटि—इसको अस्थि का शिर भी कहा जाता है। यह कक्ष की ओर रहता है। यह अस्थि का सबसे मोटा भाग है। इसके आगे की ओर अंसपीठ या स्थालक होता है। इसके नीचे का भाग अधिक चौड़ा है। यहाँ पर प्रगण्डास्थि का शिर मिलता है। जीवित अवस्था में यह भाग शुक्ति से ढका रहता है जो बीच की अपेक्षा किनारों पर अधिक ऊँची होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए बीच के गहरे स्थान में प्रगण्डास्थि का शिर रहता है। कोण के ऊपर की ओर एक खुरदरा पिण्डक दिखाई देता है, जिससे द्विशिरस्का[6] बाह्वी पेशी का दीर्घ शिर उदय होता है। यह पीठोत्तर पिण्डक[7] कहलाता है।

अन्तः कोटि—यह पतला, छोटा और गोल है और पृष्ठवंश की ओर रहता है। इसपर अंसोन्नमनी[8] पेशी के कुछ सूत्र लगते हैं।

अधः कोटि अन्तः कोटि से अधिक किन्तु बहिः कोटि से कम मोटा और दृढ़ है। आगे की ओर यह चिपटा और खुरदरा है जिस पर अंसाधरिका बृहती और कटिपार्श्वच्छदा के कुछ सूत्र लगते हैं।

धाराएँ—अस्थि में कोटि की भाँति तीन धाराएँ हैं—ऊर्ध्वधारा, वंशानुगा धारा और कक्षीय धारा।

ऊर्ध्व धारा—अन्तः कोटि से बहिः कोटि तक जो पतली कोमल धारा है उसको ऊर्ध्व धारा कहा जाता है। इसमें अंसतुण्ड के मूल के समीप एक छोटा सा गढ़ा है।

जीवित अवस्था में इस गढ़े के ऊपर तुण्डमूलक[9] स्नायु लगी रहती है जिसके द्वारा वह एक पूर्ण छिद्र बन जाता है। इस छिद्र में होकर अंसारोहिणी नाड़ी[10] जाती है। इस गढ़े को अंसशिरःकोटर[11] के नाम से पुकारा जाता है। इस कोटर के समीप ही धारा पर अंसकशिका पेशी लगी हुई है।

कक्षानुगा धारा[12] कक्ष की ओर रहती है और बहिः कोटि से अधः कोटि तक जाती है। अन्य दोनों धाराओं से यह अधिक मोटी और दृढ़ है। ऊपर की ओर अंसपीठ के नीचे, जहाँ से यह धारा आरंभ होती है, एक पिण्डक है जिस पर से त्रि-शिरस्का बाह्वी[13] के दीर्घ शिर का उदय होता

---

१. Glenoid cavity. २. Teres minor. ३. Teres Major. ४. Scapular circumflex Vessels ५. Latissimns Dorsii. ६. Biceps Brachii. ७. Supraglenoid Tubercle. ८. Levator Scapulae. ९. Superior Transverse Scapular Lig. १०. Supra Scapular Nerve. ११. Scapular Notch. १२. Axillary Border. १३. Triceps Brachii.

है। इस पिण्डक को पीठाधर पिण्डक[1] कहते हैं। इस स्थान से नीचे के पतले नोकीले भाग के ऊपर तक अंसाधरिका लम्बी और नीचे अंसाधरिका बृहती पेशी पीछे की ओर, और अंसान्तरिका के कुछ सूत्र आगे की ओर लगे रहते हैं।

वंशानुगा धारा—यह धारा पृष्ठवंश की ओर रहती है। यह दूसरी धाराओं की अपेक्षा अधिक लम्बी है और अन्तः कोटि से अधः कोटि तक चली जाती है। इस धारा में पूर्व और पश्चिम दो ओष्ठ हैं, जिनके बीच में कुछ अन्तर है। पश्चिम ओष्ठ प्राचीरक के द्वारा दो भागों में विभक्त

चित्र नं० ६६—अंसफलक का पश्चिमपृष्ठ

1. Infraglenoiderosity.

है। पूर्व ओष्ठ पर अस्थि अग्रिमा पेशी लगती है। दोनों ओष्ठों के बीच में प्राचीरक के त्रिकोणीय प्रारम्भिक स्थान से ऊपर अंसोन्नमनी पेशी, त्रिकोणीय स्थान के सामने के भाग में अंसापकर्षणी लव्वी[1] और उस स्थान से नीचे अंसापकर्षणी बृहती[2] पेशी लगी हुई हैं। यह पेशी एक सौत्रिक चाप के द्वारा उदय होती है जिसका ऊपर का सिरा चिकने त्रिकोणाकार स्थान के नीचे के भाग पर और निचला सिरा अधः कोटि पर लगता है।

अंस प्राचीरक—यह त्रिकोणाकार प्रवर्धन अस्थि के पश्चिम पृष्ठ से वंशानुगा धारा के उस भाग के सामने से, जहाँ अंसापकर्षणी लव्वी पेशी लगती है, प्रारम्भ होकर बाहर को स्कंध की ओर जाता है। इसका प्रारम्भिक भाग त्रिकोणाकार और चिकना होता है। यह भाग पृष्ठच्छदा पेशी के सूत्रों से ढका रहता है। यह प्रवर्धन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है त्यों-त्यों अधिक ऊँचा होता जाता है और अन्त में अंसकूट के साथ मिल जाता है। सामने की ओर यह अंसफलक से मिला रहता है। समस्त प्राचीरक आकार में त्रिकोण के समान है जिसका शिखर वंशानुगा धारा की ओर और आधार अंसपीठ की ओर होता है। यह प्राचीरक चिपटा है। इसमें दो पृष्ठ और तीन धाराएँ हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ—यह ऊर्ध्व प्राचीरक खात की ओर रहता है और खात बनाने में भाग लेता है यह पृष्ठ अंसपृष्ठिका उत्तरा से ढका रहता है।

अधःपृष्ठ नीचे की ओर अधः प्राचीरक खात का एक भाग बनाता है और अंसपृष्ठिका अधरा से आच्छादित है।

तीन धाराओं के नाम पूर्व, पश्चिम और पार्श्व धारा हैं। पूर्वधारा के द्वारा प्राचीरक अंसफलक के साथ मिला रहता है। **पश्चिमधारा** पीछे की ओर रहती है और अँगुलियों से चर्म के नीचे प्रतीत की जा सकती है। यह धारा चौड़ी है और इसमें दो ओष्ठ हैं। ऊपर की ओर का ओष्ठ पृष्ठच्छदा (निवेश) और नीचे का ओष्ठ अंसाच्छादनी (उदय) पेशियों द्वारा ढका रहता है। इन दोनों ओष्ठों के बीच का स्थान केवल चर्मगत है। **पार्श्वधारा** अंसपीठ की ओर रहती है। यह मोटी, दृढ़ और कुछ नतोदर है और अंसकूट के अधःपृष्ठ से मिली रहती है। इस धारा और अस्थि की ग्रीवा के बीच के स्थान को, जो एक कोटर के आकार का है, **अंसीय बृहत्कोटर**[3] कहते हैं।

अंसकूट[4]—स्कन्ध को टटोलने से यह प्रवर्धन सबसे ऊपर प्रतीत होता है। आकार में यह एक ऐसे चतुष्कोण के समान दीखता है जिसकी दो भुजाएँ अधिक लम्बी हों। किन्तु इसमें केवल दो ही धाराएँ मानी जाती हैं। एक अन्तः और दूसरी पार्श्वधारा। **अन्तर्धारा** छोटी और नतोदर है। इस पर पृष्ठच्छदा पेशी के कुछ सूत्र लगते हैं। इसमें एक छोटा गोल चिकना स्थान है जहाँ पर अन्तक अंसकूट के साथ मिलती है। **पार्श्वधारा** मोटी है और उसमें तीन या चार स्थानों पर छोटे-छोटे पिण्डक हैं जिनसे अंसाच्छादनी के कुछ सूत्रों का उदय होता है। इन दोनों धाराओं के मिलने के स्थान को शिखर कहा जाता है; जो एक नुकीला स्थान है। इस पर तुण्डकूटीय[5] बन्धन लगता है। अंसकूट का ऊर्ध्वपृष्ठ ऊपर, पीछे और पार्श्व की ओर मुड़ा हुआ है। यह कुछ उन्नतोदर और खुरदुरा है और उस पर अंसाच्छादनी के कुछ सूत्र लगते हैं। अधःपृष्ठ चिकना और कुछ नतोदर है।

अंसतुण्ड[6]—यह छोटा, दृढ़, मुड़ा हुआ प्रवर्धन अंसफलक की ग्रीवा के ऊपर की ओर से निकलता है। प्रथम यह ऊपर और भीतर की ओर को मुड़ता है। किन्तु आगे चलकर इसका आकार सिकुड़ जाता है, और यह प्रथम दिशा को छोड़कर पार्श्व और आगे की ओर को मुड़ जाता

१-२. Rhomboidens minor and major. ३. Great Scapular Notch
४. Acromian Process. ५. Coracoacromial Ligment. ६. Coracoid Process.

है। इस प्रकार इसके दो भाग होते हैं; एक नीचे का ऊर्ध्वगामी भाग, जो आगे की ओर कुछ चिकना और नतोदर है; और दूसरा ऊपर का सम, चपटा, उन्नतोदर भाग। यहाँ उरश्छदा लघ्वी¹ पेशी लगती है। इस प्रवर्धन की अन्तर्धारा पर भी उरश्छदा लघ्वी के सूत्र लगते हैं और बहिः या पार्श्वधारा पर तुण्डकूटीय बन्धन लगता है। जहाँ पर ये दोनों धाराएँ मिलती हैं, वहाँ पर प्रवर्धन का शिखर है जहाँ से काकोष्ठिका² और द्विशिरस्का बाह्वी का लघुशिर संयुक्त कण्डरा द्वारा उदय होते हैं। यहीं पर तुण्डाक्षक संयोजनी कला³ लगी हुई है।

इस प्रवर्धन के मूल के भीतर की ओर एक स्थान पर त्रिकोणीय बन्धन⁴ लगता है। यहाँ से आगे और बाहर की ओर को जाती हुई प्रवर्धन के सम भाग के ऊपरी पृष्ठ पर एक हलकी सी तीरणिका है जिस पर चतुष्कोणीय बन्धन लगा हुआ है।

अस्थि-विकास—अंसफलक का विकास सात केन्द्रों से होता है; एक से अस्थि का गात्र, दो से अंसतुण्ड, दो से अंसकूट, एक से वंशानुगा धारा और एक से अधःकोटि विकसित होते हैं। कभी-कभी इससे भी अधिक विकास-केन्द्र उदय होते हैं।

प्रथम विकास-केन्द्र भ्रूणावस्था के दूसरे मास में अस्थि के गात्र में अंसपीठ के पास उदय होता है। जन्म के समय तक गात्र का बहुत कुछ भाग अस्थि बन चुकता है। जन्म के पश्चात् तीसरे मास के लगभग इसी केन्द्र से प्राचीरक का विकास आरम्भ होता है। जन्म के पश्चात् १५वें से १८वें मास में अंसतुण्ड में विकास होना आरम्भ होता है और १५वें वर्ष में यह प्रवर्धन अस्थि के साथ जुड़ता है। दूसरा केन्द्र १४ से २० वर्ष की आयु में प्रवर्धन के मूल के पास उदय होता है। अन्य सब केन्द्र भी १४वें से २०वें वर्ष तक प्रकट हो जाते हैं। उनका क्रम प्रायः यह होता है—प्रथम, अंसतुण्ड का दूसरा केन्द्र; दूसरे, अंसकूट का मूल; तीसरे, अधःकोटि; चौथे, अंसकूट का दूसरा केन्द्र जो उसके सिरे पर उदय होता है; पाँचवें, वंशानुगा धारा। २५वें वर्ष तक यह सब भाग आपस में जुड़ जाते हैं और अस्थि पूर्ण हो जाती है।

चित्र नं० ६७—अंसफलक का विकास

सम्मेलन—इस अस्थि का सम्मेलन अक्षक और प्रगण्डास्थि से होता है।

क्रियात्मक—इस अस्थि का भग्न बहुत कम होता है। अन्य भागों की अपेक्षा तीव्र आघात के कारण अंसपीठ सहित अंसतुण्ड अस्थि से बहुधा पृथक् हो जाता है।

भग्न-रेखा अंसतुण्ड के मूल से अंसपीठ के पीछे होती हुई अंसकोटर तक चली जाती है। यह दशा सन्धिविश्लेष के बहुत कुछ समान होती है। किन्तु अंसतुण्ड की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। अंसकूट का भी बहुधा भग्न होता है।

---

१. Pectoralis minor. २. Coracobrachialis. ३. Coraco-clavicular fascia. ४. Conoid Ligment.

प्रगण्डास्थि[1]
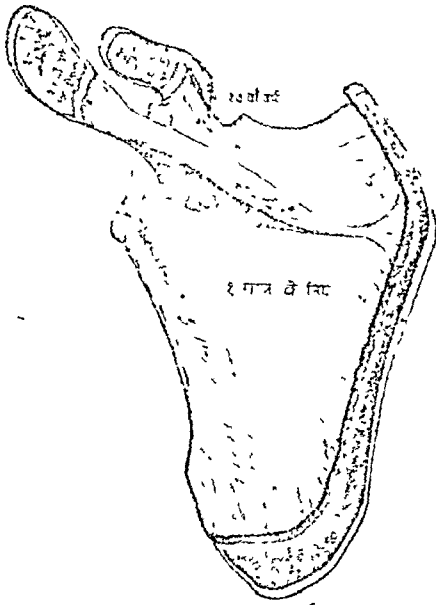
यह दीर्घ अस्थि बाहु में रहती है। इसकी लम्बाई मनुष्य की लम्बाई के लगभग ⅙ भाग के बराबर होती है। ऊपर की ओर यह अस्थि अंसफलक के अंसपीठ से और नीचे की ओर दोनों प्रकोष्ठास्थियों से मिली रहती है। इस अस्थि के दो सिरे होते हैं। ऊपर का सिरा अंसफलक के साथ मिलकर स्कन्ध-सन्धि बनाता है। नीचे के सिरे और प्रकोष्ठास्थियों के ऊपरी सिरों के मिलने से कूर्पर सन्धि बनती है। इन दोनों सिरों के बीच के भाग को गात्र कहते हैं।

ऊर्ध्वप्रान्त—अस्थि के शिर और ग्रीवा दोनों मिलकर ऊर्ध्व प्रान्त बनाते हैं। शिर के कुछ नीचे, बाहर और सामने की ओर, दो पिण्डक हैं जिन पर कई पेशियाँ लगती हैं। इन पिण्डकों को महापिण्डक[2] और लघुपिण्डक[3] कहते हैं।

शिर—यह आकार में गोलार्द्ध के समान है और ऊपर, भीतर और कुछ पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। स्वाभाविक अवस्था में यह भाग अंसपीठ के साथ मिलकर स्कन्ध-सन्धि बनाता है। बाहर की ओर इसका किनारा कुछ भीतर की ओर दब जाता है। यह और इससे नीचे का स्थान ग्रीवा कहलाता है। ऊपर की ओर इसमें स्कन्ध-सन्धि का कोष लगा रहता है। इसमें अनेक छिद्र रहते हैं जिनके द्वारा पोषक धमनियों की शाखाएँ अस्थि के भीतर प्रवेश करती हैं।

चित्र नं० ६८—प्रगण्डास्थि का शिर तथा पिण्डक
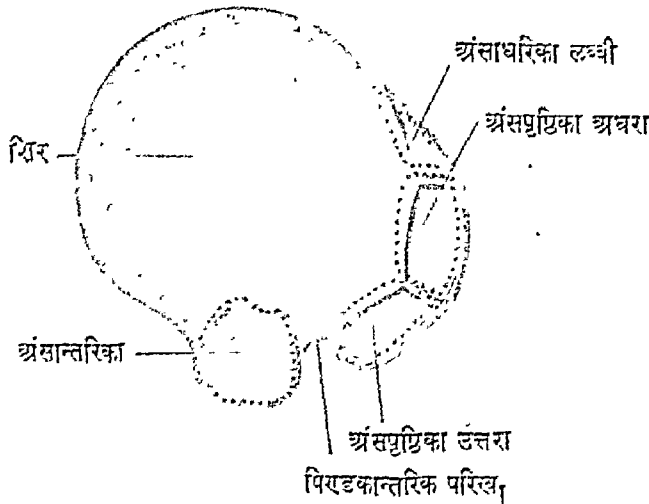
महापिण्डक—शिर और लघुपिण्डक के पार्श्व में महापिण्डक स्थित है। पिण्डकके ऊपर अथवा उसके ऊर्ध्वपृष्ठ पर तीन चिह्न हैं। सबसे ऊपर के चिह्न में अंसपृष्ठिका उत्तरा का निवेश होता है; बीच के चिह्न में अंसपृष्ठिका अवरा कण्डरा के द्वारा निवेश करती है; सबसे नीचे के चिह्न और उससे नीचे अस्थि के गात्र पर लगभग एक इंच तक अंसाधरिका लम्बी निवेश करती है। पिण्ड का बाहरी पृष्ठ उन्नतोदर है।

लघुपिण्डक—स्कन्ध में आगे की ओर अंसतुण्ड के तनिक बाहर लघुपिण्डक को प्रतीत किया जा सकता है। यद्यपि यह महापिण्डक से छोटा है किन्तु इसका उभार अधिक है। यह आगे और भीतर की ओर झुका हुआ है। इस पर आगे की ओर एक चिह्न है जिस पर अंसान्तरिका पेशी का निवेश होता है।

---

१. Humerus. २-३. Greater and Lesser Tubercles.

इन दोनों पिण्डकों के बीच में एक परिखा है, जो पिण्डकों को एक दूसरे से पृथक् करती है। यह परिखा नीचे को ओर दो इंच के लगभग अस्थि के गात्र पर रहती है। द्वि-शिरस्का के दीर्घ शिर की कण्डरा स्कन्ध-सन्धि से निकलकर पिण्डकों के बीच इसी परिखा के द्वारा नीचे को जाती है। परिखा के निचले भाग में कटिपार्श्वच्छदा की कण्डरा का निवेश होता है। परिखा के दोनों ओष्ठ अस्थि के गात्र पर उसके पूर्व और अन्तर्धारा के रूप में परिणत हो जाते हैं।

अस्थि का गात्र ऊर्ध्व प्रान्त के नीचे से आरम्भ होता है। यह स्थान शल्यग्रीवा[1] कहलाता है, क्योंकि अस्थि के दुर्बल होने के कारण अस्थि का इसी स्थान पर अधिक भग्न होता है।

अंसपृष्ठिका उत्तरा
लघुपिण्डक पर अंसान्तरिका
महापिण्डक
पिंडकान्तरिक परिखा का
बहिरोष्ठ तथा तल
उरश्छदा बृहती
अंसच्छदा-कूट पर अंसाच्छादनी
का निवेश
बाह्य अर्बुदोपरि तीरणिका
प्रगण्डप्रकोष्ठिका
मणिबन्ध-प्रसारिणी दीर्घा बहिःस्था
बाह्य उपार्बुद से प्रसारक पेशियों
की कण्डरा का उदय
कन्दली
शिर
सन्धि की स्नैहिक कला
सन्धिकोष
कटिपार्श्वच्छदा
अंसाधरिका बृहती
त्रि-शिरस्का का अन्तःशिर
काकोष्ठिका
कूर्पर-द्वारिका
आन्तर अर्बुदोपरि तीरणिका
चञ्चुखात
कर-विवर्त्तनी दीर्घा
संकोचक पेशियों की सामान्य
कण्डरा का उदय
सन्धिकोष
डमरुक
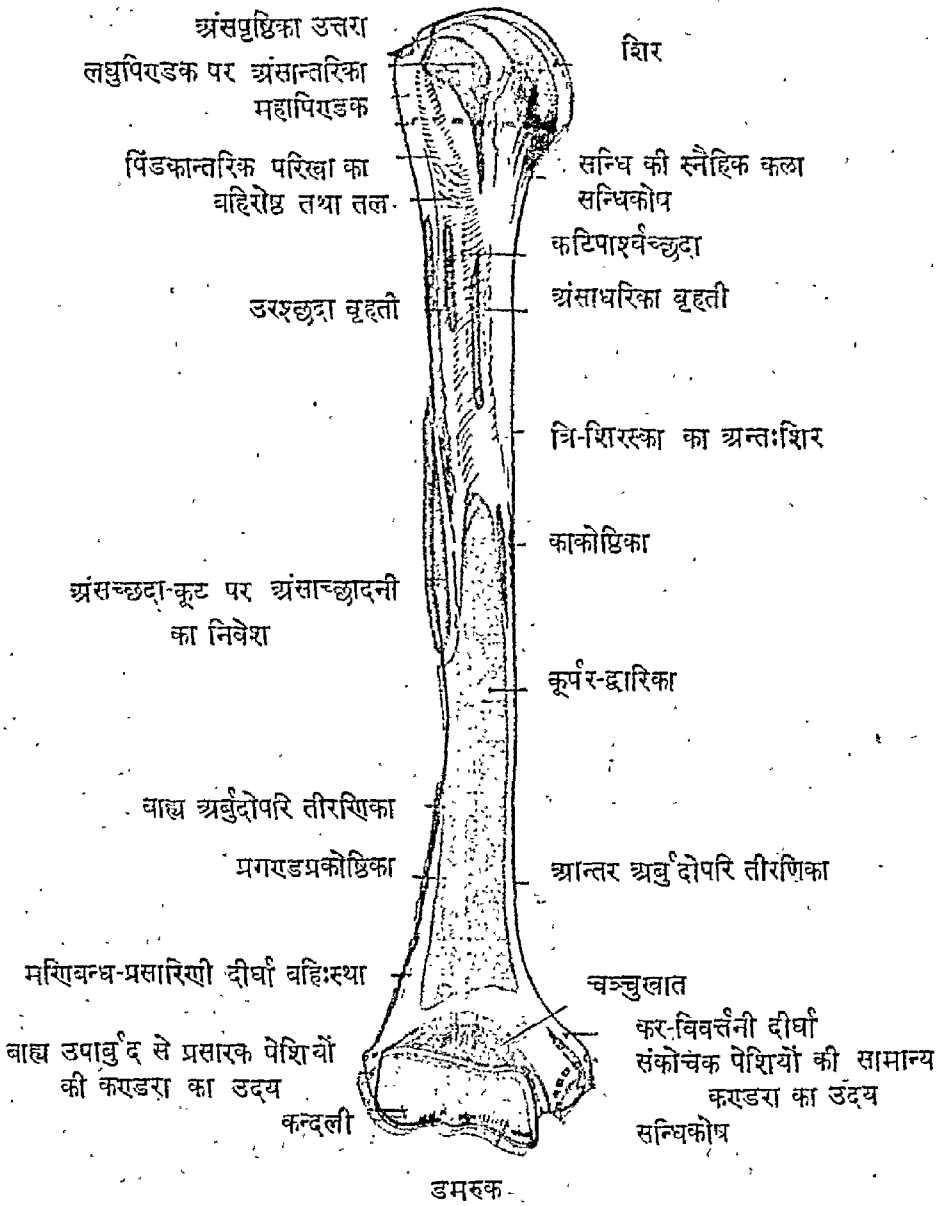
चित्र नं० ६६—प्रगण्डास्थि का पूर्वपार्श्व तथा पूर्वान्तःपृष्ठ

---

१. Surgical Neck.

यह ऊर्ध्वप्रान्त के नीचे स्थित गात्र के लगभग ½ इंच का नाम है। इसमें किसी प्रकार की रचनात्मक विशेषता नहीं पाई जाती।

अस्थि का गात्र ऊपर के भाग में वर्त्तुलाकार किन्तु नीचे की ओर चपटा अथवा त्रिपार्श्व के समान होता है। गात्र में तीन धाराएँ और तीन पृष्ठ होते हैं। धाराओं को पूर्व, अन्तः और पार्श्व धाराएँ, और पृष्ठों को पूर्वपार्श्व, पूर्वान्तः और पश्चिम पृष्ठ के नाम से पुकारा जाता है।

पूर्वधारा महापिण्डक के सामने से आरम्भ होकर अस्थि के सामने की ओर रहती है और नीचे चञ्चुखात[1] तक जाती है। इस प्रकार इसके ऊपरी भाग से पिण्डकान्तरिक परिखा का बाह्य ओष्ठ बनता है और इसके द्वारा पूर्वपार्श्वपृष्ठ और पूर्वान्तःपृष्ठ पृथक् होते हैं। इसके ऊपरी भाग में उरश्छदा बृहती की कण्डरा निवेश करती है और नीचे के भाग से कूर्परद्वारिका पेशी उदय होती है।

अन्तर्धारा लघुपिण्डक से आरम्भ होकर आन्तरार्बुद तक जाती है। यह पूर्वधारा की भाँति स्पष्ट नहीं है। इसके ऊपरी भागसे पिण्डकान्तरिक परिखा का अन्तःओष्ठ बनता है जिसके ऊपरी भाग पर अंसाधरिका बृहती की कण्डरा निवेश करती है। धारा के बीच के भाग में एक चिह्न है जिसपर काकोष्ठिका पेशी निवेश करती है। इसके नीचे अस्थि में एक छिद्र है जिसके द्वारा पोषक धमनी भीतर प्रवेश करती है। नीचे के भाग में यह धारा अत्यन्त स्पष्ट है और एक तीरणिका का रूप धारण कर लेती है जो आन्तरार्बुदोपरि तीरणिका[3] कहलाती है। यह तीरणिका आन्तरार्बुद पर जाकर समाप्त होती है। इसके अग्र ओष्ठ पर से कूर्परद्वारिका का उदय होता है। पश्चात् ओष्ठ से त्रिशिरस्का के अन्तःशिर का उदय होता है और दोनों ओष्ठों के बीचके स्थान पर पेशियों की विभाजक कला लगती है। यह धारा पूर्वान्तःपृष्ठ को पश्चिम पृष्ठ से विभाजित करती है।

चित्र नं० ७० — प्रगण्डास्थिका पश्चात्पृष्ठ

वहिः या पार्श्वधारा महापिण्डक के पीछे से आरम्भ होकर बाह्यार्बुद तक जाती है और पश्चिम पृष्ठ को पूर्वपार्श्वपृष्ठ से विभाजित करती है। इसका ऊपरी भाग गोल होता है, इस कारण धारा स्पष्ट नहीं होती। अस्थि के इस भाग में अंसाधरिका लघ्वी के कुछ भाग का निवेश होता है। इसके नीचे ही त्रि-शिरस्का का बहिःशिर उदय होता है। इस धारा के बीच में एक टेढ़ी परिखा दिखाई देती है जो अस्थि की एक धारा से आरम्भ होकर सारे पश्चिम पृष्ठ को पार करती हुई दूसरी धारा की ओर चली जाती है। इस परिखामें बहिर्बाहुका नाड़ी धमनी के साथ रहती है।

इस धारा का अन्तिम भाग एक तीरणिका के स्वरूप में बाह्यार्बुद तक चला जाता है।
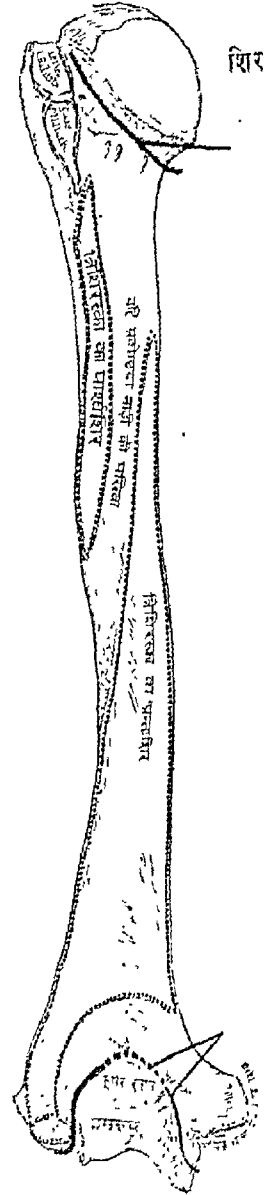
---

१. Coronoid fossa. २. Brachialis. ३. Medial Supra-condylar ridge.

धारा के अग्रिम ओष्ठ पर प्रगंड-प्रकोष्ठिका[1] पेशी ऊपर की ओर, और मणिबन्ध-प्रसारिणी बहिःस्था[2] दीर्घा उससे तनिक नीचे की ओर से उदय होती हैं। पश्चात् ओष्ठ से त्रि-शिरस्का के अन्तःशिर का उदय होता है। दोनों ओष्ठों के बीच के स्थान में पेशियों की विभाजक कला लगी रहती है।

पूर्व पार्श्वपृष्ठ पूर्व और पार्श्व धारा के बीच के स्थान को कहते हैं। यह महापिण्डक के बाहरी पृष्ठ पर से आरम्भ होता है। इस पृष्ठ के बीच में एक उभरा हुआ खुरदरा स्थान है जो **अंसच्छदाकूट**[3] कहलाता है। इस स्थान पर अंसाच्छादनी का निवेश होता है। उससे ऊपर का भाग, जो चिकना और गोल है, अंसाच्छादनी के सूत्रों से ढका हुआ है। इसके नीचे वही परिखा स्थित है जिसमें होकर बहिर्बाहुका[4] नाड़ी और गम्भीरप्रगण्डिका[5] धमनी जाती हैं। नीचे के भाग में वह पृष्ठ सामने और बाहर की ओर मुड़ा हुआ है और इस पर से कूर्परद्वारिका का उदय होता है।

पूर्वान्तःपृष्ठ पूर्व ओर अन्तःधारा के बीच का स्थान है। इसका ऊपरी भाग संकुचित है। इसपर अंसाधरिका बृहती पेशी का निवेश होता है। इसका बीच का भाग खुरदरा है जिसपर काकोष्ठिका पेशी की निवेश-कण्डरा लगती है। इसके नीचे के भाग से कूर्पर-द्वारिका पेशी का उदय होता है।

पश्चात् पृष्ठ अन्तः और पार्श्वधारा के बीच का स्थान है। यह सारा पृष्ठ त्रि-शिरस्का के बहिः और अन्तः शिर से ढका हुआ है। नाड़ी की परिखा के ऊपर से बहिःशिर और नीचे से अन्तःशिर उदय होते हैं। यह पृष्ठ ऊपरी भाग में भीतर की ओर मुड़ा हुआ है किन्तु निचला भाग कुछ पीछे और बाहर की ओर रहता है।

नीचे का सिरा या अधःप्रान्त—यह प्रान्त चिपटा हो गया है और इसका नीचे का भाग भी थोड़ा आगे की ओर मुड़ गया है। इस प्रान्त में बाहर और भीतर की ओर दो अर्बुद हैं जिनको बाह्यार्बुद[6] और आन्तरार्बुद[7] कहते हैं। नीचे की ओर इसका चौड़ा भाग, जहाँपर प्रकोष्ठास्थियाँ मिलती हैं, एक हलकी-सी तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त है जिन्हें डमरुक[8] और कन्दली[9] कहते हैं।

डमरुक कन्दली की अपेक्षा बड़ा है और उसके भीतर की ओर स्थित है। कन्दली बाहर की ओर रहती है। यह समस्त स्थान शेष अस्थि की अपेक्षा नीचे की ओर को अधिक निकला हुआ है। इसका कन्दली भाग सन्धि के भीतर बहिःप्रकोष्ठास्थि के शिर के ऊपर नतोदर खात में रहता है। कन्दली के ऊपर की ओर एक हलका-सा खात है जिसको बहिःप्रकोष्ठास्थि खात[10] कहते हैं। जब हम कूर्पर को मोड़ते हैं तो बहिःप्रकोष्ठास्थि के शिर के चारों ओर का उठा हुआ भाग ऊपर की ओर इस खात में आ जाता है।

भीतर का डमरुक भाग मध्यस्थ से पार्श्वधारा तक नतोदर है, किन्तु सामने ऊपर से नीचे और आगे से पीछे की ओर को उन्नतोदर है। इस कारण इसके बीच में एक खात बन जाता है जो अन्तःप्रकोष्ठास्थि के कूर्परकूट[11] के भीतर रहता है। अथवा यों कहना चाहिए कि कूटप्रवर्धन के भीतर जो बड़ा कोटर है उसमें डमरुक रहता है। डमरुक की अन्तः और बहिः धारा, जो कुछ ऊँची उठी हुई होती हैं, कूर्परकूट को बाहर या भीतर की ओर नहीं फिसलने देतीं। अन्तर्धारा बहिर्धारा की अपेक्षा अधिक ऊँची होती है। बहिधारा कूटप्रवर्धन को बहिःप्रकोष्ठास्थि के सिर से पृथक् रखती है। डमरुक

---

१. Brahio-radialis. २. Extensor carpii radialis longus. ३. Deltoid Tuberosity ४. Radial Nerve. ५. Arteria profunda Brachii. ६. External. and ७. Internal condyle. ८. Trochlea, ९. Capitulum. १०. Radial Fossa. ११. Olecranon Process,

के आगे की ओर उससे कुछ ऊपर एक खात है जिसको चंचुखात[1] कहते हैं। कूर्पर के अन्तःप्रकोष्ठास्थि का चंचुप्रवर्धन[2] इस खात में रहता है। इस प्रकार कुहनी के पूर्णतया मुड़ने पर अन्तःप्रकोष्ठास्थि का चंचुप्रवर्धन प्रगण्डास्थि के चंचुखात में और बहिःप्रकोष्ठास्थि के चारों ओर की नीरणिका का कुछ भाग बहिःप्रकोष्ठास्थि खात में आ जाते हैं। डमरुक के पीछे की ओर उसके कुछ ऊपर, अर्थात् अस्थि के अधःप्रान्त के पश्चात् पृष्ठ पर एक त्रिकोणाकार और गहरा खात है जिसको कूर्परखात[3] कहते हैं। बाहु के प्रसारण पर अन्तःप्रकोष्ठास्थि के कूर्परकूट का अग्रभाग कूर्परखात में आ जाता है। इसके पश्चात् अग्रबाहु को अधिक पीछे की ओर नहीं मोड़ा जा सकता।

चित्र नं० ७१—प्रगण्डिका का विकास

इस प्रकार डमरुक के आगे की ओर चञ्चुखात और पीछे की ओर कूर्परखात रहते हैं। इन दोनों के बीच में अस्थि का एक पतला परत रहता है जिसमें कभी-कभी एक छिद्र होता है। इन खातों के ओष्ठों पर सन्धि के बन्धन लगे रहते हैं।

आन्तरार्बुद—यह अर्बुद बाह्यार्बुद से कुछ ऊँचा, स्पष्ट और पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। इस पर से करविवर्तिनी दीर्घा और अग्रबाहु की संकोचक पेशियों की संयुक्त कण्डरा का उदय होता है। इस पर एक बन्धन भी लगता है। इस अर्बुद के पीछे की ओर एक हल्की सी परिखा है जिसमें अन्तर्बाहुका नाड़ी रहती है।

बाह्यार्बुद आन्तरार्बुद से बहुत छोटा है। वास्तव में यह एक पिण्डक के समान है जो कुछ आगे की ओर को झुका हुआ है। इस स्थान पर से करोत्तानसी और प्रसारक पेशियों की संयुक्त कण्डरा का उदय होता है। इसके अतिरिक्त सन्धि के कुछ बन्धन भी लगते हैं।

अस्थि-विकास—इस अस्थि का विकास आठ केन्द्रों से होता है। शिर, महापिण्डक, लघुपिण्डक, अस्थि का गात्र, आन्तरार्बुद, बाह्यार्बुद, डमरुक और कन्दली प्रत्येक के लिए एक केन्द्र उदय होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों में निम्नलिखित समयानुसार केन्द्र उदय होते हैं—

अस्थि का गात्र—भ्रूणावस्था का ८वाँ सप्ताह, अस्थि का शिर—प्रथम वर्ष, कन्दली—द्वितीय वर्ष, महापिण्डक—तृतीय वर्ष, लघुपिण्डक—पञ्चम वर्ष, आन्तरार्बुद—पञ्चम वर्ष, डमरुक—द्वादश वर्ष और बाह्यार्बुद—त्रयोदश और चतुर्दश वर्ष।

जन्म के समय प्रायः समस्त गात्र विकसित हो चुकता है। केवल ऊर्ध्व और अधःप्रान्त उपास्थि के बने रह जाते हैं। छठे वर्ष तक ऊर्ध्वप्रान्त के सब भिन्न-भिन्न भाग आपस में मिल जाते हैं और ऊर्ध्वप्रान्त पूर्ण हो जाता है किन्तु वह गात्र के साथ २०वें वर्ष में जुड़ता है। आन्तरार्बुद के अतिरिक्त अधःप्रान्त के भिन्न-भिन्न भाग १६वें या १७वें वर्ष तक आपस में मिलकर अधःप्रान्त को पूर्ण कर देते हैं जो गात्र के निचले सिरे से जुड़ जाता है। आन्तरार्बुद १८वें वर्ष में जुड़ता है।

सम्मेलन—इस अस्थि का स्कन्धास्थि, अन्तः और बहिःप्रकोष्ठास्थि इन तीन अस्थियों से सम्मेलन होता है।

---

1. Coronoid Fossa. 2. Coronoid Process. 3. Olecranon Fossa.

क्रियात्मक—इस अस्थि के भग्न अन्य अस्थियों की अपेक्षा अधिक होते हैं। अंसफलकच्छादनी के निवेश के नीचे अस्थि अधिक टूटती है। गात्र के ऊपरी भाग की अपेक्षा नीचे के भाग में अधिक भग्न होते हैं। शल्यग्रीवा का भी भग्न हो जाता है। इसके लक्षणों में सन्धि-विश्लेष की बहुत समानता होती है। इस अस्थि के भग्न में बहिर्बाहुका नाड़ी के क्षत हो जाने की सम्भावना रहती है तथा वह अस्थियों के जुड़ने के समय सन्धानवस्तु में सम्मिलित होकर उपद्रव उत्पन्न कर सकती है।

इस अस्थि में अर्बुद भी उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रकोष्ठास्थियाँ

अग्रबाहु में दो अस्थियाँ होती हैं। जो बाहर की ओर रहती है वह बहिःप्रकोष्ठास्थि[1] और भीतर की ओर रहनेवाली अन्तःप्रकोष्ठास्थि[2] कहलाती है। ये दोनों दीर्घ अस्थियाँ हैं और प्रत्येक दीर्घ अस्थि के समान इनमें ऊर्ध्व और अधः दो प्रान्त और उनके बीच में गात्र होता है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि

यदि बाहु को फैलाकर हथेली को ऊपर की ओर मोड़ा जाय तो बहिःप्रकोष्ठास्थि बाहर की ओर और अन्तःप्रकोष्ठास्थि भीतर की ओर स्थित होंगी। इस प्रकार स्वाभाविकतया यह अस्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि के बाहर की ओर स्थित है। किन्तु हाथ को भीतर की ओर घुमाने पर इन अस्थियों की पारस्परिक स्थिति में भेद उत्पन्न हो जाता है। ऊपर के भाग में दोनों पूर्ववत् रहती हैं किन्तु नीचे के भाग में बहिःप्रकोष्ठास्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि के ऊपर को होती हुई भीतर की ओर आ जाती है।

बहिःप्रकोष्ठास्थि अन्तःप्रकोष्ठास्थि से लम्बाई में छोटी है। इसका ऊपरी भाग, जो छोटा है, कूर्परसन्धि के भीतर रहता है। किन्तु नीचे का चपटा और बड़ा भाग मणिबन्ध सन्धि बनाने में भाग लेता है। यह अस्थि लम्बाई में भीतर की ओर को कुछ मुड़ी हुई है।

ऊर्ध्वप्रान्त में ऊपर की ओर का चौड़ा भाग शिर या मुण्ड कहलाता है। उसके नीचे का संकुचित भाग ग्रीवा कहा जाता है। शिर के ऊपर एक चिकना अल्प खात है जो सन्धि में कन्दली पर लगा रहता है। इसका शेष भाग **मण्डलाकर**[3] बन्धन से घिरा हुआ है।

ग्रीवा—शिर से नीचे के संकुचित भाग को ग्रीवा के नाम से पुकारा जाता है। ग्रीवा से नीचे भीतर की ओर एक पिण्डक है, जिसके पीछे के अर्ध भाग पर द्वि-शिरस्का पेशी की कण्डरा निवेश करती है। पिण्डक के शेष भाग पर कण्डरा और अस्थि के बीच में वसा की एक कवलिका रहती है।

गात्र—गात्र का ऊपरी भाग गोल है किन्तु नीचे का भाग त्रिपार्श्व के समान है। इसमें तीन धाराएँ और तीन पृष्ठ हैं।

पूर्वधारा—यह ग्रीवा के नीचे के पिण्डक पर से आरम्भ होती है और अधःप्रान्त के बहिर्मणिक[4] के ऊपर जाकर समाप्त होती है। यह धारा पूर्वपृष्ठ को पार्श्वपृष्ठ से विभक्त करती है। उसका ऊपरी भाग टेढ़ा किन्तु स्पष्ट है। इस कारण इसको वक्र रेखा कहा जाता है। नीचे का भाग चौड़ा और गोल है।

---

१. Radius. २. Ulna. ३. Anular Ligment. ४. Styloid process of Radius.

ऊपर के मध्य भाग से मध्यपर्विका-संकोचनी[1] और अंगुष्ठसंकोचनी दीर्घा[2] का उदय होता है। धारा
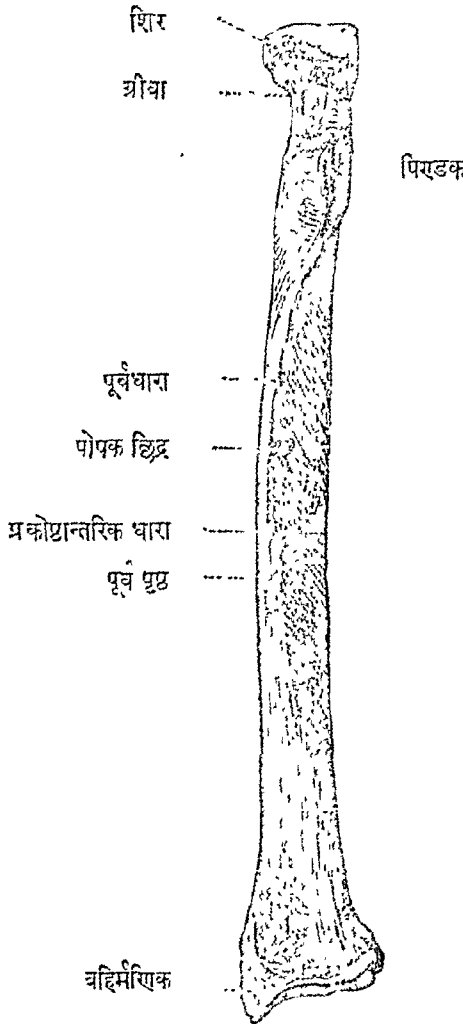
चित्र नं० ७२—बहिःप्रकोष्ठास्थि का पूर्वपृष्ठ

के निचले भाग में करविवर्तनी चतुरस्रा[3] का एक भाग निवेश करता है। यहाँ पर पश्चात् मणिबन्धन[4] भी लगता है। इसके अन्त में एक पिण्डक है जिस पर प्रगण्ड प्रकोष्ठिका[5] पेशी की कण्डरा का निवेश होता है।

पश्चात्धारा ग्रीवा के पीछे की ओर से आरम्भ होती है और नीचे की ओर बहिर्मणिक के मूल के पीछे जाकर समाप्त होती है। इसका बीच का भाग स्पष्ट है किन्तु ऊपर या नीचे के भाग स्पष्ट नहीं हैं। यह पार्श्वपृष्ठ को पश्चात्पृष्ठ से विभक्त करती है।

अन्तर्धारा अथवा प्रकोष्ठान्तरिक धारा[6]—यह धारा ऊपर के पिण्डक के पीछे की ओर से आरम्भ होती है। इसका ऊपरी भाग बहुत स्पष्ट नहीं है किन्तु ज्यों ज्यों यह नीचे की ओर को उतरती

---

१. Flexor digitorum Sublimis. २. Flexor Pollicis Longus. ३. Pronator Quadratus. ४. Dorsal Carpal Lig. ५. Brachio-radialis. ६. Interosseous Crest.

है त्यों-त्यों अधिक स्पष्ट और नोकीली होती जाती है। अस्थि के नीचे के भाग में पहुँचकर यह दो भागों में विभक्त हो जाती है जो दो तीरणिकाओं के रूप में अस्थि के अन्त तक चले जाते हैं और पूर्व तथा पश्चात् ओष्ठ बनाते हैं। इन दोनों तीरणिकाओं के बीच के स्थान में करविवर्तनी चतुरस्रा के कुछ भाग का निवेश होता है। इस धारा पर प्रकोष्ठान्तराला कला[1] लगी रहती है।

पूर्वपृष्ठ ऊपरी भाग में कुछ नतोदर है। इस पृष्ठ से अंगुष्ठ-संकोचनी दीर्घा का उदय होता है। अस्थि के निचले चौथाई भाग में करविवर्तनी चतुरस्रा का निवेश होता है। उसके ऊपरी भाग में पोषक छिद्र स्थित है जिसके द्वारा पोषक धमनी अस्थि के भीतर प्रविष्ट होती है।

पश्चात्पृष्ठ—इसका ऊपरी भाग चिकना और करोत्तानी[2] से आच्छादित है। इसके मध्य भाग से अंगुष्ठ-प्रसारणी-दीर्घा[3] ऊपर से, और अंगुष्ठ-प्रसारणी[4]-लघ्वी नीचे से उदय होती है। नीचे का चौड़ा भाग कई पेशियों से आच्छादित है।

पार्श्वपृष्ठ—यह सारा पृष्ठ उन्नतोदर है। इसके ऊपरी भाग में करोत्तानी का निवेश होता है। इसके बीच में करविवर्तनी दीर्घा[5] निवेश करती है। नीचे का भाग अंगुष्ठ-प्रसारणी लघ्वी, अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा, मणिबन्ध-प्रसारणी दीर्घा[6] और लघ्वी[7] की कण्डराओं से ढका हुआ है।

कूर्पर कूट

अर्धचन्द्राकार खात

कन्दली से सम्मेलन करनेवाला बहिःप्रकोष्ठास्थि के शिर पर का स्थल

सन्धि-कोष के लगने का स्थान—
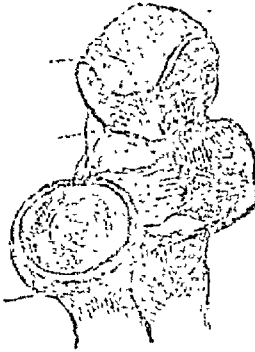
चित्र नं० ७३
प्रकोष्ठास्थियों के ऊर्ध्वप्रान्त

अधःप्रान्त—शेष अस्थि की अपेक्षा यह भाग अधिक चौड़ा और दृढ़ है। इस प्रान्त में पाँच पृष्ठ होते हैं, जिनमें से दो पृष्ठ मणिबन्ध की सन्धियों में भाग लेते हैं।

अधःपृष्ठ त्रिकोणाकार है, जिसका शिखर हथेली को फैलाने पर बाहर की ओर और आधार भीतर अथवा अन्तःप्रकोष्ठास्थि की ओर रहता है। एक अस्पष्ट तीरणिका के द्वारा यह पृष्ठ दो भागों में विभक्त है जिनमें से बाहर का भाग नौनिभ[8] और भीतर का भाग अर्धचन्द्र[9] नामक अस्थियों से मिला रहता है।
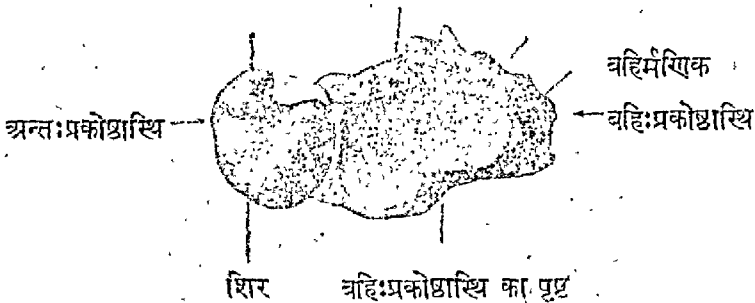
चित्र नं० ७४—प्रकोष्ठास्थियों के अधःप्रान्त का अधःपृष्ठ

१. Interosseous Membrane. २. Supinator. ३. Abductor Pollicis Longus. ४. Extensor Pollicis brevis. ५. Pronator Teres. ६—७. Extensor Carpii radialis Longus and Brevis. ८. Navicular. ९. Lunate.

अन्तःपृष्ठ पर अन्तःप्रकोष्ठास्थि का अधःप्रान्त लगता है। अधःपृष्ठ और अन्तःपृष्ठ को विभाजित करनेवाली एक तीरणिका होती है जो धारा के समान दिखाई देती है। शेष तीनों पृष्ठों को पूर्व, पश्चात् और पार्श्व पृष्ठ के नाम से पुकारा जाता है।

पार्श्वपृष्ठ से जो बाहर की ओर रहता है, एक प्रवर्धन निकलता है जो बहिर्मणिक कहलाता है। इस प्रवर्धन के मूल पर प्रगण्डप्रकोष्ठिका पेशी की कण्डरा लगती है और उसके शिखर पर एक बन्धन लगता है।

पूर्वपृष्ठ चौड़ा और कुछ नतोदर है। उसके नीचे की ओर एक उभरी हुई तीरणिका है जिसके नीचे ही मणिबन्ध की सन्धियाँ रहती हैं।
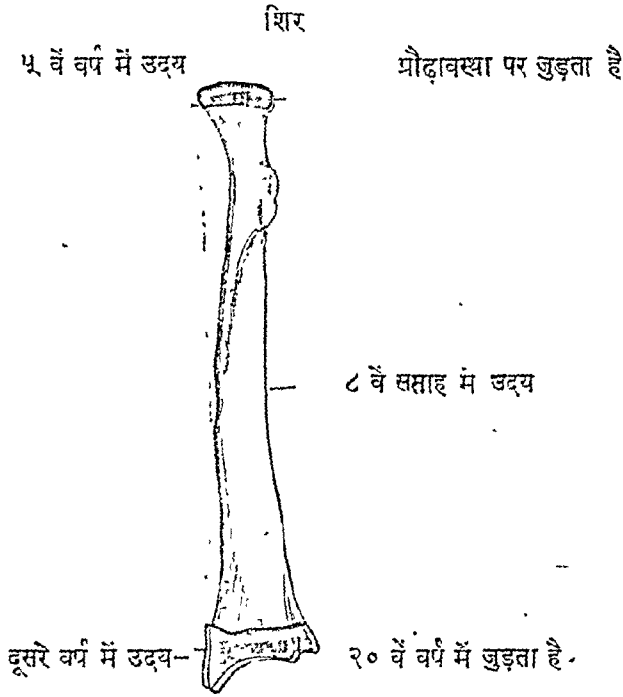
चित्र नं० ७५—बहिःप्रकोष्ठास्थि का विकास

पश्चात्पृष्ठ—यह पृष्ठ कुछ उन्नतोदर है। इसमें कई तीरणिकाएँ और परिखाएँ हैं जिनमें होकर कई प्रसारक पेशियों की कण्डराएँ कूर्चास्थियों और अंगुल्यस्थियों तक चली जाती हैं जहाँ उनका निवेश होता है। इस पृष्ठ के लगभग बीच में एक स्पष्ट तीरणिका या पिण्डक दिखाई देता है। इसके बाहर की ओर एक चौड़ी परिखा है जो एक सूक्ष्म तीरणिका के द्वारा दो भागों में विभाजित है। बाहरी या पार्श्विक भाग में मणिबन्धप्रसारणी बहिःस्था दीर्घा[1] और भीतर के भाग में मणिबन्धप्रसारणी बहिःस्था लघ्वी[2] की कण्डराएँ रहती हैं। बीच की बड़ी तीरणिका के भीतर की ओर भी दो परिखाएँ हैं। जो परिखा तीरणिका से मिली हुई है उसमें अंगुष्ठप्रसारणी दीर्घा[3] की कण्डरा रहती है। दूसरी भीतर की ओर स्थित परिखा में होकर अंगुलिप्रसारणी साधारणी[4] और तर्जनी-प्रसारणी[5] की कण्डराएँ जाती हैं।

१-२. Extensor Carpii radialis Longus and brevis. ३. Extensor Pollicis Longus. ४. Extensor digitorum Communis. ५. Extensor Indicis Proprius.

अस्थि-विकास तीन केन्द्रों से होता है। एक केन्द्र गात्र के लिए भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में विकसित होता है। अधःप्रान्त में दूसरे वर्ष में और ऊर्ध्वप्रान्त में पाँचवें वर्ष में विकास आरम्भ होता है। ऊर्ध्वप्रान्त गात्र के साथ १७वें वर्ष में और अधःप्रान्त २०वें वर्ष में जुड़ता है।

सम्मेलन चार अस्थियों से होता है। प्रगण्डास्थि, अन्तःप्रकोष्ठास्थि, नौनिभ और अर्धचन्द्र।

क्रियात्मक—इस अस्थि में सबसे अधिक अधःप्रान्त का भग्न होता है जो 'कौलीज़ का भग्न' कहा जाता है। यह अधःपृष्ठ के लगभग १ इंच ऊपर होता है। इसकी रेखा व्यत्यस्त होती है किन्तु सामने से ऊपर और पीछे की ओर को चली जाती है, जिससे वह सामने की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक ऊँची होती है। यह भग्न खुली हुई हथेली के बल गिरने से होता है जब बाहु कुछ बाहर की ओर को खिंची होती है। शरीरभार के कारण प्रायः दोनों भाग अन्तराविष्ट हो जाते हैं। इसमें विकृति अत्यन्त स्पष्ट होती है। हाथ प्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त के साथ पीछे की ओर को सरका हुआ प्रतीत होता है। उससे तनिक ऊपर सामने की ओर को गढ़ा और पीछे की ओर उभार उत्पन्न हो जाता है। अस्थि-सन्धान प्रायः कठिन नहीं होता।

अस्थि के गात्र के भी प्रायः भग्न हो जाया करते हैं। गात्र के ऊपरी भाग में, कर-विवर्तनी दीर्घा के निवेश से ऊपर, भग्न होने से अस्थि का ऊपरी भाग ऊपर और बाहर की ओर को और नीचे का भाग अन्तःप्रकोष्ठिका की ओर खिंच जाता है।

अस्थि की ग्रीवा और उसके शिर का भी भग्न होते देखा गया है।

अन्तः और बहिः दोनों प्रकोष्ठास्थियों का एक साथ भग्न भी साधारण है। इसका कारण प्रायः समीपवर्त्ती अभिघात होता है। इस कारण भग्न की रेखा व्यत्यस्त होती है। दूरवर्ती अभिघात से अस्थियों के निचले भाग का भग्न होता है। किन्तु समीपवर्त्ती अभिघात से किसी भी भाग का भग्न हो सकता है। इन भग्नों में एक अस्थि के ऊपरी भाग की दूसरी अस्थि के निचले भाग से जुड़ने की प्रवृत्ति होती है।

अन्तःप्रकोष्ठास्थि

अन्तःप्रकोष्ठास्थि बाहु में भीतर की ओर रहती है। अन्य अस्थियों की भाँति इसमें भी दो प्रान्त और एक गात्र होते हैं। ऊर्ध्वप्रान्त अधःप्रान्त की अपेक्षा बड़ा है। उसका बहुत सा भाग कूर्परसन्धि के भीतर रहता है। नीचे का प्रान्त पतला और छोटा होता है। मणिबन्ध-सन्धि बनाने में वह भाग नहीं लेता।

ऊर्ध्वप्रान्त में दो मुड़े हुए प्रवर्धन और दो खात होते हैं जिनकी सहायता से अस्थि अत्यन्त सहज में पहचानी जा सकती है। एक प्रवर्धन कूर्पर में ऊपर की ओर रहता है जो कुहनी में पीछे की ओर टटोलने से प्रतीत किया जा सकता है। कुहनी को मोड़ने पर इस प्रवर्धन का उभार अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। इस प्रवर्धन को **कूर्पर कूट**[१] कहते हैं। दूसरा प्रवर्धन जो अस्थि में आगे की ओर रहता है, **चञ्चुप्रवर्धन**[२] कहलाता है। इन दोनों प्रवर्धनों के बीच के गहरे खात को, जिसमें डमरुक रहता है, **अर्धचन्द्राकार खात**[३] कहते हैं। दूसरा छोटा खात, जो चञ्चुप्रवर्धन के बाहर की ओर रहता है, **चक्रनेमि खात**[४] के नाम से पुकारा जाता है।

---

१. Olecranon Process. २. Coronoid Process. ३. Semilunar Notch. ४. Radial Notch.
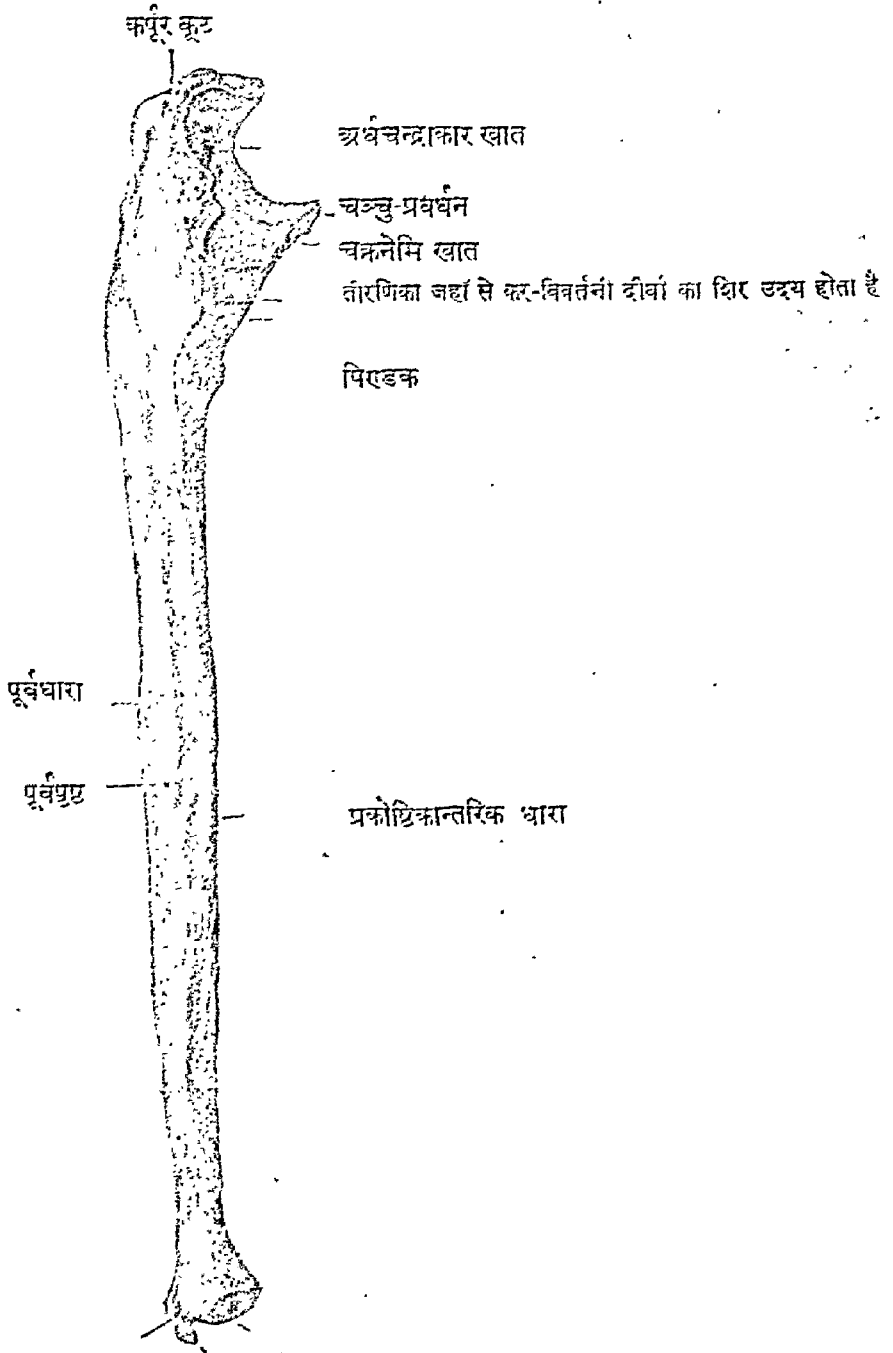
चित्र नं० ७६—अन्तःप्रकोष्ठास्थिका पूर्वपृष्ठ

कूर्परकूट—यह प्रवर्धन अस्थि के ऊपरी सिरे के पिछले भाग से निकलकर आगे की ओर सर्प के फन की भाँति झुका हुआ रहता है। इस झुके हुए भाग का आगे का किनारा अग्रबाहु को फैलाने के समय प्रगण्डास्थि के कूर्परखात में पहुँच जाता है जिससे बाहु का प्रसारण परिमित हो जाता
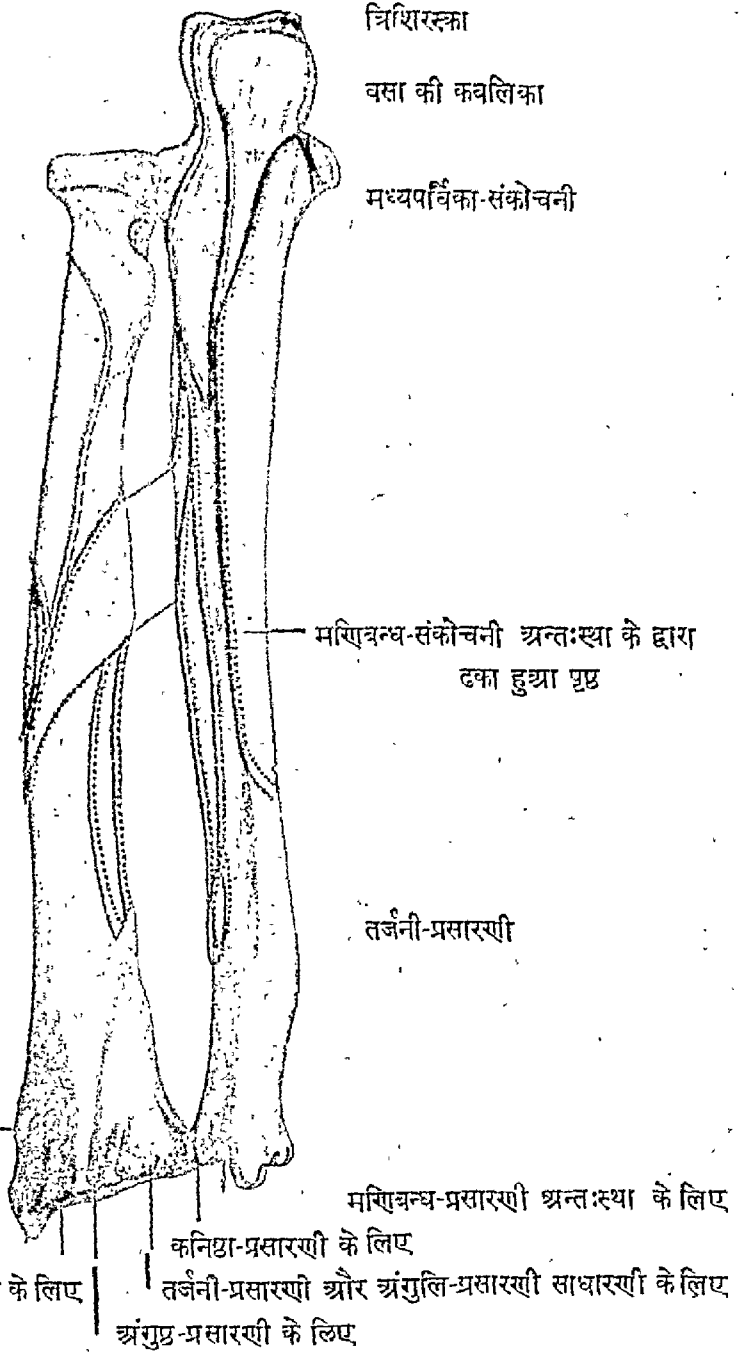
चित्र नं० ७७—अन्तः और बहिः प्रकोष्ठास्थि का पश्चिमपृष्ठ

है। ध्यान से देखने पर इस प्रवर्धन में तीन पृष्ठ दिखाई देते हैं। जो पृष्ठ बाहु को फैलाने पर ऊपर की ओर रहता है, वह ऊर्ध्वपृष्ठ कहलाता है। दूसरा आगे का पृष्ठ, जो डमरुक के साथ सम्बन्ध करता है, पूर्वपृष्ठ कहा जाता है। तीसरा पीछे का चिकना पृष्ठ **पश्चिमपृष्ठ** के नाम से पुकारा जाता है।

ऊर्ध्वपृष्ठ—चतुष्कोणाकार है। उसमें पीछे की ओर त्रि-शिरस्का की कण्डरा का निवेश होता है।

आगे की ओर धारा के पास एक हलकी सी परिखा दिखाई देती है जिसमें कूर्परसन्धि का कोष[1] लगा हुआ है।

पूर्वपृष्ठ से अर्धचन्द्राकार खात का ऊपरी भाग बनता है। यह पृष्ठ चिकना है। वह डमरुक के सम्पर्क में रहता है।

पश्चात्पृष्ठ पर केवल वसा की एक कवलिका रहती है। उसके बाहरी ओर बहिर्धारा के पास कूर्परपृष्ठिका पेशी[2] और भीतरी ओर अन्तर्धारा के पास मणिबन्ध-संकोचनी अन्तःस्था[3] पेशी लगी रहती है।

चञ्चुप्रवर्धन—यह चौड़ा प्रवर्धन अस्थि के गात्र के ऊपरी सिरे के आगे की ओर से निकलता है। कुहनी को मोड़ने पर इस प्रवर्धन का अगला सिरा चञ्चुखात में पहुँच जाता है। इसका ऊर्ध्वपृष्ठ चिकना और नतोदर है और अर्धचन्द्राकार खात का निचला भाग बनाता है। अधःपृष्ठ भी, जो प्रवर्धन के नीचे की ओर रहता है, नतोदर और खुरदरा है। इस पर कूर्परद्वारिका पेशी की कण्डरा के निवेश का चिह्न दिखाई देता है। यहाँ से तनिक नीचे की ओर चलकर एक छोटा सा पिण्डक है। इस पर भी कूर्परद्वारिका के कुछ भाग का निवेश होता है। पृष्ठ के निचले भाग से कभी कभी अंगुष्ठ-सङ्कोचनी दीर्घा के कुछ भाग का उदय होता है। प्रवर्धन के पार्श्वपृष्ठ पर चक्रनेमि-खात है जहाँ पर बहिःप्रकोष्ठास्थि का शिर लगा रहता है। प्रवर्धन के अन्तःपृष्ठ पर एक गढ़ा या खात है। वहाँ से अग्रपर्विका[4] अंगुलिसङ्कोचनी के एक भाग का उदय होता है। इस खात के सामने की की ओर एक पिण्डक है जिससे नीचे की ओर को उतरती हुई एक तीरणिका दिखाई देती है। इस पिण्डक पर से अंगुलिसङ्कोचनी मध्यपर्विका के एक भाग का उदय होता है। तीरणिका से करविवर्तनी दीर्घा का शिर निकलता है। इस पृष्ठ के किनारों पर बन्धन लगा रहता है।

अर्धचन्द्राकार खात कूर्परकूट और चञ्चुप्रवर्धन के पूर्व और ऊर्ध्वपृष्ठ से बना हुआ है। खात के बीच में, जहाँ पर दोनों प्रवर्धनों का सम्मेलन होता है, एक प्रकार की रेखा या हलकी सी तीरणिका दिखाई देती है। यह खात ऊपर से नीचे की ओर को नतोदर किन्तु चौड़ाई की ओर उन्नतोदर है। इसके भीतर डमरुक रहता है।

चक्रनेमि खात नतोदर है और उसमें बहिःप्रकोष्ठास्थि का शिर रहता है। इसके किनारों पर मण्डलाकार बन्धन लगता है।

अस्थि का गात्र प्रथम कुछ ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है किन्तु आगे चलकर नीचे और बाहर की ओर को झुक जाता है। गात्र का ऊपरी भाग त्रि-पार्श्व के समान है किन्तु निचला भाग गोल और पतला है। गात्र में तीन धाराएँ और तीन पृष्ठ हैं।

पूर्वधारा चञ्चुप्रवर्धन के सामने के पिण्डक के नीचे से आरम्भ होती है और अधःप्रान्त के अन्तर्मणिक के मूल तक चली जाती है। इस धारा के ऊपरी और बीच के गोल भाग से अंगुलि-संकोचनी अग्रपर्विका और निचले भाग से करविवर्तनी चतुरस्रा का उदय होता है।

'**प्रकोष्ठान्तरिक**'[5] अथवा '**पार्श्वधारा**' चक्रनेमि खात के दोनों किनारों से दो तीरणिकाओं के रूप में आरम्भ होती है। ये दोनों तीरणिकाएँ नीचे जाकर मिल जाती हैं। इनके द्वारा परिमित

---

१. Articular Capsule; २. Anconeus, ३. Flexor Carpii Ulnaris, ४. Flexor Digitorum Profundus, ५. Interosseous Border.

त्रिकोणाकार स्थान से करोत्तानमी के कुछ भाग का उदय होता है। वहाँ से यह धारा एक स्पष्ट तीरणिका के रूप में अस्थि के अधःप्रान्त के कुछ ऊपर तक चली जाती है। इस समस्त धारा में प्रकोष्ठान्तराला कला लगी रहती है।

पश्चिमधारा कूर्पर कूट के पीछे की ओर से आरम्भ होती है और नीचे अन्तर्मणिक के मूल के पीछे की ओर तक चली जाती है। अग्रबाहु में पीछे की ओर हाथ फेरने से यह धारा एक शिखा या तीरणिका की भाँति प्रतीत होती है। इसका ऊपरी नोकीला भाग स्पष्ट होता है। किन्तु नीचे का भाग, गोल होने के कारण, स्पष्ट नहीं होता। इसके ऊपरी भाग से एक दृढ़ कलावितान के द्वारा मणिबन्ध-संकोचनी अन्तःस्था,[१] मणिबन्ध-प्रसारणी अन्तःस्था[२] और अंगुलि-संकोचनी अग्रपर्विका का संयुक्त उदय होता है।

पूर्वपृष्ठ—यह पूर्व और पार्श्विकधारा के बीच का स्थान है। नीचे की अपेक्षा ऊपर का भाग अधिक चौड़ा है और उससे अंगुलिसंकोचनी अग्रपर्विका का उदय होता है। इस पृष्ठ का नीचे का भाग करविवर्त्तनी चतुरस्रा से ढका हुआ है। इस भाग में एक तीरणिका नीचे की ओर को जाती हुई दिखाई देती है जो चतुरस्रा पेशी को परिमित करती है।

अन्तः अथवा मध्यस्थ पृष्ठ—इस पृष्ठ का ऊपरी भाग चौड़ा है किन्तु नीचे के भाग में यह पृष्ठ संकुचित हो जाता है और केवल चर्मगत रहता है। इसके ऊपरी तीन चौथाई भाग से अङ्गुलिसङ्कोचनी अग्रपर्विका का उदय होता है।

पश्चात्पृष्ठ—यह पार्श्विक और पश्चिम धारा के बीच का स्थान है। इसका ऊपरी भाग, जो चक्रनेमि खात के पीछे की ओर रहता है, चौड़ा और कुछ भीतर को दबा हुआ है। इसका बीच का भाग भी चौड़ा किन्तु चिपटा और कुछ ऊपर को उभरा हुआ है। नीचे का भाग गोल है। इस पृष्ठ पर चक्रनेमि खात की पश्चात्धारा से एक वक्र तीरणिका नीचे और भीतर की ओर गात्र की पश्चात्धारा तक चली जाती है। इस तीरणिका के ऊपर एक त्रिकोणाकार स्थान है जहाँ कूर्परपृष्ठिका का निवेश होता है। स्वयं तीरणिका के ऊपरी भाग पर करोत्तानमी पेशी लगती है। इस तीरणिका के नीचे का स्थान एक खड़ी सीधी रेखा या शिखा द्वारा दो भागों में विभक्त दीखता है। इनमें अन्तःस्थ भाग मणिबन्ध-प्रसारणी अन्तःस्था[३] से ढका हुआ है और बहिःस्थ भाग में ऊपर से नीचे की ओर को करोत्तानमी[४], अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा[५], अंगुष्ठ-प्रसारणी दीर्घा[६] और तर्जनी-प्रसारणी[७] का उदय होता है।

अधःप्रान्त सारी अस्थि की अपेक्षा सूक्ष्म होता है। इसमें दो भाग हैं जिनमें से एक बड़ा, गोल और चिकना है, और दूसरा एक नुकीले प्रवर्धन के स्वरूप में आगे को निकला हुआ है। प्रथम भाग को शिर कहते हैं और प्रवर्धन अन्तर्मणिक[८] कहा जाता है।

दोनों के बीच में एक गहरी परिखा है। शिर के पीछे की ओर भी एक परिखा है जिसमें मणिबन्ध-प्रसारणी अन्तःस्था की कण्डरा रहती है।

शिर के नीचे और बाहर की ओर एक स्थालक है जिसके नीचे की ओर मणिबन्ध की सन्धि और शिर के बीच में शुक्ति का एक पत्र रहता है। स्थालक के बाहर की ओर का भाग बहिःप्रकोष्ठास्थि के अधोभाग से मिला रहता है।

१-२. Flexor and Extensor Carrpii Ulnaris. ३. Flexor Carpii Ulnaris. ४. Supinator ५. Abductor pollicis Longus ६. Extensor pollicis Longus ७. Extensor Indicis proprius. ८. Styloid Process of Ulna.

अस्थिविकास—गात्र के बीच में भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में विकास-केन्द्र उदय होता है। जन्म के समय तक ऊपरी और निचले सिरे के अतिरिक्त गात्र का समस्त भाग अस्थि में परिणत हो चुकता है। केवल सिरों पर शुक्ति रह जाती है। अधःप्रान्त में चार वर्ष की आयु में शिर में केन्द्र उदय होता है। ऊर्ध्वप्रान्त में दसवें वर्ष में कूर्पर कूट के सर्वोच्च भाग में विकास-केन्द्र उत्पन्न होता है। ऊर्ध्वप्रान्त गात्र के साथ सोलहवें, और अधःप्रान्त बीसवें वर्ष के लगभग जुड़ता है।
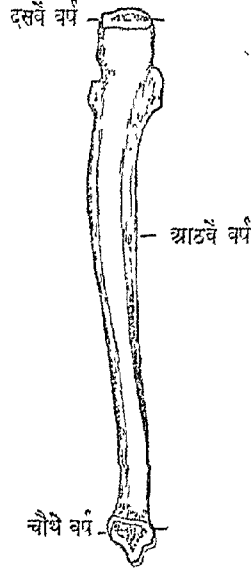
सम्मेलन—अन्तःप्रकोष्ठास्थि प्रगण्डास्थि और बहिःप्रकोष्ठास्थि के साथ सम्मेलन करती है।

क्रियात्मक—इस अस्थि के भग्न असाधारण नहीं हैं। अन्य स्थानों की अपेक्षा गात्र के अधिक भग्न होते हैं। ये गात्र में किसी भी स्थान पर हो सकते हैं, किन्तु अस्थि के बीच से नीचे की ओर अधिक होते हैं। यदि बहिःप्रकोष्ठास्थि नहीं टूटती तो इस अस्थि के टूटे हुए भागों में भी स्थान च्युति अधिक नहीं होती। बहिःप्रकोष्ठास्थि भग्न भागों को अपने स्थान पर रखती है। यह भग्न समीपवर्ती तथा दूरवर्ती दोनों प्रकार के अभिघातों से उत्पन्न हो सकते हैं, यद्यपि समीपवर्ती अभिघात से अधिक होते हैं। ऐसी दशा में उनकी रेखा व्यत्यस्त होती है।

चित्र नं० ७८—अन्तःप्रकोष्ठास्थि का विकास

कूर्पर कूट का भग्न भी पाया जाता है। यह प्रायः मुड़ी हुई कुहनी के बल गिरने से उत्पन्न होता है, यद्यपि कभी-कभी त्रि-शिरस्का के अत्यन्त संकोच से भी हो जाता है। भग्न प्रायः उस स्थानपर होता है जहाँ कूट गात्र के साथ एक संकुचित रेखा द्वारा मिलता है। कूर्पर कूट ऊपर की ओर खिंच जाता है जिससे टूटे हुए भागों के बीच कभी-कभी बहुत अन्तर हो जाता है। पूर्ण कूट भग्न न होकर उसका केवल एक भाग अथवा धारा का भाग टूट सकता है। जब सन्धि के स्नायु या संधि-कोष पूर्णतया नहीं टूटते तो टूटे हुए भागों में अधिक अन्तर नहीं होता।

कूर्पर-सन्धि के पीछे की ओर के विश्लेष में चञ्चुप्रवर्धन भी भग्न होते देखा गया है। किन्तु उसका स्वतः भग्न अत्यन्त असाधारण है।

मणिबन्ध की अस्थियाँ

मणिबन्ध प्रान्त में आठ छोटी-छोटी अस्थियाँ हैं जो दो पंक्तियों में स्थित हैं। प्रत्येक पंक्ति में चार-चार अस्थियाँ हैं। ऊर्ध्वपंक्ति की अस्थियों के नाम नौनिभ[1], अर्धचन्द्र[2],

---

१. Navicular. २. Lunate.

त्रिकोणाकार या उपलक[1] और वर्तुलक[2] हैं। इनमें से प्रथम तीन अस्थियाँ मणिबन्ध-सन्धि के भीतर रहती हैं। किन्तु वर्तुलक उससे बाहर रहता है। दूसरी पंक्ति की अस्थियाँ पर्य्याणक[3], कूटक[4], मध्यकूट[5] और फणधर[6] हैं। ये चारों अस्थियाँ नीचे की ओर करभास्थियों से और ऊपर की ओर
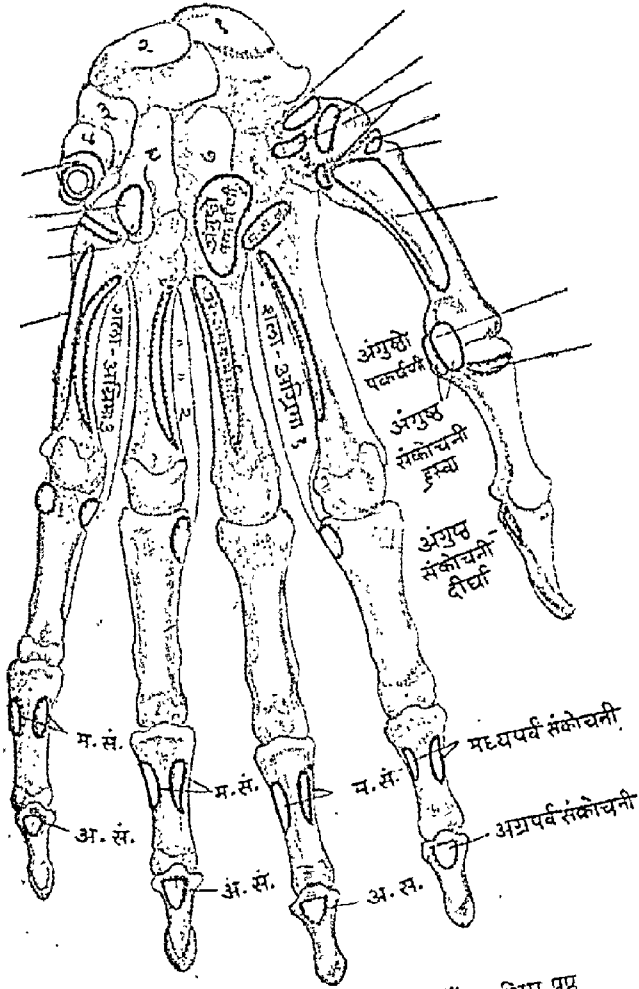
चित्र नं० ७६—हाथ की अस्थियाँ—पश्चिम पृष्ठ

प्रथम पंक्ति की अस्थियों से मिली रहती हैं। इनमें से अधिक अस्थियाँ चार ओर से अन्य अस्थियों से दबी हुई हैं। इसी कारण उनका इस प्रकार का आकार हो गया है।

---

१. Triquetral. २. Pisiform. ३. Greater Multangular. ४. Lesser Multangular. ५. Capitate. ६. Hammate.

प्रायः सब अस्थियों में छः पृष्ठ पाये जाते हैं। इनमें से पूर्वपृष्ठ और पश्चात्पृष्ठ, जो मणिबन्ध के सामने और पीठ की ओर रहते हैं, खुरदरे होते हैं, क्योंकि वे किसी अस्थि के साथ सम्मेलन नहीं करते। उन पर कण्डराएँ और बन्धन लगे रहते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ उन्नतोदर और अधःपृष्ठ नतोदर होता
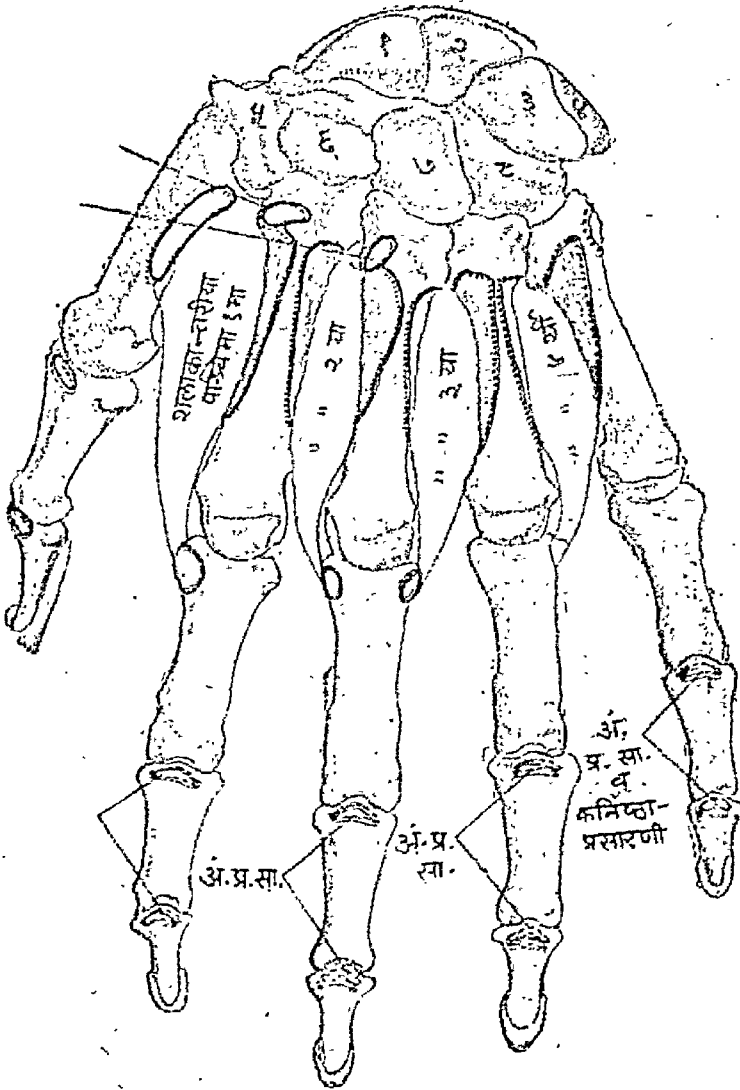
चित्र नं० ८०—हाथ की अस्थियाँ—पूर्वपृष्ठ

है। अस्थियों के अन्तः और बहिः पृष्ठ, कुछ अस्थियों के अतिरिक्त, दूसरी अस्थियों से मिले रहने के कारण चिकने होते हैं।

प्रथम पंक्ति की अस्थियाँ

(१) नौनिभ

यह प्रथम पंक्ति में सबसे बड़ी अस्थि है। इसका आकार नौका के समान है। इसका त्रिकोणाकार ऊर्ध्वपृष्ठ बहिःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त से मिला रहता है। अधःपृष्ठ भी त्रिकोणाकार है और एक तीरणिका के द्वारा दो भागों में विभक्त है जिनमें से बहिःस्थ भाग पर्याणक के साथ और अन्तःस्थ भाग कूटक के साथ सम्मेलन करते हैं। पूर्वपृष्ठ पर एक गहरी परिखा दिखाई देती है। उसके ओठों पर बन्धन लगते हैं। पश्चात्पृष्ठ के पार्श्व और निचले भाग में आगे की ओर को एक
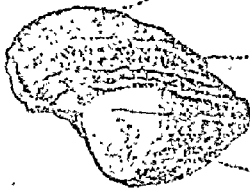
चित्र नं० ८१—नौनिभ का पश्चिम पृष्ठ

उभरा हुआ छोटा सा पिण्डक है जिस पर एक बन्धन लगता है। कभी-कभी अङ्गुष्ठ-बहिर्नायन लघ्वी[1] के कुछ सूत्रों का यहाँ से उदय होता है। अन्तःपृष्ठ पर दो स्थालक हैं जिन पर दो अस्थियों का सम्मेलन होता है। ऊपर के अर्धचन्द्राकार स्थालक पर अर्धचन्द्र अस्थि लगती है। नीचे को नतोदर स्थालक और अर्धचन्द्र के मिलने से एक खात बन जाता है जिसमें मध्यकूट का सिर रहता

चित्र नं० ८२—नौनिभ का अधःपृष्ठ

है। बहिःपृष्ठ बाहर की ओर है। उस पर कुछ बन्धन लगते हैं।

अस्थि-विकास—छठे वर्ष में एक केन्द्र उदय होता है जिससे अस्थि का विकास होता है।

सम्मेलन—नौनिभ का पाँच अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। ऊपर की ओर बहिः-प्रकोष्ठास्थि, नीचे की ओर पर्याणक और कूटक तथा भीतर की ओर अर्धचन्द्र और मध्यकूट।

(२) अर्धचन्द्र

जैसा नाम से विदित है, यह अस्थि अर्धचन्द्र के आकार की होती है और नौनिभ और त्रिकोणाकार के बीच में रहती है। इसका उन्नतोदर चिकना चौड़ा ऊर्ध्वपृष्ठ बहिःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त से मिला रहता है। अधःपृष्ठ एक गहरे खात के समान है जिसमें मध्यकूट के शिर का एक

---

१. Abductor pollici sbrevis.

भाग रहता है। इसी पृष्ठ पर एक लम्बा संकुचित स्थालक है जो शेष पृष्ठ से एक तीरणिका के द्वारा विभक्त है। इस स्थालक पर फणाधर अस्थि लगती है। बहिःपृष्ठ पर स्थित एक स्थालक के द्वारा

चित्र नं० ८३—अर्धचन्द्र भीतर की ओर से

यह अस्थि नौनिभ से मिलती है। अन्तःपृष्ठ पर एक चतुष्कोणाकार स्थालक के द्वारा त्रिकोणाकार स्थालक अस्थि से सम्मेलन करता है। पूर्व और पश्चात् पृष्ठ पर केवल बन्धन लगते हैं।
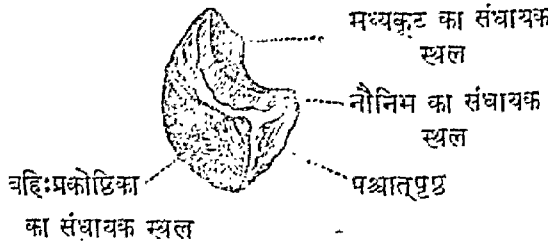
चित्र नं० ८४—अर्धचन्द्र बाहर की ओर से

अस्थि-विकास—इस अस्थि का विकास पाँचवें वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन पाँच अस्थियों के साथ होता है। ऊपर की ओर बहिःप्रकोष्ठिका, नीचे की ओर फणाधर और मध्यकूट, भीतर की ओर त्रिकोणाकार, और बाहर की ओर नौनिभ।

(३) त्रिकोणाकार या उपलक

यह अस्थि मणिबन्ध के बीच में रहती है। आकार में यह अस्थि एक त्रिकोण के समान है। इसके ऊर्ध्वपृष्ठ के बहिःस्थ भाग पर एक स्थालक है जो मणिबन्ध सन्धि की शुक्ति से मिला रहता है। अधःपृष्ठ चिकना और बाहर की ओर को कुछ मुड़ा हुआ है। इस पृष्ठ पर फणाधर अस्थि लगती है। पश्चात्पृष्ठ पर केवल बन्धन लगे हुए हैं। किन्तु पूर्वपृष्ठ के अन्तःस्थ

चित्र नं० ८५—त्रिकोणाकार

भाग पर एक स्थालक है, जो वर्त्तुलक से मिला रहता है। पार्श्वपृष्ठ पर एक चतुष्कोणाकार स्थालक है जिसपर अर्धचन्द्राकार अस्थि लगी रहती है। अन्तःपृष्ठ, जो अस्थि के शिखर के समान है, चिपटा है। इस पर स्नायु लगती है।

अस्थि-विकास:—तीसरे वर्ष में एक केन्द्र से इस अस्थि का विकास होता है।

सम्मेलन—त्रिकोणाकार अस्थि का तीन अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। पार्श्व-पृष्ठ पर अर्धचन्द्र, पूर्वपृष्ठ पर वर्त्तुलक और अधःपृष्ठ पर फणधर।

(४) वर्त्तुलक

मणिबन्धास्थियों में यह अस्थि सबसे छोटी है। इसके **पश्चिम पृष्ठ** पर केवल एक अंडाकार स्थालक है जो त्रिकोणाकार अस्थि के साथ मिला रहता है। अन्य अस्थियों की अपेक्षा यह अस्थि

चित्र नं० ८६—वर्त्तुलक

आगे की ओर को अधिक उभरी हुई रहती है। पूर्वपृष्ठ पर एक बन्धन लगता है। पार्श्व और अन्तः-पृष्ठ खुरदरे हैं।

अस्थि-विकास १२ वें वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन केवल त्रिकोणाकार से होता है।

दूसरी पंक्ति की अस्थियाँ

(१) पर्याणक

इस अस्थि को पहचानने में अस्थि के पूर्वपृष्ठ पर स्थित परिखा से बहुत सहायता मिलती है। इस अस्थि का आकार क्रमहीन है जिसमें कई स्थानों पर कोण निकले हुए हैं। मणिबन्ध सन्धि में यह अस्थि बाहर की ओर नौनिभ और प्रथम करभास्थि के बीच में रहती है। इसका ऊर्ध्वपृष्ठ छोटा और चिकना है और नौनिभ के साथ सम्मेलन करता है। अधःपृष्ठ आकार में घोड़े की काठी के
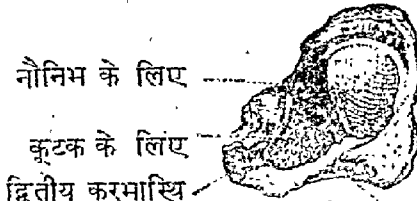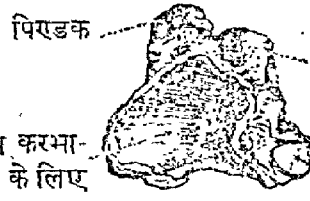
चित्र नं० ८७—पर्याणक का ऊर्ध्वपृष्ठ

पिण्डक
मणिबन्ध संकोचनी अन्तःस्था की कण्डरा के लिए
प्रथम करभास्थि के लिए
द्वितीय करभास्थि के लिए

चित्र नं० ८८—पर्याणक का अधःपृष्ठ

समान है; एक ओर को नतोदर है किन्तु दूसरी दिशा में उन्नतोदर है। इस स्थान पर प्रथम करभास्थि का मूल लगता है। पश्चात्पृष्ठ खुरदरा है। पूर्वपृष्ठ के ऊपरी भाग में एक

परिखा है जो ऊपर से भीतर और नीचे की ओर को जाती है। परिखा में होकर मणिबन्ध-संकोचनी बहिःस्था की कण्डरा जाती है। इस पृष्ठ से अंगुष्ठज्ञापिनी[1], अंगुष्ठापकर्षणी लघ्वी[2] और अंगुष्ठ-संकोचनी लघ्वी[3] पेशियों का उदय होता है। अस्थि के अन्तःपृष्ठ पर दो स्थालक हैं। ऊपर के बड़े स्थालक पर कूटक और नीचे के छोटे अण्डाकार स्थालक पर द्वितीय करभास्थि का मूल लगता है। पार्श्वपृष्ठ चौड़ा और खुरदरा है, उस पर बन्धन लगे रहते हैं।

अस्थि-विकास पाँचवें वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन—पर्याणक का चार अस्थियों से सम्बन्ध होता है। ऊपर की ओर नौनिभ, नीचे की ओर प्रथम करभास्थि, भीतर की ओर कूटक और द्वितीय करभास्थि।

(२) कूटक

दूसरी पंक्ति में सबसे छोटी अस्थि कूटक है। यह आकार में पाँव में पहनने के बूट के कुछ समान होती है। इसके भिन्न-भिन्न पृष्ठों को पहचानने में कुछ कठिनता होती है। इसके पूर्व और
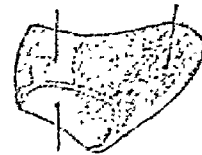
चित्र नं० ८९—कूटक

चित्र नं० ९०—कूटक

पश्चात् दो पृष्ठों के अतिरिक्त शेष चारों पृष्ठों पर स्थालक हैं। पूर्वपृष्ठ पश्चात्पृष्ठ से छोटा और चतुष्कोणाकार है। दोनों पर बन्धन लगते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ कुछ चिकना और नतोदर है और नौनिभ के साथ मिलता है। अधःपृष्ठ, जो एक तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त है, द्वितीय करभास्थि के मूल के साथ मिलता है। अन्तःपृष्ठ पर मध्यकूट लगता है। पार्श्वपृष्ठ पर पर्याणक लगता है।

अस्थि-विकास आठवें वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन चार अस्थियों से होता है। ऊपर की ओर नौनिभ, नीचे की ओर द्वितीय करभास्थि, पार्श्व में पर्याणक और भीतर की ओर मध्यकूट।

(३) मध्य प्रदेश

मणिबन्ध की अस्थियों में यह सबसे बड़ी अस्थि है। इसका ऊपरी गोल चिकना भाग शिर कहलाता है जो अर्धचन्द्र के अधःपृष्ठ के खात में रहता है। इस खात के बनने में नौनिभ से भी सहायता मिलती है। शिर से नीचे का संकुचित भाग ग्रीवा कहा जाता है। नीचे का भाग गात्र के नाम से पुकारा जाता है। शिर के ऊपर ऊर्ध्वपृष्ठ होता है जो अर्धचन्द्र के साथ मिलता है। अधःपृष्ठ अस्थि का तल बनाता है। दो तीरणिकाओं द्वारा यह पृष्ठ तीन स्थालकों में विभक्त है जिन

---

१. Opponens Pollicic २. Abductor Pollicis Brevis. ३. Flexor Pollicis Brevis.

शिर
पूर्वपृष्ठ
फणधर के लिए
तीसरी करभास्थि के लिए

चित्र नं० ९१—मध्यकूट भीतर की ओर से

शिर
पश्चिम पृष्ठ
कूटक के लिए
द्वितीय करभास्थि के लिये
तृतीय करभास्थि के लिए
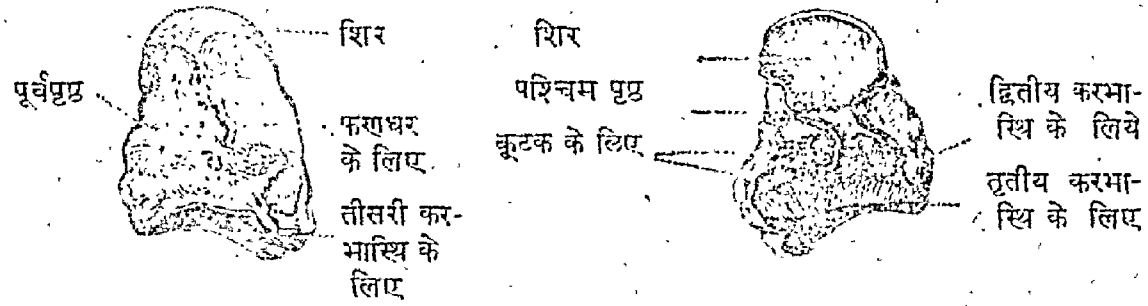
चित्र नं० ९२—मध्यकूट बाहर की ओर से

पर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ करभास्थियाँ लगती हैं। तृतीय करभास्थिवाला स्थालक अन्य दोनों स्थालकों से बड़ा है। पूर्व और पाश्चात्पृष्ठ पर कोई स्थालक नहीं है क्योंकि यह पृष्ठ किसी अस्थि के साथ सम्मेलन नहीं करते। पूर्वपृष्ठ कुछ उठा हुआ है और उस पर बन्धन तथा अंगुष्ठोपकर्षणी[1] के तिर्यक् भाग लगे हुए हैं। किन्तु पश्चात्पृष्ठ चिपटा है। पार्श्वपृष्ठ के आगे की ओर नीचे के कोने पर एक स्थालक है जहाँ कूटक लगता है। शेष भाग खुरदरा है जिसमें बन्धन लगते हैं। अन्तःपृष्ठ पर एक चिकने स्थालक के द्वारा फणधर अस्थि लगती है।

अस्थि-विकास प्रथम वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन—इस अस्थि का सात अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। ऊपर की ओर नौनिभ और अर्धचन्द्र, नीचे की ओर द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ करभास्थि, भीतर की ओर फणधर और बाहर की ओर कूटक।

(४) फणधर

यह अस्थि मणिबन्ध के भीतर और नीचे के कोने पर रहती है। इसके पूर्वपृष्ठ से एक फण के आकार का मुड़ा हुआ प्रवर्धन निकलता है। इस भाग की सहायता से अस्थि के पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। इस अस्थि का गात्र त्रिकोण के समान है। ऊर्ध्वपृष्ठ अथवा अस्थि का शिखर पतला और कुछ उन्नतोदर होता है। यहाँ पर एक स्थालक है जिस पर अर्धचन्द्र अस्थि लगती है। अधःपृष्ठ एक तीरणिका के द्वारा दो स्थालकों में विभक्त है जहाँ चतुर्थ और पञ्चम करभास्थियाँ लगती हैं। पूर्वपृष्ठ के अधोभाग के तनिक भीतर की ओर से एक फणाकार प्रवर्धन आगे की ओर को निकला रहता है। इस प्रवर्धन के सिरे पर एक बन्धन और मणिबन्ध-संकोचनी अन्तःस्था पेशी लगी रहती है। प्रवर्धन के अन्तःपृष्ठ पर कनिष्ठा-संकोचनी ह्रस्वा[2] और कनिष्ठा-मूलकर्षणी[3] पेशी लगी हुई हैं। प्रवर्धन का पार्श्वपृष्ठ परिखा-युक्त है जिसके द्वारा सङ्कोचक पेशियों की कण्डराएँ करतल में जाती हैं। पश्चात्पृष्ठ त्रिकोणाकार और खुरदरा है। पार्श्वपृष्ठ के ऊपरी भाग में पीछे की ओर एक स्थालक है जिसके द्वारा अस्थि मध्यकूट से सम्मेलन करती है। अन्तःपृष्ठ पर त्रिकोणाकार अस्थि लगती है

अस्थि-विकास—प्रथम वर्ष में किन्तु मध्यकूट के पश्चात् एक केन्द्र से इसका विकास होता है।

१. Oblique Part of Adductor Pollicis. २. Flexor digiti quinti brevis. ३. Opponens digiti Quinti.

चित्र नं० ९३—फणधर का ऊर्ध्वपृष्ठ

चित्र नं० ९४—फणधर का अधःपृष्ठ
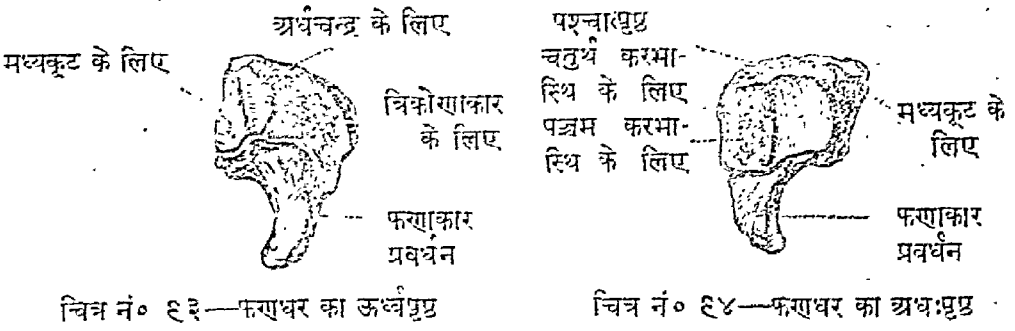
सम्मेलन—फणधर का पाँच अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। ऊपर की ओर अर्धचन्द्र, नीचे की ओर चतुर्थ और पञ्चम करभास्थि, भीतर की ओर त्रिकोणाकार और बाहर की ओर मध्यकूट।

करभास्थियाँ[1] (शलाकाएँ)

मणिबन्ध की अस्थियों के आगे की ओर हथेली में करभास्थियाँ रहती हैं। इनकी संख्या पाँच है। प्रत्येक अस्थि ऊपर की ओर मणिबन्ध की अस्थि और नीचे की ओर अंगुल्यस्थि से मिली रहती है। इनमें से प्रत्येक एक छोटी दीर्घ अस्थि है जिसमें ऊर्ध्व और अधःप्रान्त हैं और उनके बीच में गात्र है।

ये अस्थियाँ प्रायः हथेली की ओर कुछ नतोदर होती हैं। अस्थियों का ऊर्ध्वप्रान्त, जो मणिबन्ध अस्थियों से मिला रहता है, मूल कहलाता है और अधःप्रान्त जो अंगुल्यस्थि से मिलता है शिर कहा जाता है। यह गोल और चिकना होता है।

अस्थियों में तीन पृष्ठ होते हैं—अन्तः, बहिः और पश्चिम। अन्तः और बहिःपृष्ठ एक तीरणिका के द्वारा एक दूसरे से पृथक् होते हैं और भीतर की ओर को कुछ दबे हुए हैं। शिर के पास पश्चिम पृष्ठ का कुछ भाग चिकना और त्रिकोणाकार होता है। यह स्थान पेशियों की कण्डराओं से ढका रहता है।

मूल—करभास्थियों का मूल कुछ नतोदर है। मूल के ऊर्ध्वपृष्ठ पर एक बड़ा स्थालक है जिसके द्वारा ये अस्थियाँ मणिबन्ध की अस्थियों से मिली रहती हैं। बीच की तीन करभास्थियाँ अपने मूल के पार्श्व और मध्यस्थ पृष्ठ पर स्थित स्थालकों द्वारा दोनों ओर अन्य करभास्थियों से मिली हुई हैं। प्रथम करभास्थि के मूल के पार्श्व या बहिःपृष्ठ पर कोई स्थालक नहीं होता। पञ्चम करभास्थि का मध्यस्थ या अन्तःपृष्ठ भी स्थालक से मुक्त है।

शिर प्रथम अंगुल्यस्थि के मूल के साथ मिला रहता है। यह उन्नतोदर है और इसके ऊपर एक बड़ा स्थालक है, जो अस्थि के सामने की ओर तक फैला हुआ है। हथेली को बन्द करने के समय अँगुल्यस्थियों के मूल स्थालकों के इस भाग पर पहुँच जाते हैं। शिर के आगे की ओर पिण्डक हैं जिन पर सन्धियों के कुछ बन्धन लगते हैं।

प्रथम करभास्थि (अंगुष्ठमूलशलाका)

यह अस्थि अन्य करभास्थियों से छोटी किन्तु अधिक दृढ़ है। इसका मूल एक ओर उन्नतोदर और दूसरी ओर नतोदर है।

१. Metacarpal Bones.

वह स्थान पर्याणक के अधःपृष्ठ से मिला रहता है। इसके बाहर की ओर एक पिण्डक है जिस पर अंगुष्ठापकर्षणी दीर्घा की कण्डरा का निवेश होता है। अस्थि का गात्र कुछ चिपटा हो गया है इस कारण इसमें पूर्व और पश्चात् दो पृष्ठ होते हैं। पूर्वपृष्ठ लम्बाई में नतोदर है। इसके बहिःस्थ धारा पर अंगुष्ठजापिनी[1] पेशी का निवेश होता है। उसके अन्तर्धारा से प्रथम शलाकान्तरीया पश्चिमा[2] पेशी के पार्श्व शिर का उदय होता है।
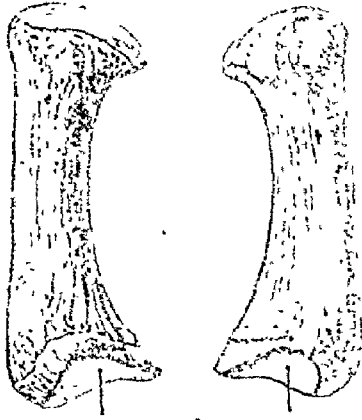
चित्र नं० ९५—प्रथम करभास्थि

शिर—दूसरी करभास्थियों की अपेक्षा शिर की गोलाई कम होती है। वह कुछ चिपटा दिखाई देता है। इसके पूर्वपृष्ठ पर दो छोटे-छोटे उभरे हुए पिण्डक दीखते हैं जो स्थालकों से आच्छादित हैं, जिनमें से बहिःस्थ स्थालक बड़ा होता है।

द्वितीय करभास्थि (तर्जनीमूलशलाका)

दूसरी करभास्थि अन्य सब करभास्थियों की अपेक्षा अधिक लम्बी है। इसका मूल भी अधिक चौड़ा है जिस पर चार स्थालक दिखाई देते हैं। इनमें से तीन स्थालक मूल के ऊर्ध्वपृष्ठ पर और

चित्र नं० ९६—द्वितीय करभास्थि

१. Opponens Pollicis. २. First Interosseous dorsalis.
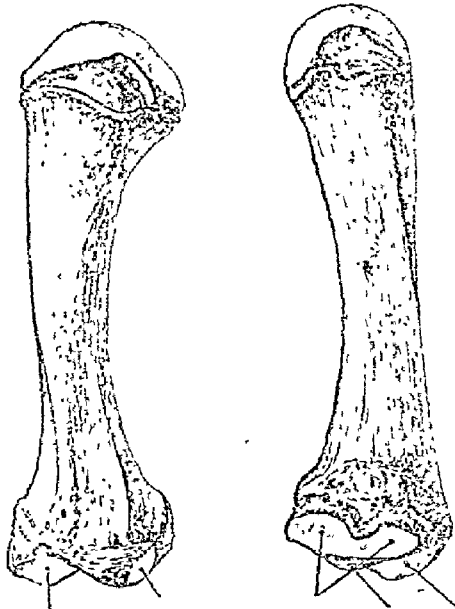
एक स्थालक मूल के पार्श्व पर भीतर की ओर स्थित है। ऊर्ध्वपृष्ठ पर के स्थालकों में से बहिःस्थ स्थालक, जो छोटा अण्डाकार और चिपटा है, पर्याणक के साथ सम्मेलन करता है। बीच का चौड़ा बड़ा स्थालक, कूटक के साथ मिलता है और अन्तःस्थालक का सम्मेलन मध्यकूट के साथ होता है। चौथा स्थालक तृतीय करभास्थि से मिलता है। मूल के पश्चिमपृष्ठ के पार्श्वभाग पर मणिबन्ध-प्रसारणी-बहिःस्था-दीर्घा और पूर्वपृष्ठ पर मणिबन्ध-सङ्कोचनी-बहिःस्था पेशियों का निवेश होता है।

तृतीय करभास्थि (मध्यमामूलशलाका)

तीसरी करभास्थि के मूल के पश्चात् और बहिःस्थ पृष्ठ के सङ्गम पर से एक छोटा नुकीला प्रवर्धन, जिसको **मणिक**[1] कहते हैं, निकलता है। प्रवर्धन के ठीक नीचे एक खुरदरा स्थान है जिस पर मणिबन्ध-प्रसारणी बहिःस्था ह्रस्वा[2] लगती है। इसके द्वारा अस्थि के बहिः और पश्चिमपृष्ठ सुगमता से पहिचाने जा सकते हैं। मूल ऊर्ध्वपृष्ठ के स्थालक के द्वारा मध्यकूट के साथ सम्मेलन करता है। मूल के दोनों ओर छोटे-छोटे स्थालक होते हैं जिनके द्वारा अस्थि बाहर की ओर दूसरी करभास्थि से और भीतर की ओर चौथी करभास्थि से मिली रहती है।
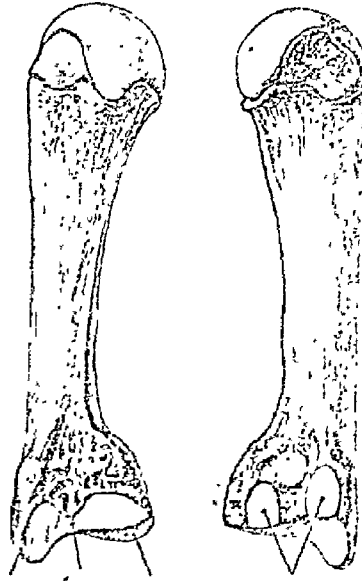
चित्र नं० ९७—तृतीय करभास्थि

चतुर्थ करभास्थि (अनामिकामूलशलाका)

यह तीसरी अस्थि से छोटी होती है। इसका मूल चतुष्कोण के समान होता है। मूल के ऊर्ध्व पृष्ठ पर स्थित स्थालक एक तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त है। अन्तःस्थालक फणाधर से

---

१. Styloid Process. २. Extensor Carpii radialis brevis.
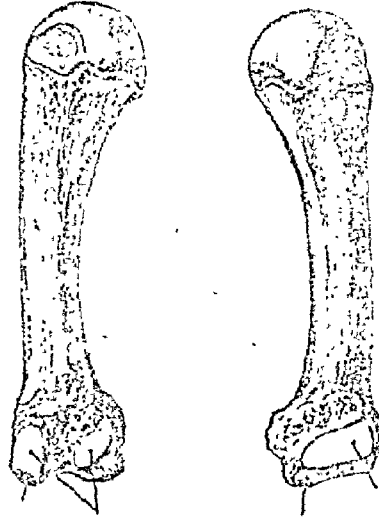
चित्र नं० ६८—चतुर्थ करभास्थि

मिलता है और बहिःस्थालक का सम्मेलन मध्यकूट से होता है। मूल के दोनों ओर तीसरी और पाँचवीं करभास्थि के लिए छोटे-छोटे दो स्थालक होते हैं।

पञ्चम करभास्थि (कनिष्ठामूलशलाका)

इसके मूल के ऊर्ध्वपृष्ठ पर एक स्थालक है जो फणाधर के साथ सम्मेलन करता है। मूल के अन्तःपृष्ठ पर एक पिण्डक है जिस पर मणिबन्ध-प्रसारणी अन्तःस्था की कण्डरा लगती है।
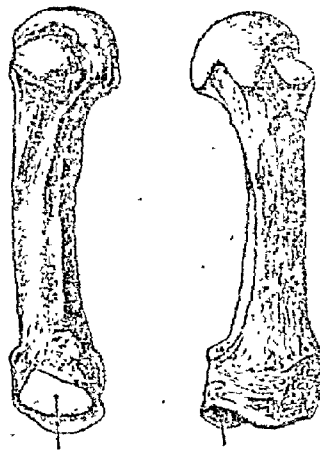
चित्र नं० ६९—पंचम करभास्थि

बहिःपृष्ठ पर स्थित स्थालक चौथी करभास्थि से मिला रहता है। अस्थि के पश्चात् पृष्ठ के बाहरी भाग पर चतुर्थ शलाकान्तरीय पश्चिमा पेशी[1] लगी हुई है।

करभास्थियों का सम्मेलन—प्रत्येक करभास्थि आगे की ओर एक अंगुल्यस्थि से मिलती है और मूल के द्वारा निम्नलिखित अस्थियों के साथ उनका सम्मेलन होता है।

प्रथम करभास्थि—पर्याणक।
द्वितीय ,, —पर्याणक, कूटक, मध्यकूट, तृतीय करभास्थि।
तृतीय ,, —मध्यकूट, दूसरी और चौथी करभास्थि।
चतुर्थ ,, —मध्यकूट, फणाधर, तीसरी और पाँचवीं करभास्थि।
पञ्चम ,, —फणाधर और चौथी करभास्थि।

करभास्थियों का विकास—प्रत्येक करभास्थि का दो केन्द्रों से विकास होता है। दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं करभास्थि में एक केन्द्र गात्र के लिए और दूसरा शिर के लिए उदय होता है। प्रथम करभास्थि में केन्द्र शिर में उदय न होकर मूल में उदय होता है। गात्र में भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में केन्द्र उदय हो जाता है। शिर और मूल दोनों में केन्द्र तीसरे वर्ष में उदय होते हैं। किन्तु यह भाग गात्र के साथ बीसवें वर्ष में जुड़ते हैं।

अंगुल्यस्थियाँ

पाँचों अँगुलियों में १४ अस्थियाँ होती हैं। अंगुष्ठ में दो होती हैं और शेष चार अँगुलियों में से प्रत्येक में तीन होती हैं। ये अस्थियाँ भी दीर्घ अस्थि की श्रेणी में गिनी जाती हैं। इनमें दो प्रान्त और एक गात्र होता है। अंगुष्ठ की केवल प्रथम अस्थि और शेष अँगुलियों की प्रथम और द्वितीय अस्थियाँ अपने दोनों सिरों पर ऊपर की ओर करभास्थि और नीचे की ओर अँगुली की अन्तिम अस्थि से मिली रहती हैं। इस कारण दोनों सिरों पर चौड़े स्थालक उपस्थित हैं। नीचे की ओर के स्थालक ऊपरी स्थालकों से छोटे हैं। इनके अन्तिम भाग पर दोनों ओर दो पिण्डक हैं जिनके बीच में एक परिखा है। अन्तिम पंक्ति की अस्थियाँ छोटी और त्रिकोणाकार हैं। इनका अग्रभाग कुछ चौड़ा और खुरदरा हो जाता है।

अस्थि-विकास—करभास्थियों की भाँति इनका विकास भी दो केन्द्रों से होता है। एक केन्द्रसे अस्थियों के गात्र और अधःप्रान्त और दूसरे केन्द्र से ऊर्ध्वप्रान्त बनते हैं। सब अस्थियों के गात्र का विकास आठवें सप्ताह में आरम्भ हो जाता है। ऊर्ध्वप्रान्त में कुछ समय के पश्चात् विकास आरम्भ होता है।

प्रथम पंक्ति की अस्थियों के ऊर्ध्व प्रान्त में तीसरे वर्ष के लगभग विकास आरम्भ होता है। दूसरी पंक्ति का विकास इसके एक वर्ष के पश्चात् होता है।

क्रियात्मक—अंगुल्यस्थियों का भग्न साधारण है। करभास्थियों का भी कभी-कभी भग्न हो जाता है। मणिबन्धकी छोटी अस्थियों का भी भग्न पाया जाता है। अन्य की अपेक्षा नौनिम और मध्यकूट का भग्न अधिक होता है।
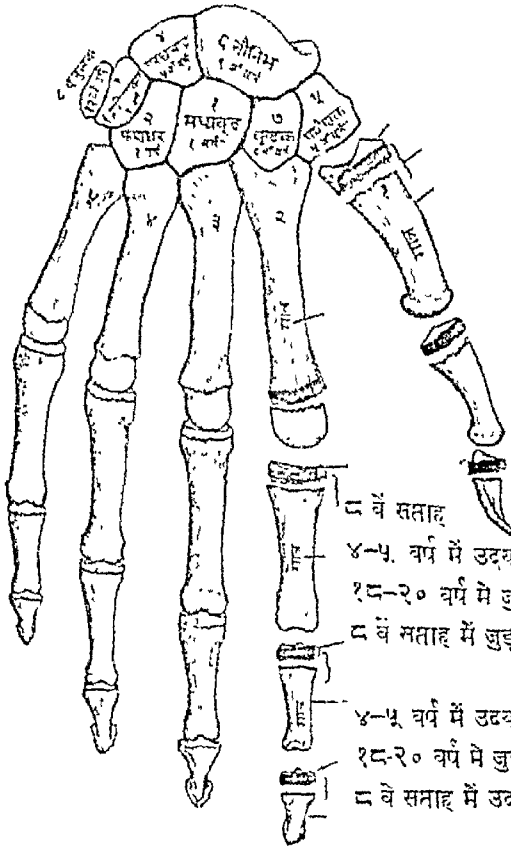
---

१. Fourth Interosseous dorsalis.

चित्र नं० १००—हाथ की अस्थियों का विकास

इन अस्थियों में स्नाय्वर्बुद[१] अधिक होता है।

---

१. Chondromata.

निम्न शाखा की अस्थियाँ

श्रोणिफलक[1] या नितम्बास्थि

यह अस्थि नितम्ब में दोनों ओर रहती है। कटि प्रान्त में पीछे की ओर टटोलने से उसका ऊपरी भाग प्रतीत किया जा सकता है जो पृष्ठवंश से पार्श्व तक फैला हुआ है। इस अस्थिका आकार क्रमहीन है। इसका ऊपर और नीचे का भाग चौड़ा है। किन्तु इन दोनों भागों के बीच का स्थान संकुचित है। आगे की ओर पेड़ू के प्रान्त में यह अस्थि दूसरी ओर की समान अस्थि से मिली रहती है। पीछे की ओर दोनों अस्थियाँ त्रिकास्थि से जुड़ी रहती हैं। इस प्रकार यह श्रोणिचक्र पूर्ण हो जाता है। इसके भीतर के स्थान को, जिसमें कई मुख्य अङ्ग रहते हैं, श्रोणिगुहा[2] या वस्तिगुहा कहते हैं। समस्त श्रोणिचक्र बाहर और भीतर से अनेक पेशियों से आच्छादित है। इस कारण गुहा गहरी हो जाती है और उसमें अङ्ग सुरक्षित रहते हैं।

वास्तव में यह अस्थि तीन भागों के मिलने से बनती है। ये तीनों भाग अस्थि के संकुचित भाग पर स्थित गहरे खात के चारों ओर आपस में मिलते हैं। इस गहरे खात को वंक्षणोदूखल[3] कहते हैं। इसके भीतर तीनों अस्थियों के मिलने के चिह्न स्पष्ट दिखाई देते हैं। वंक्षणोदूखल से ऊपर की ओर को फैला हुआ चौड़ा भाग, जिसके ऊपरी भाग को प्रतीत किया जा सकता है, जघनास्थि[4] कहलाता है। दूसरा भाग, जो वंक्षणोदूखल से पीछे और नीचे की ओर को निकला रहता है, कुकुन्दरास्थि[5] कहा जाता है। नितम्ब में नीचे की ओर एक चौड़ा अस्थि का भाग प्रतीत किया जा सकता है। वह एक पिण्डक है जहाँ पर कुकुन्दरास्थि के दोनों भाग आपस में मिल जाते हैं। एक भाग वंक्षणोदूखल से इस पिण्डक तक जाता है और दूसरा भाग इस पिण्डक से आगे और ऊपर की ओर जाकर भगास्थि के अधोगामी भाग के साथ मिलकर गवाक्ष[6] नामक छिद्र के नीचे की सीमा बना देता है। यह पिण्डक अस्थि का सबसे दृढ़ और मोटा भाग है।

श्रोणिफलक का तीसरा भाग, जो वंक्षणोदूखल से भीतर और नीचे की ओर को जाकर दूसरी ओर के समान भाग से मिलकर पेड़ू बनता है, भगास्थि[7] कहलाता है। कुकुन्दरास्थि के समान इसके भी दो भाग होते हैं। प्रथम भाग वंक्षणोदूखल से नीचे और आगे की ओर को उतरकर दूसरी ओर के समान भाग से मिलता है और दूसरा भाग इस सम्मेलन के स्थान से पीछे और नीचे की ओर को जाकर कुकुन्दरिका के भाग से मिलकर गवाक्ष की अधोसीमा बनाने में भाग लेता है। श्रोणिचक्रका आगे का भाग दोनों ओर की भगास्थियों के मिलने से बनता है।

---

१. Hip-Bone २. Pelvic cavity. ३. Acetabulum. ४. Ilium. ५. Ischium. ६. Obturator foramen. ७. Pubic-Bone.

जघनास्थि में भी दो भाग होते हैं। वंक्षणोदूखल से ऊपर की ओर का चौड़ा फैला हुआ भाग पक्ष[1] कहलाता है। यह भाग अन्तःपृष्ठ पर नीचे की ओर एक तीरणिका द्वारा, जो
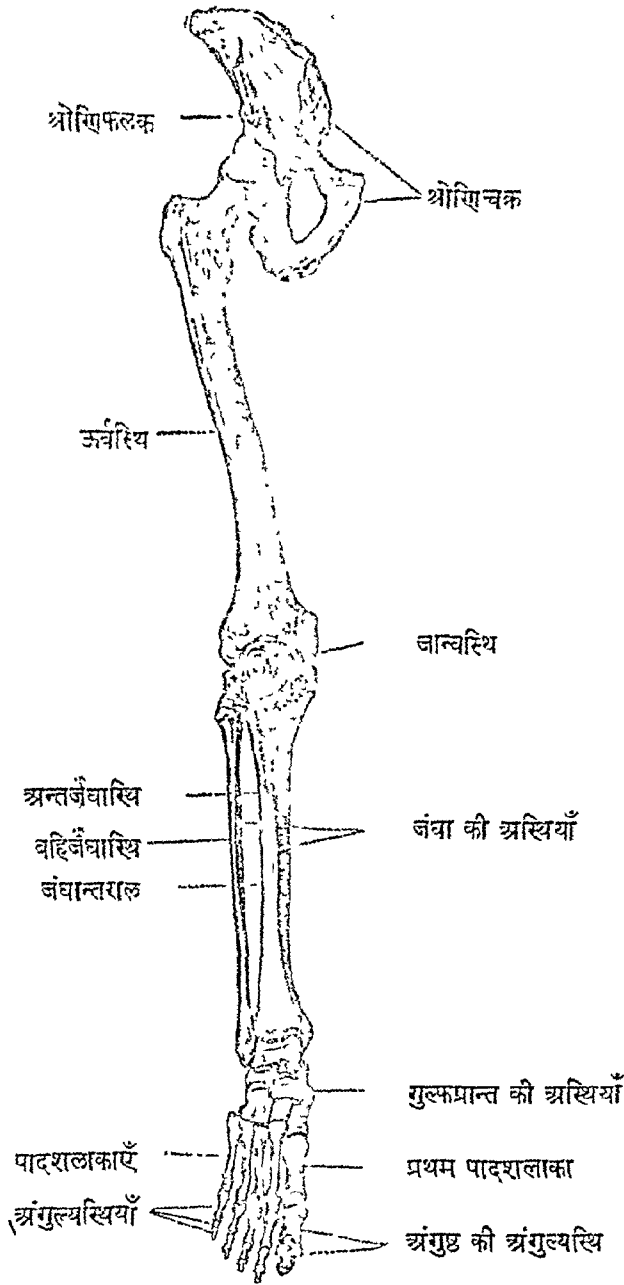
चित्र नं० १०१—निम्नशाखा की अस्थियाँ

वक्ररेखा[2] कहलाती है, परिमित है। बाह्य पृष्ठ पक्ष पर वंक्षणोदूखल तक फैला हुआ है। वक्ररेखा और वंक्षणोदूखल के ऊपरी किनारे से नीचे के भाग को गात्र[3] कहते हैं।

---

१. Ala. २. Arcuate line. ३. Body.
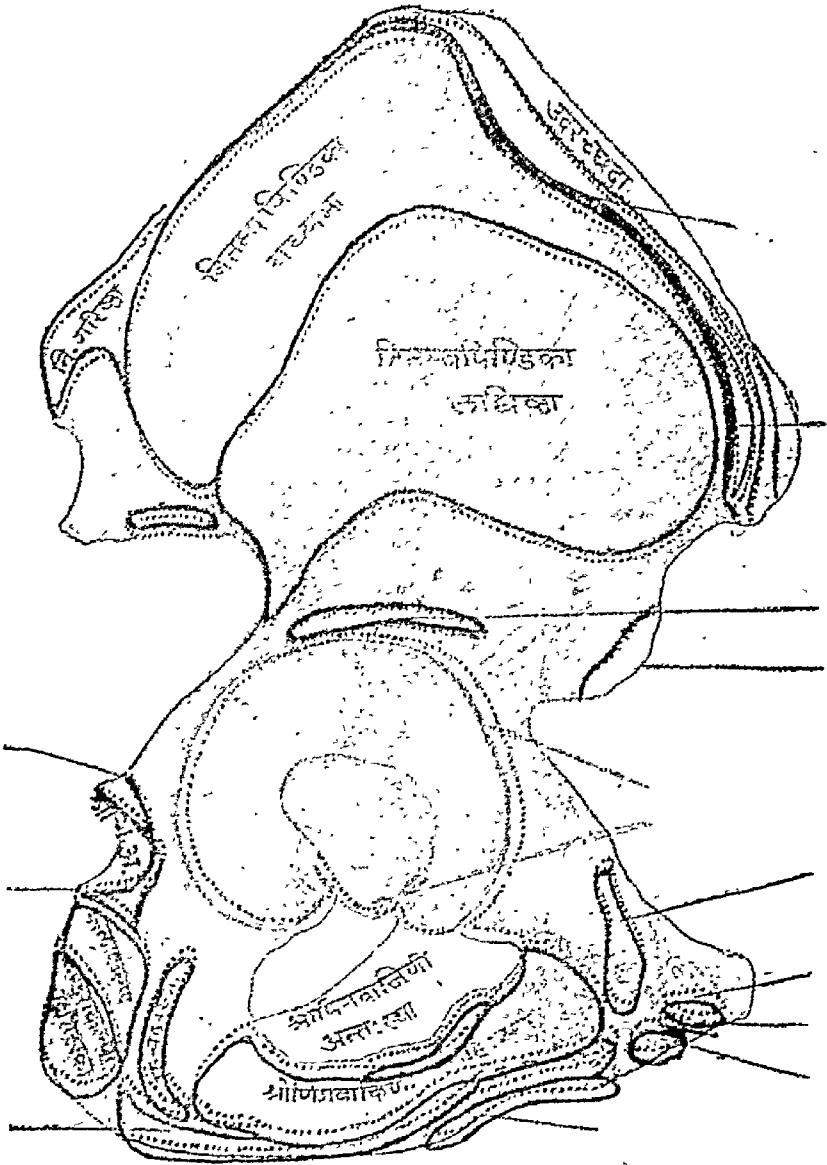
चित्र नं० १०२—दक्षिण नितंबास्थि का बहिःपृष्ठ

गात्र—यह वह छोटा भाग है जिसका बहिःपृष्ठ वंक्षणोदूखल के बनाने में भाग लेता है। इसके बहिः पृष्ठ पर अर्धचन्द्र स्थालक है जो वंक्षणोदूखल के भीतर रहता है। शेष भाग खुरदरा है। इस भाग का अन्तःपृष्ठ लघु श्रोणिगुहा की भित्ति बनाने में योग देता है। इससे श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था के कुछ सूत्र उदय होते हैं।

पक्ष—इसमें दो पृष्ठ और तीन धाराएँ हैं। पृष्ठों को बहिः और अन्तःपृष्ठ कहते हैं और धाराएँ पूर्व,

पश्चात् और ऊर्ध्व धाराओं के नाम से पुकारी जाती हैं। ऊर्ध्व धारा को शिखा या जघनधारा[1] के नाम से भी पुकारते हैं।

बहिःपृष्ठ—स्वाभाविक अवस्था में यह पृष्ठ पीछे और बाहर की ओर रहता है और दो स्थानों में विरुद्ध दिशाओं में मुड़े हुए होने के कारण अगले भाग में उन्नतोदर हो जाता है किन्तु पिछले भाग में नतोदर होता है।

ऊपर की ओर ऊर्ध्वधारा, नीचे की ओर वंक्षणोदूखल का ऊपरी किनारा, आगे की ओर पूर्वधारा और पीछे की ओर पश्चात्धारा से यह पृष्ठ परिमित है। ध्यान से देखने से इस पृष्ठ पर तीन मुड़ी हुई तीरणिकाएँ या रेखाएँ ज्ञात होती हैं, जिनके द्वारा पृष्ठ तीन भागों में विभक्त हो जाता है। इन रेखाओं या तीरणिकाओं को, उनकी स्थिति के अनुसार, अधः, पूर्व और पश्चिम नितम्बरेखाएँ कहते हैं।

अधोनितम्बरेखा[2] पूर्वाधःकूट के लगभग दो इंच ऊपर से आरम्भ होकर अन्य रेखाओं की भाँति मुड़ती हुई महागृध्रसीद्वार[3] तक चली जाती है। अधः और पूर्व नितम्बरेखाओं के बीच के स्थान से नितम्बपिण्डिका लघिष्ठा[4] पेशी का उदय होता है।

पूर्वनितम्बरेखा[5] पूर्वोर्ध्वकूट के लगभग दो इंच पीछे से आरम्भ होती है और पृष्ठ के बीच में होती हुई महागृध्रसीद्वार तक मुड़ती हुई चली जाती है। पूर्व और पश्चात् नितम्बरेखाओं के बीच के स्थान से, जो ऊपर की ओर ऊर्ध्वधारा से परिमित है, नितम्बपिण्डिका मध्यमा[6] पेशी का उदय होता है। कभी-कभी इस धारा के मध्य में एक पोषक छिद्र[7] भी पाया जाता है।

पश्चिमनितम्बरेखा[8] ऊर्ध्वधारा के सिरे या पश्चिमोर्ध्वकूट के लगभग दो इंच सामने से आरम्भ होकर नीचे को महागृध्रसीद्वार तक चली जाती है। पश्चिम रेखा के पीछे की ओर जो स्थान है उसके ऊपरी खुरदरे भाग से नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा[9] के कुछ सूत्रों का उदय होता है।

पक्ष का नीचे का भाग चिकना है, उस पर कोई पेशी नहीं लगती। अधोनितम्बरेखा और वंक्षणोदूखल के बीच में एक हलकी सी परिखा है जहाँ से ऊरुदण्डिका[10] की कण्डरा का उदय होता है।

अन्तःपृष्ठ—ऊपर की ओर ऊर्ध्वधारा या शिखा, नीचे की ओर वक्ररेखा, आगे की ओर पूर्वधारा और पीछे की ओर पश्चिमधारा से यह पृष्ठ परिमित है। वक्ररेखा पर **कटिलम्बिनी ह्रस्वा**[11] की कण्डरा निवेश करती है। समस्त पृष्ठ दो भागों में विभक्त है जिनमें से पूर्वभाग एक गहरे नतोदर खात के समान होने से जघनखात[12] कहलाता है। इस सारे स्थान से श्रोणिपक्षिणी[13] पेशी का उदय होता है। पृष्ठ का शेष भाग फिर दो भागों में विभक्त है जिनमें से नीचे के भाग का आकार कर्ण के समान है। शरीर में यह स्थान सूक्ति के एक पत्र द्वारा त्रिकास्थि के पार्श्व में स्थित समान आकार के स्थालक से मिला रहता है। ऊपर का भाग खुरदरा और उभरा हुआ है। यह जघनकूट[14] कहलाता है। इस पर **लघु पश्चिम त्रिकजघन-संयोजक**[15] स्नायु और त्रिकवंशच्छदा[16] पेशी लगी हुई है। कर्णाकार स्थालक के निचले भाग के बाहर की ओर एक हलकी सी प्रणाली है जिसमें **पूर्व त्रिक-जघन-संयोजक स्नायु**[17] का एक भाग लगता है।

---

१. Iliac crest. २. Inferior Gluteal Line. ३. Greater Sciatic Noth. ४. Glutæus minimus. ५. Anterior Gluteal Line. ६. Glutæus medius. ७. Nutrient foramen. ८. Posterior Gluteal Line. ९. Glutæus maximus. १० Rectus femoris. ११. Psoas minor. १२. Iliac fossa. १३. Iliacus. १४. Iliac Tuberosity. १५. Short Posterior Sacro-iliac Lig. १६. Sacrospinalis. १७. Anterior Sacro-iliac Lig.

चित्र नं० १०२—दक्षिण नितम्बास्थि का अन्तःपृष्ठ
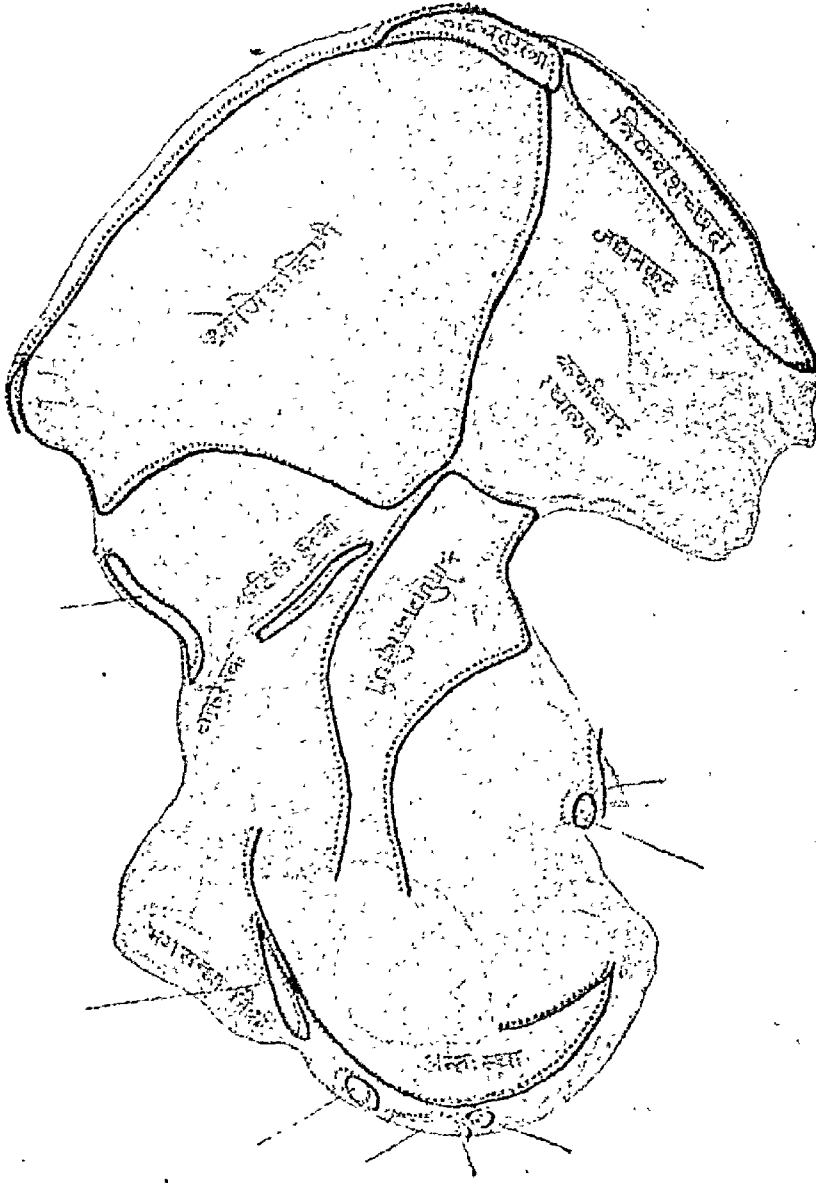
जघनधारा या शिखा—यह जघनास्थि का सबसे ऊँचा भाग है जो कटिप्रान्त में प्रतीत किया जा सकता है। यह सर्प की एक गेंडली की भाँति दो दिशाओं में मुड़ी हुई है। आगे की ओर का भाग भीतर की ओर से नतोदर और बाहर की ओर से उन्नतोदर है। किन्तु पिछला भाग इसके विरुद्ध भीतर की ओर से उन्नतोदर और बाहर की ओर से नतोदर है। यह धारा पूर्वोर्ध्वकूट से आरम्भ होकर पश्चिमोर्ध्वकूट पर समाप्त होती है। इसमें दो ओष्ठ हैं जिनके बीच में चौड़ा स्थान है। वहिरोष्ठ में पूर्वोर्ध्वकूटके लगभग दो इञ्च पीछे एक उठा हुआ पिण्डक दिखाई देता है। इस ओष्ठ में आगे से पीछे की ओर को ऊरुकञ्चुकाकर्षणी[1], उदरच्छदा आदिमा[2] और कटिपार्श्वच्छदा[3] पेशी तथा

१. Tensor fascia Latae. २. Obliquus Externus Abdominis. ३. Latissimus Dorsi.

समस्त ओष्ठ पर ऊरुकञ्चुकाप्रावरणी[१] लगी हुई है, अन्तरोष्ठ पर उदरच्छदा चरमा[२], कटिचतुरस्रा[३] कटिपृष्ठच्छदा कला[४], त्रिकवंशच्छदा, श्रोणिपच्छिणी और जघनच्छदा कला[५] लगी हुई हैं। दोनों ओष्ठों के स्थान में उदरच्छदा मध्यमा[६] पेशी लगी हुई हैं।

पूर्वधारा नतोदर है जिसके ऊपर और नीचे की ओर दो कूट हैं और उनके बीच में गहरा नतोदर खात है। ऊपर का अधिक स्पष्ट और तीव्र कूट पूर्वोर्ध्वकूट[७] कहलाता है। जघनधारा पूर्वोर्ध्वकूट पर आकर समाप्त होती है। इस कूट में दो धाराएँ उपस्थित होती हैं। बहिर्धारा पर ऊरुकञ्चुका प्रावरणी और ऊरुकञ्चुकाकर्षणी पेशी लगती हैं। अन्तर्धारा पर श्रोणिपच्छिणी पेशी लगी हुई है। कूट के सिरे से दीर्घायामा[८] पेशी का उदय होता है और वंक्षणीय स्नायु[९] भी लगता है। नीचे का कूट पूर्वाधःकूट[१०] कहलाता है जिस पर ऊरुदण्डिका[११] पेशी की सरल कण्डरा और जघनोरुक स्नायु[१२] लगते हैं

इन दोनों कूटों के बीच के गहरे खात से दीर्घायामा पेशी उदय होती है और खात के द्वारा ऊरुपार्श्विका त्वगीया[१३] नाड़ी जाती है। पूर्वाधःकूट से नीचे की ओर उतरकर भीतर की ओर एक हलकी सी परिखा दिखाई देती है जिसके नीचे एक छोटा सा उत्सेध है जो जघनिका और भगास्थि के संयोजन-स्थान को प्रदर्शित करती है परिखा पर कटिलम्बिनी दीर्घा[१४] और श्रोणिपच्छिणी पेशी रहती हैं।

पश्चिमधारा छोटी है। ऊरु में भी पश्चिमोर्ध्व[१५] और पश्चिमाधः[१५] कूट हैं, और उनके बीच में एक नतोदर खात है। पश्चिमोर्ध्वकूट पर दीर्घ पश्चिम त्रिक जघनसंयोजक[१६] स्नायु का एक भाग और मेरुधारिणी या बहोदरी[१७] पेशी लगी हुई हैं। पश्चिमाधःकूट के नीचे महागृध्रसीद्वार स्थित है।

कुकुन्दरास्थि—यह अस्थि का निचला और भीतर का भाग है। यह अस्थि तीन भागों में विभक्त की जा सकती है—गात्र, ऊर्ध्व[१८] और अधःशृङ्ग[१९]।

गात्र—वंक्षणोदूखल के बनाने में भाग लेता है। यह अस्थि का सबसे मोटा भाग है। वंक्षणोदूखल के भीतर इसका जो पृष्ठ रहता है वह चिकना है क्योंकि उस पर ऊर्वस्थि का शिर लगता है। गात्र का अन्तःपृष्ठ सम और चिकना है और गवाक्ष के ऊपर की सीमा तक फैला हुआ है। इस पृष्ठ से श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था[२०] के कुछ सूत्रों का उदय होता है। इसकी पश्चिमधारा से एक नुकीला प्रवर्धन निकला हुआ है जिसे कुकुन्दरकूट[२१] कहते हैं। इस कूट के बहिःपृष्ठ पर यमला उत्तरा[२२] पेशी और अन्तःपृष्ठ पर श्रोण्याभ्यन्तरिक कला, पायुधारिणी[२३] और अनुत्रिकिणी[२४] पेशियाँ लगी हुई हैं। कूट की नोक पर त्रिक-कूटीय स्नायु[२५] लगा हुआ है। इस कूट के ऊपर और नीचे दोनों ओर दो खात हैं जो स्नायु द्वारा छिद्रों के रूप में परिणत हो जाते हैं। ऊपर का बड़ा खात महागृध्रसीद्वार[२६] कहलाता है। इस खात के दोनों सिरों पर अर्थात् कुकुन्दरकूट के सिरे और खात के ऊपरी सिरे पर त्रिककूटीय स्नायु के लगने से खात एक छिद्र के रूप में परिणत हो जाता है, जिसके द्वारा निम्न-लिखित रचनाएँ एक ओर से दूसरी ओर को जाती हैं।

---

१. Fascia Lata. २. Transversus Abdominis. ३. Qadratus Lumborum. ४. Lumbodorsal fascia. ५. Fascia Liaca. ६. Obliquus Internus Abdominis. ७. Anterior Superior Iliac Spine. ८. Sartorius. ९. Inguinal Lig. १०. Anterior Inferior Iliac spine. ११. Rectus femoris. १२ Illeod-femoral Lig. १३. Lateral femoral cutaneous Nerve. १४. Psoas major. १५. Posterior Superior. and Inferior Spine. १६. Long Posterior Sacro-iliac Lig. १७. Multifidus. १८—१९. Superior and Inferior Ramus. २०. Obturator Internus. २१. Ischial Spine. २२. Gamellus Superior. २३. Levator Anii. २४. Coccygeus. २५. Sacro Spinal Lig. २६. Pelvic fascia.

शुण्डिका[1] पेशी, उत्तर और अधर नितम्बिका धमनी और शिराएँ तथा नाड़ियाँ[2], गृध्रसी नाड़ी[3], ऊरुपश्चिमा त्वगीया नाड़ी[4], गुदोपस्थिका आन्तरिका धमनी और शिराएँ[5], गुदोपस्थिका नाड़ी[6] श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था और ऊरुचतुरस्रा[7] पेशियों की नाड़ियाँ।

उत्तर और अधोनितम्बिका धमनी और शिराएँ तथा नाड़ियाँ शुण्डिका पेशी के ऊपर से एवं अन्य रचनाएँ उसके नीचे होकर निकलती हैं। कूट के नीचे की ओर स्थित लघुगृध्रसीद्वार सृक्कि से ढका रहता है। यह खात भी त्रिककूटीय और त्रिकपिण्डीय[8] बन्धनों के द्वारा छिद्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जिसके द्वारा श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था की कण्डरा, उसकी नाड़ी, गुदोपस्थिका आन्तरिका धमनी और शिराएँ और गुदोपस्थिका नाड़ी जाती हैं।

ऊर्ध्वशृङ्ग गात्र से पीछे और नीचे की ओर को निकला हुआ है। इसमें तीन पृष्ठ हैं—बहिः, अन्तः और पश्चिम। पश्चिम पृष्ठ एक चौड़े और मोटे पिण्डक के रूप में नीचे की ओर स्थित है और नितम्ब के निचले भाग को दबाने से प्रतीत किया जा सकता है।

बहिःपृष्ठ कुछ चतुष्कोणाकार है। इसके ऊपर की ओर एक परिखा है जिसमें श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था[9] की कण्डरा रहती है। नीचे की ओर पृष्ठ अधःशृङ्ग के बहिःपृष्ठ से मिला हुआ है। आगे की ओर गवाक्ष की पश्चिमधारा है और पीछे की ओर पश्चात्-पृष्ठ से भिन्न करनेवाला एक उठा हुआ किनारा है। इस किनारे के आगे के भाग से ऊरुचतुरस्रा और उसके तनिक सामने से श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था के कुछ सूत्र उदय होते हैं। इनके नीचे की ओर से ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा[10] के एक भाग का उदय होता है।

अन्तःपृष्ठ चौड़ा और चिकना है। इसके नीचे की ओर एक तीरणिका है जिस पर त्रिकपिण्डीय स्नायु का एक भाग लगता है। इस तीरणिका के आगे की ओर के स्थान से उपस्थमूलच्छदा उत्ताना[11] और शिश्नप्रहर्षणी[12] पेशियों का उदय होता है।

पश्चात्पृष्ठ—यह कुकुन्दरपिण्ड[13] के नाम से भी पुकारा जाता है। यह पृष्ठ अण्डाकार या चतुष्कोणाकार है और एक तीरणिका के द्वारा ऊपर और नीचे के दो भागोंमें विभक्त है। नीचे का त्रिकोणाकार भाग फिर एक हलकी तीरणिका के द्वारा, जो उसके शिखर से आधार तक जाती है, दो भागों में विभाजित हो जाता है, जिसके बाहरी भाग पर ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा और भीतर के भाग पर त्रिकपिण्डीय स्नायु लगता है। मध्यतीरणिका से ऊपर का जो भाग है उसके फिर, एक वक्ररेखा के द्वारा, दो भाग हो जाते हैं। उनमें से ऊपर और बाहर के भाग से कलाकल्पा[14] पेशी और नीचे और भीतर के भाग से कण्डराकल्पा[15] और द्विशिरस्का और्वी[16] के दीर्घ शिर का उदय होता है।

अधःशृङ्ग कुकुन्दरास्थि का वह भाग है जो भगास्थि के समान शृङ्ग से मिलकर गवाक्ष की अधोसीमा के बनाने में भाग लेता है। इस भाग में दो पृष्ठ और दो धाराएँ हैं। जो पृष्ठ ऊपर या बाहर की ओर को रहता है वह बहिःपृष्ठ और भीतर की ओर वाला अन्तःपृष्ठ कहा जाता है।

बहिःपृष्ठ खुरदरा है। उससे श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था और ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा के कुछ

---

१. Pyriformis. २. Superior and Inferior Gluteal Vessels and Nerves. ३. Sciatic Nerve. ४. Posterior femoral Cutaneous Nerve. ५. Internal Pudendal Vessels. ६. Pudendal Nerve. ७. Quadratus femoris. ८. Sacrotuberous Lig. ९. Obturator Externus. १०. Adductor magnus. ११. Transversus Perinaei Superficialis. १२. Ischio-Cavernosus. १३. Ischial Tuberosity. १४. Semi-membranosus. १५. Semi-tendinosus. Biceps femoris. १६. Sphincter Urethræ Membranaceæ.

सूत्रों का उदय होता है। अन्तःपृष्ठ केवल पेशियों से आच्छादित रहता है इससे मूत्रमार्गसंकोचनी[1] पेशी का भी उदय होता है। धाराओं के नाम ऊर्ध्व और अधः धारा हैं।

ऊर्ध्वधारा, जो गवाक्ष की ओर रहती है, पतली और नुकीली है।

अधोधारा चौड़ी और मोटी है। उसमें दो तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं जिनके बीच में कुछ स्थान है। बाहर की तीरणिका पर मूलाधारच्छदा उत्ताना कला[2] लगी हुई है। भीतर की तीरणिका पर मूत्रजननप्राचीरा[3] की अधोकला लगती है। पीछे की ओर दोनों तीरणिकाएँ जहाँ मिलती हैं उसके तनिक आगे उपस्थमूलच्छदा उत्ताना पेशी का उदय होता है और कला के दोनों भाग भी इस पेशी के पीछे मिलकर एक स्तर बना देते हैं। तीरणिकाओं के बीच के स्थान पर भी उपस्थमूलच्छदा उत्ताना और उसके आगे शिश्न-प्रहर्षणी पेशियाँ लगती हैं।

भगास्थि—कुकुन्दरास्थि की भाँति यह भी ऊर्ध्व और अधः शृङ्ग तथा गात्र में विभक्त है।

गात्र कुकुन्दरास्थि की अपेक्षा छोटा है। वंक्षणोदूखल के बनाने में यह भी भाग लेता है। इसका अन्तःपृष्ठ, श्रोणिगुहा के भीतर की ओर, पेशियों से आच्छादित रहता है। इससे श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था का कुछ भाग उदय होता है। बहिःपृष्ठ पर कोई पेशी नहीं है। इसके पूर्वपृष्ठ पर एक खुरदरा उठा हुआ भाग है जो जघनकङ्कतिकाकूट या जघनभगसन्धानोत्सेध[4] कहलाता है। यह भाग जघनास्थि और भगास्थि के सम्मेलन-स्थान का सूचक है।

ऊर्ध्वशृङ्ग गात्र से भीतर की ओर को जाकर बीच में दूसरी ओर की अस्थि के समान शृङ्ग से मिल जाता है। इसको साधारणतया दो भागों में विभाजित किया जाता है—एक मध्यस्थ चतुष्कोणाकर चिपटा भाग और दूसरा पार्श्वक त्रिफलक के समान संकुचित पतला भाग। मध्यस्थ भाग में दो पृष्ठ और तीन धाराएँ हैं। बहिःपृष्ठ नीचे और बाहर की ओर रहता है और इस पर से अग्रलिखित पेशियों का उदय होता है। ऊपर के मध्यस्थ कोण से ऊरुसंव्यूहनी दीर्घा[5], उसके पीछे श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था, ऊरुसंव्यूहनी लघ्वी[6] और ऊर्वन्तःपट्टिका[7]। अन्तःपृष्ठ ऊपर से नीचे की ओर को उन्नतोदर किन्तु एक ओर से दूसरी ओर को नतोदर और चिकना है तथा लघु श्रोणिगुहा की पूर्व भित्ति बनाता है। इस पर से पायुधारिणी और श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था पेशी का उदय होता है और भगपौरुषिक बन्धन[8] तथा मूत्राशय के कुछ पेशीसूत्र लगते हैं।

तीन धाराओं के नाम अन्तः, पार्श्व और ऊर्ध्वधारा हैं।

अन्तर्धारा वह है जो दूसरे ओर की अस्थि के साथ मिली रहती है। इसका आकार अण्डे के समान है। इस पर कई हलकी परिखाएँ दिखाई देती हैं जो शरीर में सृक्ति से ढकी रहती हैं।

पार्श्वधारा नुकीली और पतली है और गवाक्ष के पार्श्विक और नीचे के भाग में रहती है। इसको गवाक्षशिखा[9] भी कहते हैं। इस पर गवाक्षकला[10] लगी रहती है।

ऊर्ध्वधारा—इस पर एक उठा हुआ पिण्डक है जिसे भगकूट[11] कहते हैं। इससे दो तीरणिकाएँ बाहर की ओर जाती है। ऊपर की तीरणिका, जिसे बस्तिकण्ठिका रेखा[12] कहते हैं, ऊपर और बाहर की ओर जाकर वक्ररेखा[13] से मिल जाती है। नीचे की तीरणिका बाहर और नीचे की ओर मुड़ती हुई वंक्षणोदूखलिक[14] कोटर के सामने पहुँच जाती है। भगकूट से भीतर की ओर को भी एक तीर-

१. Sphincter urethræ. २. Superficial Perinæal Fascia (fascia of colles). ३. Inferior fascia of Urogenital Diaplragm. ४. Iliopectineal or Ilio-Pubic eminence. ५. Adductor Lougus. ६. Adductor Brevis. ७. Gracilis. ८. Puboprostatic Lig. ९. Obturator crest. १०. Obturator membrane. ११. Pubic Tubercle. १२. Pecten Pubis. १३ Arcuate Line. १४. Acetabular Notch.

खिका जाती है जिसे भगशिखा[1] कहते हैं, यह मध्यस्थ भाग की अन्तर्धारा से मिल जाती है। इस पिण्डक पर वंक्षणीय बन्धन का एक भाग, वस्तिकण्ठिका रेखा पर अनुवंक्षणीय बन्धन[2] और भगशिखा पर बहिर्वंक्षणीय छिद्र[3] का ऊर्ध्वशृंग लगता है। इनके पीछे भगशिखा और वस्तिकण्ठिका रेखा के कुछ भाग पर उदरच्छदा मध्यमा और चरमा की संयुक्त कण्डरा लगती है तथा इस संयुक्त कण्डरा के पीछे की ओर भगशिखा से वस्तिचूडिका[4] और उदरदण्डिका[5] के पार्श्वशिर का उदय होता है।

पार्श्विक भाग में तीन पृष्ठ हैं। पूर्वोत्तरपृष्ठ त्रिकोणाकार है। यह पीछे की ओर वस्तिकण्ठिका रेखा, आगे की ओर भगकूट से वंक्षणोदूखलिक कोटर तक जानेवाली तीरणिका और पार्श्व में जघन-कङ्कतिकाकूट से परिमित है। इसका पार्श्वभाग चौड़ा और कुछ गोल है किन्तु मध्यस्थ भाग संकुचित है। वस्तिकण्ठिका रेखा और उसके सामने अस्थि के संकुचित भाग से कङ्कतिका[6] पेशी का उदय होता है।

अधःपृष्ठ में भीतर की ओर एक परिखा दिखाई देती है जिसके द्वारा श्रोणिगवाक्षिणी धमनी और शिराएँ[7] तथा नाड़ी[8] जाती हैं। इस पृष्ठ का किनारा गवाक्षछिद्र की सीमा बनाने में भाग लेता है।

पश्चिमोत्तरपृष्ठ भीतर की ओर रहता है और चिकना है। इस पर श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था के कुछ सूत्र लगते हैं। यह पृष्ठ लघु श्रोणिगुहा की सीमा का कुछ भाग बनाता है।

अधःशृङ्ग ऊर्ध्वशृङ्ग के मध्यस्थ भाग से पीछे और बाहर को उतरनेवाले चपटे पतले भाग का नाम है। इसमें दो धाराएँ और दो पृष्ठ हैं—अन्तः और पार्श्व धारा, बहिः और अन्तः पृष्ठ।

अन्तर्धारा दृढ़ और चौड़ी है। इस पर दो तीरणिकाएँ हैं और उनके बीच में कुछ स्थान है। ये दोनों तीरणिकाएँ कुकुन्दरिका के अधःशृङ्ग की समान धाराओं पर चली जाती हैं। इनमें से बहिःतीरणिका पर मूलाधारच्छदा उत्ताना कला और भीतरी तीरणिका पर मूत्रजननप्राचीरा की निम्न कला लगी हुई है। पार्श्वधारा पतली और नुकीली है और गवाक्ष की अधःसीमा बनाने में भाग लेती है जिस पर गवाक्षकला लगती है।

बहिःपृष्ठ खुरदरा है। इस पर से ये पेशियाँ उदय होती हैं—श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था पार्श्वधारा के पास से, ऊर्वन्तःपट्टिका मध्यस्थ धारा के पास से और इन दोनों के बीच से ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा और लघ्वी।

अन्तःपृष्ठ चिकना है। इस पर से श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था और मूत्रमार्गसङ्कोचनी का उदय होता है।

वंक्षणोदूखल श्रोणिफलक के तीनों भागों के सम्मेलन-स्थान पर एक गहरा प्याले के आकार का गढ़ा है जिसमें, स्वाभाविक अवस्था में, ऊर्वस्थि का शिर रहता है। यह वंक्षणोदूखल नीचे की ओर से अपूर्ण है जहाँ उदूखल के दोनों सिरों के बीच में एक चौड़ी नलिका है। वह वंक्षणोदूखलिक कोटर[9] कहलाता है। इसके दोनों सिरों पर एक बन्धन लगता है जिसके द्वारा यह कोटर एक छिद्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस छिद्र के द्वारा पोषक धमनियाँ सन्धि के भीतर प्रविष्ट होती हैं। वंक्षणोदूखल के भीतर देखने से भीतरी पृष्ठ दो भागों में विभाजित दीखता है। इसके चारों ओर चिकना स्थालकपृष्ठ है जो ऊर्वस्थि के शिर के साथ मिलता है। उसके बीच में तनिक गहराई पर वह भाग है जिसमें कई छिद्र दिखाई देते हैं। यह भाग वंक्षणोदूखलखात[10] कहलाता है। इसमें वसा की एक कवलिका रहती है।

---

१. Pubic crest. २. Lacunar Lig. ३. Superior crus of Subcutaneous Inguinal ring. ४. Pyramidalis. ५. Rectus Abdominis. ६. Pectineus. ७-८. Obturator Vessels and Nerve. ९. Acetabular Notch. १०. Acetabular fossa.

गवाक्ष[1]—वंक्षणोदूखल के नीचे स्थित अण्डाकार और त्रिकोणाकार बड़े छिद्र को गवाक्ष कहते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में यह छिद्र बड़ा होता है। इसके किनारों पर दृढ़ कला लगी रहती है जिसे **गवाक्षकला** कहते हैं। इस छिद्र में ऊपर की ओर एक परिखा है जो एक बन्धन के द्वारा नलिका के रूप में परिवर्तित हो जाती है और जिसके द्वारा श्रोणिगवाक्षिणी धमनी, नाड़ी और शिराएँ जाती हैं। इसको **गवाक्षिणी परिखा**[2] कहते हैं।

अस्थिविकास आठ केन्द्रों से होता है जिनमें से तीन प्राथमिक केन्द्र जघनास्थि, कुकुन्दरास्थि और भगास्थि के लिए तथा पाँच गौण केन्द्र जघनधारा, पूर्वाधःकूट, कुकुन्दरपिण्ड, भगसन्धानिका और वंक्षणोदूखल के तल के Y की आकृतिवाले भाग के लिए अग्र-लिखित क्रम से उदय होते हैं—

१—जघनास्थि के निचले भाग में महागृध्रसीद्वार के तनिक ऊपर—नवाँ सप्ताह (भ्रूणावस्था)।

२—कुकुन्दरास्थि के ऊर्ध्वशृङ्ग में— तीसरा महीना।

३—भगास्थि के ऊर्ध्वशृङ्ग में— ४-५ महीना।
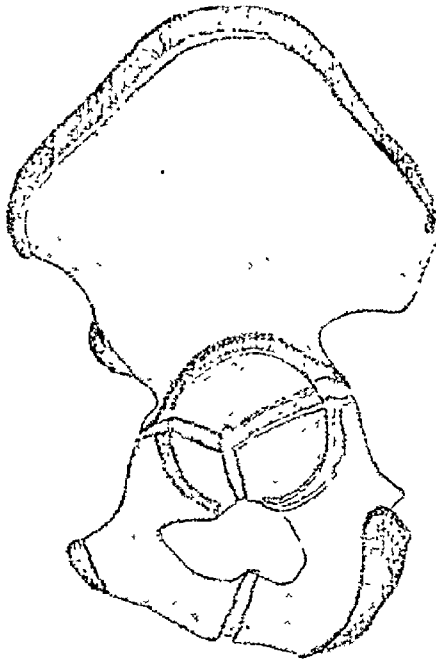
चित्र नं० १०४—श्रोणिफलक का विकास

जन्म के समय तीनों केन्द्र एक दूसरे से बिलकुल पृथक् रहते हैं। सातवें या आठवें वर्ष में कुकुन्दरास्थि और भगास्थि के अधःशृङ्ग पूर्णतया विकसित होकर जुड़ जाते हैं। तेरहवें या चौदहवें वर्ष तक इतना विकास हो चुकता है कि वंक्षणोदूखल के तल में ये तीनों भाग केवल Y आकार के स्फटिकपत्र के द्वारा पृथक् रह जाते हैं। इस भाग में भी विकासकेन्द्र उदय हो जाते हैं और धीरे-धीरे यहाँ भी अस्थि बनने लगती है। जघनास्थि और भगास्थि १८ वर्ष की आयु में जुड़ जाती हैं। जिस केन्द्र द्वारा ये भाग जुड़ते हैं वही वंक्षणोदूखल का भगास्थि का भाग बना देता है। इसके पश्चात् जघनास्थि और कुकुन्दरास्थि—और अन्त को कुकुन्दरास्थि और भगास्थि—जुड़ती हैं। १८ से २० वर्ष तक में अन्य सब भाग भी विकसित हो जाते हैं और २० से २५ वर्ष तक में सब आपस में जुड़ जाते हैं।

---

१. Obturator foramen. २. Obtnrator groove.

सम्मेलन—इस अस्थि का तीन अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। दूसरी ओर की अस्थि, त्रिकास्थि और ऊर्वस्थि।

श्रोणिगुहा या वस्तिगुहा

दोनों ओर के श्रोणिफलकों के आगे और पार्श्व में और त्रिकास्थि के पीछे की ओर से मिलने से श्रोणिचक्र बनता है। इसके भीतर के स्थान को श्रोणिगुहा या वस्तिगुहा[१] कहते हैं। इस गुहा को पूर्ण करने में त्रिकास्थि के नीचे की ओर लगी हुई अनुत्रिकास्थि या पुच्छास्थि भी भाग लेती है।
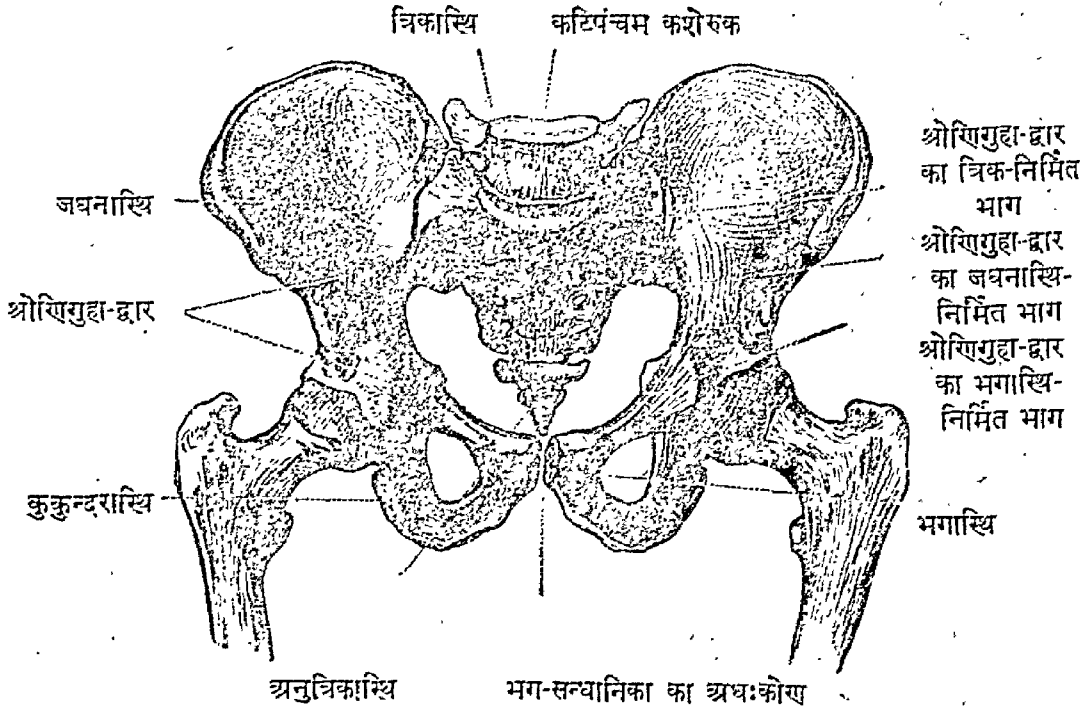
चित्र नं० १०५—पुरुष-श्रोणिगुहा

यदि सम्पूर्ण श्रोणिगुहा को ऊपर से देखा जाय तो एक तीरणिका, ऊपर के चौड़े फैले हुए भाग को नीचे की ओर से परिमित करती हुई दीखेगी। यह तीरणिका वक्ररेखा और वस्ति-कण्ठिका रेखाओंसे बनती है। यह तीरणिका ऊपर के भाग महाश्रोणिगुहा[२] और नीचे के भाग लघुश्रोणिगुहा[३] को एक दूसरे से पृथक् करती है। इस प्रकार वक्ररेखा और वस्तिकण्ठिका रेखा लघुश्रोणिगुहा के ऊपरी द्वार, जिसको प्रवेशद्वार[४] कहते हैं, की परिधि बनाती हैं। उसी प्रकार इस लघुगुहा का, नीचे की ओर, निर्गमद्वार[५] होता है। इन दोनों द्वारों के बीच में गुहा होती है।

महाश्रोणिगुहा आगे की ओर अपूर्ण होती है। जघनपक्षों के पूर्व भागों के बीच में अन्तर रहता है। पीछे की ओर भी पक्ष और त्रिकास्थि के बीच में कुछ अन्तर होता है। यह भाग अन्त्रियों के बहुत से भाग को आश्रय देता है।

---

१. Pelvis. २. Greater Pelvis ३. Lesser Pelvis. ४. Inlet. ५. Outlet.

लघुश्रोणिगुहा स्त्रियों में विशेष महत्त्व का स्थान है क्योंकि प्रसव के समय बच्चा लघुगुहा में होता हुआ नीचे के निर्गमद्वार के द्वारा निकलता है। इस कारण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह गुहा अथवा समस्त श्रोणिगुहा अधिक चौड़ी होती है। जब गुहा की रचना में कोई विकृति होती है तो प्रसव में कठिनता उत्पन्न हो जाती है। इस कारण प्रसूति-शास्त्र के विद्यार्थी को इस गुहा की रचना और प्रवेशद्वार तथा निर्गमद्वार के भिन्न-भिन्न व्यासों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए।
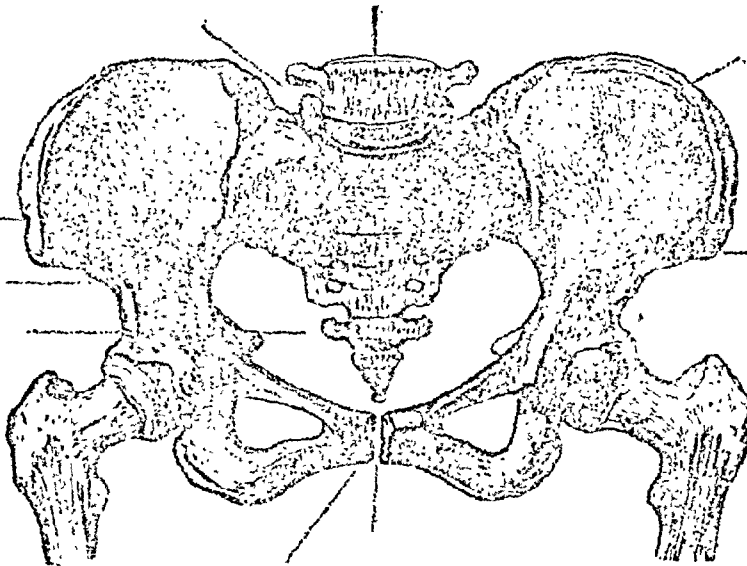
चित्र नं० १०६—स्त्री-श्रोणिगुहा

स्त्रियों की श्रोणिगुहा में निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं—

१—अस्थियाँ हलकी और पतली होती हैं।

२—मांस-पेशियों के चिह्न पुरुषों की अपेक्षा कम स्पष्ट होते हैं।

३—श्रोणिगुहा चौड़ी और कम गहरी होती है।

४—लघुश्रोणिगुहा का प्रवेशद्वार बड़ा और गोल होता है।

५—त्रिकास्थि छोटी और चौड़ी होती है और उसमें मुड़ाव कम होता है।

६—जघनिकाओं के पक्ष अधिक मुड़े हुए या ढलवाँ न होकर फैले हुए होते हैं जिसमें दोनों ओर के पूर्वोर्ध्वकूटों के बीच में अधिक अन्तर होता है। इस कारण स्त्रियों के नितम्ब अधिक चौड़े दिखाई देते हैं।

७—गवाक्ष छोटे और त्रिकोणाकार होते हैं।

८—लघुगुहा का निर्गमद्वार बड़ा होता है और पुच्छास्थि अधिक सुगमता से पीछे की ओर को मुड़ जाती है।

९—गृध्रसीद्वार चौड़े और कम गहरे होते हैं।

१०—कुकुन्दरपिण्डों के बीच में अधिक अन्तर होता है। इसी प्रकार वंक्षणोदूखल भी अधिक दूरी पर स्थित होते हैं।

११—भगसन्धानिका कम गहरी और चौड़ी होती है और उसके नीचे का स्थान भी अधिक चौड़ा होता है।

इन सब विशेषताओं के कारण प्रसव में कठिनता नहीं होती। गुहा के द्वारा बच्चे का शिर सुगमता से निकल जाता है।

ऊर्वस्थि[1]

प्रगण्डिका के समान निम्नशाखा में श्रोणिचक्र से मिली हुई यह शरीर की सबसे बड़ी अस्थि है। खड़े होने के समय यह अस्थि बिलकुल सीधी नहीं रहती। ऊपर की ओर दोनों अस्थियों में अधिक अन्तर रहता है, किन्तु वे ऊपर से भीतर और नीचे की ओर को मुड़ी हुई रहती हैं जिससे दोनों जानु के पास एक दूसरी के समीप शरीर की मध्यरेखा के पास आ जाती हैं।

यह एक अत्यन्त दृढ़ अस्थि है जिसमें ऊर्ध्व और अधः दो प्रान्त और एक गात्र होता है।

ऊर्ध्वप्रान्त में शिर, ग्रीवा, महाशिखरक[2] और लघुशिखरक[3] होते हैं।

शिर गोल और चिकना है। भीतर की ओर इसके चिकने भाग में एक गढ़ा है जिसे ऊरुशिरस्कखात[4] कहते हैं। इसमें दीर्घबन्धन[5] लगता है। शिर का यह समस्त चिकना भाग वंक्षणोदूखल के भीतर रहता है।

ग्रीवा शिर को गात्र और शिखरकों के साथ जोड़ती है। इसका शिर के पास का मध्यस्थ भाग संकुचित किन्तु पार्श्विक भाग चौड़ा होता है। ग्रीवा के नीचे का किनारा ऊपर के किनारे की अपेक्षा टेढ़ा है और जहाँ वह गात्र के साथ जुड़ता है वहाँ लगभग १२५° अंश का एक कोण बनाता है जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में और स्त्री-पुरुषों में भिन्न होता है। स्त्रियों की श्रोणिगुहा के अधिक चौड़ी होने के कारण यह कोण घट जाता है और वह लगभग समकोण के बराबर रह जाता है। यह कोण शैशवावस्था में सबसे बड़ा होता है। ज्यों ज्यों आयु बढ़ती जाती है त्यों-त्यों यह कोण भी छोटा होता जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रीवा गात्र से कुछ आगे की ओर को भी झुकी हुई है। ग्रीवा के पूर्वपृष्ठ पर अनेकों छिद्र दिखाई देते हैं जिनमें होकर धमनियों की शाखाएँ अस्थि के भीतर प्रविष्ट होती हैं। इस पृष्ठ के ऊपरी भाग में जहाँ वह शिर के साथ सम्मेलन करता है वहाँ एक परिखा है जिसमें सन्धिकोष के कुछ सूत्र लगते हैं। ग्रीवा का पश्चिमपृष्ठ नतोदर और खुरदरा है और इस पर शिखरकान्तरिक तीरणिका से लगभग ½ इंच ऊपर की ओर सन्धिकोष का पश्चिम भाग लगता है। कभी-कभी इसमें श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था की कण्डरा के लिए एक तिर्यक् परिखा भी दिखाई देती है। ऊर्ध्वधारा छोटी और सीधी है और शिर से महाशिखरक तक जाती है। इस पर एक या इससे अधिक पोषक छिद्र पाये जाते हैं।

अधोधारा बड़ी और कुछ मुड़ी हुई है जो शिर के नीचे की ओर से प्रारम्भ होकर लघुशिखरक तक चली जाती है।

शिखरक—दोनों शिखरक स्पष्ट प्रवर्धन हैं। महाशिखरक चिपटा और बड़ा है किन्तु छोटे शिखरक का उभार अधिक तीव्र और स्पष्ट है। दोनों शिखरकों पर ऊरु को घुमानेवाली कई पेशियाँ लगी हुई हैं।

---

१. Femur. २. Greater Trochanter. ३. Lesser Trochanter. ४. Fovia capitis femoris. ५. Teres Lig.

महाशिखरक—जहाँ ग्रीवा गात्र के साथ जुड़ती है उसके पीछे और बाहर की ओर महाशिखरक स्थित है। यह एक चौड़ा चतुष्कोणाकार प्रवर्धन है। इसमें दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं। बहिः या पार्श्वपृष्ठ चौड़ा और चतुष्कोण के समान है। इसके बीच में एक तीरणिका पश्चिमोर्ध्वकोण से पूर्वाधःकोण तक जाती हुई दिखाई देती है जो सारे पृष्ठ को दो त्रिकोणाकार भागों
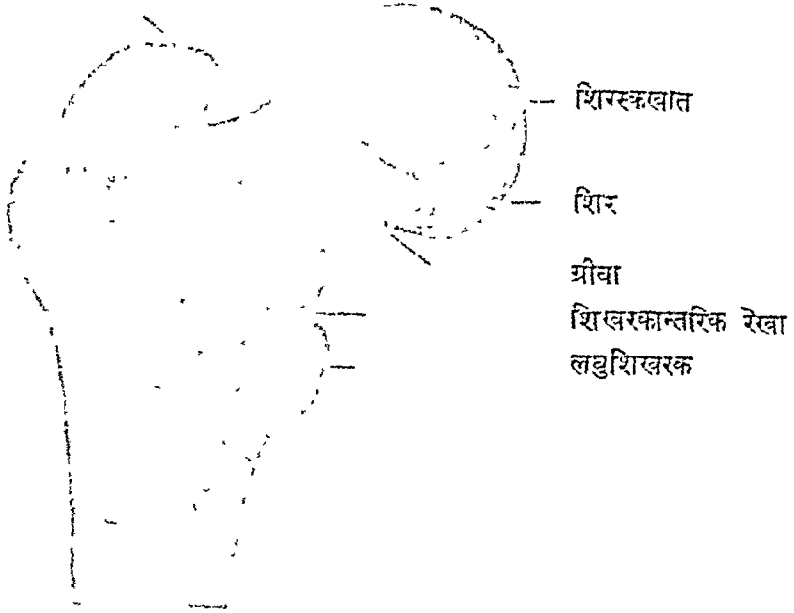
चित्र नं० १०७—दक्षिण ऊर्वस्थि का ऊर्ध्वप्रान्त

में विभाजित कर देती है। तीरणिका पर नितम्बपिण्डिका मध्यमा पेशी का निवेश होता है। इससे ऊपर और सामने के स्थान में भी इसी पेशी का निवेश होता है, किन्तु कभी-कभी उस पर केवल वसा की एक गद्दी रहती है। तीरणिका से नीचे और पीछे की ओर के चिकने स्थान पर भी एक वसा की गद्दी पाई जाती है जिस पर नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा की कण्डरा रहती है। अन्तःपृष्ठ बहिःपृष्ठ की अपेक्षा बहुत छोटा है। इसके बीच में एक गहरा गढ़ा है जिसको शिखरक-खात[1] कहा जाता है। इस खात में श्रोणिगवाक्षिणी बहिःस्था की कण्डरा का निवेश होता है। इसी के ऊपर और तनिक सामने की ओर एक चिह्न है जिसमें श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था और यमला पेशियाँ निवेश करती हैं।

पृष्ठ की चारों धाराओं के नाम ऊर्ध्व, अधः, पूर्व और पश्चिम धारा हैं। ऊर्ध्वधारा मोटी, दृढ़ और क्रमहीन है। इसके बीच में शुण्डिका पेशी के लगने का चिह्न है। अधोधारा मुड़ी हुई तीरणिका के रूप में दिखाई देती है। इस पर से ऊरुप्रसारणी वहिःस्था[2] का उदय होता है। पूर्वधारा कुछ टेढ़ी किन्तु स्पष्ट है। इसके एक भाग पर नितम्बपिण्डिका लघिष्ठा का निवेश होता है। पश्चिम-धारा गोल और मोटी है और शिखरकखात के पीछे की ओर रहती है। यह पेशियों के उदय और निवेश से मुक्त है।

लघुशिखरक एक छोटी-सी मीनार की भाँति उठा हुआ है जिसमें तीन धाराएँ और शिखर दीखते हैं। शिखर सबसे ऊँचा भाग है और उस पर कटिलम्बिनी दीर्घा[3] का निवेश होता है। मध्यस्थ

१. Trochanteric fossa. २. Vastus Lateralis. ३. Psoas major.

और पार्श्विक धाराएँ इन शिखर पर से ऊपर की ओर को जाती हैं। मध्यस्थ धारा ग्रीवा की अधोधारा से और बहिर्धारा ऊपर की ओर जाकर शिखरकान्तरिक रेखा[१] से मिल जाती है। अधोधारा नीचे की ओर जाकर प्राकारिका नामक रेखा के मध्यभाग से मिल जाती है।
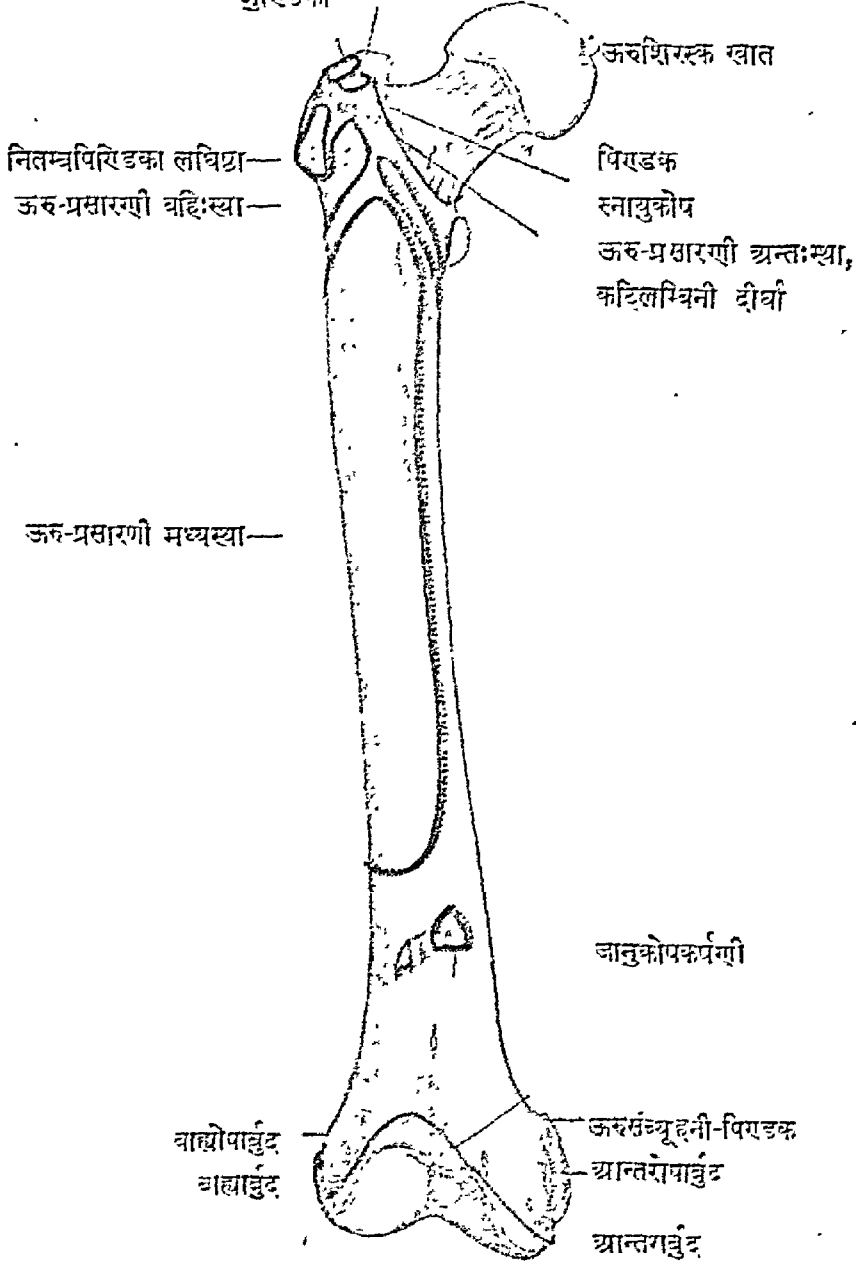
चित्र नं० १०८—दक्षिण ऊर्वस्थिका-पूर्वपृष्ठ

ग्रीवा के पूर्वपृष्ठ के ऊर्ध्वभाग में जहाँ वह महाशिखरक के साथ मिलता है, एक पिण्डक दिखाई देता है जिससे एक रेखा नीचे और भीतर की ओर जाकर लघुशिखरक के सामने होती

१. Inter-trochanteric line.

हुई उससे लगभग २ इंच नीचे प्राकारिका रेखा में समाप्त हो जाती है। यह शिखरकान्तरिक रेखा कहलाती है। इस रेखा के ऊपरी भाग में जघनोरुक बन्धन[1] का पार्श्विक भाग, और नीचे के भाग में इसी बन्धन का मध्यस्थ भाग और भगकोषीय[2] बन्धन लगता है तथा ऊरुप्रसारिणी अन्तःस्था का उदय भी होता है।

पश्चात्पृष्ठ पर भी महाशिखरक से नीचे और भीतर की ओर लघुशिखरक तक जाती हुई तीरणिका दिखाई देती है। यह शिखरकान्तरिक तीरणिका[3] कहलाती है। कभी-कभी इस तीरणिका के बीच से एक छोटी तीरणिका, जिसे तीरणिका चतुरस्रा[4] कहते हैं, नीचे प्राकारिका रेखा तक आती है। इस तीरणिका से ऊरुचतुरस्रा और ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा के कुछ सूत्रों का उदय होता है। प्रायः इस तीरणिका के स्थान पर एक चिह्न रहता है, जो ऊरुचतुरस्रा के उदय का स्थान प्रदर्शित करता है।

शिखरकान्तरिक रेखा के बीच के पिण्डक के चारों ओर पाँच पेशियाँ लगती हैं। बाहर की ओर नितम्बपिण्डिका लघिष्ठा, नीचे की ओर ऊरुप्रसारणी बहिःस्था और ऊपर की ओर श्रोणिगवाक्षिणी अन्तःस्था और यमलाढ्य पेशियों की कण्डराएँ।

गात्र लम्बा और वर्त्तुलाकार होता है। इसमें तीन धाराएँ और तीन पृष्ठ हैं। धाराओं के नाम पश्चात्, अन्तः और बहिर्धारा हैं। पृष्ठों को पूर्व, अन्तः और पार्श्व पृष्ठ कहते हैं।

पश्चिमधारा सब से स्पष्ट है। यह अस्थि के गात्र के पीछे की ओर एक स्पष्ट उभरी हुई रेखा के स्वरूप में पाई जाती है, जिसको प्राकारिका रेखा[5] कहते हैं। इसमें दो ओष्ठ होते हैं जिनके बीच में कुछ स्थान रहता है। इसके ऊपरी सिरे से तीन तीरणिकाएँ—जिनको अन्तः, मध्य और बहिः तीरणिकाएँ कहते हैं—ऊपर की ओर को जाती हैं। बहिःतीरणिका, जो बड़ी और खुरदरी तथा नितम्बपिण्डिका का निवेशस्थल होने के कारण नितम्बकूट[6] कही जाती है, महाशिखरक तक चली जाती है। उस पर नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा के कुछ भाग निवेश करते हैं। मध्यतीरणिका ऊपर लघुशिखरक तक जाती है। यह कंकतिका रेखा[7] कही जाती है। इस पर कंकतिका पेशी का निवेश होता है। अन्तःतीरणिका, जिसको वेल्लोतक रेखा[8] भी कहते हैं, ऊपर शिखरकान्तरिक रेखा में जाकर मिल जाती है।

प्राकारिका रेखा के दोनों ओष्ठ नीचे की ओर दो तीरणिकाओं के रूप में दोनों अर्बुदों तक चले जाते हैं और उनके द्वारा अस्थि के निचले चौड़े भाग पर एक त्रिकोणाकार स्थान परिमित हो जाता है जिस पर जानुपृष्ठिका धमनी और शिराएँ[9] रहती हैं। यह स्थान जानुपृष्ठ[10] कहलाता है। बहिःतीरणिका अन्तःतीरणिका की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। किन्तु नीचे के भाग में पहुँचकर अन्तःतीरणिका अधिक स्पष्ट हो जाती है और अर्बुद के तनिक ऊपर एक पिण्डक में समाप्त होती है जिसे संव्यूहनी-पिण्डक[11] कहते हैं। इस पर ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा की कण्डरा लगती है। बहुत सी अस्थियों में जानुपृष्ठ के नीचे की ओर एक पिण्डक पाया जाता है जिससे जंघापिण्डिका गुर्वी[12] के अन्तःशिरका उदय होता है।

पश्चात्धारा अथवा प्राकारिका रेखा के समस्त बाह्य ओष्ठ तथा उससे ऊपर की ओर प्रलम्बित तीरणिका से ऊरुप्रसारणी-बहिःस्था[13] और अन्तःओष्ठ तथा उससे ऊपर और नीचे की ओर प्रलम्बित

---

१. Iliofemoral Lig. २. Pubocapsular Lig. ३. Intertrochantericcrest ४. Linea Quadrata. ५. Linea Aspera. ६. Gluteal Tuberosity. ७. Pectineal Line. ८. Spiral Line. ९ Popliteal Vessels. १०. Popliteal Surface. ११. Adductor Tubercle. १२. Gastrocnemius. १३. Vastus Lateralis.
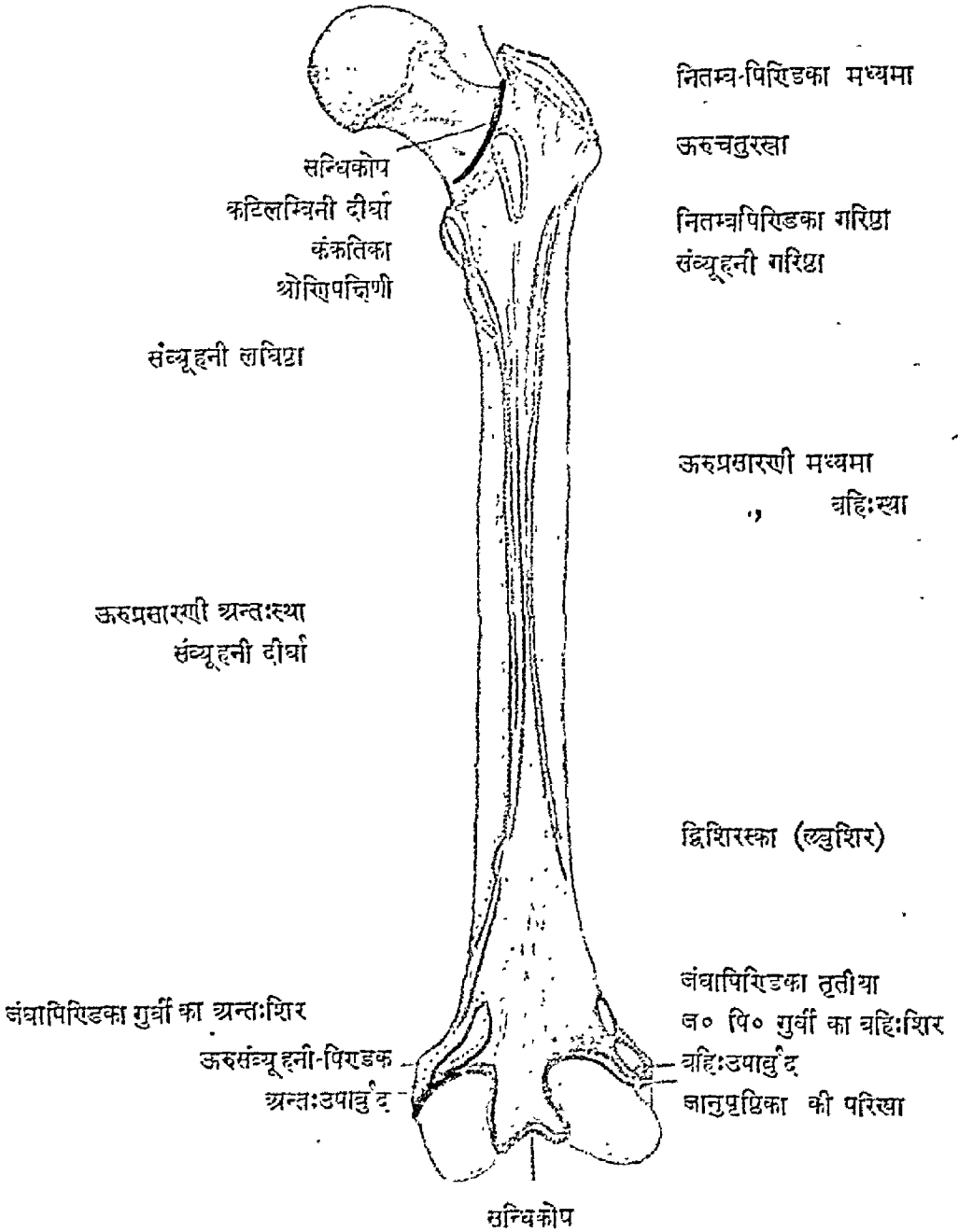
चित्र नं० १०६—दक्षिण ऊर्वस्थि का पश्चिमपृष्ठ

तीरणिका से ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था[1] का उदय होता है। इन दोनों ओष्ठों के बीच की रेखा पर ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा का निवेश होता है। ऊरुप्रसारणी बहिःस्था और ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा के बीच के स्थान में नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा ऊपर की ओर और द्विशिरस्का और्वी का लघुशिर नीचे की ओर लगा

१. Vastus medialis.

हुआ है। ऊरुसंव्यूहनी गरिष्ठा और ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था के बीच में भी इसी भाँति चार पेशियाँ लगती हैं—श्रोणिपच्छिणी और कंकतिका ऊपर की ओर, ऊरुसंव्यूहनी लम्बी और ऊरुसंव्यूहनी दीर्घा नीचे की ओर।

गात्र की अन्तः और पार्श्विक धारा इतनी स्पष्ट नहीं हैं और न उन पर कोई विशेष पेशियों का निवेश होता है। वे केवल पेशियों से आच्छादित रहती हैं। पार्श्विक धारा महाशिखरक के नीचे से आरम्भ होकर बाह्यार्बुद तक जाती है। यह ऊपरी भाग में कुछ स्पष्ट है किन्तु बीच में पहुँचकर गोल हो जाती है। अन्तर्धारा शिखरकान्तरिक रेखा से नीचे की ओर उतरती है और आन्तरार्बुद पर पहुँचकर समाप्त होती है। पार्श्विक धारा की भाँति यह भी गोल है।

पूर्वपृष्ठ चिकना और गोल है तथा ऊपर और नीचे की अपेक्षा बीच में संकुचित है। इसके ऊपरी तीन चौथाई भाग से ऊरुप्रसारणी मध्यस्था[1] का उद्य होता है। नीचे के भाग पर जानुकोष-कर्पणी[2] का छोटा सा उदयस्थान है। यह पृष्ठ अन्तः और बहिःधारा से परिमित है।

पार्श्वपृष्ठ बहिर्धारा और पश्चात्भाग के बीच के स्थान का नाम है। इस पृष्ठ के ऊपरी तीन चौथाई भाग से भी ऊरुप्रसारणी मध्यस्था उदय होती है।

अन्तःपृष्ठ अन्तः और पश्चात्धारा के बीच के स्थान का नाम है जो नीचे की ओर आन्तरार्बुद के ऊपर तक चला जाता है। यह ऊरुप्रसारणी अन्तःस्था से ढका रहता है।

अधःप्रान्त चौड़ा, मोटा और दृढ़ है। इसके दोनों ओर दो अर्बुद निकले हुए हैं जिनके बीच में पीछे की ओर एक गहरा खात है जो अर्बुदान्तरिक खात[3] कहलाता है। दोनों अर्बुद आगे
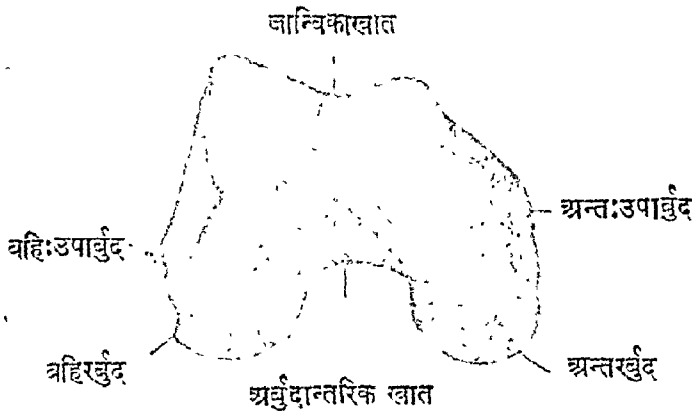
चित्र नं० ११०—ऊर्वस्थि के अधःप्रान्त का अधःपृष्ठ

की अपेक्षा पीछे की ओर को अधिक बढ़े हुए हैं। इनके समस्त अधः और पश्चिम पृष्ठ पर और कुछ सामने की ओर बड़े स्थालक हैं। अधः और पश्चिम पृष्ठ के बड़े लम्बे स्थालकों के द्वारा अर्बुद अन्तर्जंघास्थि के शिर के ऊर्ध्वपृष्ठ पर स्थित स्थालकों से मिले रहते हैं। किन्तु अर्बुदों के बीच में आगे की ओर जो स्थालक है वहाँ पर जान्वस्थि का पश्चात्पृष्ठ लगता है। यह स्थान जान्विकापृष्ठ[4] कहलाता है।

अर्बुदों को अन्तः और बहिः अर्बुद कहते हैं। आन्तरार्बुद की अपेक्षा बाह्यार्बुद बड़ा है किन्तु आन्तरार्बुद नीचे की ओर को अधिक निकला हुआ है। दोनों अर्बुदों के बीच में पीछे की

---

१. Vastus Intermedius. २. Articularis Genu ३. Intercondyloid fossa. ४. Patellar Surface.

ओर अर्बुदान्तरिक खात स्थित है जो नीचे की ओर एक हलकी तीरणिका के द्वारा जान्विकापृष्ठ से पृथक् है। इसी प्रकार खात के ऊपर की ओर भी एक तीरणिका है जो अर्बुदान्तरिक रेखा[1] कहलाती है। इस खात की अन्तःस्थ भित्ति पर पश्चिम स्वस्तिक-बन्धन[2] और पार्श्विक भित्ति पर पूर्व स्वस्तिक-बन्धन[3] लगे हुए हैं।

दोनों अर्बुदों के ऊपर की ओर दो उपार्बुद[4] हैं। आन्तरोपार्बुद बाह्योपार्बुद की अपेक्षा बड़ा और स्पष्ट है। उस पर जानुसंधि का एक बन्धन लगा हुआ है। इसके पीछे की ओर एक चिह्न है जहाँ से जङ्घापिण्डिका गुर्व्वी के मध्यस्थ शिर का उदय होता है। उपार्बुद के तनिक ऊपर की ओर संव्यूहनी पिण्डक है।

बाह्योपार्बुद छोटा है। इसके नीचे की ओर एक गढ़ा है जहाँ से जानुपृष्ठिका[5] पेशी उदय होती है। इस गढ़े के नीचे की ओर दो हलकी नलिकाएँ हैं जिनमें जानुपृष्ठिका की कण्डरा रहती है। बाह्योपार्बुद पर एक बन्धन लगता है। उसके पीछे और ऊपर की ओर से जंघापिण्डिका गुर्व्वी के पार्श्विक शिर का उदय होता है और इस स्थान के भीतर और ऊपर की ओर से जंघापिण्डिका तृतीया[6] उदय होती है।
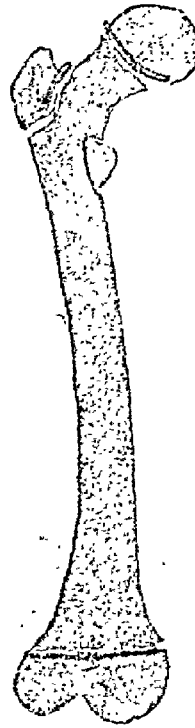
चित्र नं० १११—ऊर्वस्थि का अस्थि-विकास

अस्थि-विकास—इस अस्थि का पाँच केन्द्रों से विकास होता है। ये पाँचों केन्द्र भिन्न-भिन्न भागों में निम्नलिखित समय पर उदय होते हैं।

गात्र—भ्रूणावस्था के सातवें सप्ताह में।

अधःप्रान्त—भ्रूणावस्था के नवें महीने में।

---

१. Intercondyloid Line. २-३. Posterior cruciate and Anterior cruciate Lig. ४. Epicondyle. ५. Politeus. ६. Plantaris.

शिर—प्रथम वर्ष के अन्त में।

महाशिखरक—चौथे वर्ष में।

लघुशिखरक—१३ या १४ वर्ष में।

ये सब भाग गात्र के साथ युवावस्था के समीप जुड़ते हैं। सबसे प्रथम लघुशिखरक जुड़ता है; उसके पश्चात् महाशिखरक; तत्पश्चात् शिर और सबके पश्चात् ऊर्ध्वप्रान्त २०वें वर्ष के लगभग जुड़ता है।

सम्मेलन—ऊर्वस्थि का तीन अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है—शिर के द्वारा ऊपर की ओर श्रोणिफलक के साथ, अर्बुदों के सामने और बीच के स्थालक के द्वारा जान्वस्थि से और अर्बुदों के अधः और पश्चात्पृष्ठ के स्थालकों के द्वारा अन्तर्जंघास्थि से।

जान्वस्थि[1]

यह अस्थि घुटने में आगे की ओर रहती है। आकार में यह एक क्रमहीन त्रिकोण के समान है जिसमें तीन धाराएँ, एक शिखर, पूर्व और पश्चिम दो पृष्ठ हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह चतुःशिरस्का और्वी[2] की कण्डरा में स्थित एक चणकास्थि[3] है जो जानुसन्धि के सामने स्थित है।
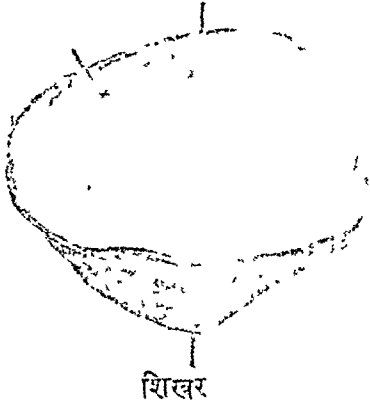
चित्र नं० ११२—जान्विका—पश्चिमपृष्ठ
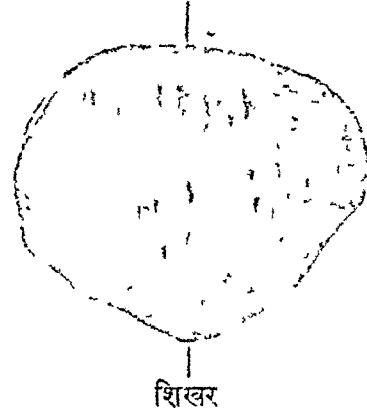
चित्र नं० ११३—जान्विका—पूर्वपृष्ठ

पूर्वपृष्ठ केवल चर्मगत रहता है। इसमें कई छिद्र और रेखाएँ दिखाई देती हैं। छिद्रों के द्वारा पोषक धमनियों की शाखाएँ अस्थि के भीतर प्रविष्ट होती हैं। इस पृष्ठ पर चतुःशिरस्का और्वी की कण्डरा का वितान चढ़ा रहता है जो नीचे की ओर जान्विक-बन्धन[4] के साथ मिला हुआ है। इसका नीचे का भाग कोण के आकार का है और त्रिकोण का शिखर कहलाता है।

पश्चिमपृष्ठ दो भागों में विभाजित है। ऊपर का अण्डाकार या चौकोर चिकना स्थालक भाग एक तीरणिका के द्वारा, जो ऊपर से नीचे के शिखर की ओरको जाती हुई दिखाई देती है, दो भागों में विभक्त है जिनमें से बाहर की ओर रहनेवाला पार्श्विक भाग चौड़ा और कुछ नतोदर है; भीतर

१. Patella. २. Quadriceps femoris. ३. Sesamoid Bone. ४. Ligamentum Patellae.

का भाग छोटा और उन्नतोदर है। इन दोनों भागों के बीच की तीरणिका सन्धि के भीतर ऊर्वस्थि के अर्बुदों के बीच की परिखा रहती है और दोनों स्थालक भाग बाह्यार्बुद और आन्तरार्बुद के स्थालकों पर रहते हैं। स्थालकपृष्ठ के नीचे का भाग खुरदरा और कुछ उन्नतोदर है। इसके ऊपरी भाग और अन्तर्जंघास्थि के शिर के बीच में वसा की कवलिका रहती है। नीचे के भाग पर जान्विक-स्नायु लगता है।

धाराएँ—तीन धाराओं के नाम ऊर्ध्व, अन्तः और बहिर्धारा हैं। ऊर्ध्वधारा ऊपर की ओर रहती है। यह त्रिकोण के आधार या तल के समान है और ऊपर से आगे और नीचे की ओर को कुछ झुकी हुई है। इस भाग पर चतुःशिरस्का की कण्डरा का वह भाग लगता है जो ऊरुदण्डिका और ऊरुप्रसारणी मध्यमा से बनता है। बहिर्धारा और अन्तर्धारा दोनों ऊपर से नीचे की ओर को मुड़ती हुई चली जाती हैं और शिखर पर जाकर मिल जाती हैं। इन धाराओं पर चतुःशिरस्का की कण्डरा का ऊरुप्रसारणी बहिःस्था और अन्तःस्था से निर्मित भाग लगता है। शिखर पर जान्विक-स्नायु लगा हुआ है। अस्थि-विकास प्रायः एक केन्द्र से होता है जो दूसरे या तीसरे वर्ष में गात्र के बीच में निकलता है। कभी-कभी यह केन्द्र छठे वर्ष में निकलता है। युवावस्था तक विकास पूर्ण हो चुकता है।

सम्मेलन ऊर्वस्थि के साथ होता है।

बहिर्जंघास्थि[१]

यह अन्तर्जंघास्थि के बाहर की ओर रहती है, और दोनों शिरों पर उसके साथ मिली हुई है। इस अस्थि का गात्र अत्यन्त पतला और कोमल होता है। अन्तर्जंघास्थि में बाह्यार्बुद के पीछे और नीचे की ओर एक स्थालक होता है जहाँ पर बहिर्जंघास्थि लगती है। इस अस्थि का उपरी भाग अन्तर्जंघास्थि के शिर से नीचा रहता है और जानुसन्धि के बनाने में कोई भाग नहीं लेता। अधःप्रान्त नीचे की ओर को बढ़ा होता है और गुल्फसन्धि का पार्श्विक भाग बनाता है। यह भाग केवल चर्मगत होने से प्रतीत किया जा सकता है।

अस्थि में ऊर्ध्व और अधः दो प्रान्त होते हैं और उनके बीच में एक पतला वर्तुलाकार या चतुष्कोणाकार गात्र होता है।

ऊर्ध्वप्रान्त कुछ चौकोर है। उसकी बाहरी सीमा क्रमहीन है। यह भाग अस्थि का शिर कहलाता है। शिर पर ऊपर और भीतर की ओर एक स्थालक है जो अन्तर्जंघास्थि के स्थालक के साथ मिलता है। शिर के पार्श्व और पश्चिम भाग से एक प्रवर्धन निकला हुआ है जो मणिक[२] कहलाता है। इस प्रवर्धन के ऊपरी भाग पर द्विशिरस्का और्वी और बहिर्जङ्घिक स्नायु[३] लगे हुए हैं। शिर के आगे की ओर एक पिण्डक है जिस पर से पादविवर्त्तनी दीर्घा[४] का उदय होता है और उसके पास ही शिर का अग्रिम स्नायु[५] लगता है। शिर के पीछे की ओर दूसरा पिण्डक है जिस पर से जङ्घापिण्डिका लघ्वी[६] के सूत्रों का उदय होता है और शिर का पश्चिम स्नायु[७] लगता है। शिर के शेष भाग पर भी सन्धि के स्नायु लगते हैं।

---

१. Fibula.　२. Styloid Process.　३. Fibular collateral Lig.
४. Peronaeus Longus.　५. Anterior Ligament of the head.　६. Soleus.
७. Posterior Ligament of the head.
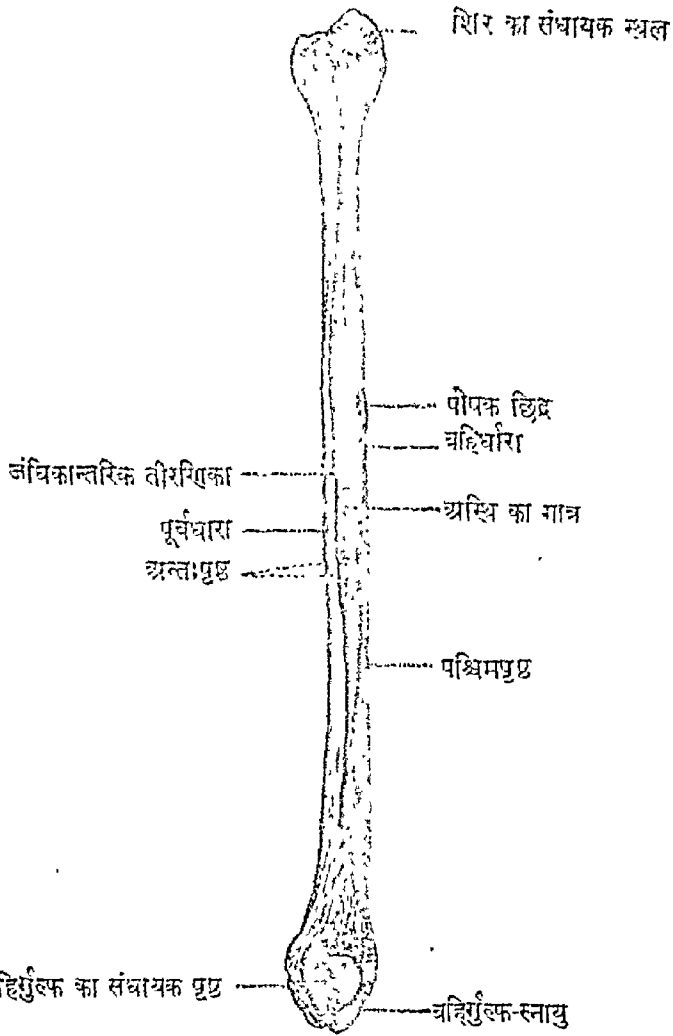
चित्र नं० ११४—बहिर्जंघास्थि का अन्तःपृष्ठ

गात्र में ध्यान से देखने से चार पृष्ठ दिखाई देते हैं। ये पृष्ठ कहीं-कहीं एक दूसरे से मिल जाते हैं किन्तु अधिकतया धाराओं के द्वारा परिमित हैं। ये पूर्व, पश्चात्, अन्तः और बहिः पृष्ठ हैं और इनको सीमित करनेवाली पूर्वान्तः, पूर्वपार्श्व, पश्चिमान्तः और पश्चिमपार्श्व धाराएँ हैं।

पूर्वपार्श्वधारा—यह धारा ऊपर शिर के सामने की ओर प्रारम्भ होती है और अस्थि के निचले भाग में पहुँचकर कुछ बाहर की ओर को मुड़कर दो भागों में विभक्त होकर एक त्रिकोणाकार स्थान को परिमित कर देती है। इस समस्त धारा पर एक कला लगी रहती है जो आगे की ओर स्थित प्रसारक पेशियों को पादविवर्तनी दीर्घा और लघ्वी से विभाजित करती है।

पूर्वान्तर्धारा शिर के नीचे से प्रारम्भ होकर पूर्वपार्श्वधारा के समानान्तर नीचे की ओर जाती है और अधःप्रान्त के भीतर की ओर स्थित त्रिकोणाकार स्थान के ऊपर समाप्त हो जाती है। इस पर भी एक कला लगी हुई है जो प्रसारक और संकोचक पेशियों को पृथक् करती है।
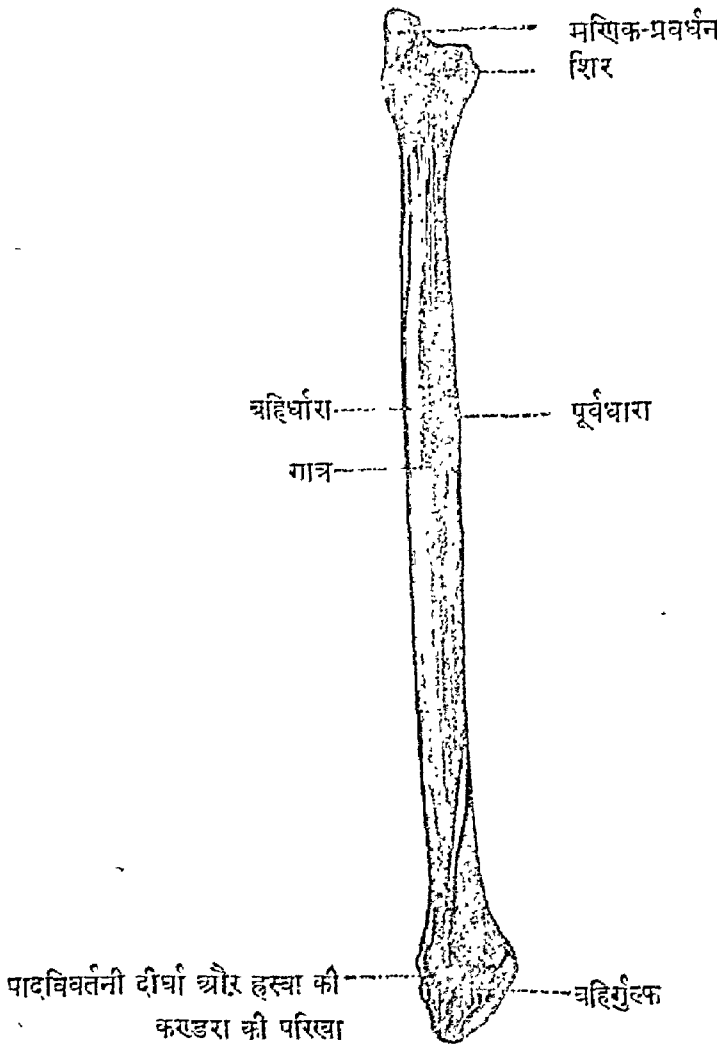
चित्र नं० ११५—बहिर्जंघिका का बहिःपृष्ठ

पश्चिम पार्श्वधारा—यह धारा शिर के सर्वोच्च स्थान से, जिसको शिखर भी कहते हैं, आरम्भ होती है और नीचे की ओर जाकर बहिर्गुल्फ की पश्चाद्धारा बन जाती है। इसका बीच का भाग अस्थि के कुछ पीछे की ओर रहता है। इस पर लगी हुई कला पादविवर्तनी और सङ्कोचनी पेशियों को विभाजित करती है।

पश्चिमान्तर्धारा शिर के पीछे और भीतर की ओर से आरम्भ होती है। इसका ऊपरी और बीच का भाग स्पष्ट है, किन्तु नीचे के भाग में पहुँचकर यह पूर्वान्तःधारा से मिल जाती है। इस कारण अस्थि के नीचे के भाग में यह धारा नहीं दिखाई देती। इस पर लगी हुई कला के आगे की ओर जङ्घापश्चिमा[1] और पीछे की ओर पादांगुष्ठसंकोचनी दीर्घा[2] और जङ्घापिण्डिका लम्बी[3] पेशियाँ रहती हैं।

पूर्व-पृष्ठ पूर्वान्तः और पूर्वपार्श्व धारा के बीच का स्थान है। इसका ऊपरी भाग संकुचित

---

१. Tibialis Posterior. २. Flexor hallucis Longus. ३. Soleus.

है किन्तु नीचे का भाग चौड़ा और गहरा है। इस पृष्ठ पर से पादांगुलिप्रसारणी दीर्घा,[1] पादांगुष्ठप्रसारणी दीर्घा[2] और पादविवर्तनी तृतीया[3] पेशियों का उदय होता है।

पश्चिम-पृष्ठ पश्चिमान्तः और पश्चिमपार्श्व धारा के बीच का स्थान है। यह पृष्ठ मुड़ा हुआ है। इसका ऊपरी भाग पीछे रहता है, बीच का भाग पीछे और कुछ भीतर की ओर रहता है किन्तु नीचे का भाग भीतर की ओर मुड़ जाता है। इसके ऊपरी भाग से जङ्घापिण्डिका लम्बी और बीच के भाग से पादांगुष्ठसंकोचनी दीर्घा के सूत्रों का उदय होता है। नीचे का भाग, जहाँ त्रिकोणाकार स्थान स्थित है, अस्थ्यन्तरिक स्नायु[4] के द्वारा अन्तर्जङ्घास्थि से जुड़ा हुआ है।

अन्तः या मध्यस्थ पृष्ठ—पूर्वान्तः और पश्चादन्तर्धारा के बीच के गहरे स्थान से जङ्घापश्चिमा का उदय होता है।

पार्श्व या बहिःस्थ पृष्ठ—पूर्वपार्श्व और पश्चिमपार्श्व धाराओं के बीच का स्थान अपने ऊपरी भाग में बाहर की ओर रहता है किन्तु नीचे के भाग में पीछे की ओर मुड़ जाता है। पृष्ठ के ऊपरी भाग से पादविवर्तनी दीर्घा और लम्बी का उदय होता है, नीचे का भाग इन्हीं पेशियों की कण्डराओं से ढका रहता है।

अधःप्रान्त—ऊर्ध्वप्रान्त की भाँति यह भी कुछ चतुष्कोणाकार है। इसको बहिर्गुल्फ[5] भी कहते हैं। इसमें अन्तः और बहिः दो पृष्ठ तथा पूर्व और पश्चात् दो धाराएँ हैं। अन्तःपृष्ठ पर एक त्रिकोणाकार चिकना स्थालक है जो कूर्चशिर[6] के पार्श्व में स्थित समान पृष्ठ से मिलता है। इस स्थालक के नीचे और पीछे की ओर एक गढ़ा है जिसमें पश्चिमकूर्चबहिर्जङ्घिका[7] स्नायु लगती है। बहिःपृष्ठ बाहर की ओर रहता है और केवल चर्मगत है। गात्र पर स्थित त्रिकोणाकार स्थान के साथ यह पृष्ठ मिला हुआ है। पूर्वधारा मोटी और खुरदरी है। इस पर पूर्वकूर्चबहिर्जङ्घिका[8] स्नायु के लगने के लिए एक गढ़ा है।

पश्चिमधारा चौड़ी है और उस पर एक नलिका है जिसमें होकर पादविवर्तनी दीर्घा और लम्बी की कण्डराएँ जाती हैं। गुल्फ की नोक पर पार्ष्णिबहिर्जङ्घिका[9] स्नायु लगी हुई है।

अस्थि-विकास तीन केन्द्रों से होता है। गात्र में भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में विकास-केन्द्र उदय होता है। अधःप्रान्त का विकास दूसरे वर्ष में और ऊर्ध्व प्रान्त का विकास चतुर्थ वर्ष में आरम्भ होता है।

सम्मेलन अन्तर्जङ्घास्थि और कूर्चशिर के साथ होता है।

अन्तर्जंघास्थि[10]

यह एक दीर्घ अस्थि है जो जंघाप्रान्त में भीतर की ओर रहती है। ऊर्वस्थि के अतिरिक्त यह शरीर की सबसे लम्बी और दृढ़ अस्थि है। इसमें दो प्रान्त और गात्र होते हैं। ऊर्ध्वप्रान्त चौड़ा है और ऊर्वस्थि के अर्बुदों के साथ मिला रहता है। इसके ऊपर की ओर ऊर्वस्थि के अर्बुदों के स्थालकों के समान दो स्थालक हैं। ऊर्ध्वप्रान्त के नीचे गात्र संकुचित और वर्तुलाकार होता है। अधःप्रान्त फिर कुछ चौड़ा हो जाता है। स्त्री और पुरुषों में इस अस्थि में भेद पाया जाता है।

---

१. Extensor digitorum Longus. २. Extensor hallucis Longus. ३. Peronaeus. ४. Interosseous Ligament. ५. Lateral malleolus. ६. Talus. ७. Posterior Talo-fibular Lig. ८. Anterior Talo-fibular Lig. ९. Calcaneofibular Lig. १०. Tibia.

पुरुषों में यह बिलकुल सीधी और दूसरी ओर की अस्थि के साथ समानान्तर रहती है, किन्तु स्त्रियों में कुछ बाहर की ओर को झुकी रहती है।
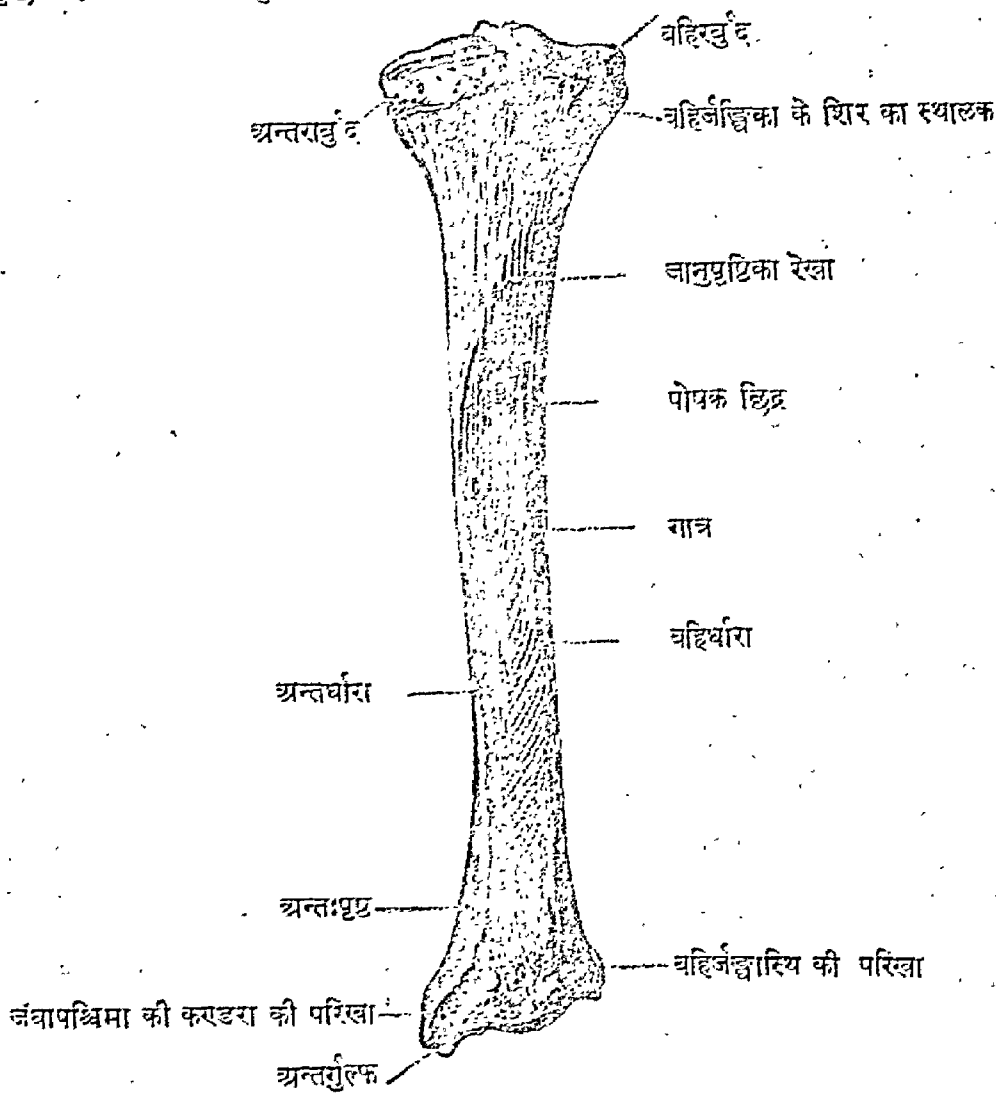
चित्र नं० ११६—अन्तर्जङ्घास्थि का पश्चिमपृष्ठ

ऊर्ध्वप्रान्त चौड़ा और दो अर्बुदों के स्वरूप में दोनों ओर को फैला हुआ है। इन दोनों बहिः और अन्तः अर्बुदों के ऊर्ध्वपृष्ठ पर दो स्थालक हैं। बाह्यार्बुद पर का स्थालक गोल है और आगे से पीछे की ओर को कुछ उन्नतोदर है, किन्तु दूसरे व्यास में नतोदर है। आन्तरार्बुद का स्थालक इससे विरुद्ध है। यह अण्डाकार है और दोनों ओर के व्यास में नतोदर है। बहिःस्थालक ऊर्ध्वपृष्ठ से कुछ पश्चातपृष्ठ पर भी पहुँच जाता है। इन दोनों स्थालकों के बीच में एक उत्सेध है, जो दोनों स्थालकों को मिलाता है। यह अर्बुदान्तरिक उत्सेध[1] कहलाता है। इस उत्सेध के दोनों ओर दो छोटे-छोटे पिण्डक हैं जिन पर स्थालकों का कुछ भाग स्थित है। दोनों स्थालकों के बीच के भाग ऊर्वस्थि के अर्बुदों के साथ और बाहरी भाग नृत्ति के अर्धचन्द्राकार पट्ट से, जो इन भागों के बीच में रहते हैं, मिले हुए हैं।

१. Intercondyloid Eminence.
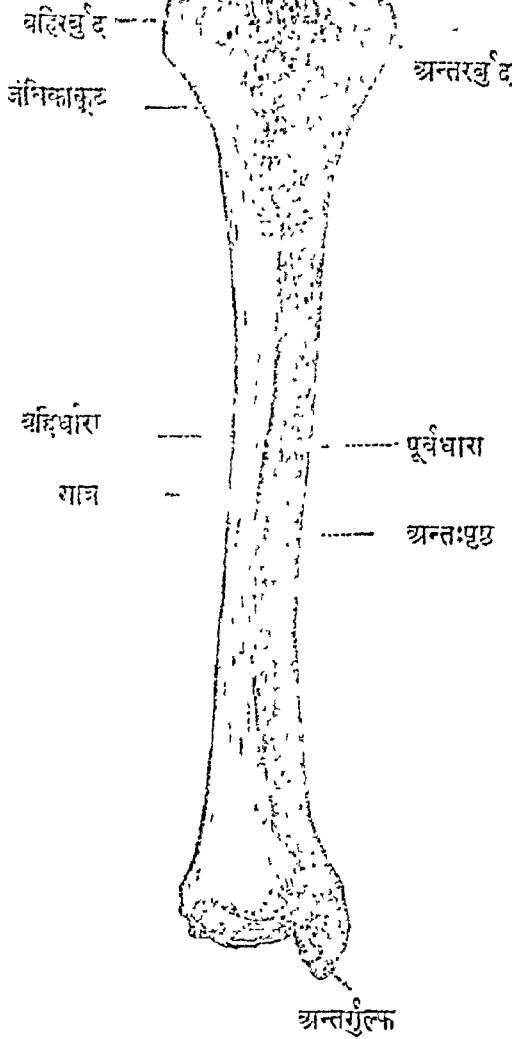
चित्र नं० ११७—अन्तर्जङ्घास्थि के बहिः और अन्तः पृष्ठ

अर्बुदों के बीच के उत्सेध के आगे और पीछे दोनों ओर दो खात हैं जिनमें पूर्व और पश्चिम स्वस्तिका-स्नायु[1] लगती हैं। ये दोनों खात पूर्व और पश्चिम अर्बुदान्तरिक खात[2] कहलाते हैं। अर्बुदों के पूर्व-पृष्ठ आपस में मिले हुए हैं। यह पृष्ठ एक त्रिकोण के समान है जिसके नीचे की ओर एक स्पष्ट पिण्डक है जो जङ्घिकाकूट[3] कहलाता है। अर्बुदों के पश्चात् पृष्ठ एक दूसरे से पश्चात् खात के द्वारा पृथक् हैं।

आन्तरार्बुद के पीछे की ओर एक परिखा है जिसमें कलाकल्पा की कण्डरा लगती है। उसके मध्यस्थ खुरदरे भाग पर जानुसन्धि का एक बन्धन लगता है।

बाह्यार्बुद के पीछे की ओर एक छोटा गोल स्थालक है जो बहिर्जंघास्थि के शिर के साथ मिलता है। उसके पार्श्वपृष्ठ पर एक उत्सेध है जिस पर ऊरुकञ्चुका का जघनजंघिक भाग[4] लगता है।

---

१. Anterior and Posterior Cruciate Lig. २. Anterior and Posterior Intercondyloidfossa. ३. Tibial Tuberosity. ४. Iliotibial tract of fascia Lata.

इसके तनिक नीचे की ओर से पादांगुलिप्रसारणी दीर्घा का उदय होता है और द्विशिरस्का ओर्वी का निवेश होता है।

गात्र में तीन धाराएँ और तीन पृष्ठ हैं जिनको पूर्व, अन्तः और बहिः धारा और अन्तः, बहिः और पश्चिम पृष्ठ कहते हैं।

पूर्वधारा आगे की ओर रहती है और जंघा में ऊपर से नीचे तक आगे की ओर प्रतीत की जा सकती है। ऊपर की ओर यह जंघिकाकूट पर से आरम्भ होती है और नीचे की ओर पहुँचकर तनिक बाहर की ओर मुड़ जाती है जहाँ अन्तर्गुल्फ की पूर्वधारा बनाती है। यह सारी धारा केवल चर्मगत रहती है और इस पर जंघा की गम्भीर कला लगी रहती है।

अन्तर्धारा आन्तरार्बुद के पीछे की ओर से प्रारम्भ होती है और नीचे की ओर पहुँचकर अन्तर्गुल्फ की पश्चाद्धारा से मिल जाती है। इसका बीच का भाग अधिक स्पष्ट और तीव्र है। इसके ऊपरी भाग में अन्तर्जंघिका स्नायु[१] का कुछ भाग लगता है और जानुपृष्ठिका के कुछ भाग का निवेश होता है। इसके बीच के भाग से जंघापिण्डिका लघ्वी और पादांगुलिसङ्कोचनी दीर्घा का उदय होता है।

बहिः या जङ्घिकान्तरिक धारा बहिरर्बुद के पीछे की ओर स्थित बहिर्जङ्घास्थि के दो स्थालक के तनिक आगे से आरम्भ होकर नीचे की ओर जाती है और अधःप्रान्त पर पहुँचकर दो तीरणिकाओं के रूप में विभाजित हो जाती है जो एक त्रिकोणाकार स्थान को परिमित करती हैं। यह समस्त धारा एक स्पष्ट नोकीली तीरणिका की भाँति दिखाई देती है। समस्त धारा पर जंघिकान्तरिक कला[२] लगती है।

अन्तःपृष्ठ—यह चौड़ा और चिकना पृष्ठ भीतर की ओर रहता है। अधोभाग में इसकी चौड़ाई कम हो जाती है। इसके ऊपरी भाग में कण्डराकल्पा, ऊर्ध्वन्तःपट्टिका और दीर्घायामा की कण्डरा से बनी हुई कला लगती है। शेष सारा पृष्ठ चर्मगत है। इसको प्रतीत किया जा सकता है।

बहिःपृष्ठ—यह अन्तःपृष्ठ से कम चौड़ा है। इसके ऊपरी भाग में एक परिखा है जिससे जंघा-पूर्विका[३] का उदय होता है। नीचे का भाग जंघापूर्विका, पादांगुष्ठप्रसारणी दीर्घा और पादांगुलिप्रसारणी दीर्घा की कण्डराओं से ढका रहता है। जंघापुरोगा की कण्डरा अन्तर्धारा की ओर, पादाङ्गुलिप्रसारणी दीर्घा की कण्डरा बहिर्धारा की ओर और पादाङ्गुष्ठप्रसारणी दीर्घा की कण्डरा दोनों के बीच में रहती है।

पश्चात्पृष्ठ चिकना और गोल है। इसके ऊपरी भाग में बहिर्जंघास्थि के स्थालक से नीचे और भीतर की ओर को उतरती हुई एक स्पष्ट तीरणिका है जिसको जंघापृष्ठिका रेखा[४] कहते हैं। इस रेखा से ऊपर की ओर स्थित त्रिकोणाकार स्थान पर जानुपृष्ठिका पेशी का निवेश होता है। स्वयं इस रेखा से जंघापिण्डिका लघ्वी, पादांगुलिसङ्कोचनी दीर्घा[५] और जंघापश्चिमा[६] पेशियों के भागों का उदय होता है और जानुपृष्ठिका पेशी की कला लगती है। रेखा के नीचे ही एक पोषक छिद्र भी पाया जाता है। पृष्ठ का बीच का भाग रेखा से उतरनेवाली एक खड़ी तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त है। भीतर के चौड़े स्थान से पादांगुलिसङ्कोचनी दीर्घा और बाहर के संकुचित स्थान से जंघापश्चिमा के एक भाग का उदय होता है। पृष्ठ का नीचे का भाग चिकना है और जंघापश्चिमा, पादांगुलिसङ्कोचनी दीर्घा और पादांगुष्ठसङ्कोचनी दीर्घा से ढका रहता है।

अधःप्रान्त चौड़ा और मोटा है। बहिःप्रकोष्ठास्थि के अधःप्रान्त की भाँति इसमें भी पाँच पृष्ठ हैं। इसके नीचे की ओर अधःपृष्ठ है जिस पर एक बड़ा चतुष्कोणाकार स्थालक है जो कूर्चशिर के साथ मिलता है। यह स्थालक आगे से पीछे की ओर को नतोदर है और इसके बीच में एक हलकी तीरणिका है जिसके द्वारा पृष्ठ दो भागों में विभाजित है जिनमें से बाहर का चौकोर भाग भीतरी त्रिको-

१. Tibial collateral Lig. २. Crural Interosseous Membrane. ३. Tibialis Anterior. ४. Popliteal Line. ५. Flexor digitorm Longus. ६. Tibialis Posterior.

णाकार भाग से छोटा है। इस स्थालक का कुछ भाग भीतर की ओर अस्थि के प्रवर्धित भाग पर भी, जिसको अन्तर्गुल्फ[1] कहते हैं, दिखाई देता है। पूर्वपृष्ठ चौड़ा और चिपटा है। यह प्रसारक पेशियों की कण्डराओं से ढका रहता है। इसके नीचे के किनारे पर एक हलकी सी नलिका दिखाई देती है
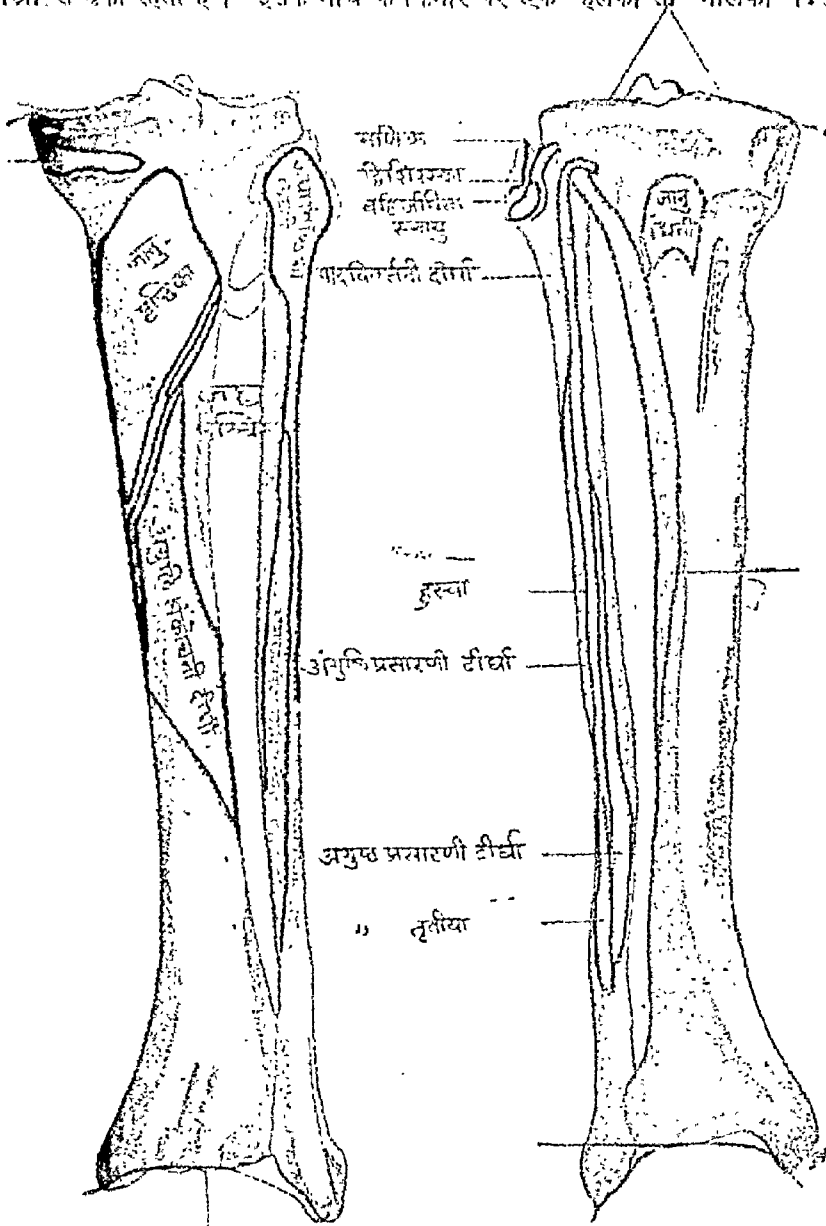
चित्र नं० ११८—दक्षिण जंघिकाएं, पश्चिम ओर   चित्र नं० ११९—दक्षिण जंघिकाएं, पूर्व ओर

जिस पर गुल्फसन्धि का कोष लगता है। पश्चात्पृष्ठ भी चौड़ा है और उसके बीच में एक उत्सेध दिखाई देता है जिसके कारण भीतर की ओर एक नलिका बन जाती है। इस नलिका में पादांगुष्ठसङ्कोचनी दीर्घा की कण्डरा रहती है।

---

१. Medial malleolus.

पार्श्वपृष्ठ चौड़ा और कुछ नतोदर है। आगे और पीछे की ओर यह पृष्ठ तीरणिकाओं से परिमित है। शरीर में यह स्थान सुक्ति के द्वारा बहिर्जंघास्थि के बहिर्गुल्फ के भाग से मिला रहता है। इसके दोनों ओर की तीरणिकाओं पर बहिर्गुल्फ के पूर्व और पश्चिम स्नायु लगी हुई हैं। इस पृष्ठ पर नीचे की ओर एक चिह्न है जिस पर अस्थ्यन्तरिक स्नायु लगती है। अन्तःपृष्ठ चिपटा और भीतर की ओर को मुड़ा हुआ है। इसी पृष्ठ का नीचे का भाग, जो नीचे की ओर को बढ़ा हुआ है, अन्तर्गुल्फ कहलाता है।

अन्तर्गुल्फ—यह प्रवर्धन आगे की ओर से कुछ भीतर को मुड़ गया है। यह एक त्रिकोण की भाँति है जिसमें पूर्व और पश्चिम धाराएँ तथा बहिः और अन्तः पृष्ठ पाये जाते हैं। पूर्वधारा खुरदरी और गोल है। उस पर सन्धि की स्नायु लगती हैं। पश्चिमधारा पर एक चौड़ी परिखा दिखाई देती है जो कभी-कभी एक तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त हो जाती है। इसमें जङ्घापश्चिमा और पादांगुलिसङ्कोचनी दीर्घा की कण्डराएँ रहती हैं।

अन्तःपृष्ठ उन्नतोदर, मुड़ा हुआ और चिकना है। यह चर्मगत रहता है। इसके पार्श्विक पृष्ठ पर एक स्थालक है जो नतोदर है। वह कूर्च्चशिर के साथ मिला रहता है। गुल्फ की नोक पर सन्धि का एक स्नायु लगता है।

अस्थि-विकास तीन केन्द्रों से होता है। प्रथम केन्द्र गात्र में भ्रूणावस्था के ७वें सप्ताह में निकलता है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में ऊर्ध्वप्रान्त में और दूसरे वर्ष में अधःप्रान्त में केन्द्र उदय
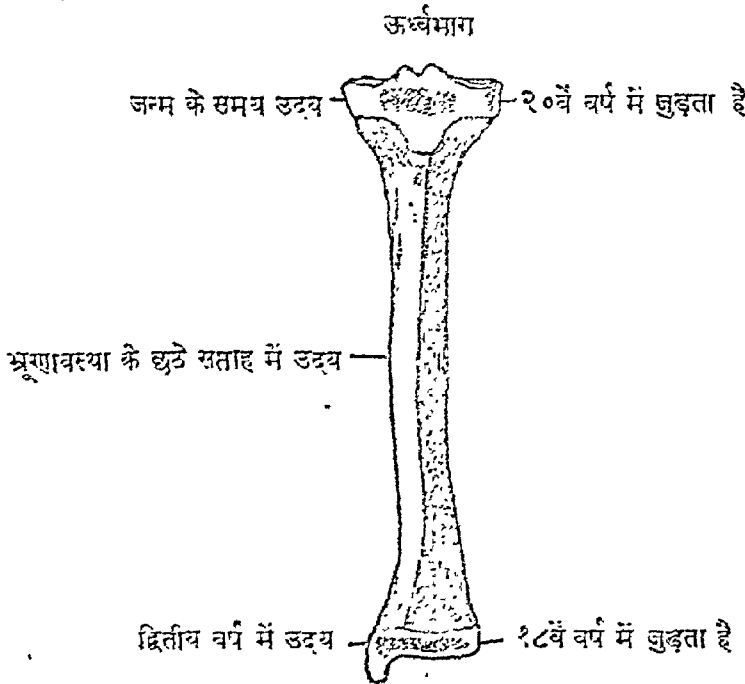
चित्र नं० १२०—अन्तर्जंघास्थि का विकास

होते हैं। अधःप्रान्त गात्र के साथ अठारहवें और ऊर्ध्वप्रान्त २०वें वर्ष में जुड़ते हैं।

सम्मेलन—अन्तर्जंघास्थि का तीन अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है—ऊपर की ओर ऊर्वस्थि से और नीचे की ओर बहिर्जंघास्थि और कूर्च्चशिर से।

पाँव की अस्थियाँ

पाद-कूर्चास्थियाँ

ये छोटी दृढ़ अस्थियाँ संख्या में सात होती हैं, जिनके नाम पार्ष्णि, कूर्च्चशिर, घर्म, नौनिभ, प्रथम, द्वितीय और तृतीय कोणक हैं। ये मणिबन्ध की अस्थियों के समान पंक्तियों में स्थित नहीं हैं। चित्र को देखने से इनकी स्थिति का अनुमान किया जा सकता है।
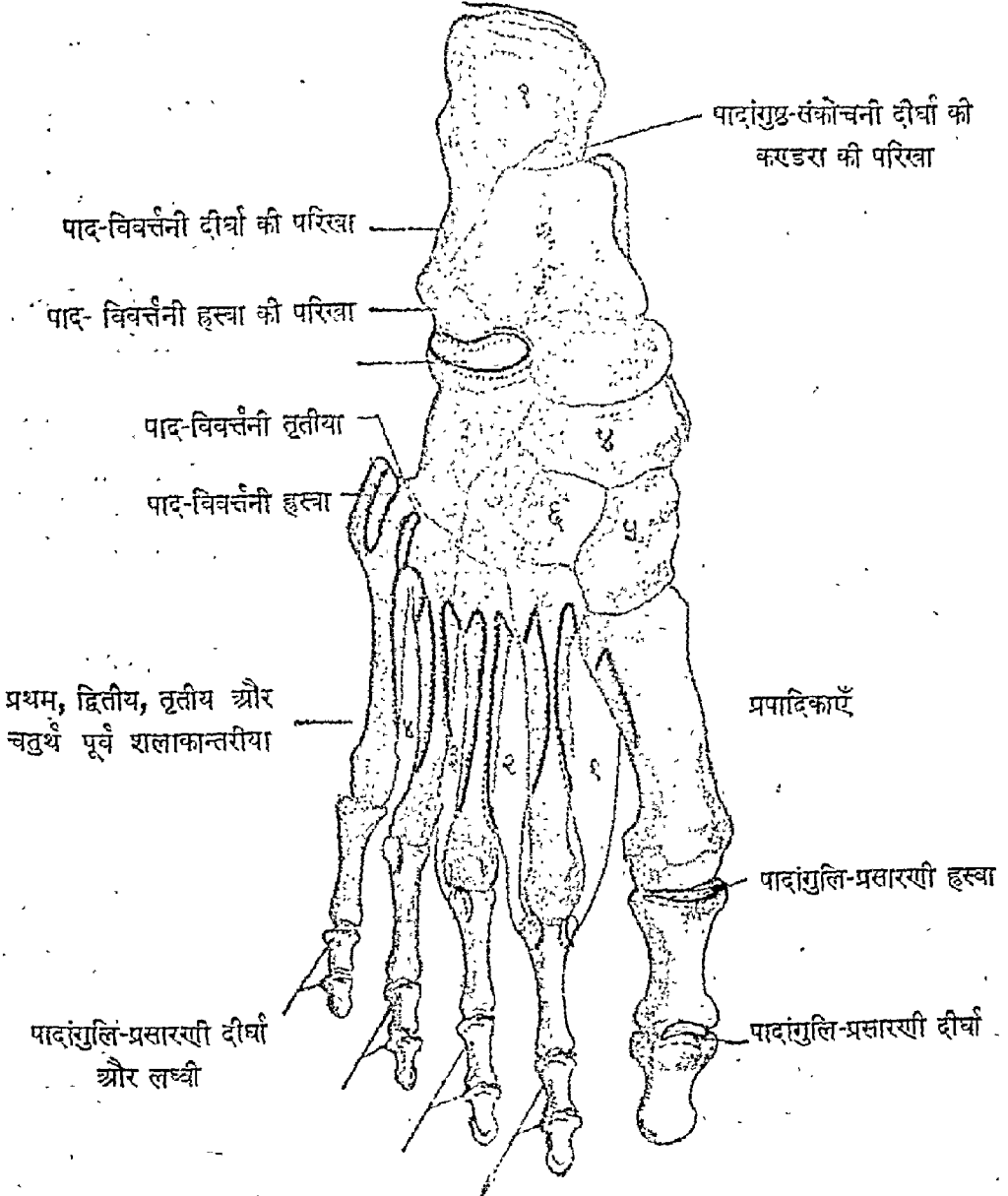
चित्र नं० १२१—दाहिने पाँव की अस्थियाँ—पूर्वपृष्ठ

चित्र नं० १२२—पादतल

पार्ष्णि[१]
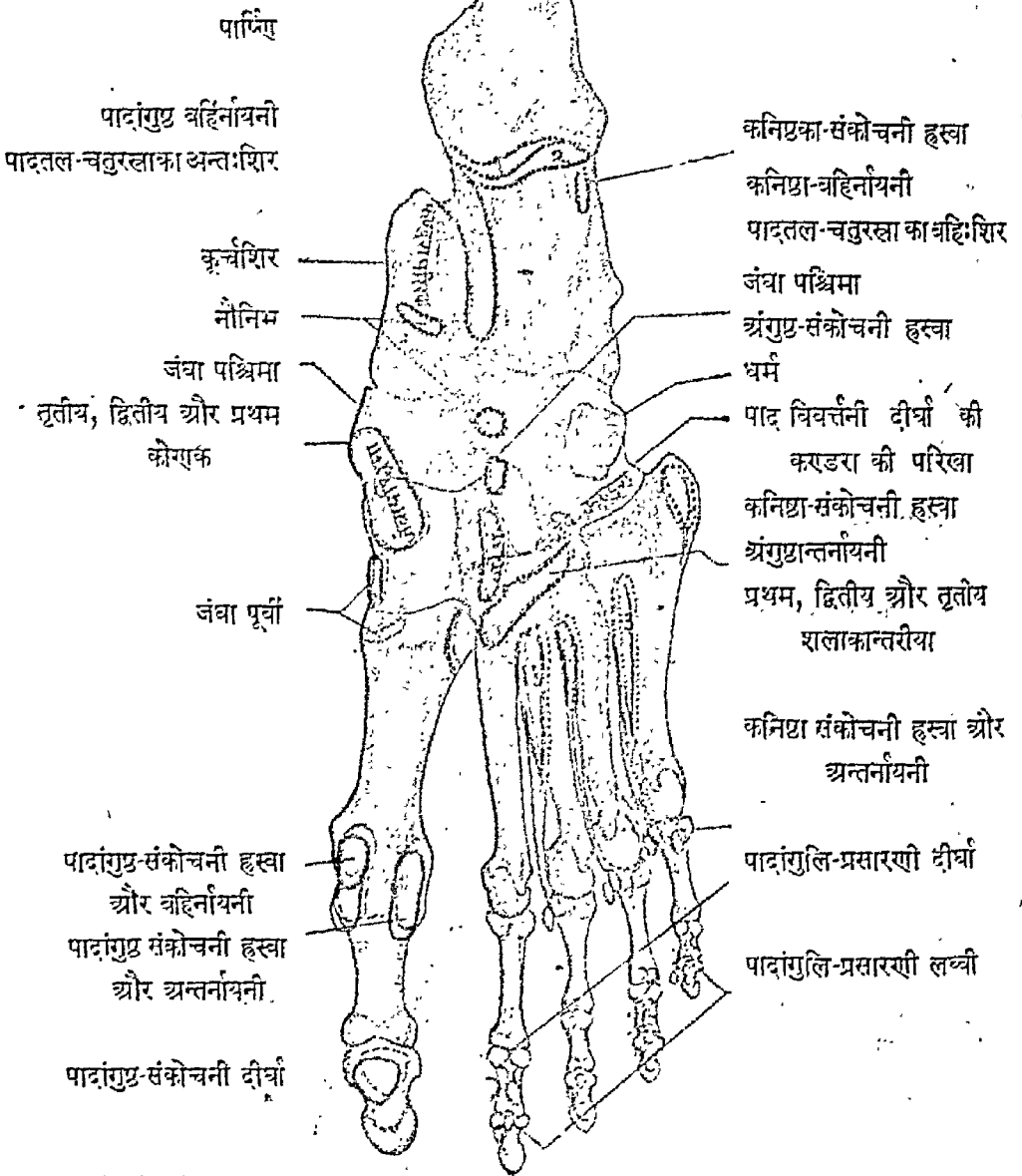
कूर्चिकाओं में सबसे बड़ी अस्थि पार्ष्णि है। पाँव के पीछे के भाग में स्थित शरीर के भार को सहन करनेवाली मुख्य अस्थि है। इसका आकार क्रमर्द्दान है। इसमें ६ पृष्ठ हैं। इसकी धाराएँ स्पष्ट नहीं हैं। इस कारण उनकी गणना नहीं की जाती। पृष्ठों को ऊर्ध्व, अधः, अन्तः, बहिः, पूर्व और पश्चिम पृष्ठ कहते हैं।

१. Calcaneus

ऊर्ध्वपृष्ठ—यह ऊपर गुल्फसन्धि की ओर रहता है और अपने आगे के भाग पर स्थित स्थालक के द्वारा कूर्चशिर के साथ मिला रहता है। यह पृष्ठ अत्यन्त मांसहीन है। यह दो भागों में विभक्त
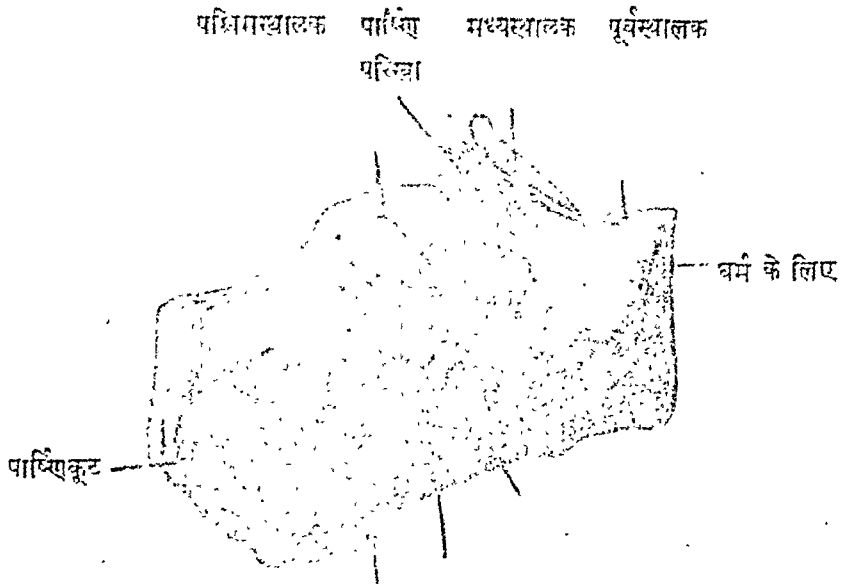
चित्र नं० १२३—पार्ष्णि का ऊर्ध्व पृष्ठ
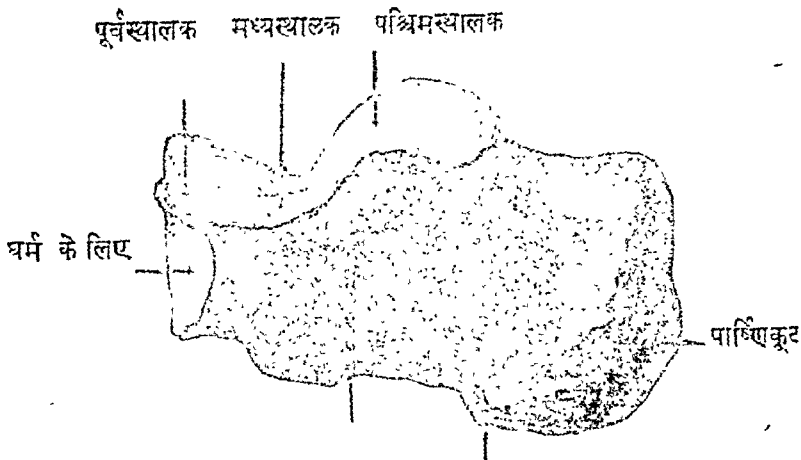
चित्र नं० १२४—पार्ष्णि का अधोपृष्ठ

है। आगे के भाग में गढ़ा और स्थालक हैं। पीछे का भाग अनुदैर्ध्य दिशा में नतोदर किन्तु पार्श्व में उन्नतोदर और खुरदरा है। इस पर वसा की एक कवलिका रहती है। इस भाग के

आगे की ओर एक बड़ा अण्डाकार स्थालक है जो आगे से पीछे की ओर को उन्नतोदर है। यह स्थालक कूर्च्चशिर के नीचे की ओर स्थित स्थालक के साथ मिला रहता है। इस स्थालक के आगे की ओर एक परिखा है जो अस्थि के भीतर की ओर से पार्श्वपृष्ठ की ओर चली जाती है। कूर्च्चशिर के नीचे की ओर एक समान परिखा होती है जो इस परिखा के साथ मिलकर एक नलिका बना देती है। इस नलिका में एक स्नायु रहती है जिसको अस्थ्यन्तरिक कूर्चपार्ष्णिसंयोजक स्नायु[1] कहते हैं। इस परिखा के आगे और भीतर की ओर एक लम्बा स्थालक है जिसका ऊपरी भाग पार्ष्णि के भीतर की ओर प्रवर्धित भाग पर, जो पार्ष्ण्योष्ठ[2] कहा जाता है, रहता है। स्थालक का यह भाग कूर्च्चशिर के नीचे की ओर स्थित बीच के स्थालक के साथ मिलता है। स्थालक का अग्रभाग, जो कभी-कभी ऊपरी भाग से भिन्न होता है, कूर्च्चशिर के पूर्वस्थालक से सम्मेलन करता है। इस पृष्ठ के खुरदरे पूर्वपार्श्व भाग से पादाङ्गुलिप्रसारणी लघ्वी[3] के भाग का उदय होता है और कुछ स्नायु लगते हैं।

अधःपृष्ठ पीछे की ओर अधिक चौड़ा है और एक तिर्यक् उत्सेध द्वारा पीछे की ओर से परिमित है। इस उत्सेध को पार्ष्णिकूट[4] कहते हैं। इसके पार्श्विक और मध्यस्थ भाग दो पिण्डकों के रूप में दिखाई देते हैं। ये पार्श्व और मध्यस्थ पिण्डक कहे जाते हैं। पार्श्वपिण्डक छोटा और गोल है। उस पर से पादकनिष्ठापकर्षणी[5] का उदय होता है। मध्यस्थपिण्डक बड़ा और स्पष्ट है। उसके भीतर की ओर पादाङ्गुष्ठापकर्षणी[6] और आगे की ओर पादाङ्गुलि-सङ्कोचनी-लघ्वी[7] पेशियाँ लगती हैं। इसके पास ही पादतलकला-वितान[8] भी लगा रहता है। इन दोनों पिण्डों के बीच के स्थान से भी पादकनिष्ठापकर्षणी का उदय होता है। पिण्डकों के आगे के खुरदरे स्थान पर पादतलचतुरस्रा[9] का पार्श्विक शिर और दीर्घपादतल-स्नायु[10] लगते हैं। अधःपृष्ठ के अगले भाग में स्थित एक पिण्डक और परिखा पर पादतलीय-पार्ष्णिघर्म-संयोजक[11] स्नायु लगता है।

पार्श्वपृष्ठ पीछे की ओर चौड़ा किन्तु आगे की ओर सिकुड़ा होता है। इसके बीच में एक पिण्डक है जिस पर पार्ष्णि-बहिर्जङ्घिक[12] स्नायु लगता है। इस पिण्डक से आगे की ओर को एक तीरणिका जाती हुई दिखाई देती है, जिसके दोनों ओर दो परिखाएँ हैं। इसके ऊपर की ओर जो परिखा है उसमें पादविवर्तनी लघ्वी की कण्डरा और नीचे की परिखा में पादविवर्तनी दीर्घा की कण्डरा रहती है।

अन्तःपृष्ठ नतोदर है और आगे तथा नीचे की ओर जाता है। इस पर से पादतल-चतुरस्रा पेशी का उदय होता है और इसके द्वारा पादतलीय धमनी, शिरा और नाड़ी पादतल में जाती हैं। इस पृष्ठ के अगले और ऊपर के भाग में पार्ष्ण्योष्ठ स्थित है जिसका नीचे का पृष्ठ नतोदर है। उस पर एक परिखा है जिसके द्वारा पादाङ्गुष्ठ-सङ्कोचनी दीर्घा[13] की कण्डरा जाती है। ऊपर की ओर से यह प्रवर्धन कूर्च्चशिर से मिलता है। इसके आगे के किनारे पर पादतलीय पार्ष्णिनौनिभ संयोजक[14] बन्धन और ऊपरी किनारे पर त्रिकोणीय बन्धन[15] लगते हैं। प्रवर्धन के नीचे की ओर जङ्घापश्चिमा की कण्डरा का एक भाग लगता है।

---

१. Interosseous Talocalcaneal Lig. २. Sustentaculum Tali. ३. Extensor digitorum Brevis. ४. Calcaneal Tuberosity. ५. Abductor digiti quinti. ६. Abductor Hallucis. ७. Plantar Aponeurosis. ८. Flexor digitorum Brevis. ९. Quadratus Plantae. १०. Long Plantar Lig. ११. Plantar calcaneocuboid Lig. १२. Calcaneofibular Lig. १३. Flexor Hallucis Longus. १४. Plantar calcaneonavicular Lig. १५. Deltoid Lig.
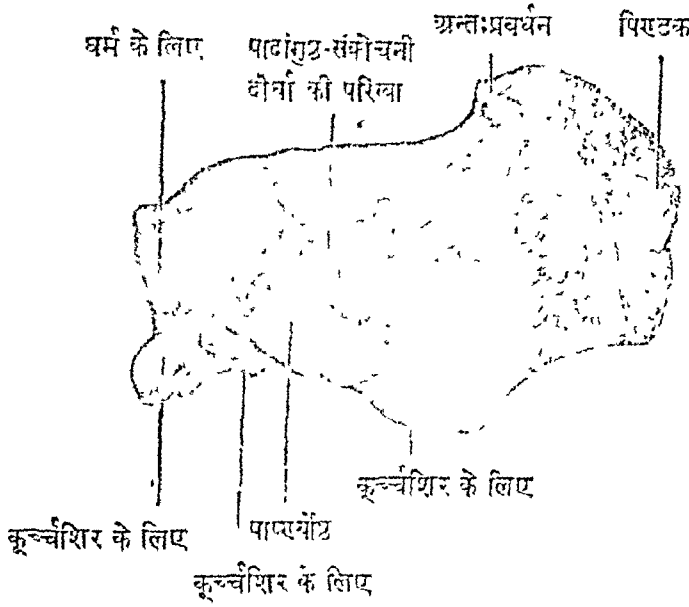
चित्र नं० १२५—पार्ष्णि—बहिःपृष्ठ

पूर्वपृष्ठ पर एक बड़ा स्थालक है जो घर्म के साथ मिलता है। यह पृष्ठ त्रिकोणाकार, एक ओर से नतोदर और दूसरी ओर से उन्नतोदर है। इसके भीतरी किनारे पर पादतलीय पार्ष्णि नौनिभ संयोजक स्नायु लगता है।
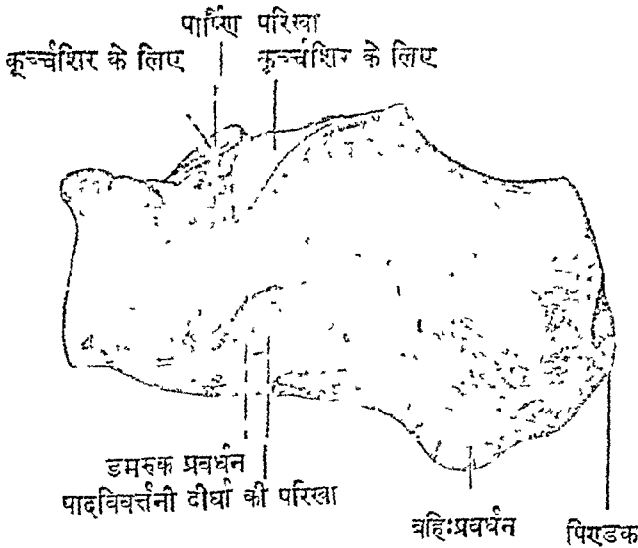
चित्र नं० १२६—पार्ष्णि—अन्तःपृष्ठ

पश्चिमपृष्ठ क्रमहीन है। इसका ऊपरी भाग एक त्रिकोण के समान है, किन्तु नीचे का चतुष्कोणाकार भाग खुरदरा और एक हलकी सी रेखा द्वारा दो भागों में विभक्त है। सबसे ऊपर का त्रिकोणाकार भाग चिकना है और वसा की कवलिका से ढका रहता है जो पार्ष्णि-कण्डरा और अस्थि

के बीच में रहती है। बीच के खुरदरे भाग पर पार्ष्णि, कण्डरा और जङ्घापिण्डिका तृतीया का निवेश होता है। नीचे के भाग पर भी कुछ वसा रहती है।

अस्थि-विकास भ्रूणावस्था के छठे मास में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन—यह अस्थि आगे की ओर घर्म से और आगे और ऊपर की ओर कूर्च्चशिर के साथ सम्मेलन करती है।

कूर्च्चशिर[1]

यह अस्थि पाद-कूर्चास्थियों में पार्ष्णि के अतिरिक्त अन्य सब अस्थियों से बड़ी है। यह अन्य कूर्चास्थियों के ऊपर की ओर रहती है। इसके नीचे की ओर पार्ष्णि, ऊपर अन्तर्जंघिका का अधःप्रान्त,
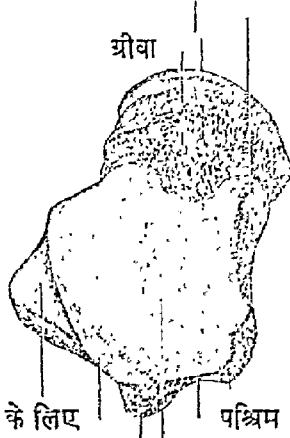
चित्र नं० १२७—कूर्च्चशिर—ऊपर की ओर से

भीतर और बाहर की ओर अन्तः और बहिः गुल्फ, और आगे तथा नीचे की ओर नौनिभ अस्थियाँ रहती हैं। इस प्रकार यह अस्थि अन्य अस्थि-पुञ्ज के ऊपर शिर की भाँति रहती है। इसमें शिर, ग्रीवा और गात्र होते हैं।

गात्र अस्थि का सबसे बड़ा भाग है। इसके ऊर्ध्वपृष्ठ पर एक डमरुकाकार बड़ा स्थालक है जो अन्तर्जंघास्थि के साथ मिलता है। यह आगे से पीछे की ओर को उन्नतोदर है किन्तु दूसरी दिशा में नतोदर है। इसका पीछे का भाग संकुचित और आगे का भाग चौड़ा है। अधःपृष्ठ पर दो स्थालक हैं, जिनके बीच में एक परिखा है। इसको कूर्चशिरःपरिखा[2] कहते हैं। यह पार्ष्णि पर स्थित समान परिखा के साथ मिली रहती है जिससे एक नलिका बन जाती है। इस नलिका में अभ्यन्तरिक कूर्च पार्ष्णि-संयोजक स्नायु रहता है। इस परिखा का भीतर का भाग बाहरी भाग की अपेक्षा चौड़ा है। दोनों स्थालकों के पीछे की ओर एक चौड़ा और बड़ा स्थालक है। यह अत्यन्त

१. Talus. २. Sulcus Tali.

नतोदर और अण्डाकार है। इसका सम्मेलन पार्ष्णि के ऊर्ध्वपृष्ठ पर स्थित समान आकार के स्थालक के साथ होता है। परिखा के आगे की ओर का छोटा स्थालक उन्नतोदर और अण्डाकार है और पार्ष्णि के ओष्ठ के ऊपर स्थित स्थालक के साथ मिला रहता है। यह स्थालक शिर के नीचे की ओर स्थित है। भिन्न-भिन्न अस्थियों में स्थालक के आयाम में भी भिन्नता पाई जाती है। अन्तःपृष्ठ पर ऊपर की ओर एक छोटा सा त्रिकोणाकार स्थालक है जो अन्तर्गुल्फ से मिलता है। यह स्थालक ऊपर की ओर ऊर्ध्वपृष्ठ के बड़े स्थालक के साथ मिला हुआ है। स्थालक के नीचे एक गढ़ा है जिसमें
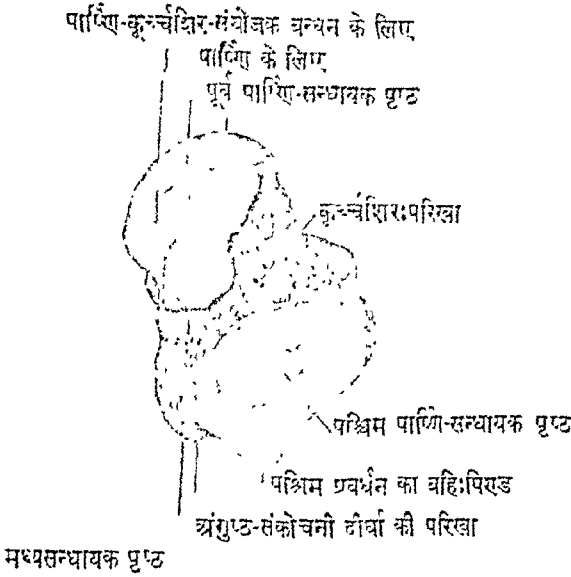
चित्र नं० १२८—कूर्च्चशिर—नीचे की ओर से

गुल्फ-सन्धि का त्रिकोणीय स्नायु लगा हुआ है। यह भाग खुरदरा है। आगे की ओर यह पृष्ठ ग्रीवा के अन्तःपृष्ठ से मिला हुआ है।

पार्श्विक या बहिःपृष्ठ पर एक बड़ा त्रिकोणाकार ऊपर से नीचे की ओर को नतोदर स्थालक है जो बहिर्गुल्फ के साथ मिलता है। ऊपर की ओर यह ऊर्ध्वपृष्ठ के स्थालक के साथ मिला हुआ है। इस त्रिकोणाकार स्थालक के शिखर पर पार्श्विक कूर्चपार्ष्णि-संयोजक स्नायु[1] लगता है। इसके आगे की ओर एक छोटा खात है जिसमें पूर्व कूर्च-बहिर्जंघिक स्नायु[2] और नीचे की ओर की परिखा में पश्चिम कूर्च-बहिर्जंघिक स्नायु[3] लगते हैं। इस पृष्ठ के पिछले भाग और ऊर्ध्वपृष्ठ के बहिर्भाग के पिछले भाग के बीच में एक त्रिकोणाकार स्थान है जो तिरश्चीनाधर कूर्च-बहिर्जंघिक स्नायु के सम्पर्क में रहता है।

पश्चिमपृष्ठ छोटा, त्रिकोणाकार और खुरदरा है। इसके बीच में एक परिखा है जिसके दोनों ओर दो पिण्डक हैं। बाहर की ओर का पिण्डक बड़ा है। इस पर पश्चिमकूर्च-बहिर्जंघिक स्नायु लगता है। भीतरी पिण्डक पर आन्तर कूर्च-पार्ष्णि-संयोजक[4] स्नायु लगता है। परिखा में पादांगुष्ठ-संकोचनी-दीर्घा की कण्डरा रहती है।

गात्र में पूर्वपृष्ठ नहीं होता क्योंकि इससे ग्रीवा आगे की ओर निकली हुई है।

---

१. Lateral Talocalcaneal Lig. २-३. Anterior and posterior Talofibular Lig. ४. Medial Talocalcaneal Lig.

ग्रीवा शिर और गात्र के बीच का संकुचित भाग है। इसके ऊर्ध्व और मध्यस्थ पृष्ठ खुरदरे हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ पर एक गढ़ा भी दिखाई देता है। इन पृष्ठों पर स्नायु लगे हुए हैं। इसके अधःपृष्ठ पर एक परिखा है जिसका पहले वर्णन हो चुका है।
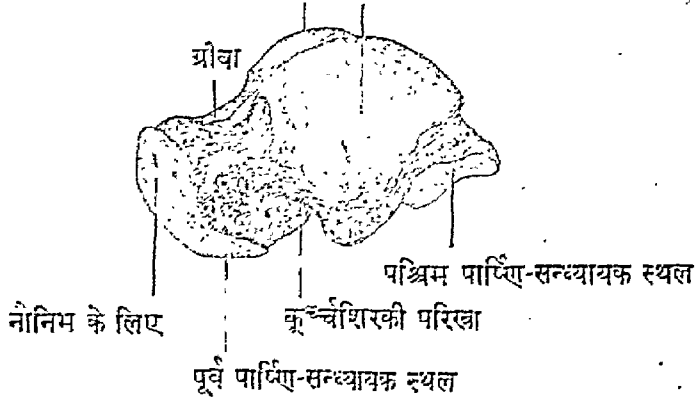
चित्र नं० १२६—कूर्च्चशिर—बाहर की ओर से

शिर आगे और भीतर की ओर को बढ़ा हुआ भाग है। इसके आगे की ओर पूर्वपृष्ठ पर एक अण्डाकार स्थालक है जो नौनिभ के साथ मिलता है। अधःपृष्ठ पर वह स्थालक स्थित है जो पार्ष्णि के ऊर्ध्वपृष्ठ से सम्पर्क करता है। इसके पीछे की ओर उन्नतोदर, त्रिकोणाकार दूसरा छोटा स्थालक है जो पादतलीय पार्ष्णि-नौनिभ संयोजक स्नायु के साथ मिलता है।

अस्थि-विकास—भ्रूणावस्था के आठवें मास में अस्थि के गात्र में एक विकास-केन्द्र उदय होता है।
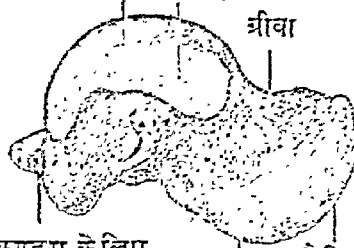
चित्र नं० १३०—कूर्च्चशिर भीतर की ओर से

सम्मेलन—इस अस्थि का अन्तर्जङ्घास्थि, बहिर्जङ्घास्थि, पार्ष्णि और नौनिभ नामक चार अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है।

घर्म[1]

यह अस्थि आकार में एक घन के समान होती है। इस कारण वह सहज में पहचानी जा सकती है। यह अस्थि पाँव के बाहर की ओर पार्ष्णि, चौथी और पाँचवीं पादशलाकाओं के बीच में रहती है।

अस्थि के पूर्व और पश्चात् पृष्ठ दो बड़े स्थालकों से आच्छादित हैं। पूर्वपृष्ठ एक तीरणिका के द्वारा दो भागों में विभक्त है। इनमें से भीतर का चतुष्कोणाकार भाग चतुर्थ पादशलाका और बाहर का त्रिकोणाकार भाग पञ्चम पादशलाका से मिलता है। पश्चिमपृष्ठ पूर्व की अपेक्षा बड़ा है और ऊपर से नीचे की ओर को नतोदर है किन्तु दूसरी दिशा में उन्नतोदर है। यह पृष्ठ एक अण्डाकार स्थालक से घिरा हुआ है जो पार्ष्णि के अग्रभाग से मिलता है। इस पृष्ठ के अधरान्तःकोण से एक प्रवर्धन पीछे की ओर को निकला हुआ है। ऊर्ध्वपृष्ठ चिपटा और खुरदरा है। उस पर केवल बन्धन लगते हैं। इस पर न तो कोई स्थालक है और न परिखा या तीरणिका। जब यह अस्थि पाँव में रहती है तो यह पृष्ठ, पाँव के बाहर की ओर को ढलवाँ होने के कारण, पार्ष्णि के पार्श्वपृष्ठ के साथ मिला रहता है। अधःपृष्ठ पर भी कोई स्थालक नहीं है। इसके बीच में एक अत्यन्त स्पष्ट उठी हुई तीरणिका है जिसके
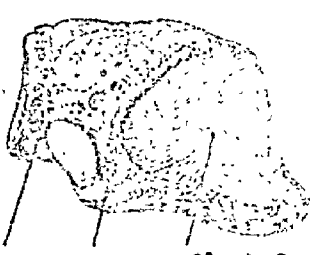
चित्र नं० १३१—घर्म—बहिः-पश्चिमपृष्ठ
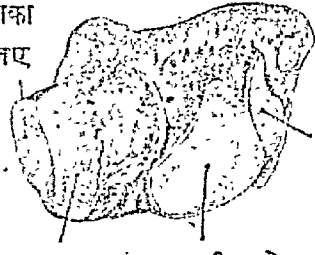
५वीं पादशलाका के लिए

नौनिभ (कभी कभी) के लिए

चौथी पादशलाका के लिए

तृतीय कोणक के लिए

चित्र नं० १३२—घर्म—पार्श्वान्तःपृष्ठ

दोनों ओर दो परिखाएँ हैं। आगे की परिखा में पाद-विवर्त्तनी दीर्घा की कण्डरा रहती है। स्वयं तीरणिका पर दीर्घ-पादतलीय स्नायु लगता है। यह तीरणिका बाहर की ओर एक पिण्डक में समाप्त होती है जिस पर पाद-विवर्त्तनी दीर्घा की कण्डरा लगती है। तीरणिका से पीछे की परिखा चौड़ी है। उस पर और पृष्ठ के शेष भाग पर अंगुष्ठ-सङ्कोचनी ह्रस्वा के कुछ सूत्र जङ्घापश्चिमा की कण्डरा का एक भाग और पादतलीय-घर्मपार्ष्णि संयोजक स्नायु[1] लगते हैं। अस्थि का अन्तःपृष्ठ चौड़ा, चतुष्कोणाकार और कुछ क्रमहीन है। इसके ऊपरी भाग में एक त्रिकोणाकार स्थालक है जिसके द्वारा अस्थि तृतीय कोणक के साथ मिलती है। कभी इसके पीछे की ओर एक छोटा सा स्थालक भी पाया जाता है जो नौनिभ के साथ मिलता है। पृष्ठ का शेष भाग खुरदरा है जिस पर स्नायु लगते हैं। बहिःपृष्ठ संकुचित और छोटा है और उस पर एक हलका सा गढ़ा है जहाँ पर अधःपृष्ठ की परिखा आरम्भ होती है।

अस्थि-विकास—जन्म के पश्चात् प्रथम सप्ताह में एक केन्द्र उदय होता है जिससे अस्थि का विकास होता है।

सम्मेलन—घर्म का चार अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है—पार्ष्णि, तृतीय कोणक, चतुर्थ और पंचम पादशलाका। कभी-कभी नौनिभ के साथ भी सम्मेलन हो जाता है।

---

१. Plantar calcaneocuboid Lig.

नौनिभ[1]

यह अस्थि पाँव में भीतर की ओर रहती है। कूर्च्चशिर इसके पीछे की ओर और घर्म बाहर की ओर रहता है। इसका पश्चिमपृष्ठ गहरा नतोदर है, किन्तु पूर्वपृष्ठ उन्नतोदर है। इस कारण नौका के साथ इसकी समानता की गई है।

पूर्वपृष्ठ उन्नतोदर है। इसमें दो रेखाएँ दिखाई देती हैं, जिनके कारण पृष्ठ तीन भागों में विभक्त है। इन तीनों स्थालकों पर तीनों कोणक अस्थियाँ लगती हैं। पश्चिमपृष्ठ नतोदर है। इसका बाहर की ओर का भाग अधिक चौड़ा है। इसके गहरे खात में कूर्च्चशिर का शिर रहता है। ऊर्ध्वपृष्ठ कुछ उन्नतोदर और खुरदरा है, जिस पर स्नायु लगते हैं। इसी भाँति अधःपृष्ठ भी खुरदरा है और
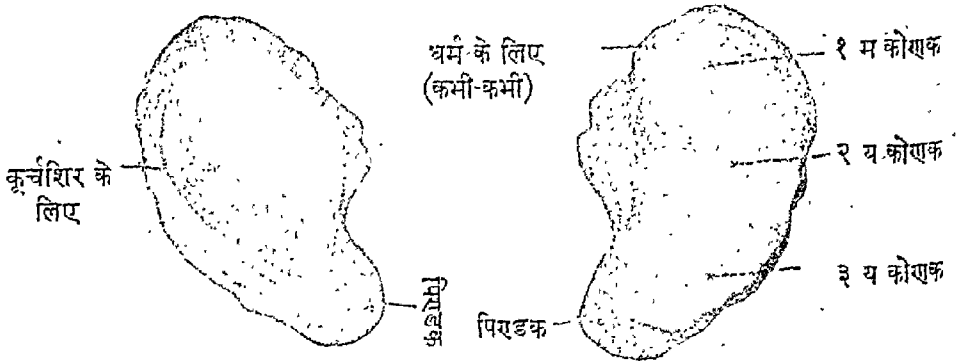
चित्र नं० १३३—नौनिभ—पूर्वपृष्ठ चित्र नं० १३४—नौनिभ—पश्चिमपृष्ठ

उस पर भी पादतलीय-पार्ष्णि-संयोजक स्नायु का एक भाग लगता है। अन्तःपृष्ठ पर एक पिण्डक है जो नौनिभ-कूट[2] कहलाता है। इस पर जङ्घा-पश्चिमा की कण्डरा लगती है। यह कूट पाँव में अन्तर्गुल्फ के लगभग १½ इंच आगे और नीचे की ओर प्रतीत किया जा सकता है। बहिःपृष्ठ खुरदरा है। इस पर स्नायु लगते हैं। कभी-कभी इस पर घर्म के साथ मिलने के लिए एक स्थालक भी होता है।

अस्थि-विकास—इस अस्थि का चौथे वर्ष में एक केन्द्र से विकास होता है।

सम्मेलन—नौनिभ चार अस्थियों के साथ मिलता है। कूर्च्चशिर बाहर की ओर और तीनों कोणक आगे की ओर मिलते हैं।

कोणकास्थियाँ[3]

ये तीना अस्थियाँ त्रिकोण के आकार की हैं जो ऊपर की ओर पतली और नीचे की ओर मोटी हैं। इनकी गणना संख्या के अनुसार होती है। प्रथम कोणक सबसे बड़ा है और पाँव के भीतर की ओर नौनिभ के आगे रहता है। द्वितीय कोणक बीच में रहता है और तृतीय कोणक बाहर की ओर रहता है। द्वितीय से तृतीय कोणक बड़ा है।

---

१. Navicular. २. Tuberosity of Navicular. ३. Cuneiform Bones.

प्रथम या अन्तः कोणक

प्रथम कोणक शेष दोनों कोणकों से बड़ा है। इसका पूर्वपृष्ठ चिकना और एक सेम के बीज के आकार के स्थालक से घिरा हुआ है। यह स्थालक प्रथम पादशलाका के मूल के साथ मिलता है। पश्चिमपृष्ठ पर भी एक त्रिकोणाकार गोल स्थालक है। यह नतोदर है और नौनिभ के पूर्वपृष्ठ पर स्थित सबसे बड़े स्थालक से सम्पर्क करता है। अन्तःपृष्ठ पर कोई स्थालक नहीं है। इस पृष्ठ का आकार एक त्रिकोण के समान है। इसके आगे और नीचे की ओर एक गोल चिह्न है जिसमें जंघापूर्विका की कण्डरा का एक भाग निवेश करता है। पृष्ठ का

द्वितीय कोणक के लिए
नौनिभ के लिए नौनिभ के लिए दूसरी पादशलाका के लिए
प्रथम पादशलाका के लिए
जंघा पुरोगा की कण्डरा की कवलिका के लिए
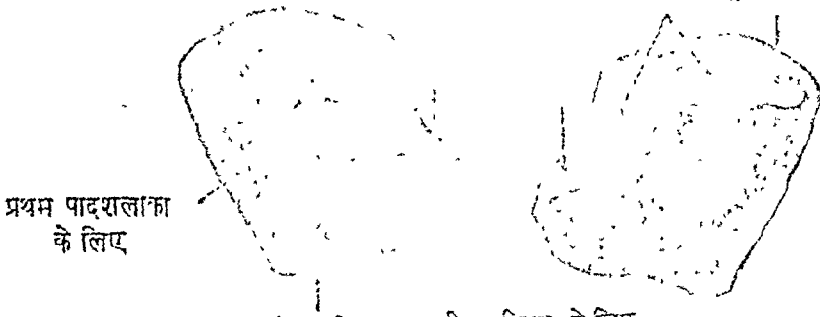
चित्र नं० १३५—प्रथम कोणक—अन्तःपृष्ठ चित्र नं० १३६—प्रथम कोणक—बहिःपृष्ठ

शेष भाग खुरदरा है। इस पर कई छिद्र दिखाई देते हैं। इस भाग पर बन्धन लगते हैं और छिद्र के द्वारा धमनियाँ अस्थि के भीतर जाती हैं। बहिःपृष्ठ कुछ नतोदर है। इसका अधिक भाग खुरदरा है। पृष्ठ की पश्चिम और ऊर्ध्व धारा पर एक L आकार का स्थालक है, जिसके दोनों भाग दूसरे कोणक और दूसरी पादशलाका से मिलते हैं। खुरदरे भाग पर बन्धन और पाद-विवर्त्तनी दीर्घा की कण्डरा का कुछ भाग लगता है। ऊर्ध्वपृष्ठ छोटा, पतला और खुरदरा है। यह त्रिकोण का शिखर बनाता है और ऊपर और बाहर की ओर को झुका रहता है। इस पर बन्धन लगते हैं। अधःपृष्ठ भी खुरदरा है। इसके पीछे की ओर एक पिण्डक है जिस पर जंघा पश्चिमा की कण्डरा लगती है। आगे की ओर भी एक ऐसा ही, किन्तु इससे छोटा, पिण्डक है जिस पर जंघा-पूर्विका की कण्डरा का निवेश होता है।

अस्थिविकास तीसरे वर्ष में एक केन्द्र से होता है।

सम्मेलन—प्रथम कोणक चार अस्थियों के साथ सम्मेलन करता है। नौनिभ पीछे की ओर, द्वितीय कोणक बाहर की ओर और प्रथम तथा द्वितीय पादशलाका आगे की ओर।

द्वितीय या मध्य कोणक

यह प्रथम और तृतीय कोणकों से छोटा है। इसका पतला शिखर नीचे की ओर को रहता है। दोनों ओर दो कोणक रहते हैं। आगे की ओर द्वितीय पादशलाका और पीछे की ओर नौनिभ मिलते हैं।

पूर्वपृष्ठ त्रिकोणाकार, पश्चिमपृष्ठ से छोटा है। यह द्वितीय पादशलाका के मूल से मिलता है। पश्चिमपृष्ठ भी त्रिकोणाकार किन्तु पूर्व से बड़ा और नतोदर है और नौनिभ के पूर्वपृष्ठ पर स्थित बीच के स्थालक के साथ मिलता है। अन्तःपृष्ठ पर एक ∟ आकार का स्थालक है जो पृष्ठ की ऊर्ध्व और पश्चात् धाराओं के पास स्थित है। यह स्थालक प्रथम कोणक के समान स्थालक के साथ मिलता है। शेष भाग खुरदरा है। स्थालक के आगे की ओर एक गढ़ा दिखाई देता है। इस सारे स्थान पर बन्धन लगते हैं। बहिःपृष्ठ पर पश्चिमभाग के पास एक लम्बा स्थालक है जो तृतीय कोणक के साथ मिलता है। इसके आगे की ओर एक उत्सेध दिखाई देता है। शेष
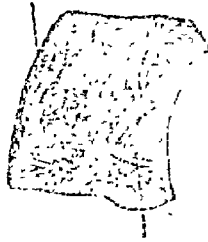
चित्र नं० १३७—द्वितीय कोणक—बहिःपृष्ठ चित्र नं० १३८—द्वितीय कोणक—अन्तःपृष्ठ

पृष्ठ खुरदरा है। ऊर्ध्वपृष्ठ चौड़ा, चतुष्कोणाकार और खुरदरा है। यह त्रिकोण का आधार या तल बनाता है। अधःपृष्ठ पतला, एक लम्बी शिखा के समान है जो नीचे की ओर रहता है। इसके पिछले भाग में एक छोटा पिण्डक है, जिस पर जंघा-पश्चिमा की कण्डरा का कुछ भाग लगता है।

अस्थि-विकास—द्वितीय कोणक में दूसरे वर्ष एक विकास-केन्द्र उदय होता है, जिससे अस्थि विकसित होती है।

सम्मेलन—द्वितीय कोणक चार अस्थियों के साथ सम्मेलन करता है। आगे की ओर द्वितीय पादशलाका से, पीछे की ओर नौनिभ से, भीतर की ओर प्रथम कोणक से और बाहर की ओर तृतीय कोणक से।

तृतीय या बहिःकोणक

तृतीय कोणक द्वितीय कोणक से बड़ा किन्तु प्रथम कोणक से छोटा है। द्वितीय कोणक की भाँति इसका भी चौड़ा आधार ऊपर की ओर रहता है और पतला, नुकीला शिखर नीचे की ओर रहता है। इसके भीतर की ओर द्वितीय कोणक और बाहर की ओर घनास्थि रहती है।

अस्थि का पूर्वपृष्ठ त्रिकोणाकार है जिसका ऊपरी भाग चौड़ा है। यह समस्त पृष्ठ स्थालक से आच्छादित है जो तृतीय पादशलाका के मूल से मिलता है। पश्चिमपृष्ठ का भी अधिक भाग एक त्रिकोणाकार स्थालक से घिरा हुआ है जो नौनिभ के पूर्वपृष्ठ पर स्थित बहिः स्थालक से मिलता है। नीचे के खुरदरे भाग पर बन्धन लगते हैं। अन्तःपृष्ठ पर आगे और पीछे की ओर दो स्थालक हैं। कभी-कभी आगे का स्थालक दो भागों में विभक्त दीखता है। यह स्थालक द्वितीय पादशलाका के मूल

चित्र नं० १३९—तृतीय कोणक—अन्तःपृष्ठ

चित्र नं०—१४०—तृतीय कोणक—बहिःपृष्ठ

के पार्श्व में स्थित स्थालक के साथ मिलता है। पीछे की ओर का स्थालक द्वितीय कोणक से मिलता है। इन दोनों स्थालकों के बीच के खुरदरे भाग पर अभ्यन्तरिक बन्धन लगता है। बहिःपृष्ठ पर भी दो स्थालक हैं जिनमें से पीछे की ओर स्थित स्थालक बड़ा है। ऊर्ध्वपूर्व कोण पर स्थित छोटा अण्डाकार स्थालक चतुर्थ पादशलाका के मूल के साथ मिलता है। पीछे की ओर का बड़ा स्थालक घर्म के साथ सम्पर्क करता है। पृष्ठ के खुरदरे भाग पर बन्धन लगते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ खुरदरा चौकोर है जिसका पीछे का भाग कुछ पीछे की ओर को नोक की भाँति प्रवर्धित है। अधःपृष्ठ एक धारा के समान है जो पाँव में नीचे की ओर रहता है। इस पर जङ्घा-पश्चिमा की कण्डरा का कुछ भाग, कुछ बन्धन और पादांगुष्ठसङ्कोचनी लघ्वी के कुछ सूत्र लगते हैं।

स्थालकों की स्थिति को ध्यान से देखने से ज्ञात होगा कि द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ शलाकाओं के स्थालक एक दूसरे से मिले हुए हैं। इसी प्रकार नौनिभ और द्वितीय कोणक के स्थालक भी केवल एक तीरखिका द्वारा भिन्न हैं, किन्तु घर्म का बड़ा स्थालक पृथक् है।

अस्थि-विकास—जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में एक केन्द्र से इस अस्थि का विकास होता है।

सम्मेलन—इस अस्थि का छः अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है। पूर्वपृष्ठ पर तृतीय शलाका, पश्चात्पृष्ठ पर नौनिभ, अन्तःपृष्ठ पर द्वितीय शलाका और द्वितीय कोणक और बहिःपृष्ठ पर चतुर्थ शलाका और घर्म।

प्रपद[1]

करभ की भाँति प्रपद में भी पाँच अस्थियाँ होती हैं जिनको प्रपदिकाएँ[2] या पादमूलशलाकाएँ कहते हैं। प्रत्येक पादशलाका करभशलाका की भाँति दीर्घ अस्थि है जिसमें दो प्रान्त और उसके बीच में गात्र होता है। इनका पूर्वप्रान्त गोल होता है और पाँव में आगे की ओर अंगुलिका से मिला रहता है। इसको शिर भी कहते हैं। इस पर एक चिकना स्थालक होता है जो ऊपर और अस्थि के नीचे की ओर तक फैला रहता है। पश्चिमप्रान्त चौड़ा और त्रिकोणाकार है। इसके पश्चिम और पार्श्वपृष्ठ पर स्थालक होते हैं जो कूर्च्चिका और एक दूसरी प्रपदिका से मिले रहते हैं। गात्र लम्बा और पतला होता है। इसका पश्चात्पृष्ठ चपटा है।

पूर्वप्रान्त या शिर में नीचे की ओर दो पिण्डक होते हैं जिनके बीच में एक परिखा दिखाई देती

1. Metatarsus. २. Metatarsal Bones.

है। इस परिखा के द्वारा संकोचक पेशियों की कण्डराएँ आगे को जाती हैं। ऊपर की ओर भी दोनों ओर दो पिण्डक होते हैं।

प्रथम प्रपदिका या अंगुष्ठमूलशलाका

यह अन्य प्रपदिकाओं की अपेक्षा मोटी है। इसका मूल अधिक चौड़ा, दृढ़ और अण्डाकार है। मूल के पश्चात्पृष्ठ पर एक सेम के बीज के आकार का स्थालक है। इस स्थालक का गोल

चित्र नं० १४१—प्रथम प्रपदिका

किनारा भीतर की ओर और दूसरा किनारा, जिसमें एक गढ़ा है, बाहर की ओर रहता है। यह स्थालक प्रथम कोणक के साथ मिलता है। खुरदरे भाग पर बन्धन लगते हैं। भीतर की ओर इस पृष्ठ के किनारे पर एक परिखा दिखाई देती है जिसमें जङ्घापूर्विका की कण्डरा लगती है। पृष्ठ के नीचे पादतल की ओर भी एक पिण्डक है जिस पर पादविवर्त्तनी दीर्घा की कण्डरा के भाग का निवेश होता है।

शिर गोल और बड़ा है, किन्तु चपटा हो गया है। इसके नीचे की ओर एक तीरणिका है जिसके द्वारा सारा पृष्ठ दो भागों में विभक्त है। ये दोनों स्थालक दो छोटी-छोटी चणकास्थियों से मिले रहते हैं।

गात्र त्रि-पार्श्विक है जिसका ऊर्ध्वपृष्ठ चपटा है। अधःपृष्ठ भी जो पादतल की ओर रहता है कुछ चपटा है। बहिःपृष्ठ बाहर की ओर रहता है।

सम्मेलन पीछे की ओर प्रथम कोणक और आगे की ओर चणकास्थियों और प्रथम अंगुलि-नलक से होता है।

द्वितीय प्रपदिका (तर्जनीमूल शलाका)

प्रपदिकाओं में यह सबसे लम्बी अस्थि है। इसके पतले गात्र में ऊर्ध्व, बहिः और अन्तः तीन पृष्ठ होते हैं, जो सहज में पहचाने जा सकते हैं। गोल शिर पर अंगुलिनलक के लिए स्थालक है। मूल त्रिकोणाकार है। इसका ऊपर का भाग नीचे के भाग की अपेक्षा चौड़ा है। इस पर स्थित

स्थालक द्वितीय कोणक से मिलता है। मूल के पार्श्वों पर दो छोटे-छोटे अण्डाकार स्थालक हैं। दोनों स्थालक एक खड़ी हुई उभरी सीमान्तरेखा के द्वारा आगे और पीछे के दो भागों में विभक्त हैं। दोनों स्थालकों के अग्रभागों पर द्वितीय प्रपदिका और पश्चात् भागों पर तृतीय कोणक अस्थियाँ
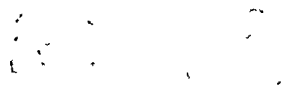
तृतीय प्रपदिका के लिए

प्रथम कोणक के लिए

द्वितीय कोणक के लिए   तृतीय कोणक के लिए

चित्र नं० १४२—द्वितीय प्रपदिका

लगती हैं। मूल के अन्तःपृष्ठ पर भी एक छोटा स्थालक है जो प्रथम प्रपदिका से सम्मेलन करता है।

सम्मेलन—आगे की ओर प्रथम पंक्ति के पादांगुलिनलकों से और पीछे की ओर प्रथम, द्वितीय और तृतीय कोणक और बाहर की ओर तृतीय प्रपदिका से द्वितीय प्रपदिका का सम्मेलन होता है।

तृतीय प्रपदिका [illegible]

तृतीय और चतुर्थ प्रपदिकाएँ बहुत कुछ समान हैं। गात्र और शिर में अधिक भेद नहीं है। केवल मूल के भेद ही के द्वारा दोनों में भिन्नता की जा सकती है। तृतीय प्रपदिका का मूल.

चित्र नं० १४३—तृतीय प्रपदिका

त्रिकोणाकार होता है। इसके पश्चात् पृष्ठ पर स्थित चिकना त्रिकोणाकार स्थालक तृतीय कोणक के साथ मिलता है। इसके भीतर की ओर दो स्थालक हैं जिनके बीच में कुछ नत खुरदरा स्थान है। ये दोनों स्थालक दूसरी प्रपदिका से मिलते हैं। मूल के पार्श्व में एक स्थालक ऊपर और पीछे के कोण पर स्थित है, जहाँ वह चौथी प्रपदिका से मिलता है।

सम्मेलन—यह अस्थि तृतीय कोणक, द्वितीय प्रपदिका और चतुर्थ प्रपदिका से सम्मेलन करती है। आगे की ओर यह प्रथम पंक्ति के अंगुलिनलक से मिली रहती है।

चतुर्थ प्रपदिका या अनामिकामूलशलाका

यह तृतीय प्रपदिका से कुछ छोटी है। इसके मूल के पश्चात् पृष्ठ पर एक चतुष्कोणाकार स्थालक है जो घर्म के साथ मिलता है। मूल के अन्तःपृष्ठ पर एक स्थालक है जो एक तीरखिका
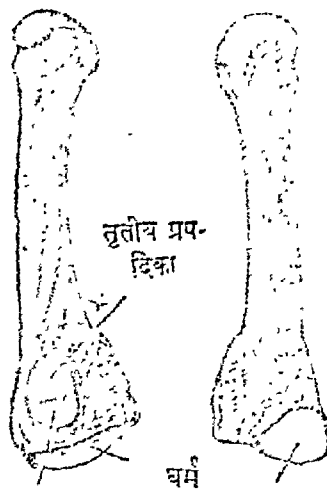
चित्र नं० १४४—चतुर्थ प्रपदिका

द्वारा दो भागों में विभक्त है। आगे के भाग से तृतीय प्रपदिका और पीछे के भाग से तृतीय कोणक मिलता है। पार्श्व में पञ्चम प्रपदिका के लिए एक स्थालक है।

सम्मेलन—यह अस्थि तृतीय कोणक, घर्म, तृतीय और पञ्चम प्रपदिका और आगे की ओर प्रथम अंगुलिनलक से मिलती है।

पञ्चम प्रपदिका या कनिष्ठामूलशलाका

इस अस्थि का शिर अन्य सब अस्थियों से छोटा है और इसके मूल से पार्श्व की ओर एक प्रवर्धन निकला हुआ है। मूल का ऊर्ध्वपृष्ठ चपटा है। उसके भीतरी पृष्ठ पर पाद-विवर्तनी तृतीया की कण्डरा का निवेश होता है। कूट के ऊर्ध्वपृष्ठ पर पाद-विवर्तनी लघ्वी की कण्डरा लगती है। मूल के पश्चात् पृष्ठ पर दो स्थालक हैं। ऊपर के छोटे चौकोर स्थालक पर चतुर्थ प्रपदिका लगती है और नीचे का अण्डाकार बड़ा स्थालक घर्म के साथ सम्मेलन करता है।

मूलके पादतलपृष्ठ पर एक परिखा है जिसमें पाद-कनिष्ठापकर्षणी[1] की कण्डरा रहती है और पाद-कनिष्ठा-सङ्कोचनी लघ्वी[2] का उदय होता है। मूल के कूट को पाँव में बाहर की ओर एड़ी और अँगुली
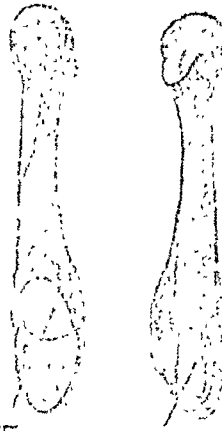
चित्र नं० १४५—पञ्चम प्रपदिका

के बीच में प्रतीत किया जा सकता है जहाँ एक हलका सा उभार दीखता है।

सम्मेलन—यह अस्थि मूल पर दो अस्थियों के साथ सम्मेलन करती है—स्थालक के ऊपरी भाग से चतुर्थ प्रपदिका से और नीचे के भाग से घर्म से। शिर प्रथम पंक्ति के अंगुलिनलक से मिलता है।

पादाङ्गुलिनलक

इनकी संख्या हाथ की अँगुलियों के समान ही चौदह होती है। अंगुष्ठ में दो अस्थियाँ होती हैं और शेष चारों अँगुलियों में तीन-तीन अस्थियाँ होती हैं।
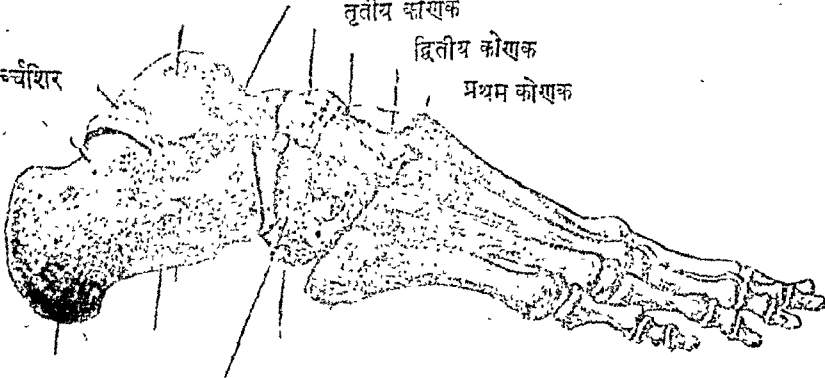
चित्र नं० १४६—समस्त पादकी अस्थियाँ जो स्वाभाविक अवस्था में एक चाप के रूप में स्थित हैं।

१. Abductor digiti Quinti. २. Flexor digiti Quinti breuis.

प्रत्येक अस्थि एक छोटी सी दीर्घ अस्थि है जिसमें दो प्रान्त और गात्र होते हैं। प्रान्तों को शिर और मूल कहते हैं। शिर आगे की ओर रहता है और मूल पीछे की ओर। पूर्व पंक्ति की अस्थियाँ अपने मूल के द्वारा प्रपदिकाओं से और शिर के द्वारा द्वितीय पंक्ति की अस्थियों से मिली रहती हैं। ये अस्थियाँ कुछ चपटी होती हैं। शिर की चौड़ाई भी अधिक होती है और आगे की अस्थि के मूल के साथ मिलने के लिए इन पर एक स्थालक होता है। मूल का पश्चिमपृष्ठ नतोदर होता है। द्वितीय पंक्ति की अस्थियाँ विशेषतया छोटी किन्तु प्रथम पंक्ति की अपेक्षा अधिक चौड़ी होती हैं। अन्तिम अंगुल्यस्थियाँ हाथ के समान आगे की ओर से चौड़ी होती हैं। इस भाग पर नख चढ़ा रहता है। इनका मूल भी चौड़ा होता है।

सम्मेलन—प्रथम पंक्ति की अस्थियाँ पीछे की ओर प्रपदिकाओं और आगे की ओर दूसरी पंक्ति की अस्थियों से मिलती हैं। अंगुष्ठ में द्वितीय पंक्ति की अस्थि ही अन्तिम अस्थि है। दूसरी,
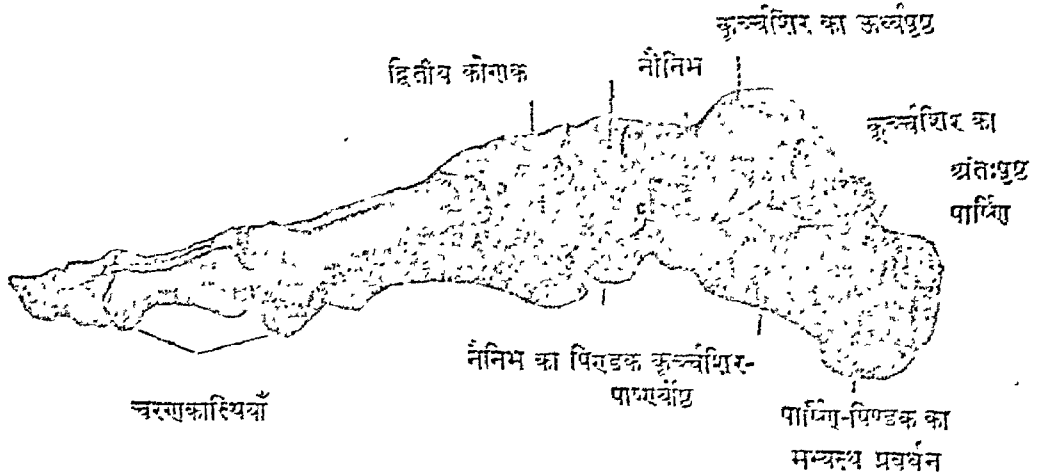
चित्र नं० १४७

तीसरी, चौथी और पाँचवीं अँगुलियों में दूसरी पंक्ति की अस्थियाँ अपने शिर और मूल के द्वारा तृतीय और प्रथम पंक्ति की अस्थियों से मिलती हैं। अन्तिम अंगुल्यस्थियाँ केवल पीछे की ओर द्वितीय पंक्ति की अस्थियों से मिलती हैं।

अस्थिःविकास—प्रत्येक प्रपदिका दो केन्द्रों से विकसित होती है। द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम प्रपदिकाओं में एक केन्द्र गात्र में भ्रूणावस्था के सातवें सप्ताह में उदय होता है। दूसरा केन्द्र शिर में तीसरे वर्ष से पूर्व नहीं निकलता। प्रथम प्रपदिका में केन्द्र गात्र में सातवें सप्ताह में और मूल में तीसरे वर्ष में उदय होता है। सब भाग १८ और २० वर्ष के बीच में आपस में जुड़ जाते हैं।

अंगुलिनलकों के गात्र में दसवें सप्ताह में केन्द्र उदय होता है किन्तु मूल में १० और १४ वर्ष के बीच में निकलता है। यह भाग गात्र के साथ अठारहवें वर्ष में जुड़ता है।

पर्शुकाएँ[1]

वक्ष में प्रत्येक ओर १२ पर्शुकाएँ होती हैं। इस प्रकार इनकी कुल संख्या २४ है। प्रत्येक पर्शुका चपटी, लम्बी और मुड़ी हुई पतली अस्थि है। इनमें से ऊपर की सात पर्शुकाएँ

१. Ribs.
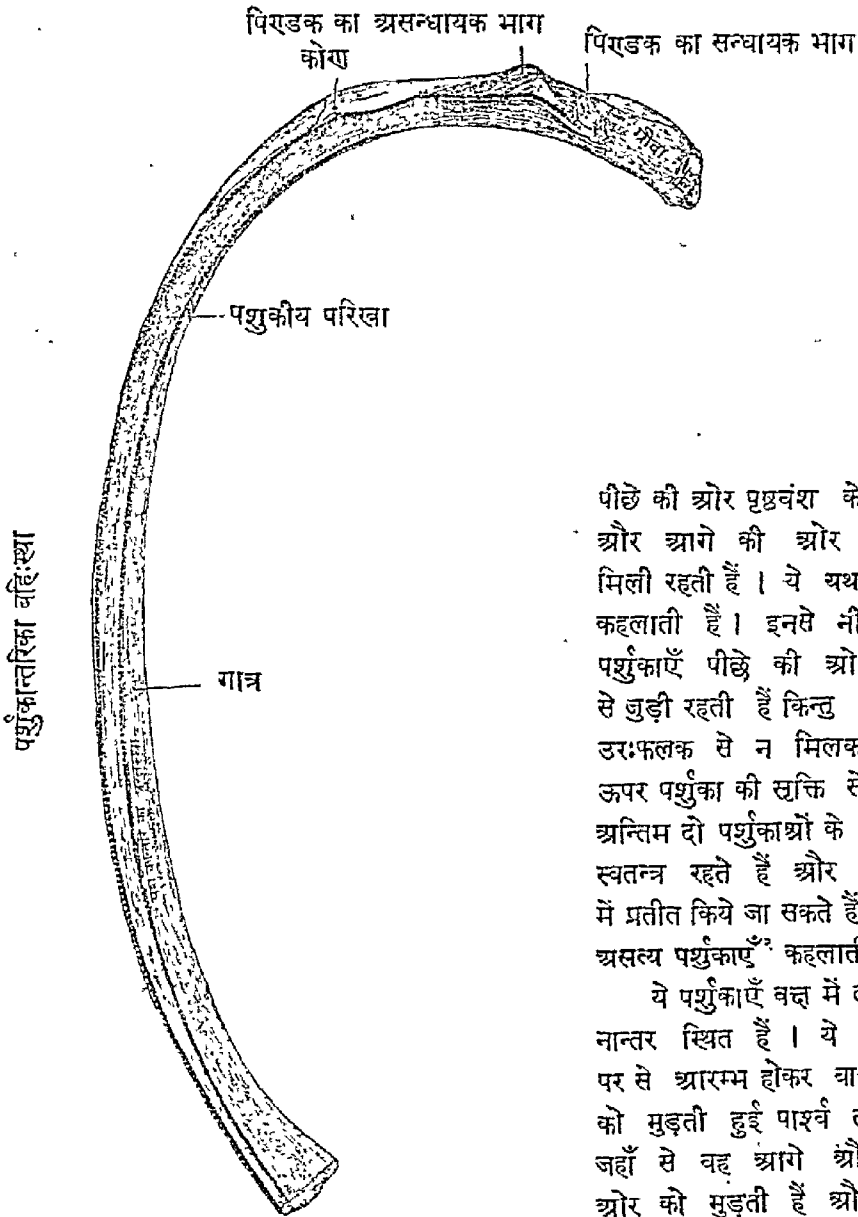
पीछे की ओर पृष्ठवंश के कशेरुकों से और आगे की ओर उरःफलक से मिली रहती हैं। ये यथार्थ पर्शुकाएँ[1] कहलाती हैं। इनसे नीचेवाली तीन पर्शुकाएँ पीछे की ओर तो कशेरुकों से जुड़ी रहती हैं किन्तु आगे की ओर उरःफलक से न मिलकर अपने से ऊपर पर्शुका की सक्थि से मिलती हैं। अन्तिम दो पर्शुकाओं के आगे के सिरे स्वतन्त्र रहते हैं और उदर के पार्श्व में प्रतीत किये जा सकते हैं। ये पाँचों असत्य पर्शुकाएँ[2] कहलाती हैं।

ये पर्शुकाएँ वक्ष में लगभग समानान्तर स्थित हैं। ये पीछे पृष्ठवंश पर से आरम्भ होकर बाहर की ओर को मुड़ती हुई पार्श्व तक जाती हैं जहाँ से वह आगे और नीचे की ओर को मुड़ती हैं और वक्षोऽस्थि

चित्र नं० १४८—साधारण पर्शुका

या उरःफलक के पास पहुँचकर सक्थि के द्वारा उसके साथ मिल जाती हैं। इस प्रकार पर्शुकाओं के बीच में स्थान रह जाता है जो पर्शुकान्तरिक स्थान[3] कहलाता है। यह स्थान पीछे की अपेक्षा आगे की ओर चौड़ा होता है। ऊपर की पर्शुकाओं के बीच में भी नीचे की पर्शुकाओं की अपेक्षा अधिक स्थान है। स्वयं पर्शुकाओं की चौड़ाई भी ऊपर की ओर अधिक होती है। इनकी लम्बाई भी प्रथम पर्शुका से सातवीं पर्शुका तक बढ़ती जाती है, किन्तु उसके पश्चात् कम होने लगती है। ग्यारहवीं और बारहवीं पर्शुका सबसे छोटी हैं। इन दोनों को प्रवाहणी पर्शुका[4] भी कहते हैं।

---

१. True ribs. २. False ribs. ३. Intercostal Space. ४. Floating ribs.

पर्शुकाओं का साधारण रूप—जैसा चित्र में दीख रहा है, प्रत्येक पर्शुका एक कमान की भाँति है, जिसका पिछला सिरा अधिक मुड़ा हुआ है। प्रत्येक पर्शुका में पूर्व अथवा वक्षीय[1] और पश्चात् अथवा कशेरुकीय[2] प्रान्त होते हैं। दोनों प्रान्तों के बीच में चपटा पतला गात्र होता है, जिसमें बहिः और अन्तः दो पृष्ठ, और ऊर्ध्व और अधः दो धाराएँ होती हैं। पर्शुका में जिस स्थान पर मोड़ होता है वह कोण[3] कहलाता है। सब पर्शुकाओं में कोण समान नहीं होता। प्रथम पर्शुका का कोण सबसे छोटा होता है अर्थात् उसमें सबसे अधिक मुड़ाव होता है। उसके पश्चात् ज्यों-ज्यों नीचे को चलते जाते हैं त्यों-त्यों कोण भी बड़ा होता जाता है जिससे पर्शुकाओं का मोड़ अधिक चौड़ा हो जाता है। यदि सब पर्शुकाएँ उपस्थित हों तो केवल उनके मोड़ व कोण को देखकर प्रथम पर्शुका से अन्तिम पर्शुका तक सहज में पहचानी जा सकती हैं।

पश्चिम या कशेरुकीय प्रान्त में, जो पृष्ठवंश के समीप का एक या डेढ़ इंच का भाग होता है, दो उत्सेध दिखाई देते हैं जिनमें से प्रथम उत्सेध कशेरुकाओं के साथ मिला रहता है। यह पर्शुका का शिर कहलाता है। दूसरे उत्सेध को पिण्डक[4] कहा जाता है। इन दोनों के बीच का भाग ग्रीवा है।

शिर पर एक स्थालक है जो हलकी सी तीरणिका द्वारा दो भागों में विभक्त है। ये दोनों भाग दो कशेरुकों से मिले रहते हैं। बीच की तीरणिका पर सन्ध्यन्तरिक[5] बन्धन लगता है। इन दोनों स्थालकों में ऊपर का स्थालक छोटा होता है। प्रत्येक पर्शुका अपने शिर के द्वारा अपने समान संख्यावाले और उससे पूर्व कशेरुक से मिली रहती है। छठी पर्शुका पाँचवें और छठे कशेरुक से उस स्थान पर, जहाँ दोनों मिलते हैं, सम्मेलन करती है।

ग्रीवा शिर और पिण्डक के बीच का स्थान है। इसका अन्तःपृष्ठ, जो वक्ष के भीतर की ओर रहता है, चिकना और चपटा है। बहिःपृष्ठ खुरदरा है जिस पर बन्धन लगते हैं। इस पृष्ठ में कई पोषक छिद्र भी दिखाई पड़ते हैं। इसकी ऊर्ध्वधारा के पास एक तीरणिका है जिस पर पर्शुकाबाहुक संयोजक अग्रिम[6] बन्धन लगता है। अधोधारा प्रायः गोल और समान है। किन्तु किन्हीं पर्शुकाओं में इस धारा पर एक उत्सेध दिखाई देता है।

पिण्डक ग्रीवा और गात्र के सङ्गम-स्थान पर पर्शुका के पश्चिमपृष्ठ पर स्थित है। पिण्डक के
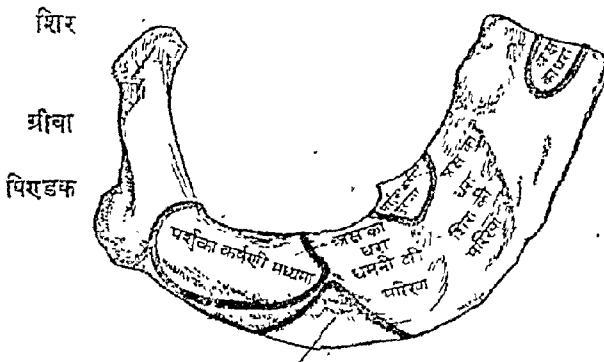
चित्र नं० १४९—प्रथम पर्शुका

१. Sternal end. २. Vertebral end. ३. Angle. ४. Tubercle. ५. Inter-articular Lig. ६. Anterior costotransverse Lig.

निचले भाग पर एक छोटा अण्डाकार स्थालक है जो कशेरुक के वाहुक प्रवर्धन से मिलता है। पिण्डक के शेष भाग पर बन्धन लगता है।

गात्र पतला और चपटा है। इसका बहिःपृष्ठ गोल और चिकना है। इस पृष्ठ पर पिण्डक के पास एक रेखा नीचे और बाहर की ओर को उतरती हुई दिखाई देती है। इस पर त्रिकपृष्ठिका के आनुपार्श्विक[1] भाग की कण्डरा लगती है। यही स्थान पर्शुका का कोण[2] कहलाता है। प्रथम पर्शुका के कोण और पिण्डक एक ही स्थान पर स्थित होते हैं। किन्तु नीचे की पर्शुकाओं में पिण्डक और कोण के बीच का अन्तर अधिक हो जाता है। कोण और पिण्डक के बीच के स्थान पर त्रिकपृष्ठिका का मध्यपृष्ठिक भाग[3], पर्शुकोन्नमनी[4] और पर्शुकान्तरिका बहिःस्था पेशियाँ लगती हैं। कुछ पर्शुकाओं के बहिःपृष्ठ पर वक्षीय प्रान्त के पास एक अस्पष्ट रेखा दीखती है जो पूर्वकोण[5] कहलाती है। अस्थि का अन्तःपृष्ठ गोल, चिकना, नतोदर और मुड़ा हुआ है। उसका प्रथम भाग ऊपर की ओर को किन्तु शेष भाग भीतर और नीचे को मुड़ा हुआ है। इस पृष्ठ पर एक उभरी हुई स्पष्ट तीरणिका दीखती है जो शिर के पास से आरम्भ होती है। यह तीरणिका प्रथम भाग में अत्यन्त स्पष्ट है किन्तु आगे चलकर नीचे को अधोधरा की ओर मुड़ती हुई चली जाती है और अस्थि के लगभग बीच में अधोधारा के साथ मिल जाती है। इस तीरणिका के नीचे की ओर एक परिखा होती है जो पर्शुकीय परिखा[6] कहलाती है। उस परिखा का ऊर्ध्व ओष्ठ तीरणिका से और अधरोष्ठ पर्शुका की अधोधारा से बनते हैं। ऊर्ध्व ओष्ठ पर पर्शुकान्तरिका अन्तःस्था[7] और अधरोष्ठ पर पर्शुकान्तरिका बहिःस्था[8] पेशियाँ लगती हैं। परिखा में, जिसका प्रथम भाग अन्तःपृष्ठ पर और शेष भाग अधोधारा पर रहता है, पर्शुकान्तरिका धमनी, शिरा और नाड़ी[9] रहती हैं। परिखा के तल में पर्शुकान्तरिका कला[10] लगी रहती है। उसमें पोषक धमनियों के कई छिद्र भी दिखाई पड़ते हैं। इस पृष्ठ का शेष भाग चिकना और फुस्फुसावरण से ढका हुआ है।

गात्र की ऊर्ध्वधारा पर पर्शुकान्तरिका बहिःस्था निवेश करती है। पेशी के तनिक भीतर की ओर ग्रीवा और कोण के बीच में पश्चिमा पर्शुकान्तरिका कला लगी हुई है। किन्तु कोण से आगे की ओर पर्शुकान्तरिका अन्तःस्था पेशी निवेश करती है। अधोधारा परिखा का नीचे का ओष्ठ बनाती है जिससे पर्शुकान्तरिका बहिःस्था का उदय होता है।

प्रत्येक पर्शुका दो दिशाओं में मुड़ी होती है। प्रथम उसका पीछे का भाग या कोण, शिर इत्यादि भीतर और ऊपर की ओर को और आगे का भाग बाहर की ओर को मुड़ा होता है; किन्तु वह फिर भीतर की ओर को मुड़ जाता है। इसके अतिरिक्त कोण से पीछे का भाग कुछ ऊपर को भी मुड़ जाता है। यदि अस्थि को अधोधारा के सहारे मेज़ पर रख दिया जाय तो कोण से आगे का भाग तो एक तल में रहेगा किन्तु पीछे का भाग मेज़ पर न रहकर ऊपर को उठ जायगा और इसका अन्तःपृष्ठ ऊपर को और बहिःपृष्ठ नीचे और बाहर की ओर होगा।

पूर्वप्रान्त सूक्ति के साथ जुड़ा रहता है।

प्रथम पर्शुका

यह बारहवीं पर्शुका के अतिरिक्त सबसे छोटी है और अधिक मुड़ी हुई है। अन्य पर्शुकाओं की भांति यह भी चिपटी है किन्तु इसके चिपटे ऊर्ध्व और अधःपृष्ठ ऊपर और नीचे की ओर रहते हैं

---

१. Iliocostalis. २. Angle. ३. Longissimus dorsi. ४. Levator Costae. ५. Anterior Angle. ६. Costal groove. ७-८. Inter-costalis Internus and Externus. ९. Intercostal vessels and Nerve. १०. Intercostal membrane.

न कि पूर्व और पश्चिम दिशाओं में। यह पर्शुका वक्षःप्रान्त में सबसे ऊपर रहती है। इसका पीछे का भाग अक्षक से कुछ ऊपर रहता है; किन्तु आगे का सिरा अक्षक के नीचे होता है। इस कारण उसे प्रतीत नहीं कर सकते।

इस पर्शुका का शिर छोटा होता है और इस पर का स्थालक केवल एक कशेरुक के साथ सम्मेलन करता है। इस कारण स्थालक केवल एक ही होता है। शिर के पश्चात् ग्रीवा लम्बी और संकुचित होती है तथा ऊपर और नीचे से दबी हुई होने के कारण चिपटी होती है। फुस्फुस का शिखर इसके सामने की ओर रहता है। पिण्डक बहिर्धारा पर स्थित है। उसमें कोई कोण नहीं है।

गात्र में, जो पतला, चिपटा और मुड़ा हुआ है, ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ तथा बहिः और अन्तः धारा होती हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ पर दो परिखाएँ दिखाई देती हैं जो गात्र के ऊपर होती हुई एक ओर से दूसरी ओर को चली जाती हैं। दोनों परिखाओं के बीच में एक उत्सेध है जो पर्शुकाकर्षणी पिण्डक[1] कहलाता है। इस पिण्डक पर पर्शुकाकर्षणी पुरोगा[2] पेशी लगती है। परिखाओं में से पूर्व परिखा के द्वारा अक्षकाधरा शिरा[3] और पश्चात् परिखा के द्वारा अक्षकाधरा धमनी[4] जाती है। धमनी की परिखा के पीछे की ओर खुरदरे स्थान में पर्शुकाकर्षणी मध्यमा[5] पेशी लगती है और परिखा से तनिक पीछे बहिर्धारा के पास से अरित्रा अग्रिमा[6] पेशी का प्रथम भाग उदय होता है। अधःपृष्ठ चिकना है और उस पर कोई नलिका या परिखा नहीं है।

बहिर्धारा गोल, उन्नतोदर और मुड़ी हुई है। उसके पीछे की ओर से अरित्रा पेशी उदय होती है। अन्तर्धारा नतोदर और तीव्र है। इसके बीच के समीप पर्शुकाकर्षणी पिण्डक स्थित है। इसका अगला सिरा अन्य सब पर्शुकाओं से चौड़ा है।

द्वितीय पर्शुका

यह प्रथम पर्शुका की अपेक्षा दुगुनी लम्बी है किन्तु इसका मोड़ बहुत कुछ प्रथम पर्शुका के समान है। इसके पृष्ठ न तो प्रथम पर्शुका के समान चिपटे, ऊपर और नीचे की ओर स्थित हैं
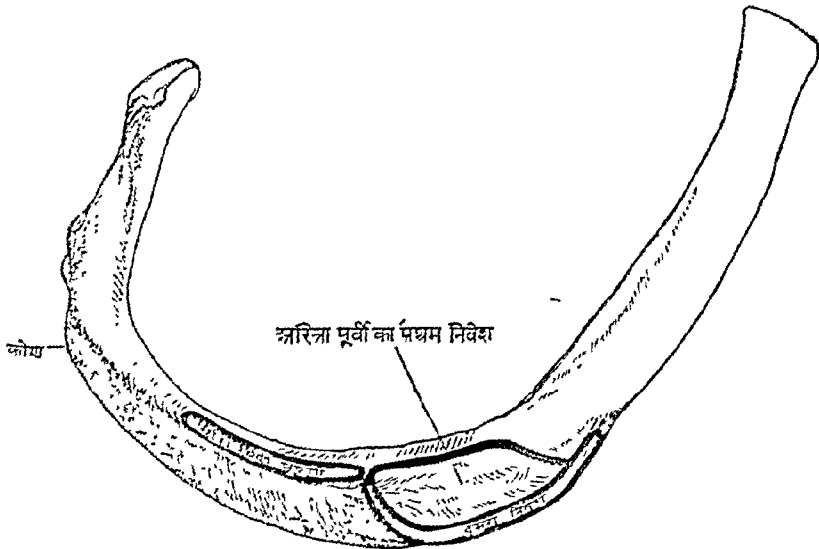
चित्र नं० १५०—द्वितीय पर्शुका

१. Scalene Tubercle. २. Scalenus Anterior. ३-४. Subclavian Vein and artery. ५. Scalenus Medius. ६. Serratus Anterior.

और न वे अन्य पर्शुकाओं की भाँति आगे और पीछे की ओर हैं; किन्तु वे दोनों के बीच की दिशा में स्थित हैं। कोण पूर्णतया स्पष्ट नहीं है और पिण्डक के पास ही स्थित है। इसका ऊर्ध्वपृष्ठ उन्नतोदर है और ऊपर तथा कुछ बाहर की ओर को मुड़ा हुआ है। इस पृष्ठ के बीच में एक पिण्डक स्थित है जिस पर से अरित्रा पेशी का उदय होता है। यह इस पर्शुका की विशेषता है जो अन्य पर्शुकाओं में नहीं पाई जाती। इस पिण्डक के पीछे की ओर पर्शुकाकर्षणी पश्चिमा[1] पेशी लगती है।

दशम पर्शुका

इसमें केवल एक स्थालक है क्योंकि यह अपने ही समान संख्यावाले कशेरुक से मिलती है।

एकादश और द्वादश पर्शुकाएँ

इनमें भी एक ही स्थालक होता है किन्तु उसका आकार बड़ा होता है। इनमें ग्रीवा और पिण्डक नहीं होते। बारहवीं पर्शुका में कोण और पर्शुकीय परिखा भी नहीं होती। इन दोनों के आगे के सिरे स्वतन्त्र होने के कारण नुकीले होते हैं। ग्यारहवीं पर्शुका बारहवीं से बड़ी है।

अस्थि-विकास—प्रत्येक पर्शुका का चार केन्द्रों से विकास होता है। एक केन्द्र गात्र के लिए कोण के पास भ्रूणावस्था के द्वितीय मास में उदय होता है। दूसरा केन्द्र सिर के लिए और शेष दो केन्द्र पिण्डक के लिए १६ वें और २० वें वर्ष के बीच में निकलते हैं। यह भाग अस्थि के गात्र के साथ २५ वें वर्ष के लगभग जुड़ते हैं।

पर्शुकीय स्नक्ति

इन स्नक्तियों के टुकड़ों के द्वारा पर्शुकाएँ उरःफलक के साथ मिली रहती हैं। इनकी उपस्थिति से पर्शुकाओं की लम्बाई अधिक हो जाती है और वक्ष में लचकीलापन आ जाता है। यदि वक्ष को भीतर की ओर दाबा जाय तो पर्शुकाएँ कुछ दब जाती हैं, किन्तु भार के हटा लेने पर फिर ज्यों की त्यों हो जाती हैं। यह स्नक्तियों ही के गुण का प्रभाव है।

प्रथम सात स्नक्तियाँ एक ओर उरःफलक से और दूसरी ओर पर्शुकाओं से जुड़ी रहतीं हैं। आठ, नौ और दस संख्या की स्नक्तियाँ पीछे की ओर तो पर्शुकाओं से जुड़ती हैं, किन्तु आगे की ओर अपने से ऊपर की पर्शुका की स्नक्ति की अधोधारा से जुड़ जाती हैं। ग्यारहवीं और बारहवीं स्नक्तियाँ आगे की ओर पूर्णतया मुक्त रहती हैं। उनका अग्रभाग भी पतला हो जाता है; किन्तु ऊपरी स्नक्तियाँ उरःफलक से मिलने के स्थान पर चौड़ी होती हैं। प्रथम स्नक्ति सबसे अधिक चौड़ी है। इससे नीचे चौड़ाई घटती चली जाती है। इसी प्रकार पर्शुकान्तरिक स्थान भी कम हो जाता है। किन्तु पर्शुकाओं की भाँति उनकी लम्बाई प्रथम से सातवीं स्नक्ति तक बढ़ती है; उसके पश्चात् बारहवीं तक घटती जाती है। इसी प्रकार इनकी दिशाओं में भी परिवर्तन होता है। प्रथम और द्वितीय स्नक्ति पर्शुकाओं के सिरों से उरःफलक की ओर नीचे को झुकती हैं। तीसरी समान रहती है। उसमें किसी प्रकार का झुकाव या मोड़ नहीं देखा जाता। चौथी

---

1. Scalenus posterior.

ऊपर की ओर को मुड़ती है। पाँचवीं, छठी और सातवीं कुछ थोड़ी दूर तक पर्शुकाओं ही की दिशा में जाती हैं किन्तु आगे चलकर ऊपर की ओर, उरःफलक से जुड़ने के लिए, मुड़ जाती हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं सक्थियों में भी ऐसा ही होता है। ये सब सक्थियाँ अपनी कला के द्वारा अपने स्थान पर स्थित रहती हैं। यह कला पर्शुका और उरःफलक पर अस्थिधरा कला के साथ मिल जाती है और सक्थियों को अपने स्थान से नहीं हटने देती।

प्रत्येक सक्थि में दो पृष्ठ और और दो धाराएँ होती हैं। पूर्वपृष्ठ उन्नतोदर होता है और ऊपर की ओर को मुड़ा रहता है। प्रथम सक्थि के पूर्वपृष्ठ पर अक्षकाधरा पेशी[1] का उदय है और पर्शुका-

चित्र नं० १५१—पर्शुकीय सक्थि, जिनके द्वारा पर्शुकाएँ उरोस्थित से जुड़ी हुई हैं।
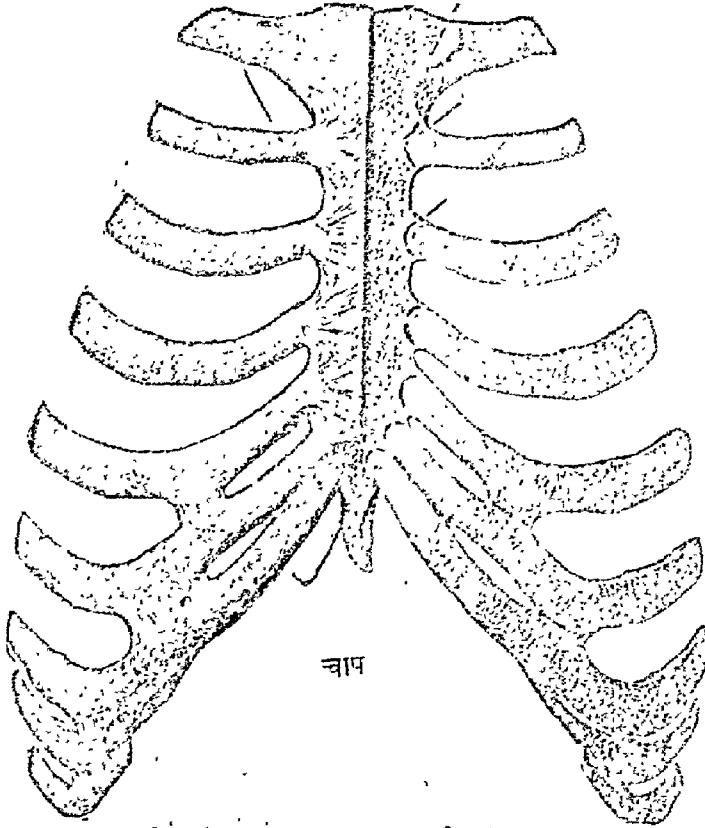
अक्षकीय बन्धन[2] बन्धन लगता है। शेष छः या सात सक्थियों पर उरःफलक के पास उरश्छदा बृहती पेशी का कुछ भाग लगता है। अन्य सक्थियों पर उदर की कुछ पेशियाँ लगी हुई हैं। पश्चिमपृष्ठ नतोदर है। प्रथम सक्थि के पश्चिमपृष्ठ पर उरोऽवटुका[3] पेशी का उदय है। तीसरी से छठी सक्थि तक उरस्त्रिकोणिका[4] और नीचे की छः या सात सक्थियों पर उरश्छदा चरमा[5] और महाप्राचीरा[6] के कुछ सूत्र लगते हैं।

ऊर्ध्वधारा-नतोदर है किन्तु अधोधारा उन्नतोदर है।

सातवीं, आठवीं और नवीं सक्थियों की दोनों धाराओं से प्रवर्धन निकले हुए हैं जो समान प्रवर्धनों के साथ, जो ऊपर और नीचे की सक्थि से निकलते हैं, सम्मेलन करते हैं। छठी सक्थि की

---

१. Subclavius. २. Costoclavicular Lig. ३. Sternothyreoid. ४. Transversus. ५. Transversus Abonminis. ६. Diaphragm.

अधोधारा से नीचे की ओर को और दसवीं सक्थि की ऊर्ध्वधारा से ऊपर की ओर को प्रवर्धन निकले हुए हैं। इन सक्थियों की अन्य धाराओं से कोई प्रवर्धन नहीं निकलता। इन प्रवर्धनों के ऊपर छोटे-छोटे स्थालक होते हैं जो दूसरी ओर के प्रवर्धनों के समान स्थालकों से मिलते हैं।

सक्थियों का बाहरी सिरा पर्शुकाओं के साथ मिल जाता है। प्रथम सक्थि का भीतरी सिरा उरःफलक के साथ मिला रहता है किन्तु दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं के भीतरी सिरे उरःफलक के पार्श्व में छोटे-छोटे गढ़ों में रहते हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं सक्थि के सिरे अपने से ऊपर की सक्थि के साथ मिले रहते हैं।

वक्षोऽस्थि या उरःफलक[1]

यह चिपटी अस्थि वक्ष में आगे की ओर पर्शुकाओं के बीच में, ग्रीवा के मूल से उदर के ऊपर तक रहती है। इसका समस्त भाग चर्म के द्वारा प्रतीत किया जा सकता है। इसमें तीन भाग
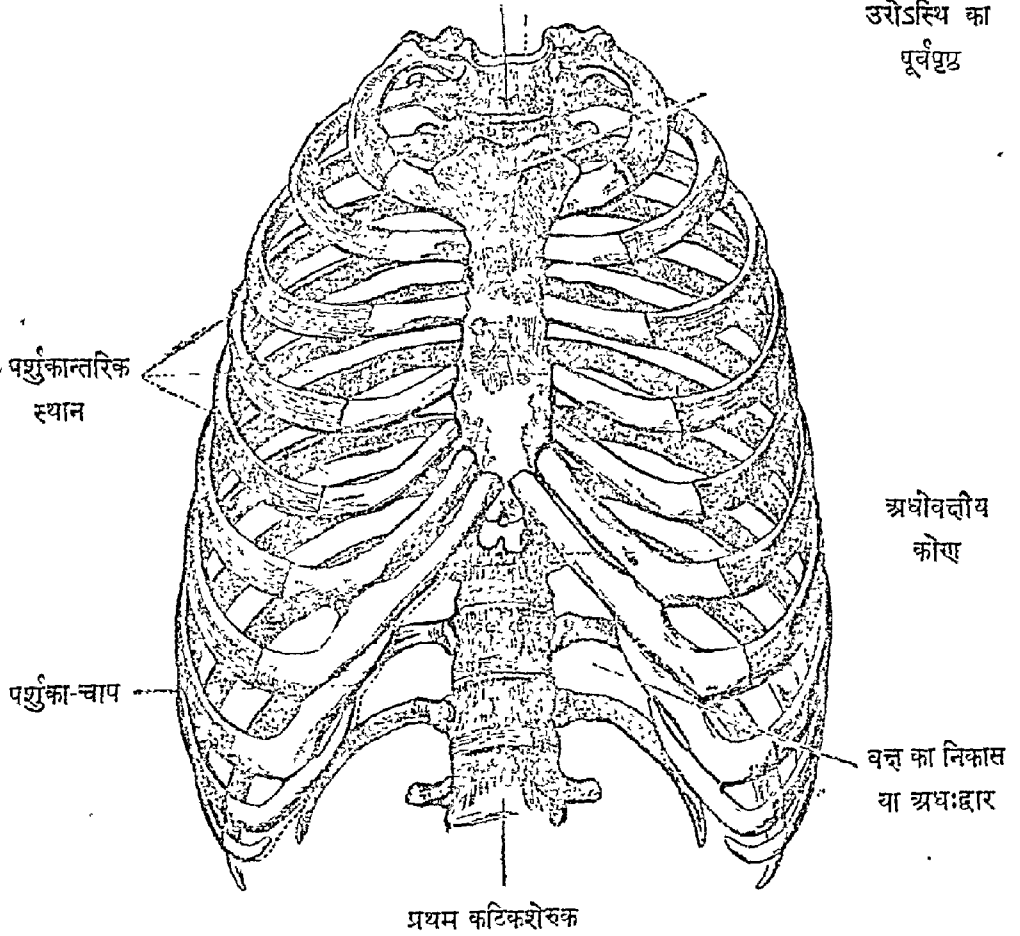
चित्र नं० १५२—वक्ष का कङ्काल, पूर्व ओर से

होते हैं। सबसे ऊपर का भाग ग्रैवेयक[2] कहलाता है जो ऊपर की ओर चौड़ा है किन्तु नीचे की ओर, जहाँ वह मध्यफलक[3] से मिलता है, संकुचित है। मध्यफलक फिर कुछ चौड़ा हो जाता है किन्तु

१. Sternum. २. Manubrium Sterni. ३. Body.

२०

लगभग बीच से फिर संकुचित होना आरम्भ होता है और एक नुकीले प्रवर्धन में, जिसको 'अग्रपत्रक'[1] कहते हैं, समाप्त हो जाता है। अस्थि के दोनों ओर पर्शुकाओं की सुक्तियों के लगने के लिए स्थालक अथवा छोटे छोटे गढ़े हैं। यह अस्थि आगे की ओर उन्नतोदर किन्तु पीछे की ओर नतोदर है।

शरीर में उरःफलक सीधा नहीं रहता किन्तु कुछ आगे और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ रहता है। इसकी लम्बाई छः से आठ इंच तक होती है और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होती है।

ग्रैवेयक—यह अस्थि का सबसे ऊपर का चौड़ा भाग है जो प्रायः मध्यफलक से भिन्न रहता है और युवावस्था तक उसके साथ नहीं जुड़ता। वृद्धावस्था में सुक्ति के अस्थि में परिणत हो जाने से यह भाग शेष अस्थि के साथ जुड़ जाता है

ग्रैवेयक आकार में एक चतुष्कोण के समान होता है। इस कारण उसमें चार धाराएँ और दो पृष्ठ माने जाते हैं।

पूर्वपृष्ठ चिकना और कुछ उन्नतोदर है। इसके पार्श्व भाग से उरश्छदा बृहती और उरःकर्णमूलिका पेशियाँ उदय होती हैं। बीच के भाग पर रेखाएँ दिखाई देती हैं जो इन पेशियों द्वारा आच्छादित स्थान को परिमित करती हैं।

पश्चिमपृष्ठ नतोदर है। इसके पार्श्वभाग में, उरोऽवटुका और उरःकण्ठिका पेशियों का उदय स्थान है।

ऊर्ध्वधारा ग्रीवामूल की ओर रहती है। उस पर एक खात है जिसको 'कण्ठकूप'[2] कहते हैं। इसके दोनों ओर दो अण्डाकार स्थालक हैं जो बाहर और ऊपर की ओर को मुड़े हुए हैं और पूर्वपृष्ठ की अपेक्षा पश्चात्पृष्ठ पर अधिक गहरे हैं। इन स्थालकों पर दोनों ओर की अक्षक अस्थि लगती है। अधोधारा छोटी है और शरीर में सुक्ति के एक पत्र से ढकी रहती है। पार्श्विक धाराओं पर ऊपर की ओर प्रथम पर्शुकीय सुक्ति के लिए एक स्थालक है। इन धाराओं के नीचे का भाग एक खात के समान नतोदर है। जहाँ ग्रैवेयक मध्यपत्रक से मिलता है वहाँ एक अर्धस्थालक है जो मध्यपत्र के अर्धस्थालक के साथ मिलकर द्वितीय पर्शुकीय सुक्ति के लिए पूर्ण स्थालक बनाता है।

मध्यफलक ग्रैवेयक से कम चौड़ा किन्तु अधिक लम्बा है। इसमें भी दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं। पूर्वपृष्ठ चिपटा और कुछ आगे की ओर उठा हुआ है। इस पर चौड़ाई में तीन तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं जो पृष्ठ के आरपार रहती हैं। ये तीरणिकाएँ तीसरे, चौथे और पाँचवें स्थालकों के सामने स्थित हैं। इस पृष्ठ के पार्श्व भाग से उरश्छदा बृहती पेशी का वक्षीय भाग उदय होता है। इसी पृष्ठ पर पोषक छिद्र भी स्थित हैं।

पश्चिमपृष्ठ के पार्श्वों से उरस्त्रिकोणिका उदय होती है। इस पर भी पूर्वपृष्ठ की भाँति तीन तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं।

ऊर्ध्वधारा छोटी और ग्रैवेयक से मिली हुई है। उसके पार्श्व में अर्धस्थालक स्थित है जो ग्रैवेयक के अर्धस्थालक के साथ मिलकर द्वितीय सुक्ति के लिए पूर्ण स्थालक बनाता है। ग्रैवेयक और मध्यफलक के सम्मेलन-स्थान को 'वक्षीयकोण'[3] कहते हैं। अधोधारा अग्रपत्र के साथ मिलती है। पार्श्विक धाराओं पर अर्धस्थालक के नीचे चार गहरे स्थालक हैं जिनमें तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी सुक्ति लगती है। पार्श्विक धारा और अधोधारा के संगम पर दोनों ओर अर्धस्थालक पाये जाते हैं जो अग्रपत्र पर स्थित समान अर्धस्थालक से मिलकर सातवीं सुक्ति के लिए स्थालक बनाते हैं। अस्थि की ओर देखने से प्रतीत होगा कि पर्शुकान्तरिक स्थानों की भाँति स्थालकों के बीच के स्थान में भी ऊपर से

---

१. Xiphoid Process. २. Jugular Notch. ३. Sternal angle.
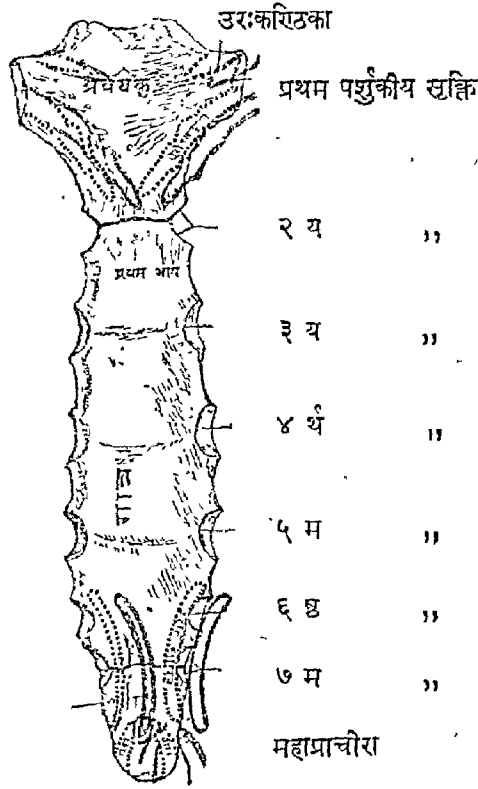
चित्र नं० १५३—उरोऽस्थि या वक्षिका—पश्चिमपृष्ठ

नीचे की ओर को बराबर कमी होती जाती है। यहाँ तक कि छठी खात्ति के स्थालक और नीचे के अर्ध-स्थालक के बीच में बहुत कम अन्तर रह जाता है। स्थालकों से मिली हुई तीरणिकाएँ, जो दोनों पृष्ठों पर दिखाई देती हैं, उरःफलक के भिन्न भागों के संयोग-स्थान की दर्शक हैं। बहुत से पशुओं में ये भाग बहुत समय तक पृथक् रहते हैं।

अग्रपत्र—यह अस्थि का छोटा पतला त्रिकोणाकार भाग है जो मध्यफलक के नीचे की ओर लगा रहता है। यह भाग युवावस्था में भी बहुत समय तक खात्ति-निर्मित रहता है। इसके पूर्वपृष्ठ पर उदरदण्डिका के कुछ सूत्र और पूर्व पर्शुकाग्रपत्रीय[1] बन्धन लगते हैं। पश्चात्पृष्ठ पर महाप्राचीरा उरस्त्रिकोणिका के उदय-सूत्र और पश्चिम पर्शुकाग्रपत्रीय बन्धन लगते हैं। इसकी ऊर्ध्वधारा मध्य-फलक से मिली हुई है। पार्श्व और ऊर्ध्वधारा के सम्मेलन-स्थान पर सातवीं खात्ति का अर्धस्थालक स्थित है। पार्श्वधाराओं पर उदरपेशियों का कण्डरावितान लगा हुआ है। पत्रक की नोक पर उदरसीवनी[2] लगी हुई है।

अस्थि-विकास छः केन्द्रों से होता है। एक केन्द्र ग्रैवेयक के लिए भ्रूणावस्था के छठे मास में निकलता है। मध्यफलक में चार केन्द्र उन चारों भागों के लिए, जो तीरणिकाओं द्वारा विभक्त दीखते हैं, उदय होते हैं। फलक के प्रथम भाग में भ्रूणावस्था के छठे मास में, दूसरे और तीसरे

१. Anterior costoxiphoid Lig. २. Linea Albar.

भाग में सातवें मास में और चौथे भाग में जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में विकास-केन्द्र उदय होते हैं। अग्रपत्रक में दूसरे या तीसरे वर्ष में यह केन्द्र निकलता है।

कभी-कभी भिन्न भिन्न भागों में एक से अधिक केन्द्र भी उत्पन्न हो जाते हैं। इनकी संख्या नियमित नहीं है। ग्रैवेयक में छः केन्द्र तक उदय होते देखे गये हैं। इसी प्रकार मध्यफलक के दूसरे, तीसरे और चौथे भाग में दो केन्द्र उदय हो जाते हैं।
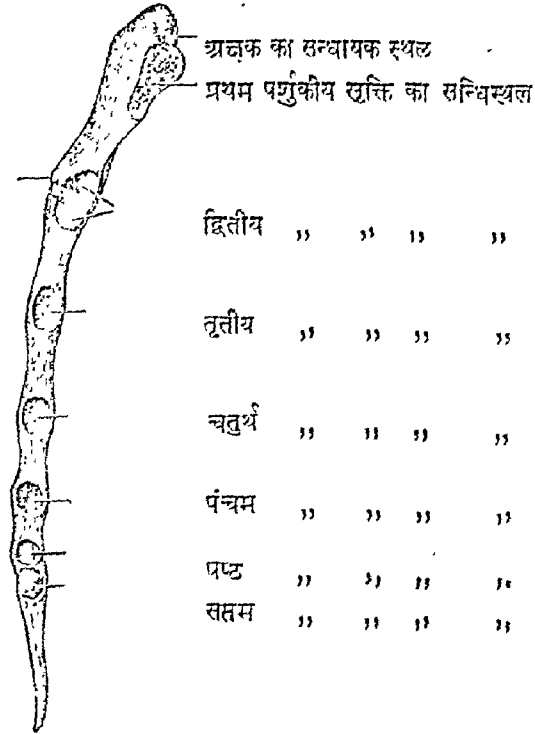
चित्र नं० १५४—वक्षोऽस्थि—पार्श्व ओर से

ये सब विकसित भाग युवावस्था के समीप नीचे की ओर से जुड़ने आरम्भ होते हैं और पच्चीस वर्ष तक आपस में जुड़ जाते हैं। अग्रपत्रक प्रायः ४० वर्ष के समीप शेष अस्थि से जुड़ता है। कभी-कभी यह भाग वृद्धावस्था में भी बिना जुड़ा हुआ रह जाता है।

सम्मेलन—उरःफलक के साथ प्रत्येक ओर अक्षक और ऊपरी सात खण्डियाँ मिलती हैं।
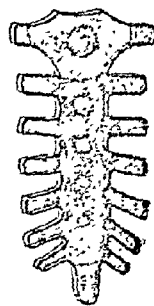
चित्र नं० १५५—वक्षोऽस्थि में विकास—केन्द्रों के उदय का समय

पृष्ठवंश[1]

पृष्ठवंश या कशेरुकदण्ड कशेरुकाओं का एक स्तम्भ है जो पृष्ठ के बीच में शिर या करोटि के नीचे से आरम्भ होकर नीचे मलद्वार के दो या तीन इंच ऊपर तक चला जाता है। ये कशेरुक, जिनकी संख्या ३३ है, एक दूसरे के ऊपर और नीचे स्थित हैं और बन्धन तथा पेशियों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। इनके द्वारा वे अपने स्थान से विचलित नहीं होने पाते।

ये कशेरुक पाँच भागों में उन प्रान्तों के अनुसार, जिनमें वे रहते हैं, विभक्त हैं। इनकी संख्या निम्न-लिखित है—

ग्रैवेयक कशेरुक	—	७
वक्षीय ,,	—	१२
कटि ,,	—	५
त्रिकास्थि	—	५
अनुत्रिकास्थि	—	४
		३३

बाल्यकाल में ये सब कशेरुक भिन्न-भिन्न रहते हैं। किन्तु युवावस्था तक त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि के कशेरुक आपस में जुड़ जाते हैं जिससे ५ कशेरुकों के जुड़ने से त्रिकास्थि और चार के जुड़ जाने से अनुत्रिकास्थि बन जाती है। इस प्रकार युवावस्था में पृष्ठवंश में केवल २६ अस्थियाँ पाई जाती हैं।

पाँच भागों के कशेरुकों के आकार में भिन्नता पाई जाती है। इस कारण प्रथम एक आदर्श कशेरुक के स्वरूप की व्याख्या करने के पश्चात् भिन्न-भिन्न कशेरुकों में उपस्थित विशेषताएँ बता दी जायँगी।

आदर्श कशेरुक—साधारणतया कशेरुक के पूर्ण रूप और प्रत्येक भाग की व्याख्या करने के लिए वक्षप्रान्त के बीच के किसी कशेरुक को चुना जाता है। इनके शरीर या गात्र पर स्थालक होते हैं जो अन्य प्रान्तों के कशेरुकों में नहीं पाये जाते।
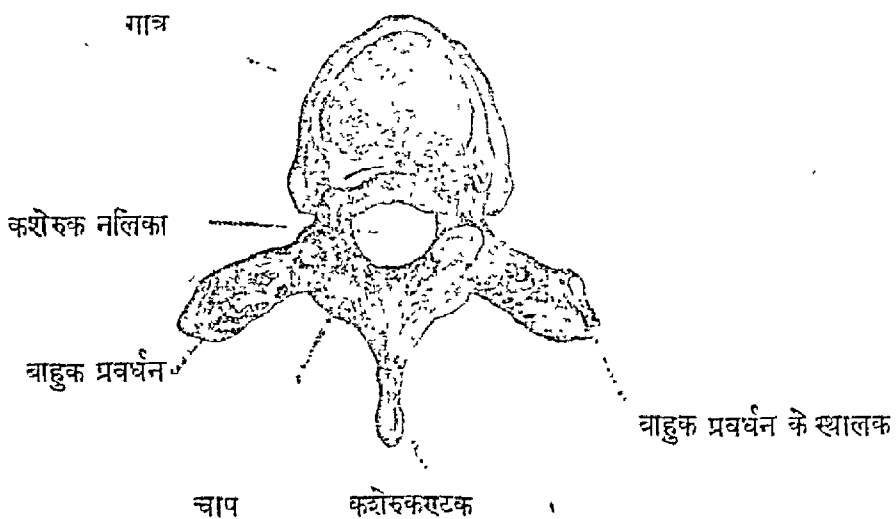
चित्र नं० १५६—आदर्श कशेरुक

1. Vertebral column.

कशेरुकों में दो भाग होते हैं—एक आगे की ओर रहनेवाला चिपटा किन्तु वृत्ताकार गात्र¹ और दूसरा उसके पीछे की ओर का भाग जो कशेरुकीय चाप² कहलाता है। चाप और गात्र के बीच में एक बड़ा छिद्र होता है जो कशेरुकीय छिद्र³ कहलाता है। चाप के पार्श्व और पीछे से सात प्रवर्धन निकलते हैं जिनको कण्टक⁴, वाहुक-प्रवर्धन⁵ (दो) और सन्धि-प्रवर्धन⁶ (चार) कहते हैं। इनमें से दो ऊपर की ओर और दो नीचे की ओर रहते हैं।

जब सब कशेरुक आपस में मिले रहते हैं तो उन सबों के गात्रों के सामने की ओर से मिलने से एक दृढ़ स्तम्भ बन जाता है जो शिर और वक्ष इत्यादि के भार को वहन करता है। सब कशेरुकों के चापों के मिलने से कशेरुक छिद्र भी एक दूसरे के ऊपर रहकर एक लम्बी नलिका बना देते हैं जिसमें सुषुम्ना रहती है।

गात्र दृढ़, मोटा, चिपटा और वृत्ताकार होता है; किन्तु वृत्त का पश्चाद्भाग अपूर्ण रहता है। यह भाग आगे वक्षगुहा की ओर रहता है। इसके ऊर्ध्व और अधःपृष्ठ चिपटे हैं। उनका किनारा कुछ उठा हुआ है। उनपर सूक्ति का पत्र, जो कशेरुकों के बीच में रहता है, लगता है। कशेरुक पूर्व और पार्श्वपृष्ठ पर ऊपर से नीचे को नतोदर है किन्तु एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर को उन्नतोदर है। इसके विरुद्ध गात्र का पश्चात्पृष्ठ ऊपर से नीचे को चिपटा है किन्तु पार्श्वों की ओर नतोदर है। पूर्वपृष्ठ पर पोषक धमनी के छिद्र दिखाई देते हैं। किन्तु पश्चात्पृष्ठ पर एक बड़ा छिद्र होता है जिसके द्वारा कशेरुकतलीय शिराएँ⁷ अस्थि से बाहर निकलती हैं।
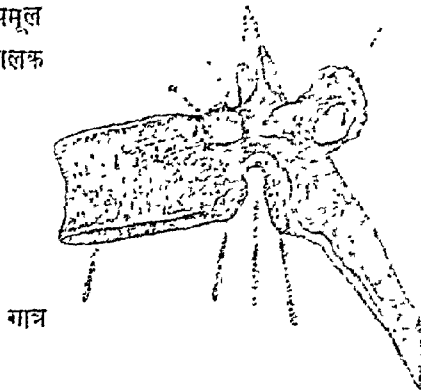
चित्र नं० १५७

गात्र के पीछे की ओर जो चाप है उसको दो भागों में विभक्त किया गया है। चाप का पार्श्विक भाग, जो गात्र के साथ मिला रहता है, चापमूल⁸ कहलाता है और पीछे का पतला भाग चापपत्र⁹ के नाम से पुकारा जाता है।

चापमूल—गात्र के पिछले और पार्श्विक भाग से दो चापमूल पीछे और बाहर की ओर को निकले हुए हैं। चापपत्र इन मूलों के साथ मिले हुए हैं। इन मूलों में दो धाराएँ और दो पृष्ठ

१. Body. २. Vertebral Arch. ३. Vertebral foramen. ४. Spinous process. ५. Transverse Process. ६. Articular Process. ७. Basivertebral Venis. ८. Pedicles or Roots of Arch. ९. Laminæ.

होते हैं। ऊर्ध्व और अधः दोनों धाराओं में छोटे छोटे गढ़े हैं जो कशेरुकीय कोटर[1] कहलाते हैं और कशेरुकान्तरिक छिद्रों[2] की ऊर्ध्व और अधः सीमा बनाते हैं। छिद्रों के पीछे की ओर सन्धि-प्रवर्धन और आगे की ओर कशेरुकों के गात्र रहते हैं। शरीर में जब सब कशेरुक आपस में मिले रहते हैं तो पृष्ठवंश के दोनों ओर ऊपर से नीचे तक कशेरुकान्तरिक छिद्रों की एक शृङ्खला बन जाती है, जिनमें से सौषुम्निक नाड़ियाँ सुषुम्ना से निकलकर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जाती हैं और धमनियाँ बाहर से सौषुम्निक नलिका में प्रवेश करती हैं।

चापपत्र मूल से कुछ नीचे की ओर को झुकते हुए मध्य रेखा की ओर जाते हैं जहाँ वे दोनों मिल जाते हैं। इस सम्मेलन-स्थान से कशेरुकण्टक पीछे की ओर को निकलता है। ये दोनों पत्र पतले और चिपटे होते हैं और कशेरुक छिद्र की पीछे की सीमा बनाते हैं। सन्निकट कशेरुकों के चापपत्र आपस में पीत बन्धन[3] के द्वारा जुड़े रहते हैं। यह बन्धन पत्रों की धाराओं, पूर्वपृष्ठ के अधोभाग और पश्चिमपृष्ठ के ऊर्ध्वभाग पर लगते हैं। पश्चात्पृष्ठ पर पेशियाँ भी लगी हुई हैं।

कशेरुक नलिका कशेरुक छिद्रों के मिलने से बनती है। इस नलिका के आगे की ओर कशेरुकों के गात्र, गात्रों के बीच के चक्रिपत्र और पश्चिम दीर्घ बन्धन[4] रहते हैं। उसके पीछे की ओर चापपत्र और पीत बन्धन तथा पार्श्व में चापमूल हैं, जिनके बीच में कशेरुकान्तरिक छिद्र स्थित हैं। यह नलिका कपाल के नीचे से आरम्भ होकर त्रिकास्थि तक चली जाती है। नलिका के नीचे के भाग की चौड़ाई ऊपरी भाग की अपेक्षा बहुत कम है। नलिका में सुषुम्ना[5] और उसके आवरण, सौषुम्निक नाड़ियाँ तथा सुषुम्ना में जानेवाली धमनियाँ और शिराएँ तथा कुछ वसा रहती है।

कशेरुक कण्टक—कशेरुक छिद्र के पीछे की ओर जहाँ दोनों ओर के चापपत्र मध्यरेखा में मिलते हैं वहाँ से एक लम्बा प्रवर्धन पीछे की ओर को निकलता है जिसको कशेरुककण्टक कहते हैं। यह कण्टक ऊपर से पीछे और नीचे की ओर को मुड़ा हुआ रहता है। इस कारण कण्टक की नोक नीचे के दूसरे कशेरुक के चापपत्र के पीछे पहुँच जाती है। शरीर में पीठ के बीच की परिखा में अँगुलियों द्वारा ये कण्टक प्रतीत किये जा सकते हैं। ये कण्टक आपस में कण्टकान्तरिक[6] बन्धन के द्वारा जुड़े हुए हैं जो दो कण्टकों के बीच में लगे रहते हैं। कण्टकों की नोकों पर दूसरा बन्धन लगा हुआ है जो कण्टकोत्तर[7] बन्धन कहलाता है। यह बन्धन एक लम्बी पट्टी के आकार का होता है जो त्रिकास्थि के कण्टकों से प्रारम्भ होकर ग्रीवा-कशेरुकों के कण्टकों तक चला जाता है और अन्त को करोटि के पश्चिम भाग में लगता है।

बाहुक प्रवर्धन—चापपत्र और चापमूल के संगम-स्थान से पार्श्व की ओर दो मोटे, दृढ़ और लम्बे प्रवर्धन निकलते हैं जिनको बाहुक प्रवर्धन कहते हैं। इन प्रवर्धनों के अग्रभाग पर गोल स्थालक होते हैं जो पर्शुकाओं के साथ मिलते हैं। ये प्रवर्धन ऊपर और नीचे के कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों के साथ बाहुकान्तरिक बन्धनों[8] द्वारा जुड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बन्धन इन प्रवर्धनों को पर्शुकाओं के साथ भी संयुक्त करते हैं। प्रवर्धनों पर कई पेशियाँ लगती हैं।

सन्धि-प्रवर्धन—बाहुक प्रवर्धन और चाप के संगमस्थान से सन्धि-प्रवर्धनों के दो जोड़े ऊपर और नीचे की ओर को निकलते हैं जिनको ऊर्ध्व और अधः सन्धि-प्रवर्धन कहते हैं।

---

१. Vertebral Notch. २. Inter-vettebral foramina. ३. Ligamenta flava. ४. Posterior Longitudinal ligament. ५. Spinal cord. ६. Interspinous Lig. ७. Suprasbinous Lig. ८. Inter-transverse Lig.

पृष्ठवंश में ऊर्ध्व प्रवर्धन ऊपरी कशेरुक के अधःप्रवर्धन और अधःप्रवर्धन नीचे स्थित कशेरुक के ऊर्ध्व प्रवर्धनों से मिले रहते हैं। ऊर्ध्व प्रवर्धन अधःप्रवर्धनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते हैं और उनके गोल चिकने स्थालक पश्चात्पृष्ठ पर स्थित होते हैं। अधःप्रवर्धनों के स्थालक नीचे और आगे की ओर स्थित होते हैं। ये प्रवर्धन स्थालकों द्वारा ऊपर और नीचे के कशेरुकों के समान स्थालकों से मिले रहते हैं। इन पर भी कुछ पेशियाँ लगती हैं।

भिन्न-भिन्न प्रांतों के कशेरुक

गत पृष्ठों में एक आदर्श कशेरुक का वर्णन किया गया है। वक्षप्रान्त के बीच के कशेरुक प्रायः इसी के समान होते हैं किन्तु ऊपर और नीचे के कशेरुकों में कुछ भिन्नता पाई जाती है। प्रत्येक प्रान्त के कशेरुकों में कुछ विशेषताएँ होती हैं। किन्तु कुछ कशेरुक ऐसे असाधारण होते हैं कि वे प्रान्त के अन्य कशेरुकों के समान नहीं होते।

ग्रीवा के कशेरुक

ये अन्य सब प्रान्तों के कशेरुकों से छोटे होते हैं। इनमें तीन छिद्र पाये जाते हैं जो अन्य किसी प्रान्त के कशेरुक में नहीं होते। दो छिद्र दोनों ओर के वाहुक प्रवर्धनों में होते हैं और वाहुक छिद्र[1] कहलाते हैं। इस कारण वाहुक प्रवर्धन दो भागों में विभक्त होता है; एक भाग छिद्र के आगे की ओर और दूसरा पीछे की ओर रहता है। तीसरा बड़ा त्रिकोणाकार कशेरुक छिद्र है। प्रथम, द्वितीय और सप्तम कशेरुकों में कुछ विशेषताएँ होती हैं।

सामान्य लक्षण—गात्र छोटा होता है और आगे से पीछे की ओर की अपेक्षा पार्श्व की ओर अधिक चौड़ा होता है। पूर्व और पश्चात् पृष्ठ दोनों चिपटे हैं किन्तु पूर्वपृष्ठ नीचे की ओर को अधिक बढ़ा हुआ है। इसके दोनों ओर पार्श्व में अधोधारा के कुछ ऊपर की ओर उठ जाने से ऐसे नत स्थान बन गये हैं जिन पर नीचे की ओर स्थित कशेरुक के ऊर्ध्वपृष्ठ से उठे

चित्र नं० १५८—आदर्श ग्रैवेयक कशेरुक

---

१. Foramen Transversarim.
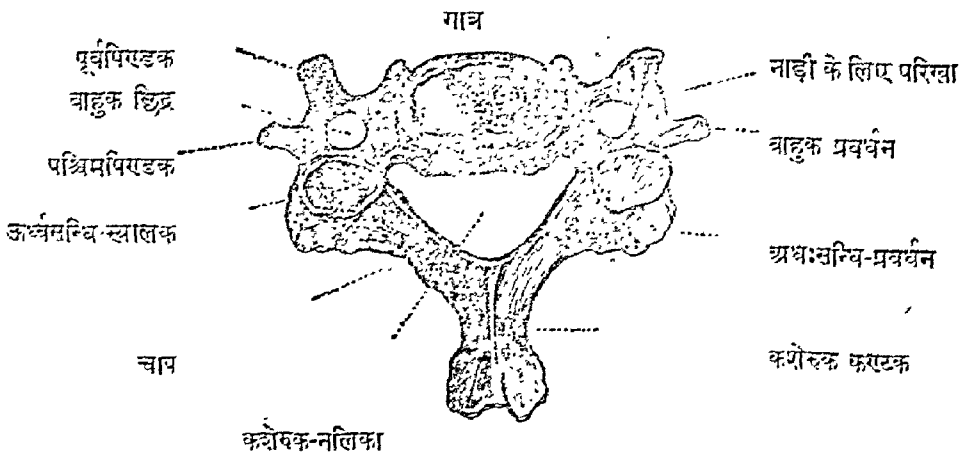
हुए दो ओष्ठ लगते हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ एक ओर से दूसरी ओर को नतोदर है। इसके दोनों ओर से दो ओष्ठ के समान प्रवर्धन निकले हुए हैं। इसका किनारा अत्यन्त स्पष्ट है। अधःपृष्ठ के पार्श्व में दोनों ओर चिकने नत स्थान हैं जिन पर ऊर्ध्वपृष्ठ के ओष्ठ लगते हैं। यह पृष्ठ आगे से पीछे की ओर को नतोदर है किन्तु एक ओर से दूसरी ओर को चिपटा अथवा कुछ उन्नतोदर है। इसकी अधोधारा नीचे की ओर को प्रवर्धित है।

चापमूल गात्र के पार्श्व से अधोधारा की अपेक्षा ऊर्ध्वधारा के पास से निकलते हैं। गात्र से निकलकर दोनों मूल पीछे और बाहर की ओर को मुड़े हुए रहते हैं।

चापपत्र अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पतले होते हैं।

कशेरुक छिद्र बड़े और त्रिकोणाकार होते हैं। इनके आगे की ओर कशेरुक का गात्र, पार्श्व में चापमूल और चापपत्र और पीछे की ओर चापपत्र रहते हैं। इस छिद्र के बड़े होने का विशेष कारण यह है कि अन्य प्रान्तों की अपेक्षा ग्रीवा प्रान्त में सुषुम्नादण्ड अधिक मोटा होता है।

कशेरुक कण्टक छोटा होता है और उसका पीछे का सिरा दो भागों में विभक्त होता है। यह भाग त्रिकोण के समान है।
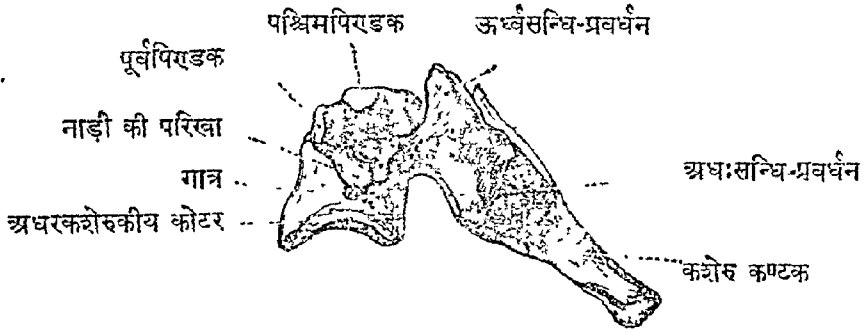
चित्र नं० १५६—आदर्श ग्रैवेयक कशेरुक—पार्श्व ओर से

सन्धि-प्रवर्धन—ऊर्ध्व और अधः सन्धि-प्रवर्धन आपस में मिलकर एक स्तम्भ बनाते हैं जिनके दोनों सिरों पर दो स्थालक-पृष्ठ होते हैं। ये स्थालक चिपटे हैं। ऊर्ध्व स्थालक पीछे और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है किन्तु अधः स्थालक इसके विपरीत नीचे और आगे की ओर को झुका हुआ रहता है।

वाहुक प्रवर्धन छोटे हैं और आगे तथा बाहर की ओर को निकले हुए हैं। ये प्रवर्धन दो भागों में विभक्त हैं जो पूर्व और पश्चात् भाग कहलाते हैं। इन दोनों के बीच में वाहुक छिद्र रहता है। पूर्व भाग कशेरुक के गात्र से निकलता है। यह पर्शुकाओं का समावयवी माना जाता है और इस कारण इसको **पर्शुकीय प्रवर्धन**[१] भी कहते हैं। पश्चिम भाग चापमूल और चापपत्र के सङ्गम-स्थान से निकलता है और वह वास्तविक वाहुक प्रवर्धन माना जाता है। ये दोनों प्रवर्धन आगे की ओर एक-एक छोटे पिण्डक में समाप्त होते हैं जिनको **पूर्व**[२] और **पश्चात् पिण्डक**[३] कहते हैं। दोनों प्रवर्धन पिण्डक के पास एक छोटे मुड़े हुए अस्थिभाग के द्वारा जुड़े रहते हैं जिनके ऊपर एक परिखा दिखाई देती है। यह अस्थि वाहुक छिद्र की बाहरी सीमा बनाती है। इसके ऊपर स्थित परिखा के द्वारा सौषुम्निक नाड़ी जाती है।

---

१. Costal Process. २. Anterior and. ३. Posterior Tubercle.

वाहुक छिद्र—ऊपरी छः कशेरुकों के वाहुक छिद्रों के द्वारा मस्तिष्क-मातृका[1] धमनी मस्तिष्क की ओर जाती है। सातवें कशेरुक के छिद्र के द्वारा यह धमनी नहीं निकलती। धमनी के चारों ओर शिराओं की शाखाएँ और स्वतन्त्र नाड़ी-मण्डल की सूक्ष्म शाखाओं का एक जाल भी रहता है।

प्रथम कशेरुक[2]—यह कशेरुक कपाल के नीचे रहता है। आकार में यह एक कुण्डल के समान गोल होता है। इसको चूड़ावलय कशेरुक भी कहते हैं।

इस कशेरुक में सबसे अधिक विशेषता यह है कि इसमें गात्र नहीं होता। केवल पूर्व और पश्चात् चाप होते हैं जो पार्श्व में दोनों ओर स्थित दो पिण्डकों के साथ मिले रहते हैं। ये पार्श्वपिण्ड[3] कहलाते हैं। इन पिण्डों के बाहर की ओर से वाहुक प्रवर्धन निकले रहते हैं जिनके भीतर वाहुक छिद्र होते हैं। पश्चिम कपाल के अर्बुद दोनों पार्श्वपिण्डों पर आश्रित रहते हैं जिनके नीचे की ओर दूसरा कशेरुक रहता है। प्रथम कशेरुक में कण्टक प्रवर्धन नहीं होता।
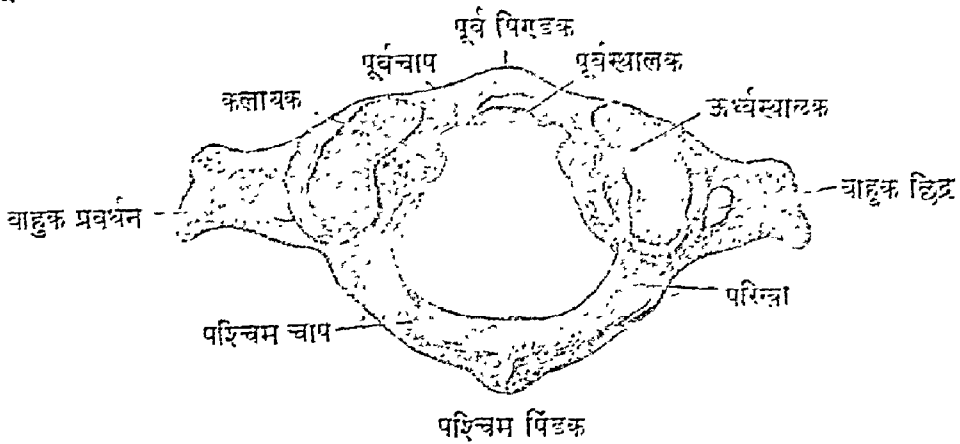
चित्र नं० १६०—प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक

गात्र—प्रथम कशेरुक का गात्र उत्पत्ति-अवस्था में दूसरे कशेरुक के साथ जुड़ जाता है।

पूर्वचाप—यह भाग छोटा और चपटा है। इसके पीछे की ओर एक छोटा गोल स्थालक है जिस पर दूसरे कशेरुक का दन्त प्रवर्धन[4] लगता है। चाप के आगे की ओर बीच में एक पिण्डक है जिसके दोनों ओर दीर्घग्रीविका[5] पेशी का निवेश होता है। पिण्डक पर पूर्व दीर्घबन्धन लगता है। चाप की ऊर्ध्वधारा पर वलय-कपालिनी अग्रिमा कला[6] लगी हुई है। अधोधारा पर वलय-दंतिक[7] बन्धन लगता है। यह चाप के दोनों ओर पार्श्व में पार्श्वपिण्ड से मिल जाता है।

पश्चात् चाप पूर्व चाप की अपेक्षा बड़ा है। इसके दोनों ओर के भाग पार्श्वपिण्डों से निकलकर पीछे की ओर को मुड़कर मध्य रेखा में मिल जाते हैं। वहाँ पर पीछे की ओर एक पिंडक, जिसको पश्चात्पिण्डक[8] कहते हैं, स्थित है। यह पिण्डक अन्य कशेरुकों के कण्टक के समान है। इस पर से शिरःपृष्ठ-ह्रस्विका[9] लम्बी पेशियों का उदय होता है। चाप के ऊपर दोनों ओर पार्श्वपिण्डों के पास एक परिखा दिखाई देती है। कशेरुकीय धमनी वाहुक छिद्र से निकलकर इस परिखा पर होती हुई पश्चात्कपाल के सौषुम्निक छिद्र के द्वारा कपाल के भीतर जाती है। परिखा में इस धमनी

---

१. Vertebral Artery. २. Atlas. ३. Lateral masses. ४. Dens. ५. Longus coli. ६. Anterior atlanto-occipital membrane. ७. Atlantoaxial Lig. ८. Posterior Tubercle. ९. Rectus capitis Posterior minor.
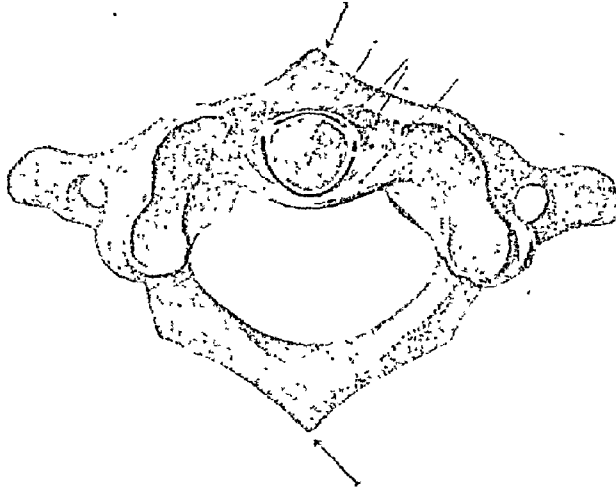
चित्र नं० १६१—प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक

के नीचे प्रथम ग्रैवेयक नाड़ी रहती है। कभी-कभी यह परिखा **वलय-कपालिनी पश्चिमा कला** के अधोभाग के द्वारा, जो पार्श्व पिंडों से पाश्चात्कपाल के सौपुम्निक छिद्र के पश्चाद्भाग तक जाती है और ऊपर और बाहर की ओर को जाकर सन्धिकोष के साथ मिल जाती है, एक विवर या छिद्र के रूप में परिणत हो जाती है, जिसमें धमनी और नाड़ी रहती हैं। कला का यह अधोभाग, जो चाप की परिखा के दोनों ओर लगता है, कभी-कभी अस्थि में परिणित हो जाता है।

चाप के नीचे की ओर पीत बन्धन लगा हुआ है जो उसको दूसरे कशेरुक के चापपत्र के साथ युक्त करता है।

बाहुक प्रवर्धन लम्बे और बड़े होते हैं। इनके पूर्व और पश्चात् पिण्डक प्रायः आपस में मिलकर एक हो जाते हैं। ये प्रवर्धन पार्श्वपिण्डों से बाहर और नीचे की ओर निकले रहते हैं। प्रवर्धनों के पूर्व और पश्चाद्भाग के बीच में बाहुक छिद्र रहता है जो बड़ा होता है। छिद्र के भीतर की ओर पार्श्वपिंड और बाहर की ओर प्रवर्धनों के पिण्डक रहते हैं।

पार्श्वपिण्ड—दोनों पिण्डों के ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ पर स्थालक हैं जो ऊर्ध्व और अधो स्थालक कहलाते हैं। ऊर्ध्व स्थालक बड़े अण्डाकार और आगे की ओर अधिक चौड़े हैं। वे नतोदर हैं। पीछे की ओर उनके बीच का अन्तर अधिक बढ़ गया है। वे स्थालक ऊपर, पीछे और भीतर की ओर को मुड़े हुए हैं। इनके ऊपर पश्चिम कपाल के अर्बुद रहते हैं। इनके चारों ओर सन्धि-कोष लगा हुआ है। इनका आकार इस भाँति का है कि उससे शिर को हिलाने की गति में तनिक भी बाधा नहीं पड़ती। कभी-कभी इनके किनारों पर कुछ परिखा दिखाई देती है अथवा स्थालक दो भागों में विभक्त दीखता है। अधःपृष्ठ पर स्थित स्थालक प्रायः गोल और चिपटे होते हैं, यद्यपि कभी-कभी कुछ नतोदर भी पाये जाते हैं। ये द्वितीय कशेरुक के ऊर्ध्व स्थालकों से, जो दन्त-प्रवर्धन के दोनों ओर स्थित हैं, मिलते हैं। **पूर्वपृष्ठ** छोटा और पूर्व चाप के पश्चिम भाग से मिला हुआ है।

पृष्ठ के बाहरी शेष भाग से शिरःपूर्व-दण्डिका[1] पेशी उदय होती है। पश्चात् पृष्ठ पश्चिम चाप से मिला हुआ है। मध्यस्थ पृष्ठ पर ऊर्ध्व और अधः स्थालकों के बीच में दोनों ओर एक छोटा कलायक स्थित है जिस पर व्यत्यस्त बन्धन[2] लगा हुआ है। यह बन्धन एक ओर के कलायक से दूसरे ओर के कलायक तक फैला हुआ है जिससे कशेरुक छिद्र दो भागों में विभक्त हो जाता है। आगे का भाग छोटा होता है और उसमें द्वितीय कशेरुक का दन्त-प्रवर्धन रहता है। पीछे की ओर के बड़े भाग में सुषुम्ना अपने आवरण के साथ रहती है। पार्श्वपृष्ठ से वाहुक प्रवर्धन निकलते हैं।

द्वितीय कशेरुक अथवा दन्त-चूड़ा—यह कशेरुक दन्त-चूड़ा इस कारण कहलाता है कि इसके गात्र से ऊपर की ओर को दन्त-प्रवर्धन निकलता है जिसकी सहायता से इस कशेरुक को सहज में पहचाना जा सकता है। अन्य कशेरुकों की अपेक्षा इसके चापपत्र भी अधिक मोटे और दृढ़ होते हैं और कण्टक छोटा, द्विधा विभक्त और मोटा होता है। यदि ग्रीवा में पीछे की ओर मध्यरेखा की गहराई में कपाल-मूल से नीचे से नीचे की ओर अँगुलियों को दबाकर प्रतीत किया जाय तो सबसे प्रथम जो अस्थ्यवरोध प्रतीत होगा वह इस कण्टक ही के कारण होगा। दन्त-प्रवर्धन के दोनों ओर दो बड़े स्थालक भी इस कशेरुक की विशेषता-स्वरूप हैं। इस कशेरुक को अक्ष भी कहते हैं क्योंकि शिर को घुमाने के समय शिर प्रथम कशेरुक के सहित दन्त-प्रवर्धन के अक्ष पर घूमता है।

गात्र मोटा और नीचे की ओर को अधिक बढ़ा हुआ है। इसका पूर्वपृष्ठ पश्चात्-पृष्ठ की अपेक्षा नीचे की ओर को अधिक प्रलम्बित है। पूर्वपृष्ठ के बीच में एक तीरखिका है जो पार्श्व में स्थित दो खातों को विभक्त करती है। इन नत स्थानों पर दीर्घग्रीविका[3] पेशी लगी हुई है। नीचे
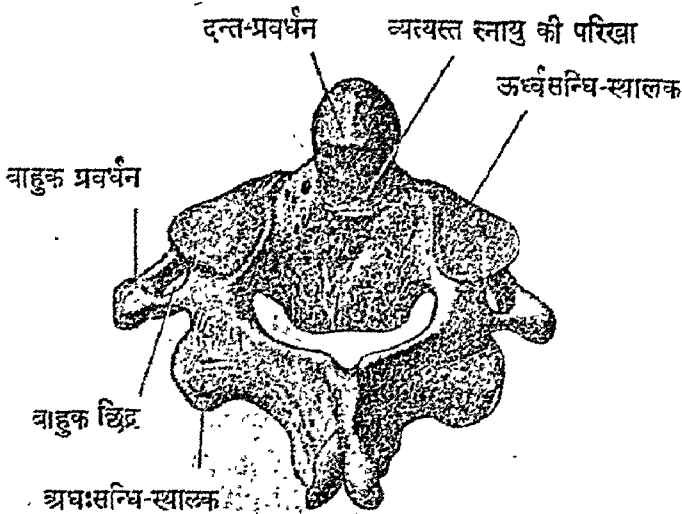
चित्र नं० १६२—द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुक

की ओर इस पृष्ठ का अधोभाग नीचे के कशेरुक पर चढ़ा रहता है। पश्चात्पृष्ठ चिपटा है। अधःपृष्ठ आगे से पीछे की ओर नतोदर है किन्तु इसकी चौड़ाई एक ओर से दूसरी ओर को अधिक है। ऊर्ध्वपृष्ठ से दन्त-प्रवर्धन और पार्श्वपृष्ठों से चापमूल निकलते हैं।

---

१. Rectus capitis Anterior. २. Transverse Ligment fo Atlas. ३. Longus coli.

दन्त-प्रवर्धन[1]—यह वास्तव में प्रथम कशेरुक का गात्र है जो दूसरे कशेरुक के साथ जुड़ गया है। स्वाभाविक अवस्था में यह प्रथम कशेरुक के कशेरुक छिद्र में रहता है। इसके आगे की ओर एक छोटा गोल स्थालक है जो प्रथम कशेरुक के पूर्वचाप के पश्चात्पृष्ठ पर स्थित समान स्थालक के साथ मिलता है। इस प्रवर्धनका पश्चात्पृष्ठ भी चिकना है क्योंकि वह प्रथम कशेरुक के छिद्र को विभाजित करनेवाले बन्धन के सम्पर्क में रहता है। इस प्रवर्धन का ऊपरी भाग नुकीला है जिस पर दन्त-शिखरिक बन्धन[2] लगा हुआ है जो प्रवर्धन की नोक से कपाल के महाविवर या सौपुम्निक छिद्र की पूर्व-धारा तक जाता है। प्रवर्धन के पार्श्व में भी पत्तीय[3] बन्धन लगे हुए हैं जो महाविवर के पार्श्व में स्थित पिण्डकों तक जाते हैं। जब शिर को पार्श्व की ओर घुमाया जाता है तो कुछ दूर जाकर उस ओर को शिर की गति रुक जाती है। इसका कारण ये ही बन्धन होते हैं।

चापपत्र मोटे और दृढ़ होते हैं। इनका पश्चिम पृष्ठ ऊपर से नीचे और पीछे की ओर को ढलवाँ होता है। पूर्वपृष्ठ भी कुछ पीछे की ओर को ढलवाँ है। इन दोनों पत्रों के पीछे की ओर मध्य-रेखा में सम्मेलन पर कण्टक है जिसकी नोक द्विधा विभक्त है। कण्टक के नीचे की ओर एक गहरी परिखा और ऊपर की ओर एक स्पष्ट तीरिका है। कण्टक पर कई पेशियाँ लगती हैं। शिरःपृष्ठ-दण्डिका गुर्वी और अधर तिरश्चीना उससे उदय होती हैं और ग्रीवार्ध-पृष्ठिका का कुछ भाग उस पर निवेश करता है।

बाहुक प्रवर्धन बहुत छोटे होते हैं। पूर्व भाग पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। उसमें पूर्व पिण्डक नहीं होता।
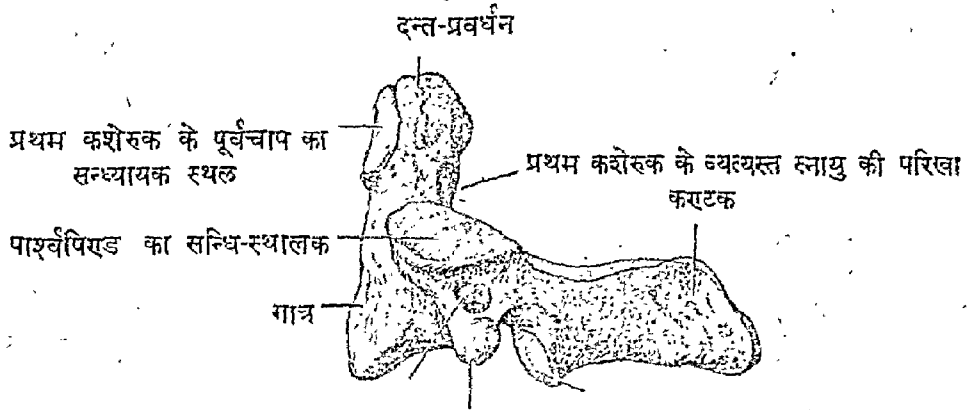
चित्र नं० १६३—द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुक

बाहुक छिद्र छोटे, पीछे और बाहर को मुड़े हुए हैं।

सन्धि-प्रवर्धन बहुत छोटे होते हैं। ऊर्ध्व स्थालक इन प्रवर्धनों पर स्थित न होकर गात्र के ऊपर दन्त-प्रवर्धन के दोनों ओर दिखाई देते हैं। इनका कुछ भाग चापमूल पर भी रहता है। दोनों स्थालक गोल या अण्डाकार और उन्नतोदर होते हैं और प्रथम कशेरुक के पार्श्व पिण्डों के अधःपृष्ठ से मिले रहते हैं। इस प्रकार शिर और प्रथम कशेरुक का भार द्वितीय कशेरुक के द्वारा पृष्ठवंश पर पहुँचता है। अधःस्थालक सन्धि-प्रवर्धनों पर स्थित और नीचे तथा आगे की ओर को मुड़े हुए हैं।

---

१. Dens or odontoid Process. २. Lig Apicis Dentis. ३. Alar Ligament.
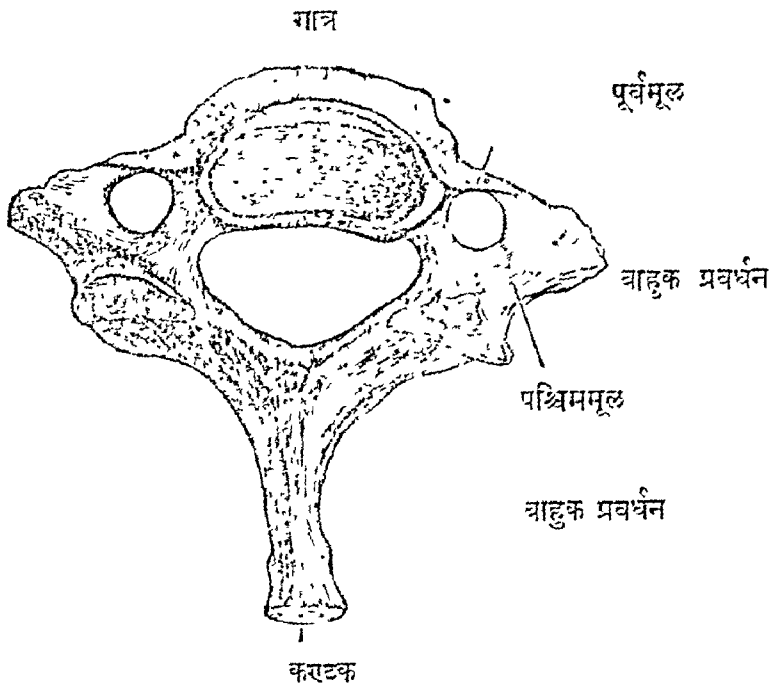
चित्र नं० १६४—सातवाँ ग्रैवेयक कशेरुक

कशेरुक में ऊर्ध्वकोटर[1] अनुपस्थित है किन्तु अधःकोटर गहरी है।

सप्तम कशेरुक में विशेषता यह है कि उसका कण्टक लम्बा, मोटा और दृढ़ होता है। उसकी नोक दो भागों में विभक्त नहीं होती। ग्रीवा के पीछे की ओर इस कण्टक के उभार को प्रतीत किया जा सकता है।

वाहुक-प्रवर्धन—इनका आकार बड़ा है। प्रवर्धनों की पूर्व मूल छोटी और पतली है किन्तु पश्चात् मूल मोटी और दृढ़ है। इन दोनों के ऊपर की ओर सातवीं ग्रैवेयक नाड़ी के लिए एक परिखा है। इन प्रवर्धनों के छिद्र प्रायः छोटे होते हैं, यद्यपि किसी-किसी कशेरुक में अन्य सामान्य कशेरुकों की भाँति बड़े भी पाये जाते हैं। किसी किसी में यह छिद्र बिलकुल ही नहीं पाये जाते अथवा दो भागों में विभक्त पाये जाते हैं। सामान्यतया मस्तिष्क-मातृका धमनी और शिरा वाहुक प्रवर्धनों के सामने होकर ऊपर को जाती हैं। किन्तु कभी-कभी बाईं ओर यह धमनी बाहुक छिद्र में होकर निकलती है। दोनों ओर की शिराएँ भी छिद्र में होकर निकलती हुई पाई जा सकती हैं।

कुछ कशेरुकों में पूर्वमूल बहुत बड़ा होता है और पश्चात् मूल से भिन्न रहता है। ऐसी दशा में उनको ग्रैवेयक पर्शुका[2] कहा जाता है।

वक्षप्रान्त के कशेरुक

वक्षीय कशेरुक ग्रीवा-कशेरुकों से बड़े किन्तु कटिकशेरुकों से छोटे होते हैं। इनका आकार ऊपर से नीचे की ओर को बढ़ता जाता है। अर्थात् प्रथम वक्षीय कशेरुक सबसे छोटा होता है किन्तु ज्यों-ज्यों नीचे की ओर को चलते हैं त्यों-त्यों कशेरुकों का आकार बढ़ने लगता है। यहाँ तक कि

१. Superior notch. २. Cervical rib.

बारहवाँ कशेरुक सबसे बड़ा होता है। इन कशेरुकों के गात्र के पार्श्व पर पर्शुका के साथ सम्मेलन करने के लिए दोनों ओर स्थालक होते हैं। ग्यारहवें और बारहवे कशेरुक के अतिरिक्त शेष सब कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों पर भी स्थालक होते हैं जो पर्शुकाओं के पिण्डकों के साथ मिलते हैं।

ऊपरी आठ में से प्रत्येक कशेरुक अपने गात्र द्वारा पर्शुकाओं के दो जोड़ों के साथ मिलता है; एक अपनी समान संख्यावाले पर्शुका के जोड़े से और दूसरे अपने से नीचे के पर्शुका के जोड़े से। दूसरे कशेरुक का गात्र द्वितीय और तृतीय पर्शुकाओं से दोनों ओर सम्मेलन करता है। इसी प्रकार तृतीय कशेरुक पर्शुकाओं के तीसरे और चौथे जोड़ों से मिलता है। किन्तु अन्तिम चार कशेरुक अर्थात् नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ और बारहवाँ कशेरुक केवल अपनी समान संख्या वाली पर्शुका के एक ही जोड़े से सम्मेलन करते हैं।

अन्तिम दो कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों पर भी कोई स्थालक नहीं होता।

वक्षप्रान्त के बारह कशेरुकों में से बीच के छः कशेरुक समान होते हैं। नीचे के कशेरुक केवल आकार में बड़े होते हैं। प्रथम, द्वितीय, नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें कशेरुकों में कुछ विशेषता पाई जाती हैं। किन्तु यदि एक ही कङ्काल के सब कशेरुक हों तो उनके परिवर्तनों को ध्यान से देखने से कशेरुकों का क्रम सहज में मालूम किया जा सकता है।

गात्र—वक्षप्रान्त के बीच के कशेरुकों का गात्र कुछ त्रिकोणाकार होता है। इनकी प्रायः हृदय के आकार से उपमा दी जाती है। किन्तु ऊपर और नीचे के कशेरुकों में ग्रीवा और कटि प्रान्त
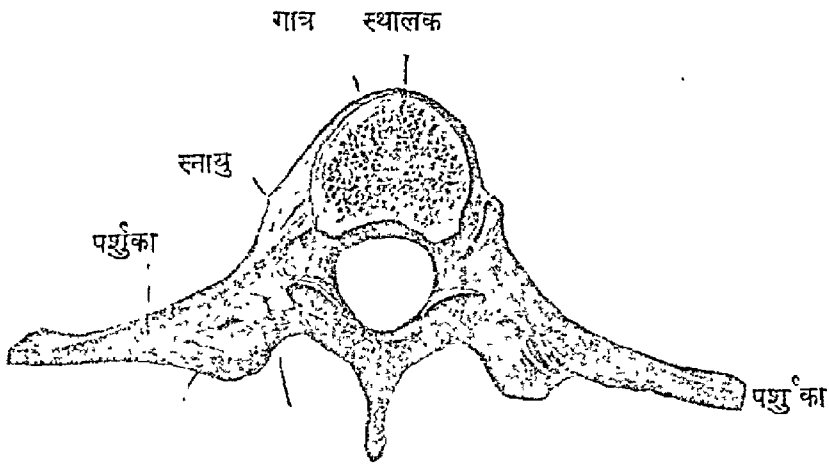
चित्र नं० १६५—वक्ष का कशेरुक

के कशेरुकों के कुछ लक्षण पाये जाते हैं। ऊर्ध्व और अधःपृष्ठ समान और चिपटे हैं और पृष्ठवंश में सृक्ति से ढके रहते हैं। पूर्वपृष्ठ एक ओर से दूसरी ओर को उन्नतोदर है किन्तु ऊपर से नीचे की ओर को कुछ नतोदर है क्योंकि बीच का भाग आगे और पार्श्व में कुछ संकुचित है। पश्चिमपृष्ठ एक ओर से दूसरी ओर को नतोदर है और पूर्वपृष्ठ की अपेक्षा अधिक गहरा है। इस कारण पृष्ठवंश का यह भाग पीछे की ओर को झुका हुआ रहता है। गात्र के पार्श्वों पर चापमूल के समीप दो अर्धस्थालक गात्र की ऊर्ध्वधारा पर और दो समान किन्तु छोटे अर्धस्थालक अधोधारा पर होते हैं। जब पृष्ठवंश में कशेरुक मिले रहते हैं तो एक कशेरुक के अधः स्थालक नीचे के कशेरुक के ऊर्ध्व स्थालकों से मिलकर

एक सम्पूर्ण गहरा स्थालक बना देते हैं जिसमें पर्शुका का शिर रहता है। कशेरुकान्तरिक शुक्ति भी इस स्थालक के बनाने में भाग लेती है।

चापमूल पीछे और कुछ ऊपर की ओर को मुड़े हुए हैं। ये चिपटे हैं और अधःपृष्ठ की अपेक्षा ऊर्ध्वपृष्ठ के पास से निकलते हैं, इस कारण ऊर्ध्व कोटर की अपेक्षा अधः कोटर बहुत गहरा होता है। अन्य सब प्रान्तों की अपेक्षा वक्षप्रान्त के कशेरुकों का अधः कोटर अधिक गहरा होता है जिससे कशेरुकों को पहचानने में सहायता मिलती है।

चापपत्र चौड़े और मोटे हैं और ऊपर के कशेरुक के पत्र नीचे के कशेरुक के पत्रों के कुछ ऊपर चढ़े रहते हैं।

कशेरुक छिद्र गोल और कटि या ग्रीवा प्रान्त के छिद्रों से छोटे होते हैं।

कण्टक प्रवर्धन लम्बा, पतला और त्रिपार्श्विक होता है। इसकी नोक, जो पीछे और नीचे को रहती है, कुछ मोटी हो जाती है। ये प्रवर्धन नीचे की ओर को मुड़े हुए रहते हैं। किन्तु पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें कशेरुक के अतिरिक्त अन्य कशेरुकों के कण्टक इतने मुड़े हुए नहीं हैं। प्रत्येक कण्टक नीचे के कण्टक को ढक लेता है।

बाहुक प्रवर्धन चाप से निकलकर पीछे, बाहर और कुछ ऊपर की ओर को मुड़ जाते हैं। इन चौड़े और मोटे प्रवर्धनों के सिरे पिण्डकों के समान अधिक मोटे और दृढ़ हैं। इनके पूर्वपृष्ठ पर पर्शुकाओं के पिण्डक के साथ सम्मेलन करने के लिए गोल स्थालक होते हैं। ये प्रवर्धन पर्शुकाओं से कई बन्धनों और सन्धि-कोषों द्वारा जुड़े रहते हैं। ये बन्धन फीते के समान चौड़े और पतले होते हैं और इनको पर्शुका के पिण्डक और ग्रीवा के बन्धन कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ये प्रवर्धन नीचे की पर्शुका की ग्रीवा के साथ भी पूर्व पर्शुकाबाहुक[१] बन्धन के द्वारा जुड़े रहते हैं।

सन्धि-प्रवर्धन—ऊर्ध्व सन्धि-प्रवर्धन अस्थि के पतले पत्र के समान चापमूल और चापपत्र के संगमस्थान से ऊपर की ओर को निकलकर कुछ बाहर की ओर को मुड़े हुए हैं। इन पर स्थित गोल चिपटे स्थालक पीछे, ऊपर और कुछ बाहर की ओर को मुड़े हुए हैं। अधःप्रवर्धन बहुत कुछ चाप-पत्रों के साथ जुड़ गये हैं इस कारण उन पर स्थित अधःस्थालक चापपत्रों और कुछ प्रवर्धनों पर स्थित हैं। ये स्थालक भी गोल और चिपटे या कुछ नतोदर हैं और आगे तथा भीतर की ओर मुड़े हुए हैं।

प्रथम कशेरुक वक्षकीय सामान्य कशेरुकों के बहुत कुछ समान होता है। किन्तु गात्र के पार्श्वों पर स्थित स्थालकों में भेद होता है। ऊर्ध्वधारा के पास जो स्थालक होता है वह सम्पूर्ण और गोल है। उस पर प्रथम पर्शुका का शिर लगता है। नीचे की ओर दूसरी पर्शुका के शिर के लिए अर्धस्थालक होता है जो दूसरे कशेरुक के बड़े ऊर्ध्व स्थालक से मिला रहता है।

द्वितीय कशेरुक प्रथम कशेरुक के बहुत कुछ समान होता है। परन्तु ऊर्ध्व स्थालक यद्यपि बड़ा होता है, किन्तु सम्पूर्ण नहीं होता।

नवाँ कशेरुक—ऊर्ध्व धारा के पास एक अर्धस्थालक है जिस पर नवीं पर्शुका के शिर का नीचे का भाग लगता है। कभी-कभी नीचे की ओर भी स्थालक पाया जाता है। ऐसी दशा में यह कशेरुक एक सामान्य कशेरुक के समान प्रतीत होता है। किन्तु जब स्थालक पूर्ण होता है और केवल एक ही होता है तो वह दसवें कशेरुक के समान दीखता है।

दसवाँ कशेरुक—इस पर एक पूर्ण स्थालक होता है जिसका कुछ भाग गात्र पर और कुछ चापमूल के पार्श्व पर रहता है।

---

१. Anterior Costotransverse Lig.
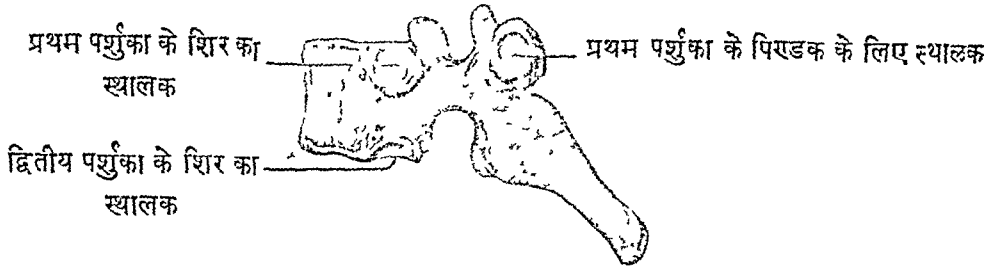
चित्र नं० १६६—प्रथम वक्षीय कशेरुक

ग्यारहवाँ कशेरुक—इस कशेरुक का गात्र बड़ा और चौड़ा होता है। इसमे पर्शुका के शिर के लिए केवल एक बड़ा स्थालक होता है जिसका अधिक भाग चापमूल पर रहता है। कण्टक
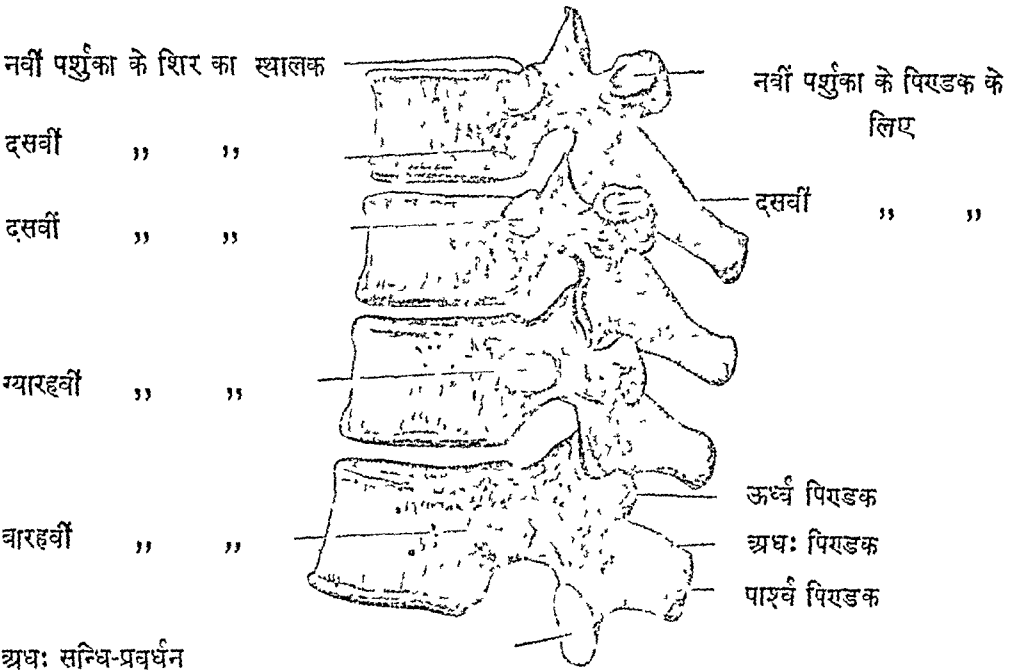
चित्र नं० १६७—नवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ और बारहवाँ वक्षीय कशेरुक

प्रवर्धन छोटा और ऊपर के कशेरुकों की अपेक्षा कम मुड़ा हुआ है। बाहुक प्रवर्धनों पर कोई स्थालक नहीं होता। वे छोटे और मुड़े हुए होते है और उनके सिरे मोटे होते हैं। चापमूल भी मोटे और दृढ़ होते हैं।

बारहवाँ कशेरुक—अन्य सब कशेरुकों की अपेक्षा दसवें, ग्यारहवें और बारहवें कशेरुकों के गात्र अधिक बड़े और मोटे होते हैं। बारहवें कशेरुक का गात्र ग्यारहवें से भी बड़ा होता है और इसमें कटिप्रान्त के कशेरुकों के बहुत से लक्षण पाये जाते हैं। इनके अधःस्थालक उन्नतोदर और बाहर पार्श्व की ओर को मुड़े होते हैं। बाहुक प्रवर्धनों में तीन उत्सेध दिखाई देते हैं जो ऊर्ध्व, अधः और पार्श्व पिण्डक कहलाते हैं। दसवें और ग्यारहवें कशेरुक पर भी ऐसे ही उत्सेधों के चिह्न दिखाई देते हैं। ये प्रवर्धन छोटे होते हैं। गात्र, चापपत्र और कण्टक भी कटिप्रान्त के कशेरुकों के समान होते हैं।

कटिप्रांत के कशेरुक

इस प्रान्त के कशेरुक अन्य प्रान्तों के कशेरुकों से बड़े होते हैं। केवल आकार की बृहत्ता से ये देखते ही पहचाने जा सकते हैं।
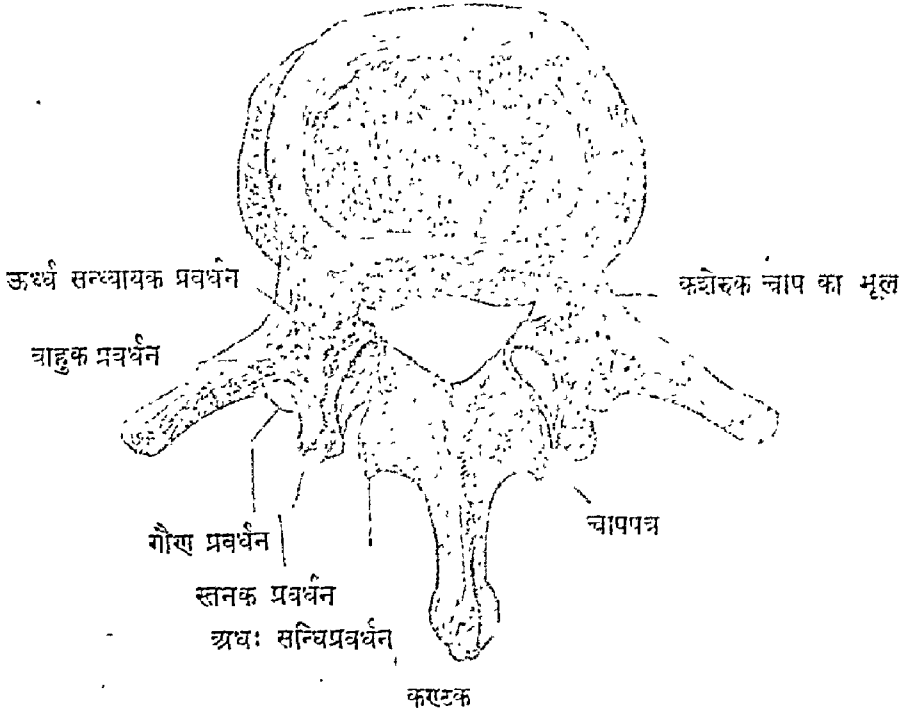
चित्र नं० १६८—तृतीय कटिकशेरुक—ऊपर से

इन कशेरुकों के वाहुक प्रवर्धनों में कोई छिद्र नहीं होता और न गात्र के पार्श्व पर किसी प्रकार के स्थालक होते हैं। ये दोनों विशेषताएँ इन कशेरुकों को अन्य कशेरुकों से भिन्न करती हैं। इनके अतिरिक्त वाहुक प्रवर्धन छोटे और मोटे होते हैं। कण्टक भी पीछे की ओर को उठा हुआ विशेष आकार का होता है।

गात्र बड़ा होता है। व्यत्यस्त दिशा में उसकी चौड़ाई कहीं अधिक होती है। जहाँ गात्र और चापमूल मिलते हैं उसके तनिक आगे कशेरुकों के गात्र लगभग दो इंच चौड़े होते हैं। किन्तु ऊपर से नीचे की ओर को एक इंच के लगभग गहरे होते हैं। ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ चिपटे अथवा कुछ नतोदर होते हैं। पूर्वपृष्ठ एक ओर से दूसरी ओर को उन्नतोदर होता है। पश्चिम पृष्ठ कुछ नतोदर है किन्तु पूर्वपृष्ठ की अपेक्षा कम गहरा है इस कारण पृष्ठवंश आगे की ओर को झुका रहता है।

चापमूल—ये मोटे और दृढ़ होते हैं और ऊर्ध्वधारा के पास से पीछे और बाहर की ओर को निकलते हैं। इस कारण नीचे का कोटर अधिक गहरा हो जाता है।

चापपत्र छोटे किन्तु चौड़े, मोटे और विषम होते हैं। वे चापमूल से नीचे की ओर को अधिक बढ़े हुए हैं। किन्तु वे नीचे के पत्रों को नहीं ढकते।

कशेरुक छिद्र त्रिकोणाकार है और वक्षप्रान्त से बड़ा किन्तु ग्रीवाप्रान्त से छोटा है।

कण्टक प्रवर्धन मोटा और दृढ़ है और केवल पीछे को निकला हुआ है। नीचे की ओर को झुका हुआ नहीं है। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा यह अधिक चौड़ा और त्रिकोणाकार है। इसका सिरा नीचे की ओर अधिक चौड़ा हो जाता है जहाँ कभी-कभी एक पिण्डक दिखाई देता है।

सन्धि-प्रवर्धन बड़े और दृढ़ हैं। ऊर्ध्वसन्धि-प्रवर्धन चौड़े और विषम हैं। इन पर स्थालक भीतर की ओर स्थित है। प्रत्येक स्थालक छोटा, गोल और नतोदर है और भीतर तथा पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। इन स्थालकों के पीछे की ओर प्रवर्धनों के पश्चिम भाग पर एक गोल चिकना और छोटा उत्सेध है जो **स्तनक प्रवर्धन**[1] कहलाता है। अधःप्रवर्धन नीचे की ओर
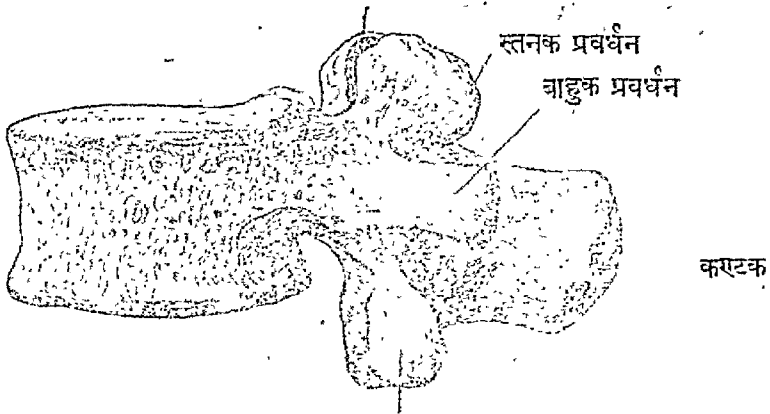
चित्र नं० १६६—तृतीय कटि-कशेरुक—बाईं ओर से

को निकले हुए हैं। उन पर अण्डाकार उन्नतोदर स्थालक आगे की ओर स्थित हैं तथा आगे और बाहर की ओर को मुड़े हुए हैं। ये स्थालक नीचे के कशेरुक के ऊर्ध्व प्रवर्धनों के भीतर की ओर स्थित ऊर्ध्व स्थालकों से सम्मेलन करते हैं। अतएव अधः प्रवर्धनों की अपेक्षा ऊर्ध्व प्रवर्धनों के बीच में अधिक अन्तर है।

बाहुक प्रवर्धन—ऊपर के तीन कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धन पतले और लम्बे हैं और बाहर की ओर को निकले हुए हैं। किन्तु नीचे के दो कशेरुकों में इन प्रवर्धनों का आकार छोटा है, और वे पीछे तथा कुछ ऊपर की ओर को मुड़ गये हैं। ऊपरी तीन कशेरुकों में वे चापमूल और चापपत्र के सङ्गम से निकलते हैं किन्तु नीचे के कशेरुकों में ये प्रवर्धन चापमूल और गात्र के पश्चिम भाग से निकलते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार इनकी स्थिति आगे को सरक जाती है और वे सन्धि-प्रवर्धनों के आगे पहुँच जाते हैं। वक्षप्रान्त में इसके विपरीत ये प्रवर्धन सन्धि-प्रवर्धनों के पीछे रहते हैं और पर्शुकाएँ उनके आगे की ओर रहती हैं। बाहुक प्रवर्धनों के मूल पर पीछे की ओर एक उत्सेध है जो **गौण प्रवर्धन**[2] कहलाता है। स्तनक और गौण प्रवर्धनों को वास्तव में बाहुक प्रवर्धन का सूचक माना जाता है। कटि प्रान्त के कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धन वक्ष की पर्शुकाओं के समानयवी हैं।

---

१. Mammillary Process. २. Accessory Process.

पंचम कटि कशेरुक—ऊपर के चार कशेरुक बहुत कुछ आपस में समान हैं। यद्यपि आकार का भेद उनमें भी पाया जा सकता है। किन्तु पाँचवें कशेरुक में अधिक भेद होता है। इसका गात्र पीछे की अपेक्षा आगे की ओर अधिक गहरा और मोटा है। इसका कण्टक छोटा होता है और आगे से उसकी नोक गोल और मोटी होती है। बाहुक प्रवर्धन भी छोटे और मोटे होते हैं। तथा पीछे और बाहर की ओर को निकले रहते हैं। ये चापपत्र और चापमूल दोनों के पार्श्व से निकलते हैं। इनका कुछ भाग गात्र के पार्श्व पर भी लगा होता है। बाहुक प्रवर्धन की नोक से कटि-जघन-संयोजक बन्धन[1] पास की जघनधारा तक फैला हुआ है।

ऊर्ध्व स्थालक अत्यन्त नतोदर और भीतर की ओर को मुड़े हुए हैं। अधःस्थालक ऊर्ध्व स्थालक के समान एक दूसरे से अधिक अन्तर पर स्थित हैं। ये नीचे की ओर त्रिकास्थि के ऊर्ध्वस्थालकों से मिले रहते हैं।

त्रिकास्थि[2]

यह एक बड़ी त्रिकोणाकार अस्थि है जो पाँच कशेरुकों के जुड़ने से बनी है। ऊपर की ओर इसका चौड़ा भाग अथवा त्रिकोण का आधार रहता है। नीचे का पतला भाग, जो त्रिकोण का शिखर है, अनुत्रिकास्थि या पुच्छास्थि से मिला हुआ है। आगे की ओर पूर्वपृष्ठ, जो श्रोणिगुहा की ओर रहने से श्रोणिपृष्ठ भी कहलाता है, चिकना और नतोदर है। इसका नीचे का भाग आगे की ओर और बीच का भाग पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। अस्थि के पश्चिमपृष्ठ पर कशेरुकों के प्रवर्धनों और छिद्रों के चिह्न दिखाई देते हैं। कशेरुक या सौषुम्निक नलिका भी पश्चिम ओर वर्तमान है। अस्थि के दोनों ओर दो पार्श्वपृष्ठ हैं जिन पर जघनिका के साथ मिलने के लिए कर्णाकार स्थालक उपस्थित हैं। ऊपर या आधार की ओर यह अस्थि कटि प्रान्त के अन्तिम कशेरुक से मिली रहती है।

यह अस्थि बस्ति प्रदेश में दोनों ओर की नितम्बिका और जघनिकाओं के बीच में पीछे की ओर रहती है और इस प्रकार श्रोणिगुहा का पश्चिम भाग बनाती है। इसके बीच के भाग के पीछे की ओर को मुड़ जाने से श्रोणिगुहा अधिक विस्तृत हो जाती है, जिससे स्त्रियों में गर्भ के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़ती।

पूर्व पृष्ठ या श्रोणिपृष्ठ—यह पृष्ठ ऊपर से नीचे की ओर और एक ओर से दूसरी ओर को नतोदर है। इसके बीच में अस्थि का एक चौड़ा स्तम्भ है जिसके ऊपर चार अनुप्रस्थिक रेखाएँ दीखती हैं। ये रेखाएँ पाँचों कशेरुकों के जुड़ने के स्थान की सूचक हैं। इन रेखाओं के दोनों ओर के सिरों पर गोल छिद्र स्थित हैं जो पूर्वत्रिक छिद्र[3] कहलाते हैं। प्रत्येक ओर चार छिद्र होते हैं। इस प्रकार इनकी संख्या आठ होती है। नीचे के छिद्र ऊपर के छिद्रों की अपेक्षा छोटे होते हैं और आगे तथा बाहर की ओर मुड़े रहते हैं। इनमें होकर त्रिकनाड़ियों[4] की अग्रिम शाखाएँ निकलती हैं और त्रिक धमनियाँ भीतर जाती हैं। रेखाओं और छिद्रों के बीच का अस्थि का भाग उन कशेरुकों के गात्र हैं जो आपस में जुड़ गये हैं। निचले कशेरुकों के गात्र भी छोटे हैं।

---

१. Iliolumbar Ligament. २. Sacrum. ३. Anterior Sacral foramina. ४. Sacral Nerves.
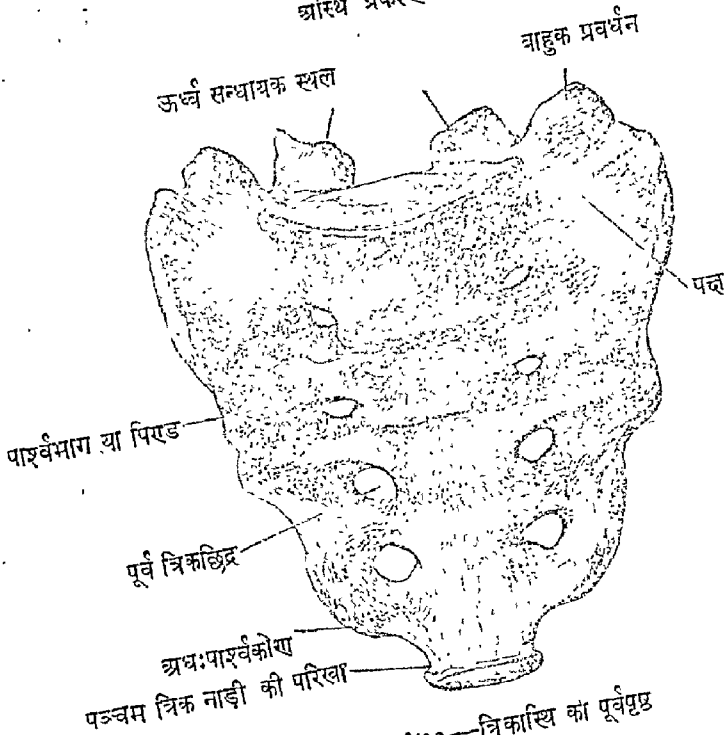
चित्र नं० १७०—त्रिकास्थि का पूर्वपृष्ठ

बीच के स्तम्भ और छिद्रों से बाहर की ओर का पार्श्विक भाग कहलाता है। यह भाग पाँचों कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों के जुड़ने से बनता है जिसका पूर्व भाग वक्षप्रान्त की पर्शुकाओं और पश्चाद्भाग बाहुक प्रवर्धनों का समानावयवी[1] माना जाता है।

पूर्वपृष्ठ के बीच में त्रिकमध्या धमनी अपने दोनों ओर दो शिराओं के साथ नीचे अनुत्रिकास्थि तक जाती है जहाँ उसका अन्त होता है। इसी पृष्ठ पर स्वतंत्र नाड़ी-मण्डल[2] का दण्ड पूर्व त्रिकछिद्रों के मध्यस्थ भाग के ऊपर होता हुआ अनुत्रिकास्थि तक जाता है जहाँ पर वह दूसरी ओर के समान दण्ड के साथ मिल जाता है। त्रिकास्थि के दूसरे, तीसरे और चौथे कशेरुक भाग के पूर्वपृष्ठ से शुण्डिका पेशी[3] का अधिक भाग उदय होता है। नीचे के तीन कशेरुक भाग और अनुत्रिकास्थि के सम्पर्क में मलाशय रहता है। कशेरुक भागों के बीच में शुक्ति के पतले पत्र रहते हैं।

पश्चिमपृष्ठ पीछे की ओर रहता है। यह उन्नतोदर, विषम और पीछे और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है। किन्तु नीचे का भाग आगे और नीचे की ओर मुड़ गया है। इस पृष्ठ के बीच में एक तीरणिका दिखाई देती है जो त्रिकपृष्ठधारा[4] कहलाती है। यह कशेरुकों के कण्टकों के जुड़ने से बनी है जिनके अन्तिम सिर उठे हुए पिण्डकों के रूप में दीखते हैं। इस धारा के ऊपरी भाग में कण्टकोत्तर और कण्टकांतरिक बन्धन लगे हुए हैं। धारा के दोनों ओर कटि-प्रच्छदा[5] कला लगी हुई है और अस्थि के पतले पत्र दिखाई देते हैं। ये चापपत्रों के जुड़ने से बने हुए हैं। इन पत्रों पर एक परिखा दिखाई देती है जो त्रिकपरिखा[6] कही जाती है। इसमें से बहुदरी या मेरुधारणी[7] पेशी उदय होती है। इस परिखा के बाहर की ओर प्रत्येक ओर चार छिद्र हैं जो पश्चिम त्रिकछिद्र[8] कहलाते हैं।

---

१. Homologue. २. Sympathitic Nervous System. ३. Pyriformis. ४. Median Sacral crest. ५. Lumbodorsal fascia. ६. Sacral groove. ७. Multifidus. ८. Posterior Sacral foramina.
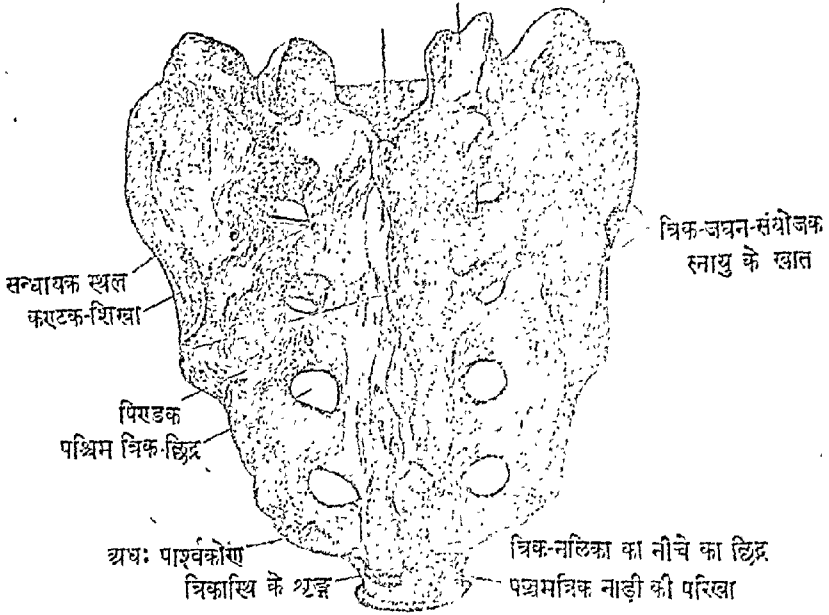
चित्र नं० १७१—त्रिकास्थि का पश्चिमपृष्ठ

इनके द्वारा त्रिक नाड़ियों का पश्चाद्भाग निकलता है और धमनियों और शिराओं की कुछ शाखाएँ भीतर जाती हैं। इन छिद्रों के मध्यस्थ किनारों पर कुछ उत्सेध दिखाई देते हैं जो ऊपर से नीचे की ओर तक पिण्डकों की एक शृङ्खला बना देते हैं। यह शृङ्खला कशेरुकों के सन्धि-प्रवर्धनों के मिलने से बनी है और त्रिकसंधिधारा[१] कही जाती है। किन्तु प्रथम त्रिक कशेरुक के ऊर्ध्व सन्धि-प्रवर्धन भिन्न-भिन्न और स्पष्ट हैं जो बड़े और अण्डाकार हैं। इन पर पीछे की ओर स्थालक स्थित हैं जो पाँचवें कटि-कशेरुक के अधःस्थालकों से मिलते हैं। ये स्थालक नतोदर हैं और भीतर तथा पीछे की ओर को मुड़े हुए हैं। पाँचवें त्रिक कशेरुक के अधःसन्धि-प्रवर्धन दो पतले छोटे डण्डों के स्वरूप में नीचे की ओर को निकले हुए हैं और त्रिकशृंग[२] कहलाते हैं। वे अनुत्रिकास्थि के ऊर्ध्वशृङ्गों से मिले रहते हैं।

पश्चिम त्रिकछिद्रों के बाहर की ओर भी ऊपर से नीचे तक पिण्डकों की एक शृंखला है। ये पिण्डक कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों के अवशेष हैं और यह शृंखला पार्श्वत्रिकधारा[३] कहलाती है। प्रथम कशेरुक के बाहुक पिण्डक बड़े हैं और अत्यन्त स्पष्ट हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय पिण्डकों पर पश्चात् त्रिक-जघन-संयोजक[४] बन्धन और चौथे तथा पाँचवें कशेरुक के पिण्डकों पर त्रिकपिण्डीय[५] बन्धन लगता है।

त्रिक के पश्चात् पृष्ठ पर लगे हुए बन्धनों और त्रिक-पृष्ठच्छदा कला से नितम्बपिण्डिका गुर्वी के कुछ सूत्र उदय होते हैं।

---

१. Sacral Articular crest. २. Sacral cornua. ३. Lateral crest. ४. Posterior Sacro Iliece Lig. ५. Sacrotuberous Lig.

त्रिकनलिका[1] कशेरुक छिद्रों के मिलने से बनी है। यह कशेरुक-नलिका का अन्तिम भाग है जिसमें सुषुम्ना का मूलसूत्रिका[2] नामक अन्तिम सूत्राकार पतला भाग रहता है। इसके दोनों ओर छिद्र हैं जो कशेरुकान्तरिक छिद्रों के समान हैं। ये छिद्र आगे चलकर पूर्व और पश्चात् त्रिकछिद्रों में विभाजित हो जाते हैं। इन छिद्रों में होकर ऊपरी चार त्रिक नाड़ियाँ निकलती हैं।

ऊर्ध्व पृष्ठ या आधार—यह पृष्ठ ऊपर और आगे की ओर को मुड़ा हुआ है और अनुपार्श्विक दिशा में अधिक चौड़ा है। पृष्ठ के बीच में प्रथम कशेरुक के गात्र का ऊर्ध्वपृष्ठ दिखाई देता है जो सूक्ति के एक पत्र के द्वारा कटिप्रान्त के अन्तिम कशेरुक से मिला तथा कई बन्धनों के द्वारा उसके साथ जुड़ा रहता है। गात्र के पीछे की ओर त्रिकोणाकार कशेरुक छिद्र स्थित है। इसका आकार बड़ा है और यह पीछे की ओर को ढलवाँ है। इसके आगे की ओर कशेरुक का गात्र और पीछे की ओर चापपत्र हैं। छिद्र के पार्श्व में दोनों ओर दो सन्धि-प्रवर्धन ऊपर की ओर को निकले हुए हैं। इनके ऊपर स्थित स्थालक पीछे और भीतर की ओर को मुड़े हुए हैं। आकार में ये कटिकशेरुकों के सन्धि-प्रवर्धनों के बिलकुल समान हैं।

चापमूल छोटे और दृढ़ हैं जिनके द्वारा सन्धि-प्रवर्धन गात्र और पक्ष के साथ जुड़े रहते हैं। चापमूल के ऊपर की ओर एक कोटर है जो अधिक गहरा नहीं है। गात्र के दोनों ओर चौड़ा त्रिकोणाकार फैला हुआ अस्थि का वह भाग है जो **पक्ष**[3] कहलाता है। यह स्थान **कटिलम्बिनी दीर्घा**[4] पेशी से ढका रहता है। स्वाभाविक अवस्था में पक्ष जघन-खात से मिला रहता है। इस पर से श्रोणि-पक्षिणी के कुछ सूत्र उदित होते हैं। पक्ष का पश्चिमभाग बाहु-प्रवर्धन और पूर्व भाग पर्शुकीय प्रवर्धन के समान है।

अधःपृष्ठ अथवा शिखर—पाँचवें त्रिक कशेरुक के नीचे की ओर अण्डाकार चिपटा स्थान है जो अनुत्रिकास्थि के ऊर्ध्वपृष्ठ के साथ मिला रहता है।

पार्श्वपृष्ठ—त्रिकास्थि के दोनों ओर पार्श्व में देखने से चौड़ा मुड़ा हुआ पृष्ठ दिखाई देता है जो ऊपरी भाग में अधिक चौड़ा है किन्तु नीचे के भाग में संकुचित हो जाता है। ऊपर का भाग पीछे की ओर मुड़ा हुआ है किन्तु नीचे का भाग आगे की ओर को मुड़ गया है। इस भाँति यह पृष्ठ दो स्थानों में मुड़ा हुआ दीखता है। ऊपरी भाग पर आगे की ओर कर्ण के आकार के समान एक स्थान दिखाई देता है जो **कर्णाकार स्थान**[5] या पृष्ठ कहलाता है। यह जघनास्थि के अन्तःपृष्ठ पर स्थित समान आकारवाले स्थान से मिला रहता है। यह स्थान खुरदरा और विषम है और जघनास्थि के साथ एक अचल सन्धि बनाता है। इस कर्णाकार पृष्ठ के पीछे की ओर एक खुरदरा स्थान है जिस पर ऊपर से नीचे को तीन चिह्न मालूम होते हैं। इन चिह्नों पर अस्थ्यंतरिक त्रिक-जघन-संयोजक[6] बन्धन लगता है। नीचे के पतले भाग पर त्रिकपिण्डीय और त्रिककण्टकीय[7] बन्धन तथा पीछे की ओर नितम्ब-पिण्डिका गरिष्ठा के और आगे की ओर अनुत्रिकिणी[8] के कुछ सूत्र लगते हैं। जहाँ पर इस भाग में अधिक मोड़ है वह अधःपार्श्व कोण[9] है जो अनुत्रिकास्थि के बाहुक प्रवर्धनों के साथ मिला रहता है। इसके तनिक भीतर ओर एक कोटर है जो बाहुक प्रवर्धनों के द्वारा एक छिद्र में परिणत हो जाता है जिसके द्वारा पाँचवीं त्रिकनाड़ी का पूर्वभाग निकलता है। इस भाग के पीछे की ओर नितम्ब-पिण्डिका गरिष्ठा का कुछ भाग लगता है।

---

१. Sacral canal. २. Filum terminale. ३. Ala. ४. Psoas major. ५. Auricular Surface. ६. Interosseous Sacro-Iliac Lig. ७. Sacro spinous Lig. ८. Coccygeus. ९. Inferior lateral Angle.

त्रिक या कशेरुक-नलिका ऊपर की ओर चौड़ी और त्रिकोणाकार है किन्तु नीचे की ओर संकुचित हो जाती है। इसमें त्रिक नाड़ियाँ रहती हैं जो पूर्व और पश्चात् त्रिक-छिद्रों के द्वारा निकलकर बाहर जाती हैं।

सम्मेलन—यह अस्थि चार अस्थियों के साथ सम्मेलन करती है—पाँचवाँ कटि-कशेरुक ऊपर की ओर, अनुत्रिकास्थि नीचे की ओर और जघनास्थियाँ पार्श्व में दोनों ओर।

स्त्री और पुरुषों की त्रिकास्थि में भेद—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में त्रिकास्थि चौड़ी और छोटी होती है। वह पीछे की ओर को भी अधिक मुड़ी हुई होती है जिससे कटि-कशेरुक और त्रिकास्थि का सङ्गम अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। स्त्रियों में त्रिकास्थि का ऊपरी भाग सीधा होता है किन्तु नीचे का भाग पुरुषों की अपेक्षा, पीछे की ओर को, अधिक मुड़ जाता है जिससे श्रोणिगुहा के भीतर का स्थान बढ़ जाता है। पुरुषों में सारी अस्थि में मुड़ाव समान होता है, किसी विशेष भाग में अधिक नहीं होता।

भिन्न-भिन्न त्रिकास्थियों में भेद—भिन्न-भिन्न अस्थियों के मुड़ाव में भेद पाया जाता है। किसी-किसी अस्थि में छः कशेरुक और किसी में केवल चार ही पाये जाते हैं। कुछ अस्थियों में कशेरुक-नलिका पीछे की ओर से बहुत से भाग में खुली होती है क्योंकि चापपत्र इत्यादि, जो नलिका को पीछे की ओर से सीमित करते हैं, पूर्णतया नहीं जुड़ते। जिन अस्थियों में त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि दोनों जुड़ी होती हैं उनमें पाँचवाँ कशेरुकान्तरिक छिद्र पाया जाता है। पूर्व त्रिक-छिद्र का भी पाँचवाँ जोड़ा मिल सकता है।

अनुत्रिकास्थि अथवा पुच्छिका[१]

अनुत्रिकास्थि पृष्ठवंश का अन्तिम भाग है जो मलद्वार के तनिक ऊपर नितम्बों के बीच में पीछे की ओर रहता है। यह अस्थि श्रोणिगुहा का पश्चिम पृष्ठ बनाने में भाग लेती है। त्रिकास्थि की भाँति यह भी चार अवशिष्ट कशेरुकों के मिलने से बनी है और आकार में एक त्रिकोण के समान है। इसका पूर्वपृष्ठ श्रोणिगुहा की ओर, पश्चात्पृष्ठ पीछे, ऊर्ध्वपृष्ठ या आधार त्रिकास्थि से मिला हुआ, शिखर नीचे की ओर स्वतन्त्र और पार्श्वपृष्ठ दोनों ओर रहते हैं।

ध्यान से देखने से त्रिकास्थि की भाँति इसमें भी चारों भाग या कशेरुक भिन्न दीखते हैं। ऊपरी तीन कशेरुकों में गात्र, सन्धि और बाहुक प्रवर्धनों के अवशिष्ट द्योतक भाग पाये जाते हैं। किन्तु चापमूल, चापपत्र और कण्टक नष्ट हो गये हैं। उनके अवशिष्ट तक का पता नहीं है। अन्तिम कशेरुक केवल एक पिण्डक की भाँति है जिसमें कोई भी भाग नहीं पाया जाता।

पूर्वपृष्ठ नतोदर है। उस पर अस्थि के भागों के जुड़ने के स्थान पर तीन रेखाएँ दिखाई देती हैं। इस पृष्ठ पर पायुधारिणी[२] पेशी और पूर्व त्रिकानुत्रिक संयोजक[३] बन्धन लगते हैं। मलाशय का कुछ भाग भी इस पर आश्रित रहता है।

पश्चिमपृष्ठ पर भी पूर्वपृष्ठ के समान रेखाएँ दिखाई देती हैं जो भिन्न-भिन्न भागों के संयोजक स्थान की सूचक हैं। यह पृष्ठ नतोदर है और इस पर मध्यस्थ रेखा के दोनों ओर छोटे-छोटे पिण्डकों की एक श्रृङ्खला है। ये कशेरुकों के सन्धि-प्रवर्धनों के अवशेष मात्र हैं। प्रथम कशेरुक के पिण्डक

---

१. Coccyx. २. Levater Anii. ३. Anterior Sacrococcygeal Ligament.
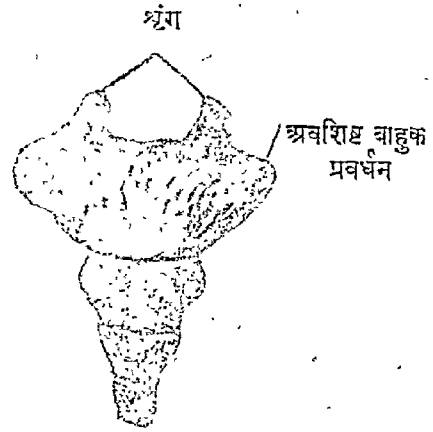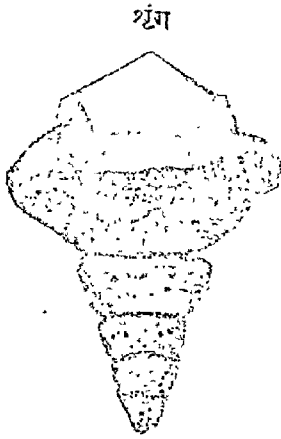
चित्र नं० १७२—अनुत्रिकास्थि—पूर्वपृष्ठ चित्र नं० १७३—अनुत्रिकास्थि—पश्चिमपृष्ठ

या प्रवर्धन बड़े हैं और शृङ्गों के रूप में ऊपर की ओर को निकले रहते हैं। इस कारण वे अनुत्रिक शृङ्ग[1] कहलाते हैं। वे त्रिकशृङ्गों के साथ मिलकर पाँचवीं त्रिक नाड़ी के पश्चात् भागों के द्वारों को पूर्ण करते हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ अथवा आधार चौड़ा है। उस पर त्रिक के शिखर के साथ मिलने के लिए एक अण्डाकार स्थालक दिखाई देता है।

अधःपृष्ठ और शिखर पतला और गोल है और उस पर गुद-संकोचनी बहिःस्था[2] की कण्डरा लगती है। कभी-कभी यह नोक दो भागों में विभक्त होती है।

पार्श्वपृष्ठ या धारा—पतली होती है। इन पर छोटे-छोटे पिण्डक स्थित हैं। वे कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धनों के अवशेष हैं। प्रथम पिण्डक या प्रवर्धन बड़ा और ऊपर की ओर को उठा हुआ है और कभी-कभी त्रिकास्थि के साथ मिल जाता है जिससे पाँचवीं त्रिकनाड़ी के पूर्वभाग के जाने के लिए एक पूर्ण छिद्र बन जाता है। अस्थि की पार्श्वधाराओं पर त्रिक-पिण्डीय और त्रिक-कण्टकीय बन्धन लगे हुए हैं; और इन बन्धनों के आगे की ओर अनुत्रिकणी और पीछे की ओर नितम्बपिण्डिका गरिष्ठा पेशियाँ लगी हुई हैं।

पृष्ठवंश या कशेरुक-दंड

भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कशेरुकों के मिलने से पृष्ठवंश और कशेरुक-दण्ड बनता है। यह २८ इंच के लगभग लम्बा है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इसकी लम्बाई इस प्रकार होती है—ग्रीवा ५ इंच, वक्ष ११ इंच, कटि ७ इंच, त्रिक और अनुत्रिकास्थि दोनों ५ इंच। स्त्रियों में पृष्ठवंश की लम्बाई प्रायः २४ इंच के लगभग होती है।

सब कशेरुक आपस में दृढ़ बन्धनों के द्वारा जुड़े हुए हैं। कुछ बन्धन गात्र के पार्श्व तथा पूर्व ओर रहते हैं। दूसरे बन्धन चापपत्रों को आपस में दृढ़ता के साथ बाँधते हैं। कशेरुकों के कण्टक भी आपस में बन्धनों के द्वारा ग्रंथित हैं। कशेरुकों के गात्रों के बीच में तरुणास्थि के पतले पत्र रहते हैं। यद्यपि कशेरुक आपस में बन्धनों द्वारा दृढ़ता के साथ बँधे हुए हैं किन्तु तो भी उनकी सन्धियाँ बिलकुल अचल नहीं हैं। कशेरुकों में कुछ न कुछ गति अवश्य हो सकती है। अर्थात् एक

१. Coccygeal Cornua. २. Sphincter Anii Externus.

कशेरुक दूसरे के ऊपर कुछ आगे या पीछे को अथवा इधर-उधर को हटाया जा सकता है। त्रिक और अनुत्रिकास्थि के भाग आपस में इस प्रकार जुड़ गये हैं कि उनके जुड़ने से एक सम्पूर्ण अस्थि बन गई है। इस कारण इन भागों के बीच में किसी प्रकार गति नहीं हो सकती।

पृष्ठवंश के जितने भाग हैं सब भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। गात्रों का स्तम्भ शिर और शरीर के भार को सहन करता है। उसके पीछे की ओर कशेरुक या सौपुम्निक नलिका सुषुम्ना को सुरक्षित रखती है। सन्धि-प्रवर्धन कशेरुकों की गति को परिमित करते हैं। बाहुक प्रवर्धन और कण्टकों पर अनेक पेशियाँ लगती हैं।

वक्रताएँ—पृष्ठवंश का स्तम्भ बिलकुल सीधा नहीं है। यदि कङ्काल में उसको एक ओर से देखा जाय तो उसमें चार स्थानों पर स्पष्ट मोड़ दिखाई देंगे। प्रथम मोड़ ग्रीवा प्रान्त में है, दूसरा वक्ष में, तीसरा कटि प्रान्त में और चौथा मोड़ त्रिकास्थि और अनुकास्थि के प्रान्त में है। बाल्यावस्था में केवल दो मोड़ होते हैं। एक मोड़ त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि के प्रान्त में होता है जो युवावस्था के मोड़ के समान आगे की ओर को नतोदर होता है। दूसरा मोड़ भी आगे की ओर को नतोदर होता है और शेष समस्त पृष्ठवंश उसमें भाग लेता है। वृद्धि होने पर युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते इस मोड़ में भेद उत्पन्न हो जाता है और एक मोड़ के स्थान पर तीन मोड़ बन जाते हैं।

ग्रैवेयवक्रता आगे की ओर को उन्नतोदर है। ग्रीवा के पीछे की ओर हाथ फेरकर इसका कुछ अनुमान किया जा सकता है। यह वक्रता ऊपर प्रथम कशेरुक या द्वितीय कशेरुक के दन्त-प्रवर्धन से आरम्भ होती है और द्वितीय वक्षीय कशेरुक के गात्र पर वक्षीय वक्रता के साथ मिलकर अन्त होती है। अतएव वास्तव में ऊपरी दो वक्षीय कशेरुक ग्रीवा में रहते हैं। यह वक्रता अन्य वक्रताओं की अपेक्षा कम स्पष्ट है और ग्रीवा को आगे की ओर झुकाने पर और भी कम हो जाती है। जब बच्चा दो या तीन महीने की आयु का हो जाता है और शय्या से शिर उठाने का उद्योग करने लगता है तब यह वक्रता बननी आरम्भ होती है और जब आठ या नौ महीने की अवस्था में पहुँचकर वह सीधे बैठने का उद्योग करता है तब वक्रता पूर्णतया प्रकट हो जाती है। इस वक्रता का कारण अधिकतर वह शुक्तिपत्र होते हैं जो कशेरुक गात्रों के बीच में रहते हैं।

वक्षीय वक्रता—यह वक्रता कशेरुक गात्रों के आकार के कारण उत्पन्न होती है और जन्म से उपस्थित रहती है। वह आगे की ओर को नतोदर होती है। पीठ में कशेरुकों के कण्टकों को पीछे की ओर उभरा हुआ प्रतीत किया जा सकता है। विशेषकर सातवें वक्षीय कशेरुक का कण्टक बहुत स्पष्ट है। यह वक्रता नीचे की ओर बारहवें कशेरुक के गात्र पर समाप्त हो जाती है।

कटिवक्रता—यह वक्रता भी ग्रीवा के वक्र की भाँति जन्म के समय उपस्थित नहीं होती। किन्तु जन्म के एक वर्ष के पश्चात् या दसवें और ग्यारहवें मास में जब बच्चा खड़ा होने लगता है और शरीर को सीधा करता है तब यह उत्पन्न होती है। वक्रता पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में और युवा या वृद्धों की अपेक्षा बच्चों में अधिक स्पष्ट होती है।

यह वक्रता बारहवें वक्षीय कशेरुक के गात्र पर से आरम्भ होती है और त्रिकास्थि तथा कशेरुकों के संयोजन पर, जो त्रिक कशेरुकीय कोण[1] कहलाता है, समाप्त होती है। यह आगे की ओर उन्नतोदर है। इसका कारण कशेरुकान्तरिक शुक्तियों का आकार है, न कि कशेरुकों का आकार।

श्रोणिवक्रता त्रिक कशेरुक कोण से आरम्भ होती है और अनुत्रिकास्थि की नोक पर

---

१. Sacrovertebral Angle.

समाप्त होती है। यह आगे की ओर नतोदर है और कुछ नीचे की ओर को भी मुड़ी हुई है। वक्षीय वक्रता की भाँति यह भी प्रारम्भ ही से उपस्थित रहती है।

वक्षीय और श्रोणिवक्रता प्राथमिक वक्रता कहलाती हैं क्योंकि वे जन्म ही से उपस्थित रहती हैं। किन्तु ग्रीवा और कटि की वक्रता गौण वक्रता कही जाती हैं क्योंकि वे जन्म के पश्चात् आवश्यकताओं के अनुसार उत्पन्न होती हैं।

पृष्ठवंश को ध्यान से देखने से विदित होगा कि ऊपर लिखित वक्रताओं के अतिरिक्त वक्ष प्रान्त में कशेरुकदण्ड कुछ दाहिनी ओर को भी झुका हुआ है। यह पार्श्विक वक्रता कहलाती है। इसका कारण दाहिनी ओर की बाहु और स्कन्ध की पेशियों का अधिक सबल होना और उनका कर्षण बताया जाता है। अधिकतर मनुष्य दाहिनी बाहु का प्रयोग करते हैं। उन सबों में यह वक्रता दाहिने ओर को पाई गई है। कुछ ऐसे लोगों के कंकालों की भी परीक्षा की गई है जो बायाँ हाथ अधिक प्रयोग करते थे। उनमें यह वक्रता बाईं ओर को पाई गई जो पूर्वमत का समर्थन करती
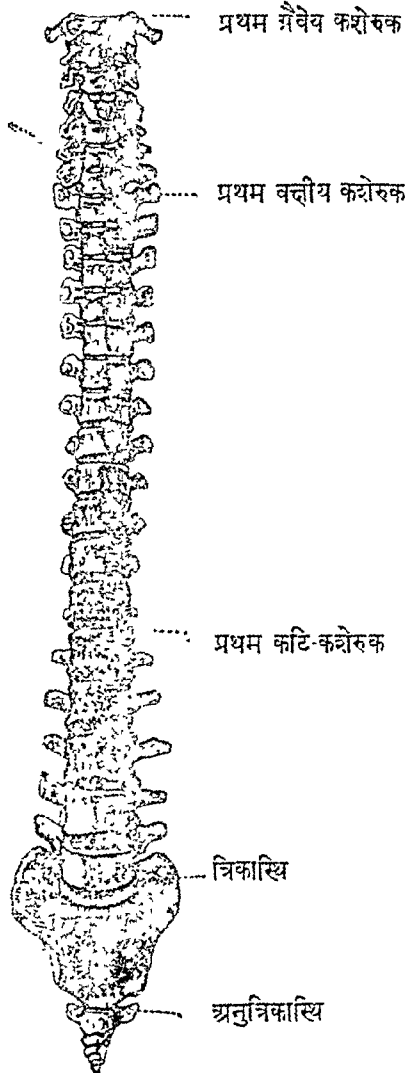
चित्र नं० १७४—पृष्ठवंश या कशेरुकदंड—पूर्वपृष्ठ

है। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि जब महाधमनी हृदय से निकलकर बाईं ओर को नीचे उतरती है तो वह अपने स्पन्दनों के कारण कशेरुकों को नीचे की ओर खींचती है जिससे दाहिनी ओर वक्रता उत्पन्न हो जाती है। इसका समर्थन इस बात से होता है कि जिन शरीरों में महाधमनी या अन्य आन्तरिक अङ्ग दूसरी ओर को स्थित पाये जाते हैं, अर्थात् महाधमनी दाहिनी ओर पाई गई है, उनमें यह वक्रता बाईं ओर स्थित मिली है।

यदि कण्टकों की नोकों द्वारा एक रेखा खींची जाय तो उसमें भी पृष्ठवंश के समान वक्रता दिखाई देगी। किन्तु इन वक्रताओं का समान होना आवश्यक नहीं है क्योंकि कण्टकों की लम्बाई और मुड़ाव में बहुत भेद पाया जाता है।

पृष्ठवंश की भिन्न-भिन्न दिशाओं या उसके पृष्ठों को देखने से निम्न-लिखित रचनाएँ और विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

पूर्वपृष्ठ—(१) पार्श्विक वक्रता—कशेरुकदण्ड कुछ बाएँ या दाहिनी ओर को मुड़ा हुआ दिखाई देगा।

(२) कशेरुकों के गात्र की स्थूलता दूसरे ग्रैवेयक कशेरुक से प्रथम वक्षीय कशेरुक तक बढ़ती जाती है। दूसरे, तीसरे और चौथे वक्षीय कशेरुक की मुटाई फिर कुछ कम हो जाती है। किन्तु उसके पश्चात् कशेरुक गात्र फिर अधिक स्थूल होने आरम्भ होते हैं और त्रिक-कशेरुक-कोण तक उनका आकार बराबर बढ़ता जाता है। यह स्थान पृष्ठवंश का सबसे चौड़ा स्थान है। यहाँ से चौड़ाई फिर कम होनी आरंभ होती है। यहाँ तक कि अनुत्रिकास्थि का अन्तिम भाग केवल एक छोटे से पिण्डक के स्वरूप में रह जाता है।

(३) प्रथम कशेरुक के बाहुक प्रवर्धन अत्यन्त स्पष्ट और चौड़े हैं और नीचे के पाँच प्रवर्धनों की अपेक्षा शरीर की मध्य रेखा से अधिक दूरी पर स्थित हैं। सातवें ग्रीवा कशेरुक के प्रवर्धन लम्बे हैं और वक्षप्रान्त के कशेरुकों के समान हैं। इनका आकार प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक से छोटा होना आरम्भ होता है और बारहवें वक्षीय कशेरुक पर ये केवल पिण्डकों के सदृश रह जाते हैं। कटि प्रान्त में इनकी लम्बाई फिर अधिक हो जाती है। प्रायः तीसरे कटि-कशेरुक के बाहुक प्रवर्धन सबसे लम्बे होते हैं।

(४) वक्षप्रान्त के बीच के कशेरुक अन्य कशेरुकों की अपेक्षा आगे की ओर को अधिक उन्नत हैं।

(५) त्रिकास्थि के दूसरे और तीसरे भाग प्रथम भाग की अपेक्षा चौड़े हैं। उसके पश्चात् चौड़ाई घटती चली जाती है।

पश्चिमपृष्ठ—(१) पृष्ठवंश के बीच कण्टक-प्रवर्धनों की ऊपर से नीचे तक शृंखला दीखती है। ग्रीवाप्रान्त में ये प्रवर्धन सीधे पीछे की ओर को निकले हुए हैं और उनके सिरे द्विधा विभक्त हैं। वक्षप्रान्त के ऊपरी भाग में ये प्रवर्धन पीछे और नीचे की ओर को मुड़े हुए हैं; बीच के भाग में वे एकदम नीचे को झुक गये हैं। किन्तु वक्ष के निचले भाग में वे फिर पीछे की ओर को मुड़ जाते हैं। कटि प्रान्त में भी वे केवल पीछे की ओर को निकले हुए हैं।

(२) कटि प्रान्त में कण्टकों के बीच में अन्य सब प्रान्तों की अपेक्षा अधिक अन्तर है। ग्रीवा में कण्टकों के बीच में इतना अन्तर नहीं है। किन्तु वक्ष के बीच के भाग में उनका अन्तर सबसे कम है।

(३) कभी-कभी कोई कण्टक बीच की रेखा से इधर-उधर को मुड़ जाते हैं।

(४) कण्टकों के दोनों ओर परिखा है जिससे पीठ की पेशियों का उदय होता है। यह परिखा ग्रीवा और कटि प्रान्त में चापपत्रों पर रहती है तथा चौड़ी और उथली है। किन्तु वक्ष प्रान्त में इसकी गहराई अधिक हो जाती है। वह चापपत्र और बाहुक प्रवर्धनों के मूल के कुछ भाग पर स्थित है।

(५) परिखा के पार्श्व में सन्धि-प्रवर्धन स्थित हैं। ग्रीवा प्रान्त में अन्तिम छः कशेरुकों के सन्धि-प्रवर्धन समान दूरी पर स्थित हैं। वक्ष में इन प्रवर्धनों के बीच का अन्तर कम है। यह अन्तर प्रथम वक्षीय कशेरुक से प्रथम कटि-कशेरुक तक कम होता चला जाता है किन्तु उसके पश्चात् फिर अधिक हो जाता है।

(६) ग्रीवा प्रान्त में ग्रीवा के सीधे होने के समय सन्निकट कशेरुकों के चापपत्र एक दूसरे को आपस में कुछ ढके रहते हैं। जब ग्रीवा को आगे की ओर को झुकाया जाता है तब चापपत्रों के बीच का अन्तर बढ़ जाता है। प्रथम और द्वितीय कशेरुकों के चापपत्रों में और प्रथम कशेरुक और

चित्र नं० १७५—पृष्ठवंश—पश्चिमपृष्ठ
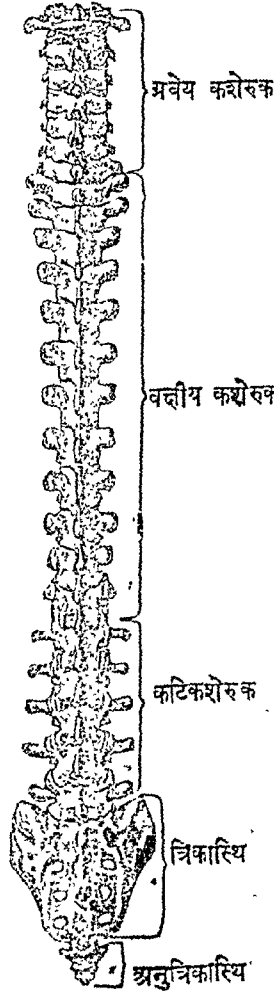
करोटिमूल के बीच का अन्तर और भी बढ़ जाता है। वक्षप्रान्त में चापपत्र एक-दूसरे को पूर्णतया आच्छादित करते हैं। किन्तु कटिप्रान्त में पत्रों के बीच में अन्तर रहता है।

(७) चापपत्रों के पार्श्व में बाहुक प्रवर्धन हैं। ग्रीवा प्रान्त में ये प्रवर्धन सन्धि प्रवर्धनों के आगे और चापमूल के पार्श्व में स्थित हैं। इनके दोनों ओर कशेरुकान्तरिक छिद्र रहते हैं। वक्षप्रान्त में वे चापमूल, कशेरुकान्तरिक छिद्र और सन्धि-प्रववर्धनों के पीछे हैं किन्तु कटिप्रान्त में वे सन्धि-प्रवर्धनों के आगे की ओर कशेरुकान्तरिक छिद्रों के पीछे स्थित हैं।

पार्श्वपृष्ठ—(१) पृष्ठवंश की चारों वक्रताएँ स्पष्ट दीखती हैं। (२) कशेरुकों की चौड़ाई द्वितीय कटि-कशेरुक तक बराबर बढ़ती जाती है। किन्तु उसके पश्चात् चौड़ाई कम होने लगती है। (३) पर्शुकीय स्थालक प्रथम कशेरुक से बारहवें कशेरुक तक बराबर पीछे की ओर को हटते जाते हैं। बारहवें कशेरुक पर वे चापमूल पर पहुँच जाते हैं। (४) कशेरुकान्तरिक छिद्रों का आकार ऊपर से नीचे की ओर को बराबर बढ़ता जाता है। (५) बाहुक प्रवर्धन ग्रीवा में कशेरुकान्तरिक छिद्रों के बीच में और सन्धि-प्रवर्धनों के आगे की ओर है। वक्षप्रान्त में सन्धि-प्रवर्धन
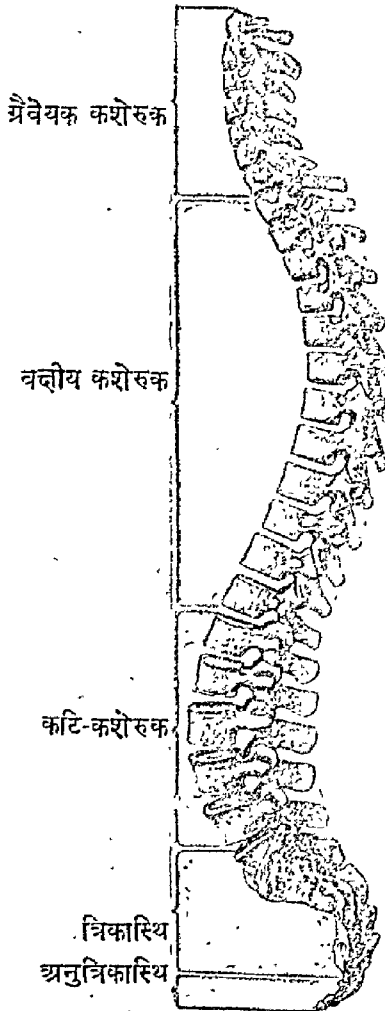
चित्र नं० १७६—पृष्ठवंश—पार्श्व ओर से

और कशेरुकान्तरिक छिद्र प्रवर्धनों के आगे हैं। कटिप्रान्त में वे फिर सन्धि-प्रवर्धनों के आगे किन्तु छिद्रों के पीछे स्थित हैं। (६) कण्टकों के आकार और दिशा में भिन्नता स्पष्ट है। इस कारण कण्टक और गात्रों की वक्रता में भी अन्तर है। (७) कटिप्रान्त के कशेरुकों की आगे से पीछे की ओर को अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक चौड़ाई है।

शिखर और आधार—प्रथम ग्रीवाकशेरुक का ऊर्ध्वपृष्ठ पृष्ठवंश का शिखर है जो करोटिमूल के साथ मिला रहता है। पञ्चम कटि-कशेरुक का अधःपृष्ठ पृष्ठवंश का आधार बनाता है।

कशेरुकनलिका पृष्ठवंश ही के समान स्थान-स्थान पर मुड़ी हुई है। वह ग्रीवा और कटि-प्रान्त में अधिक चौड़ी और त्रिकोणाकार है। क्योंकि इन स्थानों में कशेरुकों के बीच में अधिक गति होती है। वक्षप्रान्त में, जहाँ गति कम होती है, नलिका गोल और संकुचित है।

कशेरुकों का अस्थि-विकास

प्रत्येक कशेरुक का विकास तीन प्राथमिक और पाँच गौण केन्द्रों से होता है। एक प्राथमिक केन्द्र गात्र में और दो दोनों ओर के चापभागों में निकलते हैं।

प्रत्येक ओर चाप में केन्द्र भ्रूणावस्था के सातवें सप्ताह में निकलने आरंभ होते हैं। प्रथम वह ग्रीवा के ऊपरी कशेरुकों में निकलते हैं। उसके कुछ समय के पश्चात् नीचे के कशेरुकों में उदय होते हैं। २०वें सप्ताह तक ऊपर के सब कशेरुकों मे केन्द्र निकलकर त्रिकास्थि में केन्द्रों का उदय होना आरम्भ होता है। ये केन्द्र सन्धि-प्रवर्धनों के मूल के पास निकलते हैं। चाप और उससे निकलने-वाले प्रवर्धन, कशेरुकगात्र के पश्चिम और पार्श्ववर्त्ती भाग—जो वक्षप्रात में पर्शुकाओं के साथ मिलते हैं—इन्हीं केन्द्रो से विकसित होते हैं।

तीसरा प्राथमिक केन्द्र कशेरुक के गात्र के मध्य भाग के लिए भ्रूणावस्था के दसवें सप्ताह में निकलता है। (ऊर्ध्व और अधःपृष्ठ गौण केन्द्र से विकसित होते हैं।) सबसे प्रथम यह केन्द्र वक्षप्रान्त के निचले कशेरुकों मे निकलता है। तत्पश्चात् ऊपर और नीचे के कशेरुकों में केन्द्र निकलने आरम्भ होते हैं। बीसवें सप्ताह तक अनुत्रिकास्थि के अतिरिक्त अन्य सब कशेरुकों में केन्द्र निकल चुकते हैं। अनुत्रिकास्थि में जन्म के पश्चात् विकास होना आरम्भ होता है। कभी-कभी गात्र मे दो केन्द्र उदय हो जाते हैं और तब गात्र दो भागों मे विकसित होता है जो कुछ समय पश्चात् आपस में जुड़ जाते हैं।

गौण केन्द्र युवावस्था के आरम्भ के समीप उदय होते हैं। कण्टक का अग्रभाग दोनों बाहुक प्रवर्धनों के अग्रभाग और कशेरुक गात्र के ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ में एक-एक केन्द्र उदय होता है। जन्म के समय कशेरुक के तीन भाग विकसित हो चुकते है। गात्र का बीच का भाग और चाप के दोनों ओर के भाग अस्थिकृत हो चुकते है। यह भाग आपस में सूत्रि के द्वारा जुड़े रहते हैं। जन्म के पश्चात् शीघ्र ही चापपत्र कटिप्रान्त मे आपस में जुड़ने आरम्भ होते हैं। दूसरे वर्ष इस स्थान से ऊपर के कशे-रुकों के पत्र आपस में जुड़ते हैं। त्रिकास्थि मे चापपत्र ७वें और १०वें वर्ष के बीच में जुड़कर कशे-रुक नलिका की पश्चिम सीमा को बनाते हैं। पत्रों के जुड़ चुकने के पश्चात् कण्टक में विकास आरम्भ होता है। चाप गात्र के साथ ग्रीवा प्रान्त में तीसरे वर्ष जुड़ना आरम्भ करता है। छठे या सातवें वर्ष तक शेष सब प्रान्तों में यह भाग आपस में जुड़ जाते हैं।

गौण केन्द्रों से विकसित भाग शेष अस्थि से २५ वें वर्ष के लगभग जुड़ते हैं।

कुछ विशेष कशेरुकों के विकास-काल में अन्तर पाया जाता है जिनका संक्षेपतया नीचे उल्लेख किया जाता है।

प्रथम ग्रीवाकशेरुक—इस कशेरुक के पश्चात् चाप के दोनों अर्ध भागों में भ्रूणावस्था के सातवें सप्ताह में केन्द्र उदय होते हैं जिनसे चापार्धों और पार्श्वपिण्डों का विकास होता है। ये दोनों भाग तीसरे वर्ष में आपस में जुड़ जाते हैं। जन्म के समय कशेरुक का पूर्वचाप अविकसित होता है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में उसमें एक विकास-केन्द्र उदय होता है और वह पार्श्वपिण्डों के साथ ७वें वर्ष के लगभग जुड़ता है। बाहुक प्रवर्धनों के अग्रभाग, जो गौण केन्द्रों से विकसित होते हैं, १८वें वर्ष में शेष अस्थि के साथ जुड़ते हैं।

द्वितीय ग्रीवाकशेरुक—प्रत्येक चापार्ध के लिए भ्रूणावस्था के ७वें सप्ताह में एक केन्द्र उदय होता है। पाँचवें मास में गात्र के अधोभाग के लिए एक या दो केन्द्र तथा ऊर्ध्वभाग और दन्त-प्रवर्धन के अधोभाग के लिए पास-पास दो केन्द्र उदय होते हैं। ये सब भाग सातवें महीने में आपस में मिल जाते हैं। जन्म के समय कशेरुक में चार भिन्न-भिन्न भाग होते हैं जो तीसरे और छठे वर्ष में आपस में जुड़ते हैं। दन्त-प्रवर्धन के ऊपरी भाग के लिए एक केन्द्र तीसरे और छठे वर्ष के बीच में निकलता है और १२ वर्ष के लगभग यह भाग शेष अस्थि से जुड़ता है। इसी प्रकार गात्र के अधःपृष्ठ के लिए एक और केन्द्र युवावस्था के समीप निकलता है। और २५वें वर्ष के लगभग अस्थि के साथ जुड़ जाता है।

छठा और सातवाँ ग्रैवेयक कशेरुक—कभी-कभी इन कशेरुकों के बाहुक प्रवर्धन के पर्शुकीय भागों में प्राथमिक केन्द्र उदय होते हैं जो शेष अस्थि से पाँचवें वर्ष में जुड़ते हैं। सातवें कशेरुक का यह भाग जब कशेरुक से भिन्न विकसित होता है तो वह ग्रैवेयक पर्शुका का रूप धारण करता है और कशेरुक के साथ नहीं मिलता।

कटि-कशेरुक के स्तनक प्रवर्धन में एक केन्द्र निकल सकता है। पाँचवें कटि-कशेरुक के बाहुक प्रवर्धन में कभी-कभी एक भिन्न केन्द्र निकलता है। उस समय ग्रैवेय पर्शुका की भाँति कटि-पर्शुका उत्पन्न हो जाती है।

छठे कशेरुक के चापार्धों और बाहुक प्रवर्धनों में दो-दो प्राथमिक केन्द्र उदय हो सकते हैं।

त्रिकास्थि में तीसरे और आठवें महीने के बीच में केन्द्र निकलते हैं। एक केन्द्र प्रत्येक भाग के गात्र के लिए और एक-एक केन्द्र प्रत्येक चापार्ध के लिए उदय होते हैं। कशेरुकों के पर्शुक-भाग के लिए भी एक प्राथमिक केन्द्र उदय होता है, जो चाप के साथ पाँचवें वर्ष में जुड़ता है। इसके कुछ ही समय के पश्चात् चापार्ध गात्र के साथ जुड़ जाते हैं। यह भाग स्वयं भी पीछे की ओर ७वें और १०वें वर्ष के बीच में आपस में जुड़ते हैं। गात्रों के ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ पर केन्द्र युवावस्था के समीप उदय होते हैं। इन केन्द्रों से विकसित भाग गात्रों के साथ और भिन्न-भिन्न गात्र आपस में नीचे से ऊपर की ओर को १८ से २५ वर्ष के बीच में जुड़ते हैं। कर्णाकार पृष्ठ और उसके नीचे के भाग के लिए भी अन्य केन्द्र उदय होते हैं।

अनुत्रिकास्थि—जन्म तक इसका विकास नहीं होता, सारी अस्थि केवल उपास्थि ही की बनी होती है। अस्थि के प्रत्येक भाग में एक प्राथमिक केन्द्र प्रथम वर्ष और युवावस्था के बीच में उदय होता है। प्रथम सबसे ऊपर के भाग में केन्द्र उदय होता है। तत्पश्चात् नीचे के भागों में केन्द्र निकलते हैं। किन्तु अस्थि का जुड़ना नीचे से ऊपर की ओर को आरम्भ होता है। प्रथम नीचे के भाग जुड़ते हैं, तत्पश्चात् ऊपरी भाग आपस में जुड़ते हैं। २५वें वर्ष तक ये भाग आपस में जुड़ जाते हैं।

करोटि अथवा कर्पर

समस्त शिर, मुख और जबड़े की सारी अस्थियों को करोटि या कर्पर के नाम से पुकारा जाता है। ये सब मिलकर २२ अस्थियाँ हैं। इनमें से २१ अस्थियाँ शिर और मुख में हैं और एक अस्थि जबड़े में है। ये २१ अस्थियाँ मिलकर एक बड़ी अण्डाकार मञ्जूषा बनाती हैं जिसके भीतर मस्तिष्क रहता है। अस्थियाँ इस प्रकार आपस में मिली हुई हैं कि उनमें तनिक भी गति नहीं हो सकती। उनके किनारों पर, जहाँ वे आपस में मिलती हैं, दाँते बने हुए हैं जो एक दूसरे के भीतर धँसकर अस्थियों को अचल कर देते हैं। इस कारण इक्कीसों अस्थियाँ आपस में निश्चलता से सम्बद्ध हैं। केवल जबड़े की अस्थि, जिसको अधोहन्वस्थि कहते हैं, चल है। जिस सन्धि के द्वारा यह अस्थि शेष करोटि के साथ संयुक्त है वह शरीर की अन्य साधारण चल-सन्धियों के समान है। इस कारण इस अस्थि की गति में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती।

२१ अस्थियों की बनी हुई करोटि नीचे की ओर पृष्ठवंश पर आश्रित है जिसके साथ वह दृढ़ बन्धनों से बँधी हुई है। इन अस्थियों के नाम ये हैं—

कपाल की १५ अस्थियाँ	पुरःकपाल	१
	पश्चात्कपाल	१
	पार्श्वकपाल	२
	शंखास्थि	२
	जतूकास्थि	१
	झर्झरास्थि	१
	नासास्थि	२
	अश्रुपीठिका	२
	सीरिका	१
	अधःशुक्तिका	२
मुख की ७ अस्थियाँ	गण्डास्थि	२
	ऊर्ध्वहन्वस्थि	२
	तात्वस्थि	२
	अधोहन्वस्थि	१

बाल्यावस्था में ये सब अस्थियाँ एक-दूसरी से कुछ अन्तर पर रहती हैं अथवा सन्धियों के द्वारा मिली रहती हैं। ज्यों-ज्यों आयु अधिक होती है त्यों-त्यों, सन्धियों के नष्ट होने पर, अस्थियाँ आपस में जुड़ जाती हैं।

पुरःकपाल[1]

यह अस्थि ललाट या माथे में आगे की ओर रहती है और उसका सामने और ऊपर का भाग बनाती है। इस कारण यह अस्थि माथे के आकार के अनुसार सामने से गोल या उन्नतोदर होती है। इस अस्थि को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक सामने का चौड़ा माथा बनानेवाला

1. Frontal.

भाग जो ललाटफलक[1] कहलाता है और दूसरा इसके नीचे की ओर से पीछे की ओर को प्रवर्धित भाग जो नेत्र-गुहाओं का ऊपरी भाग बनाता है। इसको नेत्रच्छदि भाग[2] कहते हैं। दोनों ओर के गुहा-भागों के बीच में अस्थि का वह भाग है जो नासिका का मूल बनाता है।

ललाटफलक--पूर्वपृष्ठ चारों ओर से उन्नतोदर है। इसमें नेत्रगुहाओं के लगभग १½ इंच ऊपर दोनों ओर दो अत्यन्त स्पष्ट उन्नतोदर उत्सेध स्थित हैं। ये उत्सेध माथे में प्रतीत किये
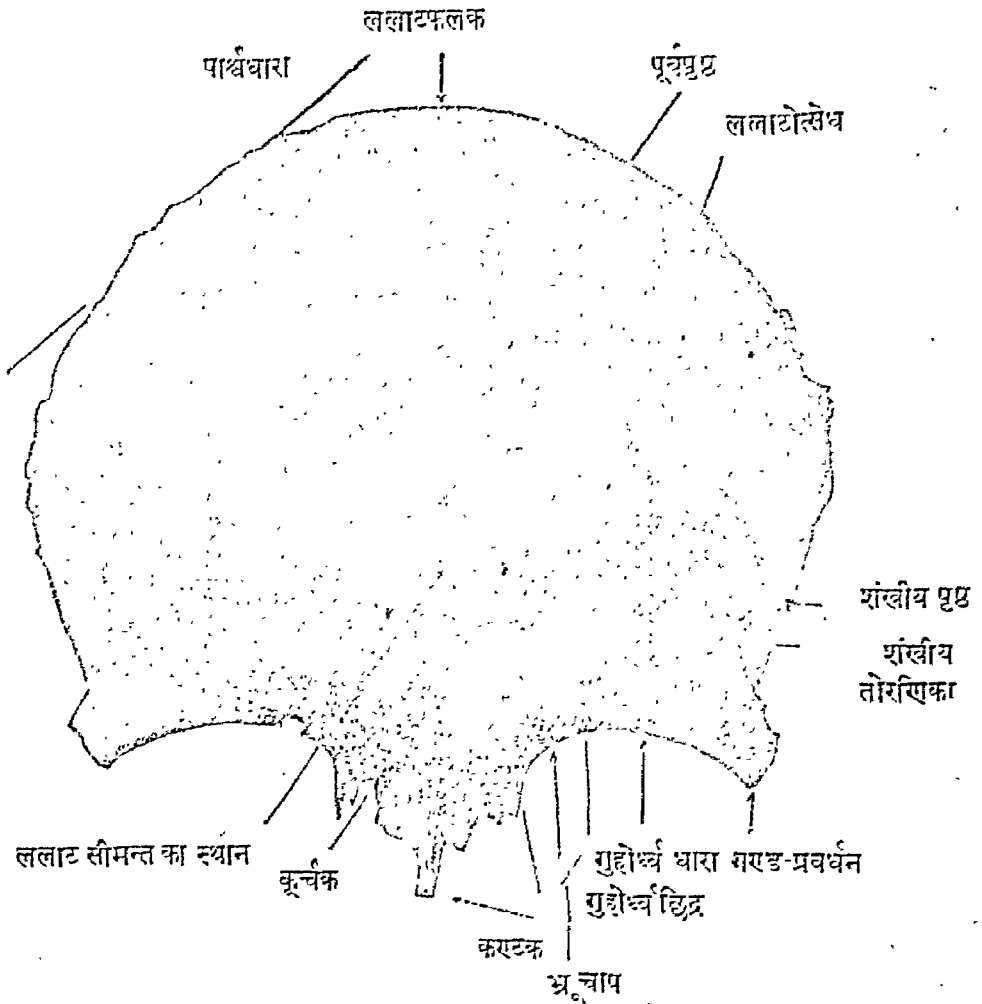
चित्र नं० १७७

जा सकते हैं। इनको ललाटोत्सेध[3] या पिण्डक कहते हैं। इन दोनों उत्सेधों के बीच में नीचे की ओर को जाती हुई एक क्रमहीन रेखा दिखाई देती है। वह वह स्थान है जहाँ दोनों ओर के अस्थिभाग आपस में जुड़े हैं। इसको ललाट-सीमन्त[4] या गूढ़सीमन्तिका कहते हैं। बाल्यकाल में अस्थि के दोनों ओर के भाग भिन्न रहते हैं। आयु के अधिक होने पर ये भाग आपस में जुड़ते हैं और युवावस्था तक पहुँचने पर केवल सीवन के अवशिष्ट चिह्न रह जाते हैं। सीमन्त के दोनों ओर ललाटोत्सेधों से लगभग एक इंच नीचे गुहा से तनिक ऊपर दो मुड़ी हुई चाप के आकार की तोरणिकाएँ दिखाई देती हैं। माथे में भ्रू को टटोलने से इन तोरणिकाओं को प्रतीत किया जा

१. Squammo. २. Orbital Part. ३. Frontal Emmimence. ४. Frontal Suture.

सकता है। ये भ्रू-तोरणिका[1] कहलाती हैं। इनके ऊपर ललाटोत्सेधों के नीचे हलकी सी परिखा है जो तोरणिका और उत्सेधों को भिन्न करती है। अस्थि के बीच में दोनों ओर की तोरणिकाएँ आपस में मिली हुई हैं। तोरणिकाओं का यह भाग अधिक स्पष्ट है और कूर्चक[2] कहलाता है। ये तोरणिकाएँ स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में बड़ी होती हैं। इनका आकार अस्थि के भीतर स्थित वायु-विवरों[3] पर निर्भर करता है।

भ्रू-तोरणिकाओं के नीचे ललाटफलक की अधोधारा है जो दोनों ओर नेत्रगुहाओं की ऊर्ध्वधारा बनाती है। यह धारा बाहर और पार्श्व की ओर नोकीली है किन्तु इसका भीतरी भाग गोल है। इस धारा में दोनों ओर जहाँ पार्श्विक तृतीय भाग शेष मध्यस्थ भाग से मिलता है वहाँ एक कोटर है जो अधिभ्रुव कोटर[4] कहलाता है। कभी-कभी यह कोटर एक छिद्र के रूप में परिणत हो जाता है और तब उसको अधिभ्रुवछिद्र[5] कहा जाता है। इसके द्वारा अधिभ्रुवा नाड़ी, धमनी और शिरा जाती है। दोनों धाराओं के बीच का भाग नासिकागुहा[6] बनाने में भाग लेता है। यह भाग गुहोर्ध्वधारा[7] के समस्त भागों की अपेक्षा नीचे को अधिक बढ़ा हुआ है और नासाभाग[8] कहलाता है। यह क्रमहीन और खुरदरा है और इस भाग के बीच से एक कण्टक नीचे को निकलता हुआ दिखाई देता है जिसे ललाटकण्टक[9] कहते हैं। इस प्रवर्धन के ऊपर की ओर नासिकाभाग में एक कोटर है जिसको नासामूलकोटर[10] कहते हैं और जो दोनों ओर नासास्थि[11], ऊर्ध्वहन्वस्थि के ललाटप्रवर्धन[12] और अश्रुपीठिका[13] से मिलता है। जिस स्थान से ललाट-कण्टक का उदय होता है वह नासाबिन्दु कहलाता है। ललाटकण्टक के चारों ओर जो क्रमहीन भाग दीखता है वह अन्य अस्थियों के साथ मिलकर नासागुहा बनाता है। यह कंटक भी आगे की ओर अन्य अस्थियों के प्रवर्धन या फलकों के साथ मिलकर नासिका के बीच का विभाजक फलक बनाने में भाग लेता है।

गुहोर्ध्वधारा बाहर की ओर पतली हो जाती है और एक प्रवर्धन के रूप में उसका अन्त होता है। यह गण्ड-प्रवर्धन[14] कहलाता है और बाहर की ओर गण्डास्थि के साथ मिल जाता है। इस प्रवर्धन के अन्त से ऊपर की ओर जाती हुई दो मुड़ी हुई रेखाएँ दीखती हैं। ये ऊर्ध्व और अधः शंखतोरणिकाएं[15] कहलाती हैं। इन रेखाओं के नीचे और पीछे शंखपृष्ठ है, जो शंखखात का पूर्वभाग बनाता है। यहाँ से शंखच्छदा पेशी के एक भाग का उदय होता है। जब पार्श्वकपाल इस अस्थि के साथ मिले रहते हैं तो ये रेखाएँ पार्श्वकपालों पर स्थित समान रेखाओं के साथ मिल जाती हैं। इन रेखाओं के पीछे का चिकना विस्तृत स्थान पार्श्वकपाल और शंखास्थि के सन्निकट स्थान के साथ मिलने से सम्पूर्ण शंखखात[16] बन जाता है जहाँ से शंखच्छदा[17] पेशी उदय होती है।

अन्तःपृष्ठ नतोदर है। इसमें अनेकों सूक्ष्म परिखाएँ चारों ओर को जाती हुई दिखाई देती हैं। इनमें मस्तिष्कावरण की सूक्ष्म धमनियाँ और उनकी शाखाएँ रहती हैं। पृष्ठ के बीच में एक गहरी परिखा दीखती है। इसको दीर्घिका परिखा[18] कहते हैं, जिसके दोनों ओर दो उठे हुए ओष्ठ हैं। ये ओष्ठ नीचे जाकर मिल जाते हैं और उनसे एक उठी हुई स्पष्ट तीरणिका बन जाती है जिसको

---

१. Superciliary Arch. २. Glabella. ३. Air sinuses. ४. Supraorbital Notch. ५. Supraorbital Foramen. ६. Nasal cavity. ७. Supra-orbital Margin. ८. Frontal Spine. ९. Nasal process. १०. Nasal Notch. ११. Nasal Bone. १२. Frontal Process of Maxilla. १३. Lacrimal. १४. Zygomatic Process. १५. Superior and Inferior Temporal Lines. १६. Temporal Fossa. १७. Temporalis. १८. Saggital Sulcus.

ललाटशिखा[1] कहते हैं। इस शिखा और दीर्विका परिखा के दोनों ओठों पर दात्रिका कला[2] लगती है। दीर्विका परिखा में दीर्घिका उत्तरा शिराकुल्या[3] रहती है। ललाटशिखा नीचे की ओर एक कोटर में समाप्त हो जाती है जो झर्झरास्थि के मिलने पर छिद्र का रूप धारण कर लेता है। कभी-

चित्र नं० १७८
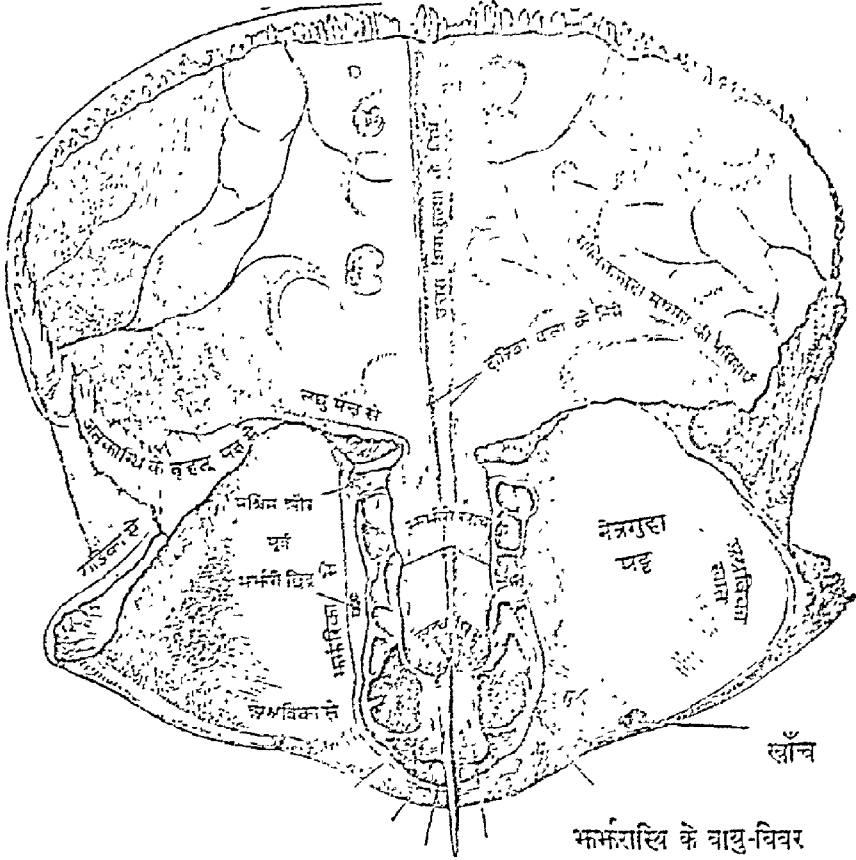
कभी इसमें होकर एक शिरा की शाखा जाती है। अस्थि में चारों ओर जो छोटे-छोटे खात दिखाई देते हैं उनमें मस्तिष्क की भिन्न-भिन्न कर्णिका रहती हैं।

नेत्रच्छदि भाग[4]—फलक की ऊर्ध्वगुहाधाराओं से पीछे की ओर को पतले चिपटे, चतुष्कोणाकार अस्थिपट्ट निकले हुए हैं जिनके बीच में एक गहरा कोटर है। इन तीनों भागों की गणना नेत्रगुहा भाग में की जाती है, क्योंकि ये नेत्रगुहा के बनाने में भाग लेते हैं। बीच का कोटर नासा-गुहा बनाने में भाग लेता है। नेत्रगुहा में उसका विशेष भाग नहीं रहता। पीछे को निकले हुए चतुष्कोणाकार पट्ट नेत्रगुहा की, जिसमें नेत्रगोलक रहते हैं, छत बनाते हैं। इन पट्टों के अधःपृष्ठ चिकने और

---

१. Frontal crest. २. Falx cerebri. ३. Saggital Sinus. ४. Orbital Part.

नतोदर हैं। इनके बाहरी कोने में गण्डक-प्रवर्धन के भीतर की ओर अश्रुखात[1] है, जिसमें अश्रुग्रन्थि[2] रहती है। दूसरी ओर नासाभाग के पास भी एक छोटा सा खात है जिसमें स्नायु की एक छोटी घिर्री लगी रहती है। इस घिर्री पर होकर **वक्रोर्ध्वदर्शिनी ऊर्ध्वा**[3] की कण्डरा जाती है। कभी-कभी इस स्थान पर एक छोटा सा कण्टक दिखाई देता है जिस पर घिर्री लगी रहती है। पट्टों का ऊर्ध्वपृष्ठ कुछ उन्नतोदर है और इस पर कई चिह्न हैं जो उन खातों को, जिनमें मस्तिष्क के पूर्वभाग की कर्णिकाएँ रहती हैं, अङ्कित करते हैं। साथ में धमनियों के लिए परिखाएँ भी दिखाई देती हैं।

दोनों पट्टों के बीच के गहरे कोटर को **झर्झरीय कोटर या महापरिखा**[4] कहते हैं। झर्झरास्थि का एक भाग दोनों पट्टों से मिला रहता है और इस कारण कोटर पूर्ण हो जाता है। यह कोटर चतुष्कोणाकार है और इसके किनारे क्रमहीन और खुरदरे हैं। आगे की ओर किनारों पर ध्यान से देखने पर छोटे-छोटे कोष्ठ दिखाई देते हैं जिनका आधा भाग टूट गया है। ये अर्धकोष्ठ झर्झरास्थि के किनारों पर स्थित समान अर्धकोष्ठों से मिलकर पूर्णकोष्ठ बना देते हैं जिनमें वायु भरी रहती है। ये झर्झरास्थि के **वायु-विवर**[5] कहलाते हैं। कोटर के अग्रभाग के किनारों को देखने से विदित होगा कि वह दो भागों में विभक्त हो गये हैं और उनके भीतर ऊपर की ओर दो बड़े त्रिकोणाकार वायु-विवर उपस्थित हैं। ये ललाट वायु-विवर कहलाते हैं। ये दो बड़े वायु-कोटर हैं जो ऊपर, बाहर और पीछे को फैले हुए हैं। इनके द्वारा अस्थि दो भागों विभक्त हो गई है जो पट्ट कहलाते हैं। ऊपर और नीचे की ओर स्थित इन दोनों पट्टों के बीच के कोटर में वायु भरी रहती है। जीवित अवस्था में इन दोनों वायुविवरों के बीच में अस्थि का एक पतला पत्र रहता है जो दोनों विवरों को विभक्त करता है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में इनके आकार में भिन्नता पाई जाती है। दोनों विवरों का आकार एक समान बहुत कम होता है। जन्म के समय ये विवर उपस्थित नहीं होते। सात या आठ वर्ष की आयु में ये उत्पन्न हो जाते हैं और युवावस्था तक पूर्णतया विकसित हो चुकते हैं। स्त्रियों की अपेक्षा ये पुरुषों में अधिक बड़े होते हैं। इनका **ललाट-नासा-कूपिका**[6] के द्वारा नासिका से सम्बन्ध रहता है। ये श्लेष्मिक कला से आच्छादित रहते हैं जो नलिका की भित्तियों पर चढ़ी रहती है और नासिका की कला के साथ मिल जाती है।

ललाट-वायु-विवरों के पीछे की ओर दोनों ओर के किनारों पर दो छोटे-छोटे कोटर दिखाई देते हैं। ये कोटर झर्झरास्थि पर स्थित समान कोटरों के साथ मिलकर दो नलिकाएँ बनाते हैं जो **पूर्व और पश्चिम झर्झरीय नलिका**[7] कहलाती हैं। इनके द्वारा **पूर्व और पश्चिम झर्झरिका नाड़ी, धमनी और शिराएँ**[8] जाती हैं।

धाराएँ—यह अस्थि करोटि की अन्य अस्थियों के समान दो पट्टों द्वारा निर्मित है। धारा के ऊपरी भाग में बहिःपट्ट पीछे को बढ़ा हुआ है। अन्तःपट्ट उससे पूर्व ही समाप्त हो जाता है। पार्श्व में अन्तःपट्ट पीछे को बढ़ा हुआ है और पार्श्वकपाल का भाग अन्तःपट्ट पर आश्रित रहता है। नीचे की ओर पहुँचकर गण्ड प्रवर्धन के पीछे धारा त्रिकोणाकार स्थान के रूप में फैल गई है जहाँ पर वह जतूकास्थि के बृहत् पक्ष के साथ मिली रहती है। नेत्रगुहापट्टों की पश्चिमधारा पतली और क्रमहीन है। समस्त धाराओं पर बड़े-बड़े दाँते हैं जो पार्श्वकपाल या अन्य अस्थियों की धाराओं पर स्थित समान दाँतों के साथ मिलकर अचल सन्धियाँ बना देते हैं। नेत्रगुहापट्ट जतूकास्थि के लघु पक्षों के साथ मिलते हैं।

---

१. Lacrimal Fossa. २. Lacrimal gland. ३. Obliguus oculi Superiors. ४. Ethmoidal Notch. ५. Ethmoidal ari Sinuses. ६. Fronto—Nasal duct. ७. Anterior and Posterior Ethmoidal canals. ८. Anterior and Posterior Ethmoidal Nerves and vessels.

अस्थि-विकास—इस अस्थि का विकास मृत्तिका से न होकर कला से होता है। प्रारम्भ में सारी अस्थि के स्थान में कला होती है। इस कला में भ्रूणावस्था के दूसरे मास के अन्त में दो केन्द्र निकलते हैं। ये दोनों केन्द्र फलक में प्रत्येक ओर गुहोर्ध्वधारा के ऊपर की ओर उदय होते हैं। इन केन्द्रों से ऊपर की ओर को अस्थि का बनना आरम्भ होता है। साथ में नेत्रगुहापट्ट भी इन्हीं से बनने लगते हैं। कण्टक, नासिकाभाग और गरुड प्रवर्धनों के लिए दो-दो गौण केन्द्र उदय होते हैं। कण्टक में मध्यरेखा के दोनों ओर दो केन्द्र निकलते हैं। कण्टक के दोनों ओर नासिकाभागों के लिए दो केन्द्र और दोनों गरुड-प्रवर्धनों के लिए भी दो विकास-केन्द्र उदय होते हैं। अतएव सब मिलाकर छः गौण केन्द्र उदय होते हैं।

इस प्रकार अस्थि के दोनों ओर के भाग स्वतन्त्रतया विकसित होते हैं और बाद में आपस में मिल जाते हैं। इन दोनों भागों के बीच में ललाट-सीमन्त रहता है। जन्म के समय भी ये भाग पृथक् होते हैं। ललाट-सीमन्त का विकास प्रथम और द्वितीय वर्ष के बीच में आरम्भ होता है। प्रायः आठवें वर्ष तक यह सीमन्त अस्थियों में परिणत हो जाता है और दोनों ओर के अस्थिभाग आपस में जुड़ जाते हैं। कभी कभी आयु-पर्यन्त ये दोनों भाग भिन्न रहते हैं।

सम्मेलन—पुरःकपाल का १२ अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है—पार्श्वकपाल (२), नासास्थियाँ (२), ऊर्ध्वहन्वस्थि (२), अश्रुपीठिका (२), गरुडास्थि (२), झर्झरास्थि और जतूकास्थि।

पार्श्वकपाल

जैसा नाम से विदित है, कपाल के दोनों ओर दो पार्श्विकास्थियाँ होती हैं जो कपाल के बीच में ऊपर की ओर एक दूसरी से मिली रहती हैं और आगे की ओर पूर्वकपाल से सम्पर्क करती हैं अतएव ये अस्थियाँ कपाल का पार्श्व और उसकी छत बनाती हैं। यह अस्थि चतुष्कोणाकार है जिसमें दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं। धाराओं के सम्मेलन-स्थान पर चार कोण या कोटि हैं।

बहिःपृष्ठ—यह पृष्ठ ऊपर से नीचे को और आगे से पीछे को पूर्णतः उन्नतोदर है। इसके बीच में बाहर की ओर को उठा हुआ एक उत्सेध दीखता है जो अस्थि के लगभग बीच में स्थित है। शिर के पार्श्व में टटोलने से इसको प्रतीत किया जा सकता है। इसको पार्श्विकोत्सेध[1] कहते हैं। अस्थि के बीच में दो मुड़ी हुई रेखाएँ पीछे से आगे की ओर को जाती हुई मालूम होती हैं। रेखाएँ पीछे की ओर पृष्ठ के बीच से अधोधारा की ओर मुड़ जाती हैं और उसी पर समाप्त हो जाती हैं किन्तु आगे की ओर पूर्वधारा के मध्य में समाप्त होती हैं जहाँ ये पूर्वकपाल की शंखीय रेखाओं के साथ मिल जाती हैं। वास्तव में ये इन्हीं शंखीय रेखाओं के भाग हैं और शंखखात को परिमित करती हैं। ये ऊर्ध्व और अधः शंखरेखाएँ कहलाती हैं। ऊर्ध्वशंखरेखा पर शंखच्छदा कला[2] लगती है और अधःशंखरेखा तथा नीचे का शंखखात शंखच्छदा पेशी से आच्छादित है। इन रेखाओं से ऊपर का भाग करोटिच्छदा प्रावरणी[3] से ढका हुआ है। ऊर्ध्वधारा के पास पीछे की ओर एक छिद्र है जो पार्श्विकच्छिद्र[4] कहलाता है। इसके द्वारा एक शिरा की शाखा दीर्घिका उत्तर शिराकुल्या में जाकर मिलती है। कपालमूलिनी धमनी की एक शाखा भी छिद्र के द्वारा निकलती है।

अन्तःपृष्ठ नतोदर है। इसमें मस्तिष्क के चक्रांगों के लिए और मस्तिष्कावृतिगा मध्यमा[5] धमनी की शाखाओं के लिए स्पष्ट चिह्न दिखाई देते हैं। ये धमनियाँ जतूकीय कोण[6] से आरम्भ

---

१. Parietal Tuberosity or Eminence. २. Fascia Temporalis. ३. Galea Aponeurotica ४. Parietal forame ५. Middle meningeal artery. ६. Sphenoidal Angle.
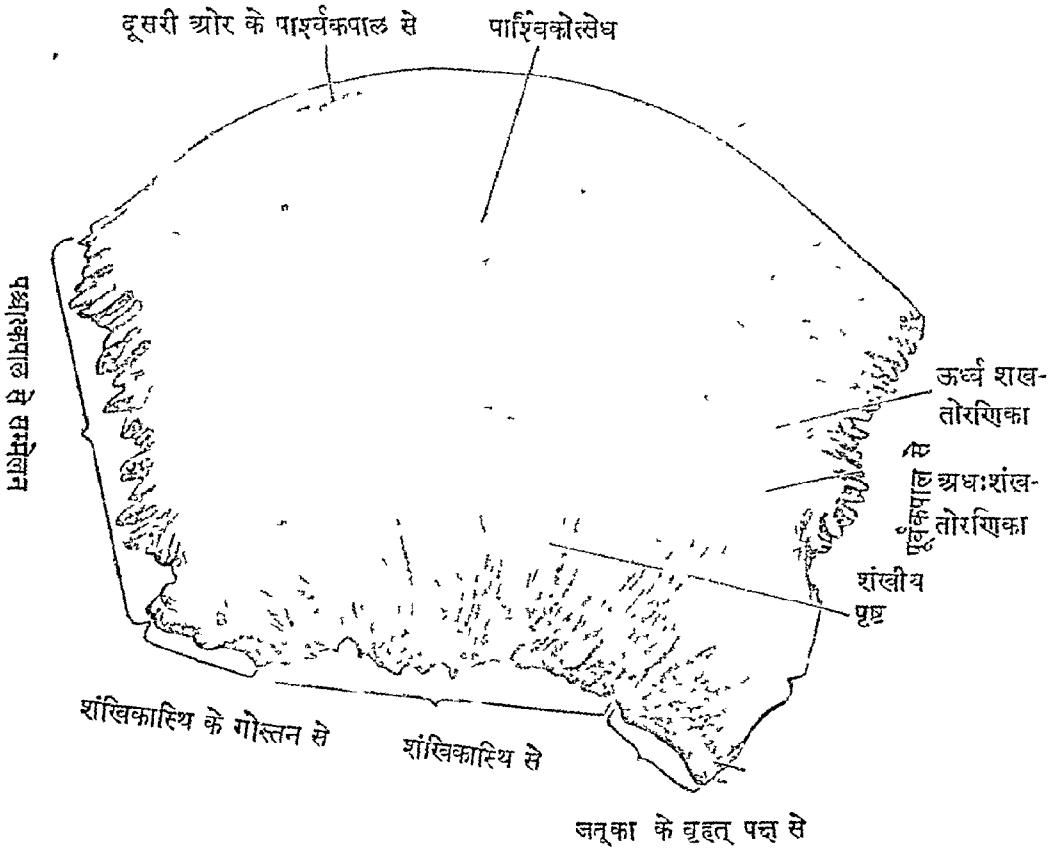
चित्र नं० १७९

होकर ऊपर और पीछे की ओर को जाती है। पृष्ठ के पिछले भाग में धमनी की पश्चिम शाखा और अगले भाग में पूर्वशाखाओं के चिह्न रहते हैं। पृष्ठ की ऊर्ध्वधारा के पास आगे के कोण से पीछे के कोण तक फैली हुई एक हलकी परिखा है जिसके नीचे की ओर एक तीरणिका दिखाई देती है। यह परिखा दूसरी ओर की समान परिखा से मिलकर दीर्घिका उत्तरा शिराकुल्या के लिए एक गहरी पारिखा बना देती है। पारिखा को सीमित करनेवाली तीरणिका पर मस्तिष्कच्छदा दात्रिका कला लगी रहती है। परिखा के भीतर पार्श्विकछिद्र का दूसरा सिरा भी दिखाई देता है। यह छिद्र सब अस्थियों में नहीं पाया जाता। पीछे और नीचे की ओर की धारा के पास कभी कभी एक परिखा दिखाई देती है जो अनुपार्श्विकापरिखा[१] कहलाती है।

धाराएँ—ऊर्ध्वधारा[२] सबसे बड़ी और दाँतेदार है। यह धारा दूसरी ओर की पार्श्विकास्थि की समान धारा से मिली रहती है और इससे मध्यसीमन्त[३] बनता है। अधोधारा[४] नतोदर है। अन्य धाराओं की अपेक्षा यह धारा छोटी, पतली और नोकीली है। इस धारा पर अस्थि का बहिःपट्ट ऊपर ही समाप्त हो जाता है, केवल अन्तःपट्ट नीचे को बढ़ा हुआ है। इस धारा के आगे का भाग जतूका के वृहत् पक्ष के एक भाग से ढका रहता है। बीच का भाग शंखिकास्थि के फलक से ढका हुआ है

१. Transverse Sulcus. २. Saggital Border. ३. Saggital Suture. ४. Squamous Border.
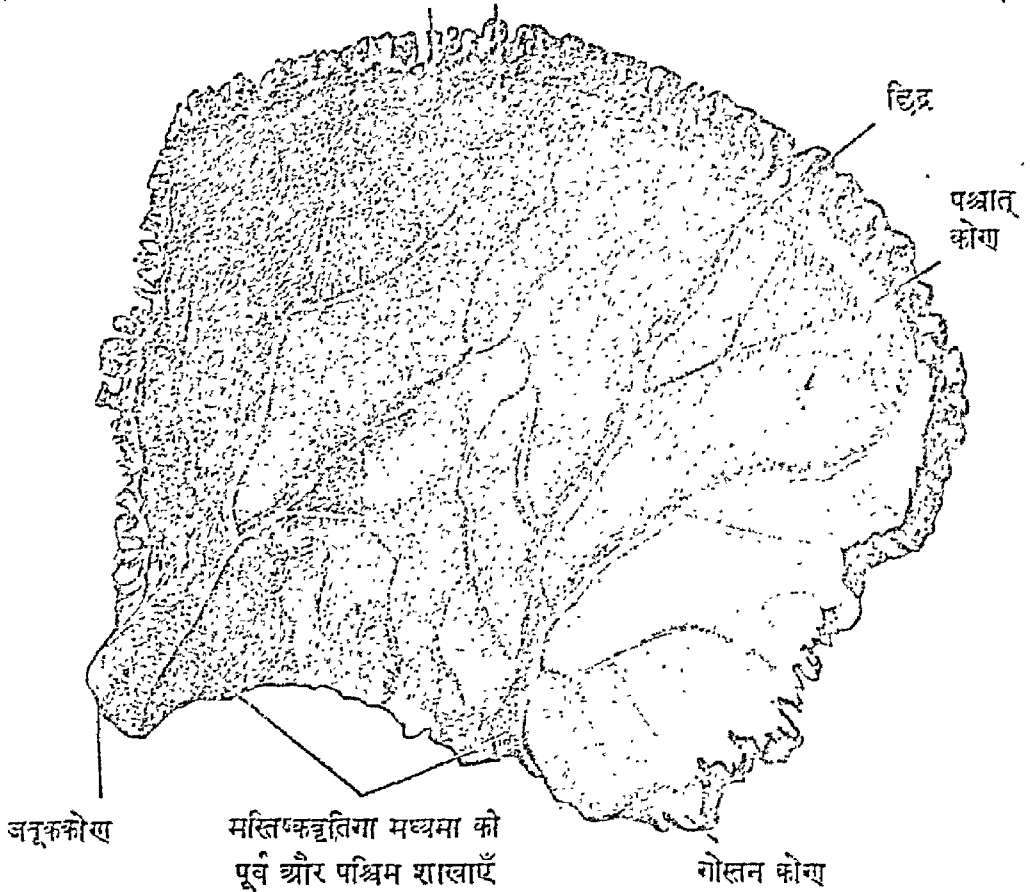
चित्र नं० १८०

और पीछे का भाग शंखिकास्थि के कर्णमूल[1] भाग से मिलता है। पूर्वधारा[2] में ऊर्ध्व और पश्चात् धारा की भाँति गहरे दाँते हैं। इस धारा के ऊपरी भाग में बहिःपट्ट ऊपर ही समाप्त हो जाता है किन्तु अन्तःपट्ट आगे को बढ़ा रहता है। इस कारण इस भाग को पूर्विका ढके रहती है। धारा के नीचे के भाग की दशा इसके विपरीत है। बहिःपट्ट आगे को बढ़ा हुआ है किन्तु अन्तःपट्ट पीछे ही समाप्त हो जाता है। अतएव यह भाग पूर्वकपाल पर चढ़ा रहता है। पश्चाद्धारा[3] मोटी, दृढ़ और गहरे दाँतेदार है और पश्चात्कपाल से मिलती है।

कोटि और कोण—पूर्वकोण[4] आगे और ऊपर की ओर रहता है। इस स्थान पर दो सीमन्त मिलते हैं—दोनों पार्श्वकपालों के बीच का सीमन्त जिसे मध्य सीमन्त कहते हैं और पार्श्वकपाल और पूर्वकपाल के बीच का सीमन्त जो पुरःसीमन्त[5] कहलाता है। इस स्थान को पूर्वबिन्दु[6] कहते हैं। बाल्यावस्था में इस स्थान में केवल कला रहती है और इस कारण यह कठिन नहीं होता। इसको ब्रह्मरन्ध्र[7] कहा जाता है।

जतूककोण[8] अधः और पूर्वधारा के मिलने का पतला और नोकीला स्थान है जो कुछ आगे और नीचे को बढ़ा हुआ है। इसके भीतर की ओर मस्तिष्कवृत्तिगा मध्यमा धमनी का चिह्न है। यह कोण पूर्विकास्थि और जतूकास्थि के बृहत् पक्ष के बीच के अन्तर में रहता है।

---

१. Mastoid Part of Temporal. २. Frontal Border. ३. Occipital Border. ४. Frontal Angle. ५. Frontal Suture. ६. Bregma. ७. Anterior Fontanelle. ८. Sphenoida lAngle.

पश्चात्कोण[1] पीछे और ऊपर की ओर रहता है। इस स्थान पर मध्यसीमन्त और पश्चिम-सीमन्त[2] मिलते हैं। इसको पश्चिमबिन्दु[3] कहते हैं। बाल्यकाल में जब ब्रह्मरन्ध्र के समान यह भी चौड़ा और कलानिर्मित होता है तो शिखरन्ध्र[4] कहलाता है। कर्णमूलकोण[5] पीछे और नीचे की ओर रहता है। यह कोण गोल है। इसके भीतर की ओर पार्श्विका परिखा है जिसमें अनुपार्श्विक शिराकुल्या[6] रहती है। यह कोण पश्चात्कपाल और शंखास्थि के कर्णमूल भाग के साथ मिलता है। जिस स्थान पर यह कोण दोनों अस्थियों के साथ मिलता है वह पार्श्वबिन्दु[7] कहलाता है।

अस्थिविकास—पूर्वकपाल की भाँति यह अस्थि भी कला से विकसित होती है। इसका विकास केवल एक केन्द्र से होता है जो पार्श्विकोत्सेध के स्थान पर भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में उदय होता है। यहाँ से अस्थिनिर्माण आरम्भ होता है और चारों ओर को फैलता है। चारों कोण सबके पश्चात् विकसित होते हैं। इस कारण ये बाल्यावस्था में कोमल होते हैं। कभी-कभी अस्थि दो भागों में विकसित होती है, जो कुछ समय के पश्चात् जुड़ जाते हैं।

सम्मेलन—पार्श्विकास्थि पाँच अस्थियों के साथ सम्मेलन करती है—दूसरे ओर का पार्श्वकपाल, पूर्वकपाल, पश्चात्कपाल, शंखकपाल और जतूका।

पश्चात्कपाल[8]

यह अस्थि कपाल के पीछे की ओर रहती है और उसके पीछे तथा नीचे का भाग भी बनाती है। अस्थि का ऊपरी भाग आगे की ओर को झुका हुआ है जिससे उसका पूर्वपृष्ठ नतोदर हो जाता है और मस्तिष्क के पश्चात् भाग को आश्रित करता है। उसका नीचे का छोटा भाग चिपटा और समतल है और मस्तिष्क के तल को आश्रित करता है। इस भाग में एक बड़ा छिद्र है जिसको **महाविवर**[9] कहते हैं। यह छिद्र नीचे की ओर कशेरुकनलिका से मिला हुआ है। इस छिद्र के द्वारा सुषुम्ना कशेरुकनलिका में प्रवेश करती है।

अस्थि दो भागों में विभक्त है। ऊपर का चौड़ा फैला हुआ भाग फलक कहलाता है। महाविवर के सामने के भाग को मूलभाग और इसके दोनों ओर पार्श्व में स्थित भाग को पार्श्विक भाग के नाम से पुकारते हैं।

फलक[10]—जब अस्थि करोटि मे लगी रहती है तो फलक महाविवर के ऊपर किन्तु करोटि के पीछे की ओर रहता है। इसमें दो पृष्ठ हैं जिनको बहिः और अन्तः पृष्ठ कहते हैं।

बहिःपृष्ठ ऊपर से नीचे और एक ओर से दूसरी ओर को उन्नतोदर है। इस अस्थि के लगभग बीच में एक उत्सेध दिखाई देता है जिसको बहिःपश्चिमोत्सेध[11] कहते हैं। इस उत्सेध से एक रेखा या परिखा दोनों ओर अस्थि के किनारों की ओर जाती हुई दीखती है। इसको मध्यतोरणिका[12] कहते हैं। यह अत्यन्त स्पष्ट है। इसके तनिक ऊपर की ओर ध्यान से देखने से दूसरी समान रेखा दिखाई देती है। किन्तु वह पूर्वरेखा के समान स्पष्ट नहीं है। यह ऊर्ध्वतोरणिका[13] कहलाती है। इस पर

---

१. Occipital Angle. २. Lambdoidal Suture. ३. Lambda. ४. Posterior Fontanelle. ५. Mascoid Angle. ६. Transverse Sinus. ७. Asterion. ८. Occipital. ९. Formen magnum. १०. Squama. ११. Externals occipital Protuberence. १२. Superior Nuchal line. १३. Highest Nuchal line.

करोटिच्छद कलावितान[1] नामक कला लगती है। इससे ऊपर का अस्थि का भाग शिरश्छदा पश्चिमा पेशी से ढका रहता है।
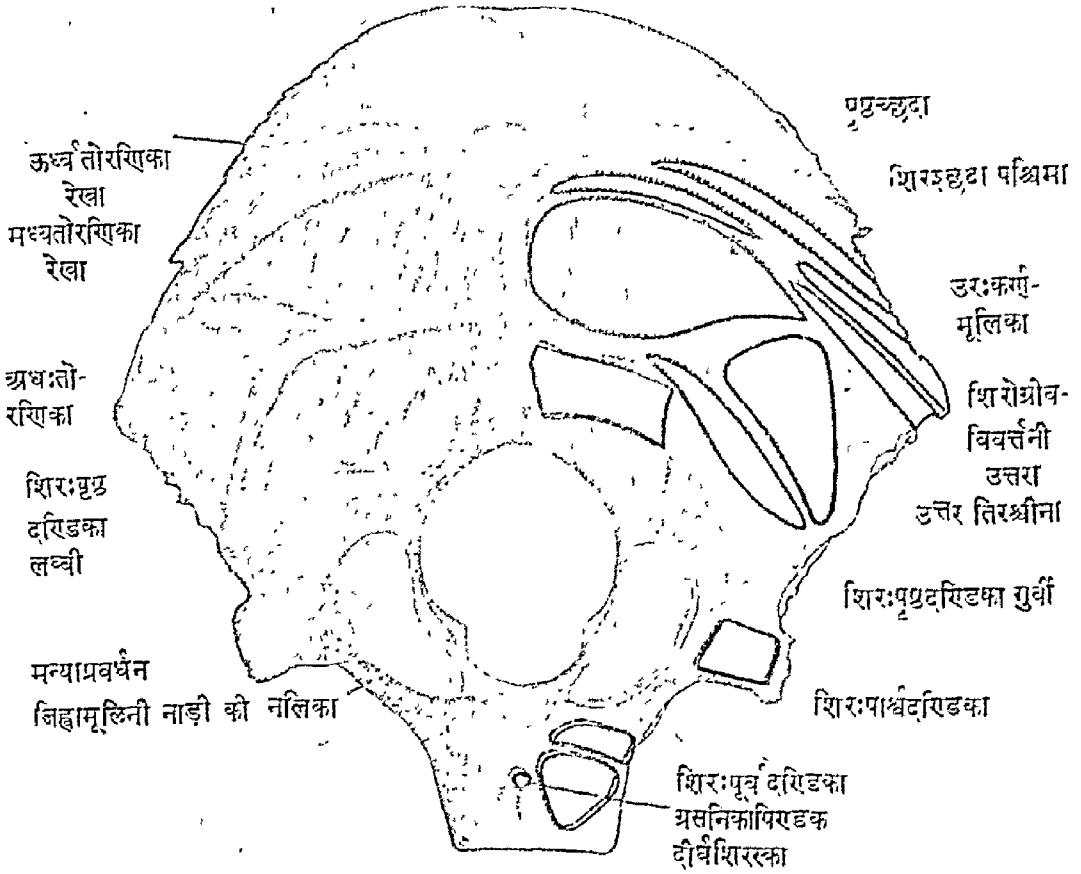
चित्र नं० १८१

बहिःपश्चिमोत्सेध से एक तोरणिका नीचे की ओर को उतरती हुई महाविवर तक चली जाती है। यह मध्यालिका[2] कहलाती है जो अस्थि को दो पार्श्विक भागों में विभक्त कर देती है। महाविवर की पश्चात् धारा और बहिःपश्चिमोत्सेध के बीच से मध्यतोरणिका रेखा के समान एक मुड़ी हुई रेखा या तोरणिका अस्थि के नीचे के कोण की ओर चली जाती है। यह अधःतोरणिका रेखा[3] कहलाती है।

मध्यालिका पर ग्रीवाधरबन्धन[4] लगता है। मध्यतोरणिका रेखा पर और इस रेखा तथा अधःरेखा के बीच के स्थान पर कई पेशियों का निवेश होता है और वहाँ से कई पेशियों का उदय होता है। मध्यतोरणिका रेखा से शिरश्छदा पश्चिमा[5] और पृष्ठच्छदा[6] पेशियों का उदय होता है और उस पर उरःकर्णमूलिका[7] और शिरोग्रीवविवर्त्तनी उत्तरा[8] का निवेश होता है। मध्य और अधः रेखा के बीच के स्थान में शिरोग्रीवपृष्ठिका उत्तरा[9] और उत्तरतिरश्चीना[10] पेशियों का निवेश होता है। अधःरेखा के नीचे के स्थान में शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्वी[11] और लघ्वी[12] निवेश करती हैं। इस

१. Galea aponeurotica. २. Median Nuchal line. ३. Inferior Nuchal line. ४. Ligamentum Neuchae. ५. Occipitalis. ६. Trapezius. ७. Sternocleidomasteoideus. ८. Splenius capitis. ९. Semispidalis capitis. १०. Obliquus capitis Superior. ११-१२. Rectus Capitis Postetior major and minor.

स्थान के नीचे महाविवर के पीछे की ओर और पार्श्व में कपालमूलचूडिका पश्चिमा कला[1] लगती है।

अन्तःपृष्ठ चारों ओर से नतोदर है। पृष्ठ के बीच में कुछ ऊपर की ओर अन्तःपश्चिमोत्सेध[2] स्थित है। इस उत्सेध से एक तीरशिका ऊपर की ओर और दूसरी नीचे की ओर महाविवर तक जाती है। दो तीरशिकाएँ उक्त उत्सेध के दोनों पार्श्वों से अस्थि के पार्श्व की ओर जाती हुई दिखाई देती हैं। इस प्रकार सारा पृष्ठ चार तीरशिकाओं द्वारा चार खातों में विभक्त है। ऊपर के दो खात छोटे और त्रिकोणाकार हैं और उनमें बृहन्मस्तिष्क के पश्चिम भाग रहते हैं। नीचे के दोनों बड़े चतुष्कोणाकार खातों में लघुमस्तिष्क का अधोभाग रहता है।

उत्सेध से ऊपर की ओर को जानेवाली तीरशिका के दाहिनी ओर स्थित दीर्घिका परिखा में दीर्घिका उत्तरा शिराकुल्या का पिछला भाग रहता है और परिखा के किनारों पर मस्तिष्कच्छदा दात्रिका कला का पिछला भाग लगता है। उत्सेध से नीचे की ओर जो तीरशिका जाती है वह कपालमूलान्तरिक शिखा[3] कही जाती है। यह शिखा महाविवर के पास पहुँचकर दो भागों में विभक्त हो जाती
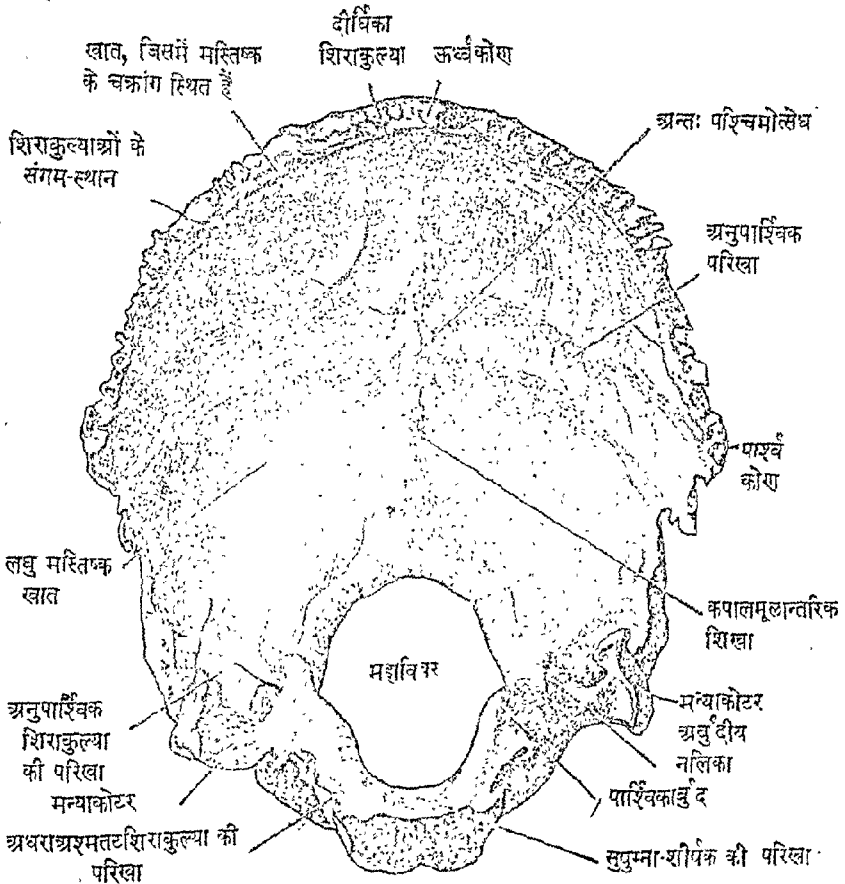
चित्र नं० १८२—पश्चात्कपाल का अन्तःपृष्ठ

१. Posterior atlanto-occipital—membrane. २. Internal occipital Protuberence. ३. Internal occipital crest.

है जो महाविवर के दोनों ओर उठे हुए किनारों के रूप में दिखाई देते हैं। इस शिखा पर लघु-दात्रिका[1] कला लगी हुई है। कला के दोनों भागों के बीच में इस स्थान पर कपालमूलिनी शिराकुल्या[2] रहती है।

आन्तरोत्सेध से जो दोनों ओर को दो तीरणिकाएँ जाती हैं उनके बीच की परिखाओं में अनुपार्श्विक शिराकुल्याएँ रहती हैं। परिखाओं के किनारों पर मस्तिष्क जवनिका[3] कला लगी रहती है। दाहिनी ओर की शिराकुल्या प्रायः बड़ी होती है। यह अनुपार्श्विक शिराकुल्या दीर्घिका उत्तरा शिराकुल्या के साथ बीच में मिलती है। यह सम्मेलन-स्थान महाशिरावर्त्त[4] कहलाता है।

पार्श्विक भाग—ये महाविवर के पार्श्व में स्थित हैं। इनके नीचे की ओर दो पिण्डक स्थित हैं जिनको मूलार्बुद[5] कहते हैं। दोनों अर्बुद लम्बे, अण्डाकार और उन्नतोदर हैं। इन पर दो समान आकार के स्थालक स्थित हैं जो बाहर और पीछे की ओर को मुड़े हुए हैं। अर्बुद और स्थालकों के आगे की ओर को मुड़े हुए होने के कारण उनके बीच में आगे की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक अन्तर है। अर्बुदों के किनारों पर सन्धि-कोष लगता है।

अर्बुदों के आगे और तनिक ऊपर की ओर अस्थि में एक नलिका है जो भीतर से बाहर और नीचे की ओर को जाती है। यह जिह्वामूलिनी[6] नलिका कहलाती है। इसमें होकर जिह्वामूलिनी[7] नाड़ी निकलती है। इस नलिका का भीतरी छिद्र महाविवर के किनारे से तनिक ऊपर की ओर स्थित है। नलिका के टेढ़े होने के कारण बहिःछिद्रों में अन्तःछिद्रों की अपेक्षा अधिक अन्तर है। कभी-कभी अस्थि के एक कण्टक के द्वारा यह नलिका दो भागों में विभक्त होती है। इस नलिका द्वारा नाड़ी के अतिरिक्त अन्नद्वारिणी ऊर्ध्वगा धमनी की मस्तिष्कवृत्तिगा[8] शाखा बाहर से भीतर जाती है।

अधःपृष्ठ पर अर्बुदों के पीछे की ओर दो खात हैं जो अर्बुदीय खात[9] कहलाते हैं। इनमें कभी-कभी **अर्बुदीय नलिका**[10] के बाहरी द्वार दिखाई देते हैं। यह नलिका अस्थि के द्वारा जिह्वामूलिनी नलिका से तनिक ऊपर भीतर की ओर जाती है और इसके अन्तर्द्वार और पूर्वोक्त नलिका के द्वारों के बीच में अस्थि का एक मोटा भाग स्थित है। जब शिर को पीछे की ओर झुकाया जाता है तो प्रथम कशेरुक के स्थालकों के अग्रभाग अर्बुदखातों में आ जाते हैं। अर्बुदनलिका के द्वारा एक शिरा की शाखा अनुपार्श्विक शिराकुल्या को जाती है।

अस्थि का एक चतुष्कोणाकार भाग अर्बुदों से पार्श्व में निकला हुआ है। यह **मन्याप्रवर्धन**[11] कहलाता है जिसके नीचे की ओर बड़ा **मन्याकोटर**[12] स्थित है। करोटि में यह मन्यारन्ध्र का पश्चिमभाग बनाता है। कभी-कभी यह कोटर एक पतले कण्टक के द्वारा दो भागों में विभक्त होता है। मन्याप्रवर्धन के नीचे की ओर अधःपृष्ठ पर शिरःपार्श्वदण्डिका[13] पेशी लगी हुई है। कभी-कभी इस स्थान से **कर्णमूलानुचरप्रवर्धन**[14] निकलता है जो प्रथम कशेरुक के बाहुक प्रवर्धन तक पहुँच सकता है। मन्याप्रवर्धन पार्श्व की ओर से शङ्खास्थि के मन्यापृष्ठ से मिला रहता है। पार्श्वक भाग के ऊर्ध्वपृष्ठ पर जिह्वामूलिनी नलिका के ऊपर एक छोटा सा अर्बुद दीखता है। इस अर्बुद के पीछे एक नलिका दिखाई देती है जिसमें होकर नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं मस्तिष्कीय नाड़ियाँ निकलती हैं।

---

१. Falx cerebelli. २. Occipital sinus. ३. Tentorium cerebelli. ४. Coefiucuce of the Sinuses or Torcular Herophili. ५. Occipital Condyles. ६. Hypoglossal Canal. ७. Hypoglossal Nerve. ८. Meningeal branch of ascending Pharygeal artery. ९. Condyoloid fossa. १०. Condyloid Canal. ११. Jugular Process. १२. Jugular Notch Jugular foramem. १३. Rectus capitis lateralis. १४. Paramastoid Process.

इसी पृष्ठ पर मन्याप्रवर्धन के ऊपर एक टेढ़ी नलिका है जो ऊपर से नीचे और भीतर को मुड़ती हुई दिखाई देती है। इसमें अनुपार्श्विक शिराकुल्या का अन्तिम भाग रहता है।

तलीय या मूलभाग वह भाग है जो महाविवर से आगे की ओर और कुछ ऊपर को फैला हुआ है। आकार में यह कुछ चतुष्कोण के समान है। यह भाग जतूकास्थि के साथ २५ वें वर्ष तक जुड़ जाता है। इस कारण पश्चात्कपाल को अन्य अस्थियों से पृथक् करते समय इसको काटना पड़ता है। इस कारण इस भाग का अगला सिरा सदा कटा हुआ मिलता है।

इस भाग के ऊर्ध्वपृष्ठ पर एक चौड़ी परिखा स्थिति है जो महाविवर की आगे और नीचे की सीमा बनाती होती है। यहाँ सुषुम्नाशीर्षक[1] रहता है और इसके किनारों पर अश्मतटीय-शिराकुल्या अधरा[2] के लिए नतोदर चिह्न बने हुए हैं।

अधःपृष्ठ पर महाविवर के लगभग आध इंच आगे की ओर एक पिण्डक है जिस पर सौत्रिक **ग्रसनिका सीवनी**[3] लगी हुई है। इस पिण्डक को **ग्रसनिकापिण्डक**[4] कहते हैं। इस पृष्ठ पर दोनों ओर शिरःपूर्वदण्डिका[5] और दीर्घशिरस्का[6] पेशियाँ लगी हुई हैं। महाविवर के सामने की ओर वलयमूलिका अग्रिमा कला[7] लगी हुई है।

महाविवर—यह एक बड़ा अण्डाकार छिद्र है जो अस्थि के निचले भाग में स्थित है। इसमें होकर सुषुम्ना-शीर्षक और उसके आवरण, नाड़ियाँ, मस्तिष्कमातृका धमनियाँ[8], सौषुम्निक धमनियाँ[9] और कुछ बन्धन नीचे को जाते हैं।

कोण—पार्श्विकाओं के पश्चिमोत्तर कोण से मिलनेवाला ऊर्ध्व कोण कहलाता है। यह अस्थि का सबसे उच्च स्थान है। अधःकोण वह स्थान है जहाँ अस्थि जतूकास्थि के गात्र के साथ जुड़ी हुई है। पार्श्विक कोण मूल भाग के पार्श्व में स्थित है जहाँ पर अनुपार्श्विक शिराकुल्या की परिखा का अन्त होता है। यह कोण पार्श्वकपाल के कर्ण-मूल-कोण और शङ्खास्थि के कर्णमूल भाग के बीच में रहता है।

धाराएँ—ऊर्ध्व धाराएँ ऊर्ध्व कोण से पार्श्विक कोण तक फैली हुई हैं। इनके गहरे दाँते पार्श्वकपालों की पश्चाद्धाराओं के दाँतों से मिले रहते हैं और पश्चिम सीमान्त बनाते हैं। पार्श्विक कोण से अधःकोण तक अधोधाराएँ कहलाती हैं और शङ्खास्थि के भागों से मिली रहती हैं।

अस्थि-विकास—अस्थिफलक का दो भागों में विकास होता है। ऊर्ध्व तोरणिका रेखाओं के ऊपर का भाग कला से विकसित होता है किन्तु उससे नीचे के भाग का विकास स्रुक्ति से होता है। इस भाग में भ्रूणावस्था के छठे या सातवें सप्ताह में दो केन्द्र उदय होते हैं जो आपस में शीघ्र ही मिलकर एक लम्बा केन्द्र बना देते हैं। यह केन्द्र वहिःपश्चिमोत्सेध के स्थान में उदय होता है।

ऊपर के कला-निर्मित भाग में भ्रूणावस्था के आठवें और नवें सप्ताह में प्रत्येक और दो केन्द्र उदय होते हैं। ये दोनों केन्द्र भी शीघ्र ही संयुक्त हो जाते हैं और उनके संयोग से एक वक्र, लम्बा और पतला केन्द्र बन जाता है। फलक के ऊपरी और नीचे के भाग तीसरे या चौथे मास तक आपस में जुड़ जाते हैं। कभी-कभी महाविवर के पश्चिम भाग में एक भिन्न केन्द्र उदय होते देखा गया है जो जन्म के पूर्व ही शेष अस्थि से जुड़ जाता है।

---

१. Medulla oblongatac. २. Inferior Petrosal sinus. ३. Pharyngeal raphe. ४. Pharpn geal Tubercle. ५. Rectus capitis anterior. ६. Lougus capitis. ७. Anterior atlanto—occipital—membrane. ८. Vertebral arteries. ९. Spinol arteries.

मूल भाग में भ्रूणावस्था के छठे सप्ताह में दो केन्द्रों से विकास होना आरम्भ होता है जो शीघ्र ही आपस में जुड़कर एक हो जाते हैं। इस केन्द्र से महाविवर की पूर्व सीमा और अर्बुदों का पूर्व भाग विकसित होता है। यह शेष अस्थि के साथ चौथे या पाँचवें वर्ष में जुड़ते हैं। इस भाग का जतूकास्थि के साथ २५वें वर्ष के समीप संयोग होता है।

पार्श्व भाग और अर्बुदों के शेष भागों का विकास भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में एक केन्द्र से होता है। वास्तव में ये दो केन्द्र होते हैं जो एक दूसरे के आगे पीछे स्थित होते हैं। किन्तु ये शीघ्र ही आपस में जुड़ जाते हैं जिससे केवल एक केन्द्र दीखता है। चौथे वर्ष के समीप यह भाग फलक के साथ जुड़ जाते हैं।

सम्मेलन छः अस्थियों के साथ होता है—पार्श्वकपाल (२), शङ्खास्थि (२), जतूका (१) और प्रथम कशेरुक (१)।

शङ्खास्थि[1]

दोनों ओर की शङ्खास्थियाँ कपाल के पार्श्व में नीचे की ओर रहती हैं और उसका तल बनाने में भाग लेती हैं। इसके पीछे की ओर पश्चात्कपाल, ऊपर की ओर पार्श्वकपाल, आगे की

चित्र नं० १८३—शंखिका का बहिःपृष्ठ

---

१. Temporol.
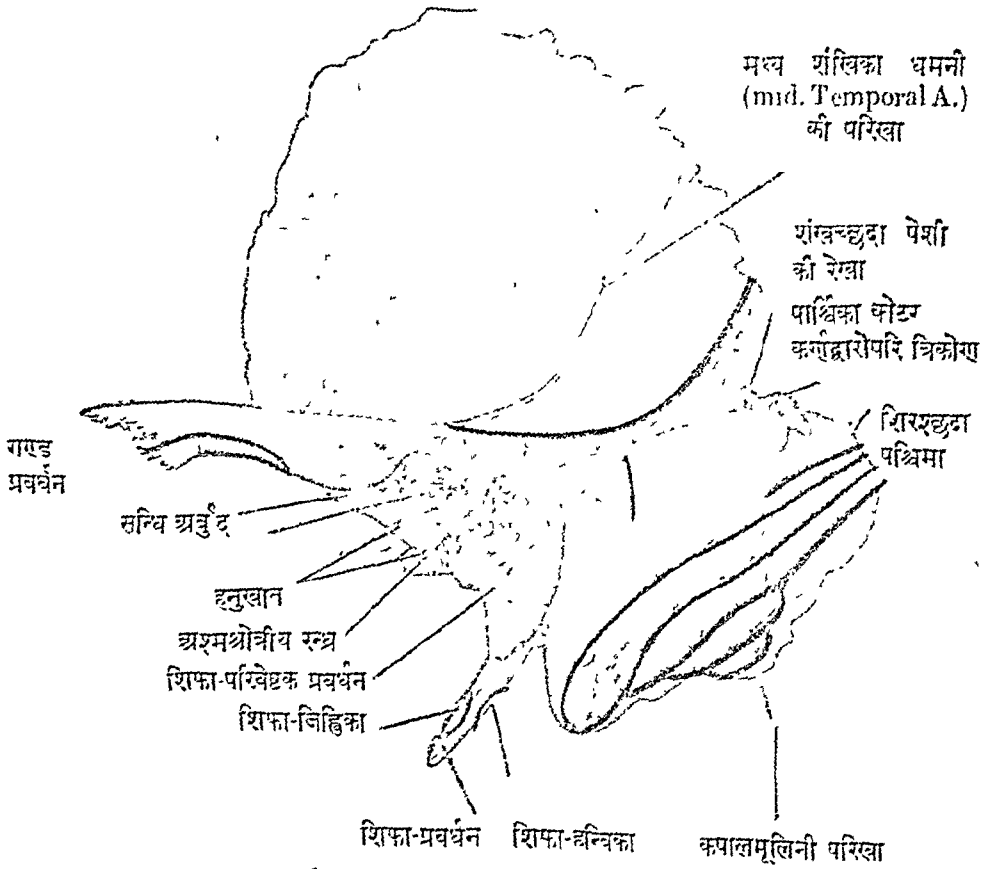
ओर जतूकास्थि और भीतर की ओर जतूका और पश्चात्कपाल अस्थियाँ रहती हैं। यह अस्थि पाँच भागों में विभक्त है—जिनके नाम शङ्खफलक, अश्मकूट, कर्णमूल भाग, श्रोत्रीय भाग और शिफ़ा-प्रवर्धन है।

शङ्खफलक[1]—अस्थि का आगे और ऊपर का पतला चपटा भाग शङ्खफलक कहलाता है। इसका ऊपर का किनारा पतला, दाँतेदार, वक्र के समान है। फलक का बहिःपृष्ठ चिकना और कुछ उन्नतोदर है जो शङ्खखात का एक भाग बनाता है और शङ्खच्छदा पेशी से ढका रहता है। इसके पिछले भाग में एक या अधिक परिखाएँ मध्यशङ्खिका[2] धमनी तथा उसकी शाखाओं के लिए पाई जाती हैं। इस परिखा से कुछ पीछे की ओर एक तीरणिका दिखाई देती है जो गण्डप्रवर्धन[3] की ऊर्ध्व धारा से आरम्भ होकर ऊपर के किनारे की ओर मुड़ती हुई चली जाती है। इस पर शङ्खच्छदा कला लगी हुई है। यह तीरणिका शङ्खखात की पश्चिम सीमा है। शङ्खच्छदा पेशी भी यहाँ समाप्त हो जाती है। इस तीरणिका को शंखलोरणिका या कर्णमूलोत्तर तीरणिका[4] कहते हैं।

इस पृष्ठ के निचले भाग से एक प्रवर्धन आगे की ओर को निकला हुआ है। इसको **गण्ड-प्रवर्धन** कहते हैं। इस प्रवर्धन के दो भाग हैं। प्रथम भाग, जो अस्थि से जुड़ा हुआ है, बाहर की ओर को निकला हुआ है। इसके ऊर्ध्व और अधः दो पृष्ठ हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ नतोदर है और फलक के बहिःपृष्ठ से मिला हुआ है। अधःपृष्ठ फलक से दो मूलों से निकलता है, जो पूर्व और पश्चिम मूल कहलाते हैं। तनिक आगे चलकर ये दोनों मूल आपस में मिल जाते हैं। यह भाग थोड़ी दूर आगे चलकर स्वयं अपने ही अक्ष पर सामने की ओर को मुड़ जाता है। इस कारण प्रथम भाग का ऊर्ध्वपृष्ठ, जो ऊपर की ओर को रहता है, दूसरे भाग में अन्तःपृष्ठ हो जाता है। इसी प्रकार प्रथम भाग का अधःपृष्ठ जो हनुखात[5] की पूर्व सीमा बनाता है दूसरे भाग में बहिःपृष्ठ हो जाता है। पृष्ठों के अतिरिक्त ऊर्ध्व और अधः दो धाराएँ होती हैं। ऊर्ध्वधारा पतली, नुकीली और कुछ उन्नतोदर है। इस पर शङ्खिका कला लगती है। अधोधारा छोटी होती है। यह नतोदर और मोटी है। इस पर **हनुकूटकर्षणी**[6] के कुछ सूत्र लगते हैं। अन्तःपृष्ठ पर भी इसी पेशी का कुछ भाग लगा हुआ है किन्तु बहिःपृष्ठ केवल चर्म से आच्छादित है। इस प्रवर्धन में दो प्रान्त या सिरे हैं। पूर्व प्रान्त में दनदाने दिखाई देते हैं जो गण्डास्थि से मिला रहता है। पश्चात् प्रान्त में दो मूल हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। प्रवर्धन की ऊर्ध्वधारा का यह भाग जो पीछे की ओर अस्थि के ऊपर चला गया है पश्चिम मूल कहलाता है। यह भाग **कर्ण बहिर्द्वार**[7] के ऊपर होता हुआ कर्णमूलोत्तर तीरणिका से जाकर मिल जाता है। पूर्वमूल प्रवर्धन की अधोधारा से मिला हुआ है और पीछे की ओर सन्ध्यर्बुद[8] में अन्त होता है जो हनुखात की पूर्व सीमा बनाता है और हन्वस्थि के हनुकूट को आगे की ओर फिसलने से रोकता है। शरीर में इस स्थान पर स्नायु का एक पत्र रहता है।

इस अर्बुद के भीतरी भाग के तनिक नीचे की ओर एक त्रिकोणाकार चिकना स्थान है जो **शङ्खाधर खात**[9] का एक भाग है।

अर्बुद के पीछे की ओर एक गहरा चौड़ा स्थान है जो **हनुखात** कहलाता है। इस खात में हन्वस्थि का शिर रहता है। खात के आगे की ओर अर्बुद, पीछे की ओर श्रोत्रीय भाग का पूर्व पट्ट, जो इस खात को श्रोत्रीय रन्ध्र से भिन्न करता है, और ऊपर की ओर फलक का कुछ भाग रहता है।

---

१. Squama. २. Middle Temporal Art. ३. Zygomatic Arch. ४. Temporal line or Supramastoid crest. ५. Mandipular Fossa. ६. Massete. ७. External meatus. ८. Articular Tubercle. ९. Infratemporal fossa.

इस खात के बीच में एक रन्ध्र और लम्बा छिद्र होता है जिसे अश्मश्रोत्रीय रन्ध्र[1] कहते हैं जो अस्थि के भीतर तक चला जाता है। इसमें मुद्गर[2] का पूर्वप्रवर्धन रहता है और उसके द्वारा अन्तर्हानव्या धमनी की श्रोत्रीय शाखा[3] जाती है।

कर्णद्वार के पिछले भाग से ऊपर की ओर एक चिकना नतोदर त्रिकोणाकार स्थान है जिसको कर्णद्वारोपरि त्रिकोण[4] अथवा कर्णमूलखात कहते हैं। कर्णद्वार के पीछे और कर्णमूलोत्तर तीरणिका के नीचे की ओर फलक एक नुकीले प्रवर्धन के स्वरूप में कर्णकुहर[5] की पश्चात्-भित्ति बनाने में भाग लेता है। यह प्रवर्धन अस्थि के भीतर श्रोत्रीय भागों से मिला रहता है।

हनुखात का अग्रिम भाग, जहाँ हन्वस्थि का शिर रहता है, शरीर में स्नायु के द्वारा ढका रहता है। किन्तु पश्चिम भाग, जो कर्णकुहर की पूर्व भित्ति के द्वारा बनता है, हन्वस्थि के शिर के साथ सम्पर्क नहीं करता। उसमें प्रायः कर्णमूल ग्रन्थि[6] का कुछ भाग रहता है।

अन्तःपृष्ठ—यह नतोदर है। इसमें मस्तिष्क के शङ्खीय भागों के रहने के लिए नतोदर खात हैं और मस्तिष्कच्छदा मध्यमा[7] की शाखाओं के लिए भी गहरे चिह्न बने हुए हैं।

धारा—अस्थि में केवल ऊर्ध्व और पूर्वाधोधारा है। ऊर्ध्वधारा पतली, उन्नतोदर और नुकीली है। इस धारा के बनाने में अस्थि का अन्तःपट्ट कोई भाग नहीं लेता। वह भीतर की ओर नीचे ही समाप्त हो जाता है। इस कारण बहिःपट्ट पार्श्वकपाल के अन्तःपट्ट पर चढ़ा रहता है।
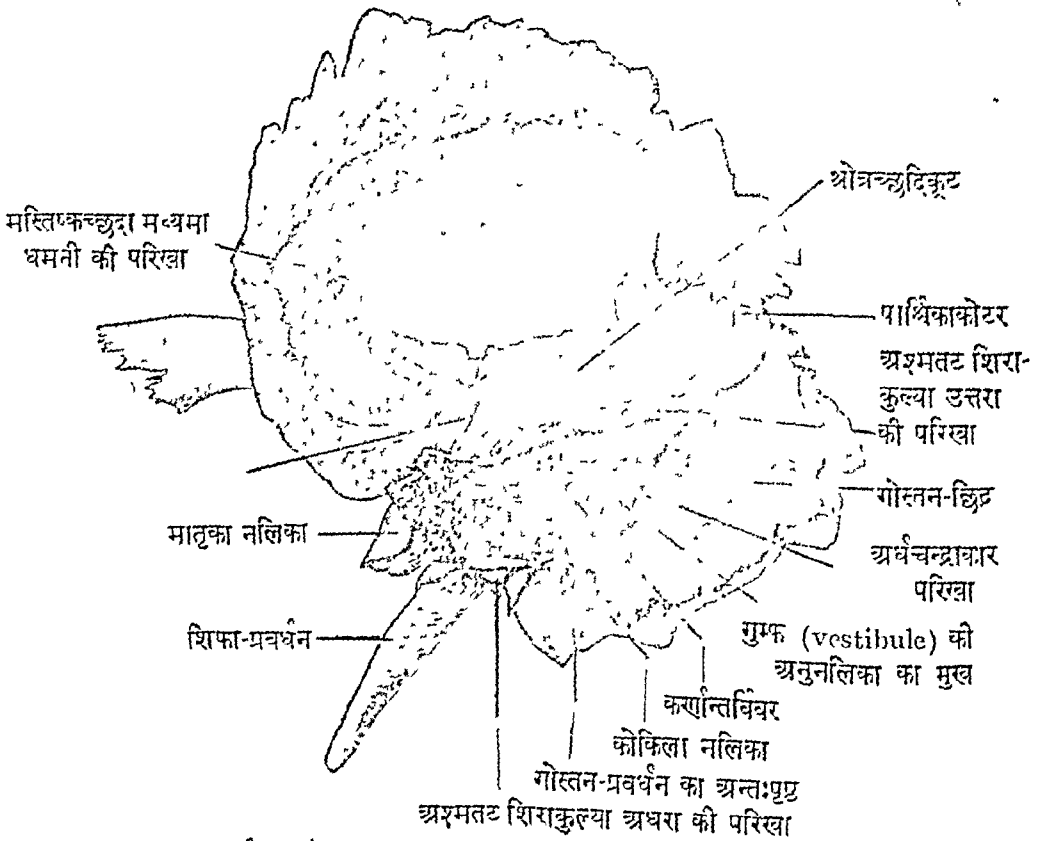
चित्र नं० १८४—शंखास्थि का अन्तः या मस्तिष्कीय पृष्ठ

---

१. Petrotympanic fissure. २. Malleus. ३. Tympanic branch of Internal mexillary artery. ४. Suprameatal Triangle. ५. Tympanic cavity. ६. Parotid gland. ७. Middle meningeal artery.

पीछे की ओर एक धारा कर्णमूल भाग की ऊर्ध्वधारा के साथ मिल जाती है। जहाँ दोनों धाराएँ मिलती है वहाँ पर यह धारा नत हो जाती है और उस स्थान पर एक गढ़ा दिखाई देता है।

आगे की ओर यह धारा पूर्वाधोधारा के साथ मिली हुई है जो आगे की ओर नीचे के भाग में चौड़ी और मोटी हो जाती है। इसका ऊपरी भाग बहिःपट्ट और नीचे का भाग अन्तःपट्ट से बनता है। यह धारा जतूकास्थि के बृहत् पक्ष से मिली रहती है।

श्रोत्रीय भाग—यह छोटा सा भाग शङ्खफलक और कर्णमूल भाग के बीच में नीचे की ओर एक मुड़े हुए अस्थि-पत्र के रूप में स्थित है जो एक चौड़े अण्डाकार और गोल रन्ध्र का, जिसको कर्ण बहिर्द्वार कहते है, पूर्व भाग बनाता है। इसमे दो पृष्ठ है। जो पीछे और ऊपर कर्णविवर के भीतर की ओर है वह पश्चिमोर्ध्व कहलाता है। नीचे का पृष्ठ जो हनुखात का पश्चिम भाग बनाता है पूर्वाधःपृष्ठ कहा जाता है। कुछ लेखकों ने इनको पूर्व और पश्चिम पृष्ठ भी कहा है।

पश्चिमोर्ध्वपृष्ठ गहरा और नतोदर है और अस्थिकृत बहिः कर्णविवर की पूर्वभित्ति, तल और पश्चिम भित्ति का कुछ भाग बनाता है। भीतर की ओर इसमें एक छोटी परिखा दिखाई देती है जो **पटहनेमि**[१] कहलाती है। इस पर कर्णपटह[२] का कुछ भाग लगा रहता है।

पूर्वाधःपृष्ठ कुछ नतोदर और चतुष्कोणाकार है और हनुखात की पश्चिम सीमा बनाता है। इसमें तीन धाराएँ हैं।

ऊर्ध्वधारा ऊपर की ओर फलक से मिली रहती है। इसका भीतरी भाग श्रोत्रीय अश्म रन्ध्र को पीछे की ओर से सीमित करता है। अधोधारा का भीतरी भाग पतला और नुकीला है किन्तु बाहर की ओर कर्णमूलपिण्ड की ओर पहुँचकर यह दो भागों मे विभक्त हो जाता है जिनके बीच से शिफा-प्रवर्धन निकलता है। इस कारण यह भाग **शिफा-परिवेष्टक प्रवर्धन**[३] कहलाता है। पार्श्वधारा मोटी, खुरदरी और मुड़ी हुई है और सूक्ति-निर्मित कर्ण-विवर के साथ मिली रहती है। इसको श्रोत्रीय प्रवर्धन भी कहते हैं।

इस धारा का वह भाग जो एक पत्र के स्वरूप में पीछे और ऊपर की ओर को मुड़ता है अपने नीचे के भाग से शङ्खास्थि के कर्णमूल भाग से और ऊपर के भाग से फलक के अधोगामी भाग से मिलता है। उसके और कर्णमूल भाग के बीच मे बहुधा एक सूक्ष्म रन्ध्र रह जाता है। इसको **श्रोत्रीय कर्णमूल रन्ध्र**[४] कहते हैं।

कर्णबहिर्विवर[५]—यह एक आधे इंच के लगभग लम्बा छिद्र या द्वार है जो बाहर से भीतर और कुछ आगे की ओर को जाता है। विवर कुछ आगे और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ भी है जिससे उसकी नीचे की भित्ति कुछ उन्नतोदर हो गई है। इस विवर की पूर्व भित्ति, पश्चिम भित्ति के नीचे का भाग और अधोभित्ति श्रोत्रीय भाग के पट्ट से बनी हुई है। विवर की ऊर्ध्व भित्ति अथवा छत और पश्चिम भित्ति का शेष भाग अस्थिफलक से बनता है। विवर शरीर में भीतर की ओर कर्णपटह से परिमित होता है। विवर का बहिर्द्वार श्रोत्रीय भाग से नीचे और आगे की ओर तथा गण्डक-प्रवर्धन के पश्चिम मूल से ऊपर की ओर सीमित है। यह द्वार सूक्ति-निर्मित भाग से मिला रहता है। द्वार का ऊपरी भाग नीचे के भाग की अपेक्षा बाहर की ओर को अधिक बढ़ा हुआ है किन्तु उसका अन्तर्द्वार इतना टेढ़ा है कि अधोभित्ति की लम्बाई ऊर्ध्व भित्ति के बराबर हो जाती है। गण्डक-प्रवर्धन

---

१. Tympanic Sulcus. २. Tympanic membrane. ३. Vaginalis processus styloidei. ४. Tympano-mastoid fissure. ५. External acoustic meatus.

के पश्चिम मूल के नीचे विवर के बहिर्द्वार के ऊपर कभी-कभी एक छोटा प्रवर्धन दिखाई देता है जिसको द्वारोपरि कण्टक[१] कहते हैं।

कर्णमूल भाग[२]—यह शङ्खास्थि का पीछे का भाग है जो फलक और श्रोत्रीय भागों के पीछे रहता है। इसमें बहिः और अन्तः दो पृष्ठ और ऊर्ध्व और अधः दो धाराएँ होती हैं।

बहिःपृष्ठ खुरदरा है। इस पर **शिरच्छदा पश्चिमा**[३] और **कर्ण पश्चिमा**[४] पेशियाँ लगी हुई हैं। पृष्ठ के पिछले भाग में एक बड़ा छिद्र दिखाई देता है। इसको कर्णमूल छिद्र[५] कहते हैं। इसके द्वारा एक शिरा करोटि के भीतर रहनेवाली अनुपार्श्विक शिराकुल्या में जाती है। इस छिद्र की स्थिति में भिन्न-भिन्न अस्थियों में बहुत अन्तर पाया जाता है। कभी-कभी यह अनुपस्थित होता है; अथवा इस अस्थि में उपस्थित न होकर पश्चात्कपाल में या पश्चात्कपाल और पार्श्वकपाल के संयोग-स्थान में पाया जा सकता है।

पृष्ठ के अधोभाग से एक चौड़ा भाग नीचे की ओर को निकला हुआ है। इसको **गोस्तन-प्रवर्धन**[६] कहते हैं। इसके आकार में भी बहुत भिन्नता पाई जाती है। इस प्रवर्धन के पीछे की ओर एक गहरी खाँच या कोटर है जो **कर्णमूल कोटर**[७] या **द्विगुम्फिका खात**[८] कहलाता है। इसमें **द्विगुम्फिका**[९] पेशी लगती है। गोस्तन-प्रवर्धन पर **उरःकर्णमूलिका**[१०], **शिरोग्रीवविवर्तनी उत्तरा**[११] और **पृष्ठदण्डिका शिरोयुजा**[१२] पेशियाँ लगी हुई हैं। द्विगुम्फिका खात के पीछे और भीतर की ओर एक पतली नलिका है जिसमें कपालमूलिनी धमनी रहती है। इस नलिका को **कपालमूलिनी नलिका**[१३] कहते हैं।

अन्तःपृष्ठ नतोदर और पीछे की ओर को मुड़ा हुआ है। जहाँ यह पृष्ठ अश्मकूट के साथ मिलता है उसके पास एक गहरी चौड़ी परिखा है जिसको **अर्धचन्द्राकार परिखा**[१४] कहते हैं। इसमें अनुपार्श्विक शिराकुल्या का कुछ भाग रहता है। इस परिखा में कर्णमूल-छिद्र का भीतरी द्वार भी दिखाई देता है।

धारा—ऊर्ध्वधारा छोटी, उन्नतोदर और मोटी है। इस पर बड़े-बड़े दाँते हैं जो पार्श्वकपाल के कर्णमूल कोण के साथ मिले रहते हैं। **पश्चिमधारा** भी मोटी और दाँतेदार है और पश्चात्कपाल की अधोधारा से मिलती है।

यदि गोस्तन-प्रवर्धन को काटकर देखा जाय तो उसमें बहुत से खाली कोष्ठ मिलेंगे। इनके आकार में भिन्नता होती है। जो कोष्ठ प्रवर्धन के ऊपरी भाग में स्थित हैं उनका आकार बड़ा है और उनमें वायु भरी रहती है। किन्तु नीचे की ओर इन कोष्ठों का आकार छोटा हो जाता है। जो कोष्ठ प्रवर्धन के सबसे निचले भाग में या उसके शिखर में स्थित होते हैं वे बहुत छोटे होते हैं और उनमें मज्जा भरी रहती है। कभी-कभी इस भाग में कोष्ठ अनुपस्थित होते हैं जिससे कर्णमूल का यह भाग बिलकुल ठोस हो जाता है। ये **कर्णमूलकोष्ठ**[१५] कहलाते हैं।

अस्थि को काटने से कर्णमूल कोष्ठों के अतिरिक्त किन्तु उनके पास ही अस्थि के ऊपरी और सामने के भाग में एक बड़ा त्रिकोणाकार या क्रमहीन रिक्त कोष्ठ पाया जाता है। इसको **कर्णकोटर**[१६] कहते हैं। यह एक कोटर है जो शेष कोष्ठों से भिन्न है किन्तु एक पतली नलिका द्वारा उनके साथ

---

१. Suprameatal spine. २. Mastoid portion. ३. Occipitalis. ४. auricularis Posterior. ५. Masstoid foramen. ६. Mastoid process. ७. Mastoid notch. ८. Digastric fossa. ९. Digastricus. १०. Sterno-cleido mastoideus. ११. Splenius capittis. १२. Lougissimus capitis. १३. Occipital groove. १४. Sigmoid sulcus. १५. Mastoid air sinuses. १६. Tympanic antrum.

सम्बन्धित है। इस कारण उसके भीतर कर्णमूल कोष्ठों के समान वायु भरी रहती है और वह श्लैष्मिक कला से भी वेष्टित होता है।
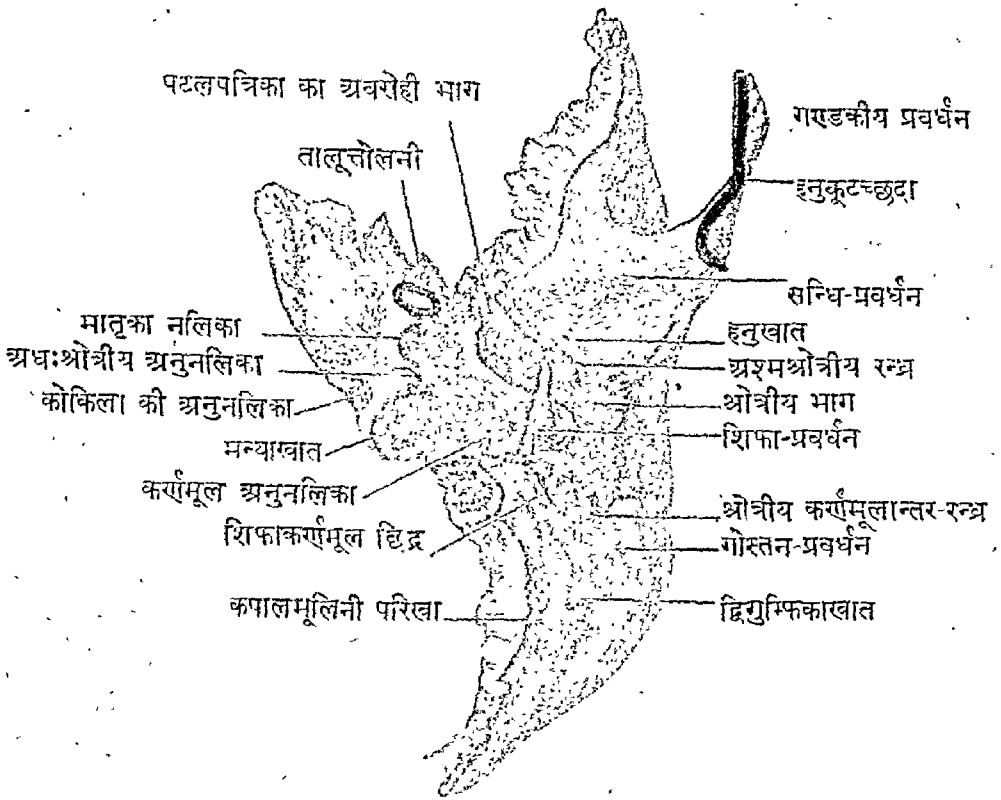
चित्र नं० १८५—शंखिका का अधःपृष्ठ

जब अस्थि सम्पूर्ण होती है तो कर्णकोटर अस्थि के भीतर रहती है। इसके ऊपर अस्थि का एक पतला पट्ट रहता है जो इस कोटर को करोटि के तल के मस्तिष्कखातों से भिन्न करता है। इस पट्ट को **पटलपत्रिका**[1] कहते हैं। कुहर के नीचे गोस्तन-प्रवर्धन स्थित है जो बाहर की ओर शङ्खफलक के निचले भाग से और भीतर की ओर अन्तःकर्ण की अर्धचन्द्र नलिकाओं[2] से सीमित है। इन नलिकाओं का कुछ भाग कोटर के भीतर को निकला रहता है। आगे की ओर कोटर मध्यकर्ण के उस भाग से मिला रहता है जिसे पटलगुहा[3] कहते हैं। कर्णमूल के वायुकोष्ठ वास्तव में कर्णकोटर से, जो स्वयं एक बहुत बड़ा वायुकोष्ठ है, उत्पन्न होते हैं। जन्म के पश्चात् इन कोष्ठों का बनना आरम्भ होता है। धीरे-धीरे ये बढ़ते रहते हैं। युवावस्था पर पहुँचकर इनकी वृद्धि पूर्ण हो जाती है।

अश्मकूटभाग[4]—यह अस्थि का मोटा त्रिकोणाकार भाग है जो एक मीनार के समान शङ्खफलक और कर्णमूल भाग के सङ्गम-स्थान से भीतर की ओर को निकला हुआ है। यह भाग बाहर की ओर जहाँ से वह आरम्भ होता है चौड़ा है किन्तु ज्यों-ज्यों भीतर, आगे और कुछ ऊपर की ओर को जाता है त्यों-त्यों पतला होता चला जाता है। इस कारण इसकी उपमा मीनार से दी

---

१. Tegmen Tympani. २. Semicircular canal. ३. Attic or Epitympanic recess. ४. Petrous Portion.

जाती है। इसका सबसे आगे का पतला भाग शिखर और पीछे का चौड़ा भाग मूल कहलाता है। इनके अतिरिक्त इसमें तीन पृष्ठ और तीन कोण या धाराएँ होती हैं।

पृष्ठों को पूर्व, पश्चिम और अधः पृष्ठ कहते हैं। पूर्वपृष्ठ ऊपर की ओर रहता है और करोटितल या मध्यखात का पश्चिम भाग बनाने में सहायता देता है। पश्चिमपृष्ठ पीछे की ओर रहता है। वह पश्चिमखात की अग्रभित्ति बनाता है। तीसरा अधःपृष्ठ इन दोनों से छोटा है और अस्थि के नीचे की ओर देखा जा सकता है। पूर्व और पश्चिम दोनों पृष्ठ चिकने हैं, यद्यपि उन पर कई स्थानों में उत्सेध और खात इत्यादि दिखाई देते हैं। अधःपृष्ठ अत्यन्त खुरदरा और विषम है। उस पर कई खात, छिद्र, और नलिकाएँ दीखती हैं। कोण या धारा पूर्व, पश्चिम और ऊर्ध्व धारा के नाम से पुकारी जाती हैं।

पूर्वधारा—यह वह धारा है जिसका पिछला भाग शङ्खफलक के साथ मिला हुआ है किन्तु आगे का भाग स्वतन्त्र और खुरदरा है। करोटि में यह भाग जतूकास्थि के बृहत्पक्ष के शृङ्ग के साथ मिला रहता है जो इस धारा और शङ्खफलक की पूर्वधारा के अधोभाग के बीच के कोण में रहता है। इस कोण में ध्यान से देखने से दो सूक्ष्म नलिकाएँ दिखाई देती हैं जो एक पटल द्वारा एक दूसरे से विभक्त रहती हैं। ये नलिकाएँ पीछे और बाहर की ओर मध्य कर्ण तक जाती हैं। ऊपरी नलिका में **पटहोत्तंसनी**[1] पेशी और नीचे की अर्धनलिका में **पटहपूरणिका नलिका**[2] का अस्थि-निर्मित भाग रहता है।

पश्चिमधारा—यह धारा नीचे की ओर रहती है और दो भागों में विभक्त है। धारा के भीतरी भाग पर एक हलकी सी परिखा है जो पश्चात्कपाल पर स्थित समान परिखा के साथ मिलकर एक पूर्ण नलिका बना देती है जिसमें **अश्मतटिनी शिराकुल्या अधरा**[3] रहती है। यह भाग, जो मन्याखात से अस्थि के शिखर तक जाता है, पश्चात्कपाल के मूलभाग के साथ मिला रहता है। इसके बाहरी भाग में **मातृका-नलिका**[4] के पीछे की ओर एक नतोदर स्थान है जो **मन्याखात**[5] कहलाता है। यह खात पश्चात्कपाल के **मन्याकोटर**[6] के साथ मिलकर **मन्याछिद्र**[7] बनाता है। कभी-कभी इस खात के बीच से एक कण्टक निकलता हुआ दिखाई देता है जो छिद्र को दो भागों में विभक्त कर देता है।

ऊर्ध्वधारा पूर्व और पश्चिम पृष्ठ के बीच के कोण को कहते हैं जो नुकीला है और भीतर की ओर रहता है। यह अन्य धाराओं से अधिक लम्बी है। इसके ऊपर एक लम्बी परिखा है जिसमें **अश्मतटिनी शिराकुल्या उत्तरा**[8] रहती है और **मस्तिष्क-जवनिका**[9] कला का कुछ भाग उस पर लगता है।

शिखर—अस्थि का आगे का पतला भाग शिखर कहलाता है। यह नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर से आगे को अधिक प्रवर्धित है। करोटि में यह भाग जतूका के बृहत् पक्ष की पश्चिमधारा और पश्चात्कपाल के मूल भाग के बीच के कोण में रहता है। इसमें मातृका नलिका का आन्तरिक छिद्र दिखाई देता है।

मूल या आधार चौड़ा और मोटा होता है और शङ्खफलक तथा कर्णमूल भाग के साथ मिला रहता है।

---

१. Tensor Tympanii. २. Auditory Tube. ३. Inferior Petrosal siinus. ४. Carotid canal. ५. Jugular fossa. ६. Jugular notch. ७. Jugular foramen. ८. Superior Petrosal sinus. ९. Tentorium cerebelli.

पूर्वपृष्ठ—यह पृष्ठ ऊपर और आगे की ओर रहता है और शिखर की अपेक्षा मूल के पास, जहाँ यह भाग फलक और कर्णमूल भाग से मिलता है, अधिक चौड़ा है। जहाँ यह भाग फलक के साथ सम्पर्क करता है वहाँ **अश्म-फलक सीमन्त**[1] के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। यह पृष्ठ फलक के अन्तःपृष्ठ से मिला हुआ है और करोटितल के मध्यखात का पश्चिम भाग बनाता है। इस पर मस्तिष्क के चक्राङ्गों के रहने के लिए खात या अन्य चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त इस पृष्ठ में ६ विशेष ध्यान देने योग्य रचनाएँ दीखती हैं—

(१) अस्थि के शिखर पर मातृका नलिका के द्वार के छत पर एक छोटा हलका खात है जो **त्रिमूलिकाखात** या चिह्न[2] कहलाता है। इसमें **अर्धचन्द्र-नाड़ी-गण्ड**[3] रहता है।

(२) शिखर के पास त्रिमूलिकाखात के बाहर की ओर मातृका नलिका की छत के अपूर्ण होने से वहाँ एक अर्धच्छिद्र सा बन जाता है जो नीचे की ओर मातृका नलिका में खुलता है।

(३) इस अर्धछिद्र के पीछे की ओर एक पतली परिखा है जो एक सूक्ष्म छिद्र द्वारा अस्थि के भीतर चली गई है। यह छिद्र मौखिक नलिका का द्वार है और **कर्णिकारन्ध्र**[4] कहलाता है। यह नलिका, जो पृष्ठ पर परिखा के रूप में आरम्भ होती है, कुछ टेढ़ी है और बाहर की ओर को मुड़ी हुई रहती है। इस नलिका-द्वार के द्वारा अश्मकूटिनी दीर्घोत्ताना[5] नाड़ी निकलती है और मस्तिष्कच्छदा मध्यमा धमनी की अश्मीय शाखा[6] भीतर आती है।

(४) मौखिक नलिका-द्वार के सन्निकट किन्तु पार्श्व में बाहर की ओर एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र है जिसके द्वारा अश्मकूटिनी ह्रस्वोत्ताना नाड़ी[7] बाहर जाती है। इस छिद्र से आगे की ओर एक परिखा दिखाई देती है जिसके नीचे पटहोत्तंसनी[8] के लिए अर्धनलिका स्थित है।

(५) पृष्ठ के लगभग बीच में किन्तु भीतर की ओर एक स्पष्ट उत्सेध दिखाई देता है जिसको **श्रोत्रच्छदिकूट**[9] कहते हैं। इस स्थान पर अस्थि के भीतर **ऊर्ध्व अर्धवृत्ताकार नलिका**[10] **या शुण्डिका** स्थित है। उसी के कारण इस स्थान पर अस्थि ऊपर की ओर को उठी हुई है।

(६) इस कूट के कुछ आगे किन्तु बाहर की ओर एक हलका सा गढ़ा है। यह अस्थि के भीतर श्रोत्रीय कुहर की स्थिति का सूचक है। इस स्थान पर अस्थि बहुत ही पतली हो गई है जिसके द्वारा श्रोत्रीय कुहर करोटि के मध्यखात से भिन्न रहता है। अस्थि के इस पतले भाग को, जो श्रोत्रीय कुहर की छत बनाती है, **पटलपत्रिका**[11] कहते हैं। पटहोत्तंसनी की नलिका की छत भी इसी भाग से बनती है।

प्रायः श्रोत्रच्छदिकूट के पीछे की ओर एक चौड़ा खात रहता है। इस पर मस्तिष्क का कुछ भाग आश्रित होता है।

पश्चिमपृष्ठ—यह पूर्वपृष्ठ से छोटा और कुछ मुड़ा हुआ है और करोटितल के पश्चिमखात के आगे की ओर रहता है। पूर्वपृष्ठ की भाँति इस पृष्ठ पर भी मस्तिष्क के चक्राङ्गों के लिए खात और चिह्न हैं। इस पृष्ठ में आगे की ओर एक बड़ा छिद्र है जो **कर्णान्तविवर**[12] का द्वार[13] है। यह आधे इंच के लगभग एक लम्बी नलिका है जो आगे से बाहर और पीछे की ओर को जाती है। इसमें

---

१. Petrosquamosal suture. २. Trigeminal fossa. ३. Semilunar ganglion. ४. Hiatus of the facial canal. ५. Greater superficial petrosal Nerve. ६. Petrosal branch of middle meningeal Art. ७. Lesser superficial Petrosal Nerve. ८. Tensor Tympanii. ९. Emminencia Arcuata. १०. Superior semicircular canal. ११. Tegmen tympanii. १२. Internal acoustic meatus. १३. Porus acousticus Internus.

होकर मौखिक और श्रोत्रनाड़ी[1] तथा मूलधमनी की कर्णान्तरिक शाखा[2] जाती है। इसी नलिका का द्वार पश्चिम पृष्ठ पर दिखाई देता है जिसके किनारे चौड़े और गोल हैं। इस नलिका का बाहरी सिरा या प्रान्त, जो अस्थि के भीतर बाहर की ओर को रहता है, एक खड़े हुए पट्ट या पटल के द्वारा अन्तःकर्ण से पृथक् रहता है। पटल कई प्रान्तों में विभक्त है जिनमें कई छिद्र पाये जाते हैं।

पटल में मध्यभाग के तनिक ऊपर की ओर एक ओर से दूसरी ओर को जाती हुई एक तीरणिका दिखाई देती है जिसको अनुप्रस्थ तोरणिका[3] कहते हैं। इसके द्वारा पटल दो भागों में विभक्त हो जाता है, जिनमें से नीचे के भाग की अपेक्षा ऊपर का भाग छोटा है। इस भाग में छिद्रों के तीन समूह पाये जाते हैं। एक समूह तीरणिका के निचले भाग के नीचे अधःसुषिरप्रान्त[4] में स्थित है। इसमें कई छिद्र हैं जिनके द्वारा अन्तःकर्ण के कन्दुकों[5] की नाड़ियाँ जाती हैं। इस समूह के पीछे की ओर एक छिद्र स्थित है जो छिद्रविशिष्ट[6] कहलाता है। इसमें होकर पश्चिम अर्धवृत्ताकार नलिका या शुण्डिका[7] को नाड़ियों की शाखाएँ जाती हैं। प्रथम सुषिर समूह के आगे की ओर दूसरा सुषिर-समूह स्थित है। इस समूह के सूक्ष्म छिद्र चक्र के रूप में एक मध्यस्थ नलिका के चारों ओर स्थित हैं। इन छिद्रों के समूह को सुषिरचक्र[8] और नलिका को कोक्लियामध्यस्थ नलिका[9] कहा जाता है। इन छिद्रों में होकर नाड़ियों की शाखाएँ नलिका में होती हुई कोक्लिया में पहुँच जाती हैं। तीसरा समूह अनुप्रस्थ तीरणिका के ऊपर पीछे की ओर स्थित है। इस स्थान को ऊर्ध्व-

चित्र नं० १८६—कर्णान्तरिक विवर के द्वार का दृश्य
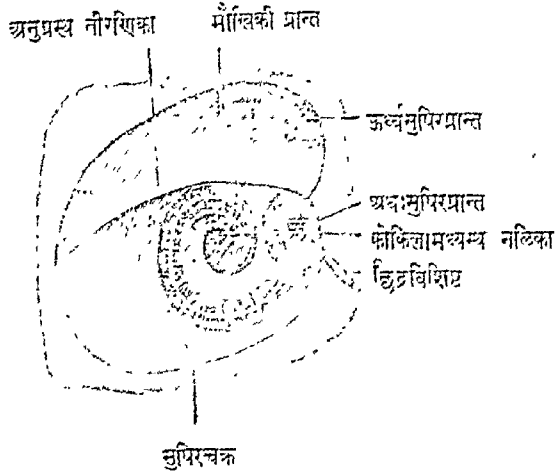
सुषिरप्रान्त[10] कहते हैं। इसमें कई सूक्ष्म छिद्र स्थित हैं जिनके द्वारा अन्तःकर्ण की कलामय तुम्बिका[11] और ऊर्ध्व अर्धवृत्ताकार नलिका को नाड़ियाँ जाती हैं। इस प्रान्त के आगे की ओर एक बड़ा छिद्र है जहाँ से मौखिकी नाड़ी की नलिका आरम्भ होती है।

जहाँ पर कर्णान्तर्विवर का छिद्र स्थित है उसके बाहर और ऊपर की ओर ऊर्ध्वधारा के पास एक नतोदर स्थान है जो तोरणखात[12] कहलाता है। बाल्यावस्था में यह खात अधिक स्पष्ट होता है। अवस्था

---

१. Auditary Nerve. २. Internal auditary Artery. ३. Crista transversa. ४. Inferior Vestibular area. ५. Saccule. ६. Foramen Singulare. ७. posterior semicircular canal. ८. Tractus spiralis foraminosus. ९. Canalis centralis cochleae. १०. Superior Vestibular area ११. Utricle. १२. Fassa subarcuata

अधिक हो जाने पर यह खात भी अस्पष्ट हो जाता है। इसके ऊपर की ओर अस्थि में कुछ उत्सेध होता है जो अस्थि के भीतर स्थित ऊर्ध्व अर्धवृत्ताकार नलिका से उत्पन्न होता है। इस खात में कभी-कभी एक छिद्र दिखाई देता है जो उस सुरङ्ग का द्वार है जो बाल्यावस्था में इस खात से अर्धवृत्ताकार नलिका के नीचे जाती हुई दिखाई देती है।

विवर के द्वार के कुछ पीछे की ओर एक छोटा रन्ध्राकार छिद्र है जो कभी-कभी अस्थि से ढका रहता है। यह छिद्र उस नलिका का द्वार है जिसके द्वारा अन्तर्लसीकावाहिनी[१], या अन्तर्जलप्रपिका, एक सूक्ष्म धमनी और शिरा जाती है। इस नलिका को गुम्फ की अनुनलिका कहते हैं। इसके ऊपर की ओर एक हलकी-सी तीरणिका है।

अधःपृष्ठ—यह अन्य पृष्ठों से छोटा और अत्यन्त खुरदरा तथा विषम है। यह पृष्ठ करोटि के आन्तरिक पृष्ठ बनाने में कोई भाग नहीं लेता। इसका कुछ भाग अन्य अस्थियों से जुड़ा रहता है और करोटि के बहिःपृष्ठ पर दिखाई देता है। ध्यान से पृष्ठ की परीक्षा करने से उस पर निम्नलिखित रचनाएँ—छिद्र, खात, प्रवर्धन इत्यादि—दिखाई देंगी।

(१) पृष्ठ के लगभग बीच में मातृका नलिका का छिद्र दिखाई देता है जिसमें होकर अन्त-र्मातृका धमनी और मातृका नाड़ी-जाल मस्तिष्क को जाता है। इस नलिका को देखने से विदित होगा कि उसका मार्ग बिलकुल सरल नहीं है। नलिका प्रथम सीधी ऊपर की ओर जाती है किन्तु ½ इंच के लगभग ऊपर जाकर आगे और भीतर की ओर को मुड़ जाती है। अतएव धमनी इत्यादि का भी यही मार्ग होता है।

(२) इस छिद्र के आगे की ओर पृष्ठ के शिखर के पास एक चतुष्कोणाकार विषम प्रान्त है। इस प्रान्त का पूर्व पार्श्विक भाग, जो एक धागे के समान पतला है, जतुका के बृहत् पक्ष की पश्चिमधारा से मिला रहता है। इसकी सहायता से वह परिखा बनती है जिस पर श्रोत्रीय या पटहपूरणिका नलिका का सूक्ति-निर्मित भाग लगता है। इसी भाग पर तालूत्तोलनी[२] पेशी भी लगी रहती है। उसका पश्चिमान्तर्भाग पश्चात्कपाल के साथ सूक्ति या सौत्रिक धातु द्वारा जुड़ा रहता है।

(३) मातृका-द्वार के भीतर की ओर मन्याखात के आगे एक त्रिकोणाकार गहरा स्थान है जिसके तल में एक सूक्ष्म छिद्र दिखाई देता है जो नलिका[३] का द्वार या शम्बूक प्रपिकामुख कहलाता है। इस नलिका में मस्तिष्कच्छदा कला का एक भाग रहता है और उसके द्वारा कोकिला से एक शिरा की शाखा अन्तर्मन्याशिरा[४] को जाती है।

(४) मातृका-द्वार और इस छिद्र के पीछे की ओर एक खात है जो भिन्न-भिन्न अस्थियों में भिन्न-भिन्न आकार का होता है। इसको मन्याखात[५] कहते हैं। इसमें अन्तर्मन्याशिरा का एक भाग रहता है।

(५) मन्याखात के बाहरी भाग में एक छिद्र दिखाई देता है जो कर्णमूलीय अनुनलिका[६] का भीतरी द्वार है।

यह नलिका बाहर की ओर श्रोत्रीय कर्णमूलिकरन्ध्र[७] के भीतर खुलती है। इसके द्वारा दसवीं मस्तिष्कीय नाड़ी की कर्णशाखा भीतर जाती है।

---

१. Ductus endolymphaticus. २. Levator veli palatini. ३. Aqueduct of the cochlea. ४. Internal Jugular vein. ५. Jugular fossa. ६. Mastoid canaliculus. ७. Tympanomastoid fissure.

(६) मन्यात्खात और मातृका-द्वार के बीच में जो अस्थि का भाग है उसमें श्रोत्रानुनलिका अधरा[1] दिखाई देती है जिसमें होकर जिह्वाग्रसनिका नाड़ी की श्रावणी शाखा[2] भीतर जाती है।

(७) मन्यात्खात के पीछे की ओर एक चतुष्कोणाकार खुरदरा स्थान है जो मन्यापृष्ठ[3] कहलाता है। शरीर में यह पृष्ठ पश्चात्कपाल के मन्याप्रवर्धन से मिला रहता है और सूक्तियों से आच्छादित रहता है।

(८) मन्यापृष्ठ के तनिक पीछे और बाहर की ओर एक इंच के लगभग लम्बा एक नोकीला कण्टक है जिसको शिफा-प्रवर्धन[4] कहते हैं। यह नीचे, आगे और भीतर की ओर को निकला हुआ है।

(९) इस प्रवर्धन के मूल के दोनों ओर दो हलकी सी तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं जो एक ही तीरणिका के दो ओष्ठों में विभक्त होने से बनी मालूम होती हैं। यह शिफा-परिवेष्टक प्रवर्धन[5] कहलाता है जो मातृका-द्वार तक चला जाता है।

(१०) शिफा-प्रवर्धन और कर्णमूल-पिण्डक के बीच में एक बड़ा छिद्र स्थित है जो शिफाकर्णमूलान्तरीयछिद्र[6] कहलाता है। यह मौखिक नलिका का द्वार है जिसके द्वारा मौखिकी नाड़ी[7] और शिफाकर्णमूलान्तरीया[8] धमनी निकलती है।

(११) इस छिद्र के बाहर की ओर श्रोत्रीय भाग और कर्णमूल-पिण्डक के बीच में श्रोत्रीय कर्णमूलिकरन्ध्र है जिसके द्वारा दसवीं मस्तिष्कीय नाड़ी की कर्ण शाखा बाहर निकलती है।

शिफा-प्रवर्धन—जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह पतला नुकीला प्रवर्धन अश्मकूट के अधःपृष्ठ से निकलता है और नीचे, आगे और भीतर की ओर को मुड़ा रहता है। इसके मूल के चारों ओर अश्मकूट का शिफा-परिवेष्टक भाग रहता है। इसके अग्रभाग पर शिफाकण्ठिक[9] और शिफाहन्विक[10] बन्धन तथा शिफारसनिका[11], शिफाकण्ठिका[12] और शिफागलान्तरीया[13] पेशियाँ लगती हैं।

अस्थि-विकास—शङ्खास्थि आठ केन्द्रों से विकसित होती है। शङ्खफलक का विकास कला से होता है। इस भाग में विकासकेन्द्र भ्रूणावस्था के दूसरे मास में गण्डक प्रवर्धन के मूल के पास निकलता है। कर्णमूल और अश्मकूट भाग सूक्ति से विकसित होते हैं। भ्रूणावस्था के छठे मास में इन भागों में चार विकास-केन्द्र उदय होते हैं। एक केन्द्र श्रोत्रच्छदिकूट के पास निकलता है जिससे कर्णान्तर्विवर के आगे और ऊपर का अस्थि के शिखर तक का भाग विकसित होता है। कोकिला, ऊर्ध्व अर्धवृत्ताकार नलिका, गुम्फ और श्रोत्रीय कुहर की भीतरी या मध्यस्थ भित्ति भी इसी केन्द्र से बनती है। दूसरा केन्द्र कोकिलाछिद्र के पास उदय होता है और शीघ्र ही छिद्र के चारों ओर फैल जाता है। इस छिद्र से श्रोत्रीय कुहर की अधोभित्ति और फ़र्श तथा गुम्फ का कुछ भाग बनता है। मातृका नलिका के चारों ओर का अस्थि-भाग भी इसी केन्द्र से बनता है। कोकिला का नीचे और बाहर का भाग इस केन्द्र द्वारा आच्छादित हो जाता है और इससे निर्मित अस्थि कर्णान्तर्विवर के नीचे तक फैल जाती है। तीसरे केन्द्र से श्रोत्रीय कुहर की छत बनती है और चौथा केन्द्र पश्चिम अर्धवृत्ताकार नलिका के पास उदय होकर कर्णमूलपिण्डको बनाता है।

---

१. Inferior tympanic canaliculus. २. Tympanic branch of Glosso-pharyngeal N. ३. Jugular surface. ४. Styloid Process. ५. Vaginal Processus styloidei. ६. Stylomastaid foramen. ७. Facial Nerve. ८. Stylomastoid art. ९. Stylohyoid Lig. १०. Stylomandibular Lig. ११. Styloglossus. १२. Stylo-hyoid. १३. Stylopharyngeus.
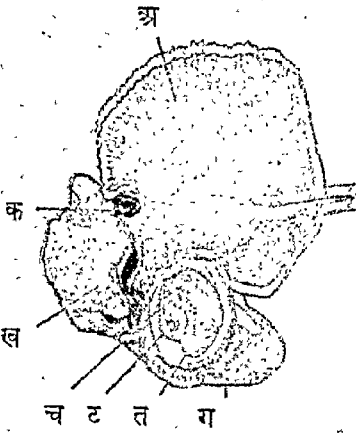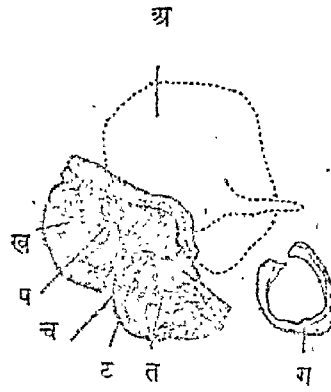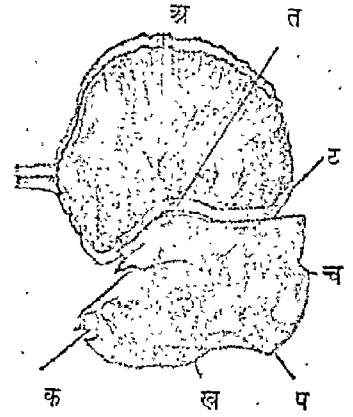
चित्र १८७ चित्र १८८ चित्र १८९

चित्र १८७ और १८८ की व्याख्या

- अ = फलक और गोस्तन भाग
- क = गोस्तन-फलक सीवन
- ख = गोस्तन-प्रवर्धन
- च = गुम्फद्वार
- ट = कोकिलाद्वार
- त = मध्यकर्ण की अन्त्याभित्ति
- ग = कर्णकुण्डल (Tympanic Ring)

चित्र १८९ की व्याख्या

- अ = शंखफलक गण्डचापयुक्त
- त = फलकाश्मरन्ध्र
- ट = वृत्ताकार खात
- च = गुम्फ अनुनलिका
- प = कोकिला की अनुनलिका
- ख = कर्णान्तर्विवर
- क = मातृका नलिका

शंखास्थि का विकास

श्रोत्रीय भाग प्रथम एक कुण्डल के आकार का होता है जो ऊपर फलक की ओर अपूर्ण होता है। धीरे-धीरे यह चारों ओर को फैलता है। यह भाग कला-निर्मित होता है। तीसरे मास में इसमें विकास-केन्द्र उदय होता है जिससे समस्त श्रोत्रीय भाग विकसित हो जाता है।

शिफा-प्रवर्धन प्रथम स्नुक्ति-निर्मित होता है। उसमें मूल के पास एक केन्द्र जन्म के कुछ पूर्व उदय होता है। दूसरा केन्द्र प्रवर्धन के अग्रभाग में जन्म के पश्चात् उदय होता है।

श्रोत्रीय भाग, जो प्रथम एक कुण्डल के रूप में विकसित होता है, शङ्खफलक के साथ जन्म के पूर्व जुड़ जाता है। कर्णमूल और अश्मकूट भाग फलक के साथ प्रथम वर्ष में जुड़ते हैं। शिफा-प्रवर्धन का मूल भाग भी इसी समय में जुड़ जाता है। इस प्रकार प्रथम वर्ष के अन्त तक अस्थि के प्रायः सब भाग आपस में जुड़ जाते हैं। शिफा-प्रवर्धन का अग्रभाग युवावस्था के समीप जुड़ता है। कभी-कभी वह आयु-पर्यन्त नहीं जुड़ता।

सम्मेलन—शङ्खास्थि पाँच अस्थियों के साथ सम्मेलन करती है—पश्चात्कपाल, पार्श्वकपाल, जतूका, गण्डास्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थि।

जतूकास्थि[1]

इस अस्थि का आकार तितली के समान होता है। यह अत्यन्त क्रमहीन अस्थि है जिसमें अनेकों छिद्र, खात और प्रवर्धन पाये जाते हैं। अस्थि के बीच का भाग उसका गात्र कहलाता है। गात्र के दोनों ओर से पङ्ख के समान निकले हुए चौड़े भाग बृहत्पक्ष कहे जाते हैं। गात्र और
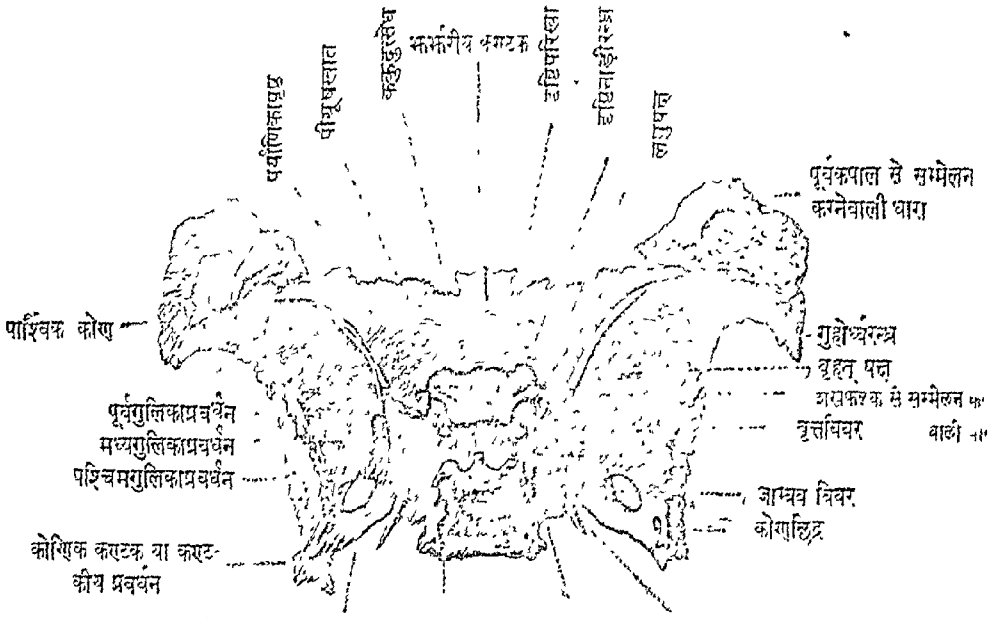
1. Sphenoicol bone.

चित्र नं० ११०—जतूकास्थि, ऊपर की ओर से

बृहत्पक्ष के नीचे की ओर जतूकचरण स्थित है। गात्र के आगे और सामने के भाग से दोनों ओर दो लघुपक्ष निकले हुए हैं।

गात्र[1] कुछ चतुष्कोणाकार है। उसके भीतर दो वायुविवर स्थित हैं जिनके कारण अस्थि भीतर से पोली हो गई है। दोनों वायुविवर, जिनके द्वार पूर्वपृष्ठ पर दिखाई देते हैं, एक पटल के द्वारा एक दूसरे से भिन्न हैं। इन विवरों का कुछ भाग बृहत्पक्षों के मूल में भी पहुँच जाता है।

गात्र में ६ पृष्ठ होते हैं—ऊर्ध्व, अधः, पूर्व, पश्चात् और दो पार्श्व पृष्ठ।

ऊर्ध्वपृष्ठ में सबसे आगे की ओर को अर्धवृत्ताकार खातों के बीच से एक त्रिकोणाकार प्रवर्धन निकला हुआ है जो झर्झरीय कण्टक[2] कहलाता है। करोटि में यह कण्टक झर्झरास्थि के चालनीपटल[3] से मिला रहता है। इसके पीछे अस्थि का चिकना समतल भाग है। इस भाग के बीच में एक सूक्ष्म तीरणिका है और दोनों ओर दो दो हलकी परिखाएँ हैं। ये परिखाएँ सब अस्थियों में स्पष्ट नहीं होतीं। इनमें घ्राणनाड़ीदण्ड[4] रहते हैं। इस स्थान के पीछे की ओर एक स्पष्ट गहरी परिखा है जो दृष्टिपरिखा[5] कहलाती है जिसके आगे और पीछे दोनों ओर दो तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं। इस परिखा पर और उसके पीछे भी दृष्टिनाड़ीसंयोजक[6] का कुछ भाग रहता है। इस परिखा के दोनों ओर दो छोटी चौड़ी नलिकाएँ दिखाई देती हैं जो दृष्टिनाड़ीरन्ध्र[7] के नाम से पुकारी जाती हैं। उनके द्वारा प्रत्येक ओर दृष्टिनाड़ी[8] और चाक्षुषीधमनी[9] नेत्रगुहा के भीतर जाती हैं। दृष्टिपरिखा के पीछे की ओर एक उत्सेध है जो ककुद[10] कहलाता है। इस उत्सेध से पीछे एक गहरा स्थान है जो पर्याणनिम्निका[11] कहा जाता है। इसके बीच में जहाँ यह अधिक गहरा है पीयूष-

---

१. Body. २. Ethmoidal Spine. ३. Lomina Cribrosa. ४. Olfactory tracts. ५. Optic groove. ६. Optic Chiasma. ७. Optic foramina. ८. Optic Nerve. ९. Ophthalmic Art. १०. Tuberculum sellae. ११. Sella turcica.

ग्रन्थि[1] रहती है। इस कारण पर्याणनिम्निका का यह भाग पीयूषखात[2] कहलाता है। पर्याणनिम्निका की पूर्वसीमा पर दोनों ओर दो सूक्ष्म उत्सेध पीछे को निकले हुए हैं जो मध्यगुलिकाप्रवर्धन[3] कहलाते हैं। निम्निका खात के पीछे की सीमा अस्थि के उस चपटे चतुष्कोणाकार प्रवर्धित भाग से बनी हुई है जो पर्याणिकापृष्ठ[4] कहलाता है और निम्निका को पीछे की ओर से छत्र की भाँति ढके हुए है। पर्याणिकापृष्ठ के अग्रभाग के दोनों पार्श्व कोणों से दो छोटे, पीछे की ओर को मुड़े हुए, प्रवर्धन निकले हुए हैं जो पश्चिमगुलिकाप्रवर्धन[5] के नाम से पुकारे जाते हैं। इन प्रवर्धनों पर मस्तिष्कजवनिका[6] कला लगती है। इन प्रवर्धनों के पीछे पर्याणिकापृष्ठ के दोनों ओर एक परिखा है जिसमें होकर छठी मस्तिष्कीय नाड़ी जाती है। इस परिखा के नीचे और बाहर की ओर अस्थि का प्रवर्धित भाग अश्मीय प्रवर्धन[7] कहलाता है। यह प्रवर्धन शङ्खास्थि के अश्मकूट के शिखर के साथ मिलकर दीर्णरन्ध्र बनाने में भाग लेता है। पर्याणिकापृष्ठ के पीछे की ओर अस्थि बीच में कुछ गहरी है। इस प्रकार उत्पन्न हुई यह चौड़ी परिखा पीछे की ओर पश्चात्कपाल के मूल भाग पर जाती हुई दिखाई देती है। इस पर मस्तिष्क का उष्णीषक या सेतु[8] भाग आश्रित रहता है।

अधःपृष्ठ संकुचित और त्रिकोणाकार है। इसके पिछले भाग से नीचे की ओर को दो बड़े प्रवर्धन, जिनको जतूकचरण[9] कहते हैं, निकले हुए हैं। इस पृष्ठ के बीच में एक त्रिकोणाकार उठा हुआ कण्टक दिखाई देता है जो जतूकत्रोटि[10] कहलाता है। यह आगे की ओर जतूकशिखा के साथ मिल जाता है। करोटि में यह कण्टक सीरिका अस्थि के पत्रों के बीच में लगा रहता है। जतूकत्रोटि के दोनों ओर जतूकचरण के मूल से पहले पत्र के समान दो छोटे प्रवर्धन भीतर की ओर को निकले हुए हैं। इनको परिवेष्टिक प्रवर्धन[11] कहते हैं।

पूर्वपृष्ठ नीचे की अपेक्षा ऊपर की ओर अधिक चौड़ा है। इसका आकार चतुष्कोण के समान
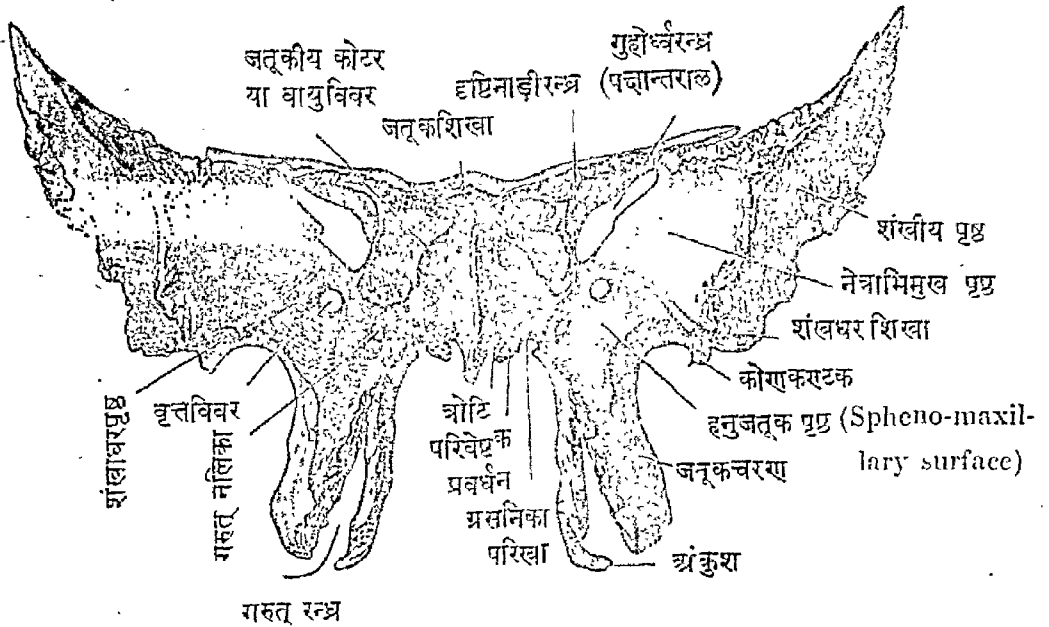
चित्र नं० १६१—जतूकास्थि—सामने से

१. Pitnitary gland. २. Fossa Hypophysis. ३. Middle clinoid process, ४. Dorsum Sellae. ५. Posterior clinoid Process. ६. Tentorium cerebelli. ७. Petrosal Process. ८. Pons. ९. Pterygoid Process. १०. Sphenoidal rostrun, ११. Vaginal Process.

है। इसके बीच में जतूकशिखा[1] नामक स्पष्ट तीरशिका है जो स्वाभाविक अवस्था में झर्झरास्थि के मध्य फलक से मिलकर नासिका का विभाजक फलक बनाती है। इस शिखा के दोनों ओर अस्थि के भीतर चौड़ी और गहरी खोखली कोटर स्थित हैं जिनमें वायु भरी रहती है। ये जतूककोटर[2] कहे जाते हैं। दोनों कोटरों के बीच में एक पतला पटल है जिसके द्वारा वे एक दूसरे से पृथक् रहते हैं। कभी-कभी यह पटल बिलकुल बीच में न होकर एक ओर को झुका हुआ रहता है जिससे दोनों ओर के कोटर समान नहीं होते। ये कोटर अस्थि में भीतर पश्चात्कपाल के मूल भाग तक पहुँच जाते हैं। प्रायः सूक्ष्म पटलों द्वारा ये विवर कई कोष्ठों में विभाजित होते हैं किन्तु उन सबका आपस में सम्बन्ध रहता है। इन विवरों के आगे और नीचे की ओर दो मुड़े हुए अस्थि के पतले पट्ट होते हैं जो उनको बन्द किये रहते हैं। ये जतूकीयकोटरच्छद[3] के नाम से पुकारे जाते हैं। जब जतूकास्थि करोटि में लगी रहती है तो वायुविवरों में आगे की ओर ऊपर के भाग में छिद्र रहते हैं जिनके द्वारा नासिकागुहा से उनका सम्बन्ध रहता है। झर्झरास्थि के वायुकोष्ठों से भी उनका प्रायः सम्बन्ध होता है। पूर्वपृष्ठ अपने पार्श्व की ओर झर्झरास्थि के नेत्रान्तःपीठफलक से मिला रहता है। पृष्ठ के ऊपरी किनारे पर पूर्वकपाल के नेत्रफलक और नीचे की ओर ताल्वस्थिका नेत्राभिमुख प्रवर्धन[4] लगता है।

पश्चात्पृष्ठ पश्चात्कपाल के मूल भाग से जुड़ा रहता है। बाल्यावस्था में इन दोनों भागों के बीच में सन्धि रहती है। किन्तु युवा या वृद्धावस्था में यह भाग भी अस्थि में परिणत हो जाता है। यह पृष्ठ भी चतुष्कोणाकार होता है।

पार्श्वपृष्ठ—गात्र के पार्श्वपृष्ठों से बृहत् पक्ष दोनों ओर को निकले हुए हैं। पृष्ठ के नीचे से दोनों ओर दो जतूकचरण नीचे की ओर को निकलते हैं। जहाँ पर बृहत्पक्ष गात्र के साथ मिलते हैं वहाँ गात्र के पार्श्व पर दो चौड़ी परिखाएँ आगे की ओर को जाती हुई दीखती हैं। यह **मातृका परिखा**[5] कहलाती हैं। इसमें अन्तर्मातृका धमनी और त्रिकोणिका शिराकुल्या[6] रहती है। इस परिखा के पिछले भाग में उसकी बहिर्धारा पर बृहत्पक्ष और गात्र के बीच में सूक्ष्म शिखा के समान एक छोटी तीरशिका दोनों ओर दिखाई देती है। यह जिह्विका[7] कहलाती है।

बृहत्पक्ष[8]—जतूका के गात्र के पार्श्व से दोनों ओर को दो चौड़े विस्तृत प्रवर्धन निकले हुए हैं जिनको बृहत्पक्ष कहते हैं। यह प्रवर्धन गात्र से प्रथम कुछ नीचे की ओर को उतरते हैं। तत्पश्चात् वे बाहर की ओर को फैल जाते हैं। उनका ऊपरी भाग आगे और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है। पीछे और बाहर की ओर का त्रिकोणाकार भाग शङ्खास्थि के फलक और अश्मकूट के बीच में रहता है। इसकी नोक से एक पतला छोटा प्रवर्धन नीचे की ओर को निकला हुआ है। यह कोणीय कण्टक[9] कहलाता है।

बृहत्पक्षों में तीन पृष्ठ होते हैं जिनको ऊर्ध्व या मस्तिष्कतल पृष्ठ, पार्श्व पृष्ठ और पूर्व तथा नेत्रगुहा पृष्ठ कहते हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ—बृहत् पक्षों का ऊर्ध्वपृष्ठ चौड़ा और अत्यन्त नतोदर है। यह मस्तिष्क का मध्यखात बनाने में भाग लेता है। इस पर कई गहरे चिह्न हैं जिनमें मस्तिष्क के शङ्खीय भाग के चक्राङ्ग रहते हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ के बीच में, जहाँ वह गात्र के पार्श्वपृष्ठ के साथ मिलते हैं, एक गोल छिद्र है जिसको **वृत्तविवर**[10] कहते हैं। इस छिद्र के द्वारा ऊर्ध्वहानव्या[11] नाड़ी जाती है। वृत्तविवर के पीछे

---

१. Sphenoidal crest. २. Sphenoidal air sinuses. ३. Sphenoidal conchae. ४. Orbital Process of the Palatine Bone. ५. Carotid Sulcus. ६. Cavernous Sinus. ७. Lingula. ८. Greater wings. ९. Spina angularis. १०. Foramen Rotundum. ११. Maxillary Nerve.

के भाग में बाहर की ओर एक अण्डाकार छिद्र है जो जाम्बवविवर[1] कहलाता है। इस विवर के द्वारा **अधोहानव्या**[2] नाड़ी, मस्तिष्कच्छदा अनुमध्यमा[3] धमनी और कभी-कभी अश्मतटिनी उत्ताना लघ्वी[4] नाड़ी जाती है। जाम्बवविवर के तनिक बाहर और पीछे की ओर अस्थि के त्रिकोणाकार भाग में एक छोटा गोल छिद्र स्थित है जो कोणछिद्र[5] कहलाता है। कभी-कभी एक कण्टक के द्वारा यह छिद्र दो भागों में विभक्त होता है। इस छिद्र के द्वारा मस्तिष्कच्छदा मध्यमा धमनी और

चित्र नं० १९२—जतूकास्थि—पीछे से
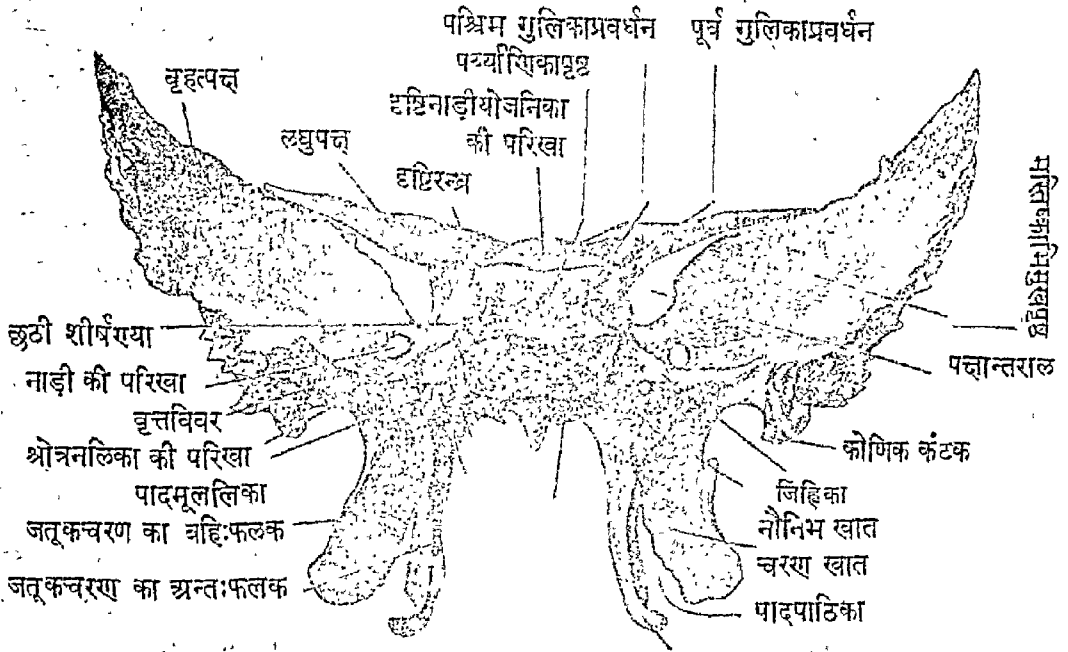
छिद्रपरावर्त्तिनी[6] नाड़ी निकलती है। जाम्बवविवर के भीतर की ओर कभी-कभी एक सूक्ष्म छिद्र दिखाई देता है। यह जतूकचरण के मूल के पास स्थित होता है जहाँ से वह आरम्भ होकर नीचे की ओर चरणखात में समाप्त होता है। यह वेजेलियस का छिद्र[7] कहलाता है। इसके द्वारा त्रिकोणिका शिराकुल्या से एक शाखा जाती है।

पार्श्वपृष्ठ की लम्बाई चौड़ाई से अधिक है। जहाँ इस पृष्ठ का ऊपरी द्वितृतीयांश नीचे के तृतीयांश से मिलता है वहाँ एक तीरणिका या शिखा है जो पृष्ठ को दो भागों में विभक्त करती है। ऊपर का भाग बड़ा और ऊपर से नीचे की ओर को उन्नतोदर किन्तु पार्श्व की ओर नतोदर है। यह समस्त स्थान शङ्खखात का एक भाग है और शङ्खच्छदा पेशी से आच्छादित है। शिखा से नीचे का छोटा भाग एक ओर को उन्नतोदर किन्तु दूसरी दिशा में समान या नतोदर है। यह स्थान शङ्खाधर खात[8] बनाने में भाग लेता है। इस स्थान पर और ऊपर की शिखा पर जिसको शङ्खाधर शिखा[9] कहते हैं हनुमूलकर्पणी बहिःस्था[10] पेशी लगती है। पृष्ठ के इस भाग में पीछे की ओर जाम्बवविवर और कोणछिद्र वर्त्तमान है। जाम्बवविवर के ऊपर और भीतर की ओर

---

१. Foramen ovale. २. Mandibular Nerve. ३. Accessory meningeal Art. ४. Lesser superficial petrosal Nerve. ५. Foramen spinosum. ६. Nervus spinosus. ७. Foramen vesalii. ८. Infratemporal fossa. ९. Infratemporal crest. १०. Pterygoideus Externus.

जहाँ शङ्खाधर शिखा बहिश्चरणफलक के मूल से मिलती है वहाँ से एक त्रिकोणाकार प्रवर्धन शिखा के रूप में नीचे की ओर को उतरता है और चरणफलक के मूल के साथ मिल जाता है। इसके नीचे की ओर के चौड़े नतस्थान पर भी हनुमूलकर्षणी बहिःस्था पेशी लगी रहती है। यह शिखा शङ्खाधर खात की पूर्वसीमा बनाती है और करोटि में हनुचरणिका दरी[१] की पश्चात् सीमा बनाने में भी भाग लेती है।

पूर्वपृष्ठ चिकने चतुष्कोणाकार और ऊपर से नीचे की ओर को कुछ नतोदर हैं। दोनों ओर के पृष्ठ आगे और भीतर की ओर को मुड़े हुए हैं। ये नेत्रगुहा की पार्श्विक भित्ति के पश्चिम भाग में रहते हैं। पृष्ठ की अधः और अन्तः धारा स्पष्ट और तीव्र है। ऊर्ध्वधारा खुरदरी है और पुरःकपाल के नेत्रफलक से मिली रहती है। अन्तर्धारा ऊर्ध्वगुहारन्ध्र या पत्रान्तराल[२] नामक त्रिकोणाकार बृहद्विवर की बाहरी सीमा बनाता है। इसी प्रकार अधोधारा अधोगुहारन्ध्र को बाहर की ओर से सीमित करती है। अन्तर्धारा के लगभग बीच में एक सूक्ष्म पिण्डक है जिससे नेत्र की दण्डिका पेशियों की कण्डराएँ निकलती हैं। पृष्ठ की बहिर्धारा ऊर्ध्वधारा के समान खुरदरी और दाँतेदार है और गण्डास्थि के साथ मिलती है। मध्यस्थ धारा के ऊपरी और बाहरी भाग में, जहाँ वह लघुपक्ष के साथ गुहारन्ध्र के बहिःकोण के पास मिलती है, एक परिखा है जिसके द्वारा आश्रवी धमनी[३] की परावर्त्तिनी शाखा निकलती है। धारा के भीतर की ओर गुहारन्ध्र का निम्न भाग है और उसके नीचे की ओर एक चिकना चौड़ा स्थान है जो तालुचरणिकखात[४] का एक भाग है। इस स्थान में वृत्तविवर स्थित है और उसके बाहर की ओर एक परिखा है।

धारा—बृहत्पक्ष में ६ धाराएँ प्रतीत की जा सकती हैं। सबसे बड़ी नतोदर, चौड़ी दाँतेदार **पार्श्विकी धारा** दोनों पक्षों के पार्श्व में रहती है। इसके पीछे और नीचे के भाग में अस्थि का बहिःपट्ट आगे को बढ़ा हुआ है किन्तु अन्तःपट्ट भीतर ही समाप्त हो जाता है। धारा के ऊपरी भाग में इसके विरुद्ध बहिःपट्ट पूर्व समाप्त हो जाता है और अन्तःपट्ट एक नुकीली पतली धारा के स्वरूप में पीछे को निकला रहता है। यह समस्त धारा शंखफलक के साथ सम्पर्क करती है। धारा के ऊपरी सिरे से **ऊर्ध्वधारा** भीतर की ओर को मुड़ती हुई पूर्वपृष्ठ के ऊपर तक चली जाती है। इस धारा के बाहरी त्रिकोणाकार खुरदरे भाग पर, जो बृहत्पक्ष की नोक पर स्थित है, पार्श्वकपाल का जतूकीय कोण लगता है। इसका भीतरी भाग भी त्रिकोणाकार है और वह पुरःकपाल के साथ मिलता है। यह धारा भीतर की ओर पूर्वपृष्ठ की मध्यस्थ धारा से मिली हुई है। ऊर्ध्वधारा के बाहरी कोण से **पूर्वधारा** नीचे की ओर को जाती है। यह पार्श्व और ऊर्ध्व दोनों धाराओं की अपेक्षा छोटी और पतली है और गण्डास्थि के साथ सम्मेलन करती है। पक्ष की पूर्वाधोधारा और पूर्वपृष्ठ की अधोधारा एक ही हैं और अधोगुहारन्ध्र की सीमा बनाती है। मध्यस्थ या अन्तर्धारा गात्र के साथ जुड़ी हुई है। पार्श्वधारा के पश्चिमकोण या कोणीय कण्टक से जो धारा भीतर की ओर जतूकचरण के मूल और गात्र तक जाती है वह **पश्चिमधारा** कहलाती है। इस धारा और जतूकचरण के मूल के बीच में **पादमूलनलिका**[५] का छिद्र है जिसके द्वारा जतूक पादिका धमनी और नाड़ी जाती हैं। इस धारा का बाहरी भाग शंखास्थि के अश्मकूट के साथ मिला रहता है। इन दोनों के बीच में करोटि के नीचे की ओर एक परिखा होती है जिसमें श्रोत्रनलिका या पटहपूरणिका-नलिका का खक्ति-निर्मित भाग रहता है। यह **श्रोत्रपरिखा**[६] कहलाती है। अन्तर्धारा पत्र के साथ मिली रहती है।

लघुपक्ष—जतूकास्थि के गात्र के दोनों ओर से लघुपक्ष पतले त्रिकोणाकार फलकों के रूप में

---

१. Pterygomaxillary fissure. २. Supraarbital Fissure. ३. Lacrimal ortery. ४. Pterygopolotine fosso. ५. Pterygoid conol. ६. Auditory Sulcus.

बाहर की ओर को निकले हुए हैं। इनमें दो पृष्ठ, दो धाराएँ और दो मूल होते हैं। **ऊर्ध्वपृष्ठ** चिकना और समतल है। इसके ऊपर मस्तिष्क का पूर्व भाग आश्रित रहता है। **अधःपृष्ठ** नीचे की ओर रहता है और नेत्रगुहा की छत बनाने में भाग लेता है। इस पृष्ठ के नीचे की ओर पक्षान्तराल स्थित है। उसकी ऊपरी सीमा लघुपक्ष के अधःपृष्ठ से बनती है। **पूर्वधारा** आगे की ओर रहती है। उसमें दाँते हैं जिनके द्वारा वह पूर्वकपाल के साथ सम्मेलन करती है। **पश्चिमधारा** चिकनी, पतली और मुड़ी हुई है। इसके ऊपर मस्तिष्क का भाग रहता है। पीछे की ओर यह धारा दो प्रवर्धनों के स्वरूप में अस्थिगात्र के दोनों ओर को निकली हुई है। ये **पूर्वगुलिकाप्रवर्धन** कहलाते हैं। इन पर मस्तिष्कजवनिका कला का कुछ भाग लगता है। कभी-कभी इन प्रवर्धनों से पीछे की ओर एक कण्टक निकला होता है जो कुछ करोटियों में मध्यगुलिकाप्रवर्धनों तक पहुँच जाता है जिससे मातृका परिखा का अन्तिम भाग एक छिद्र के रूप में परिणत हो जाता है।

ये पक्ष दो मूलों द्वारा अस्थिगात्र के साथ जुड़े हुए हैं। **पूर्वमूल** पतले चौड़े चतुष्कोणाकार फलक के समान हैं। इनसे दृष्टिनाड़ीरन्ध्र की छत बनती है। **पश्चिममूल** चौड़ा और त्रिकोणाकार है और दृष्टिनाड़ीरन्ध्र के नीचे और बाहर की ओर रहता है। इस प्रकार रन्ध्र के ऊपर, बाहर और नीचे की ओर इन पक्षों का कुछ भाग रहता है। भीतर की ओर अस्थि का गात्र रहता है।

लघुपक्षों के नीचे की ओर जो पक्षान्तराल है उसको ऊपर की ओर से लघुपक्ष का अधःपृष्ठ, बाहर से पुरःकपाल और बृहत्पक्ष, नीचे की ओर से बृहत्पक्ष के पूर्वपृष्ठ की अन्तर्धारा और भीतर की ओर से अस्थिका गात्र परिमित करते हैं। यह रन्ध्र कपालगुहा से नेत्रगुहा में जाता है। इसके द्वारा निम्नलिखित धमनी, शिरा और नाड़ियाँ जाती हैं—

(१) त्रिमूलिका नाड़ी के दृष्टि विभाग[१] की तीनों शाखाएँ, (२) नेत्रचालनी[२] नाड़ी, (३) कटाक्षिणी नाड़ी[३], (४) नेत्रपार्श्विकी नाड़ी[४], (५) त्रिकोणिका शिराकुल्या के स्वतन्त्र जाल[५] की शाखाएँ, (६) मस्तिष्कच्छदा मध्यमा धमनी की नेत्रगुहीय[६] शाखाएँ, (७) आश्रवी धमनी की एक प्रतीपगा[७] शाखा और (८) चाक्षुषी शिराएँ[८]।

जतूकचरण—जहाँ गात्र और बृहत् पक्ष आपस में मिलते हैं उस स्थान के नीचे से दोनों ओर दो प्रवर्धन निकले हुए हैं जो सीधे नीचे की ओर को चले जाते हैं। प्रत्येक प्रवर्धन में दो फलक हैं। ऊपर और सामने की ओर ये दोनों फलक आपस में जुड़े रहते हैं किन्तु नीचे की ओर दोनों फलक एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं और उन दोनों के बीच में त्रिकोणाकार अन्तर रहता है जिसको पाददारिका[९] कहते हैं। पूर्वपृष्ठ पर रन्ध्र से ऊपर चिकना त्रिकोणाकार स्थान है जो ऊपर की ओर बृहत्पक्ष के मूल से मिला हुआ है। इस स्थान में पादमूलिका का पूर्वछिद्र दिखाई देता है जिसके ऊपर और बाहर की ओर बृहत् पक्ष के मूल में वृत्तविवर स्थित है। यह स्थान तालुचरणिक खात की पश्चात् भित्ति बनाता है। पादमूलनलिकाद्वार से नीचे की ओर को प्रवर्धन के मध्यस्थ फलक के किनारे के पास एक मुड़ी हुई परिखा दिखाई देती है जो **तालुचरणिका परिखा**[१०] कहलाती है और करोटि में तालुचरणिका नलिका की पश्चिमभित्ति बनाती है। नीचे की ओर स्थित पाददारिका की दोनों धाराएँ खुरदरी हैं और वे तालवस्थि के **तालुकोणप्रवर्धन**[११] से मिलती हैं। पश्चिमपृष्ठ पर दोनों फलकों के बीच एक गहरा खात है जिसको **चरणखात**[१२] कहते हैं। इस खात के ऊपर की ओर

---

१. Branches of ophthalmic division of trigeminal Nerve. २. Oculomotor N. ३. Trochlear. ४. Abducent. ५. Branches from cavernous plexus. ६. Orbital branches of middle meningeal Art. ७. Recurrent branch of lacrimal. ८. Ophthalmic Veins. ९. Pterygoid fissure. १०. Pterygopalatine Sulcus. ११. Pyramidal Process. १२. Pterygoid fossa.

एक दूसरा छोटा खात है जो नौनिभखात[1] कहलाता है। तालुतंसनी पेशी पादतल और नौनिभ दोनों खातों से उदय होती है किन्तु पादतल खात के अधिक भाग से हनुमूलकर्षणी अधरा[2] का उदय होता है।

अन्तश्चरणफलक—चरणप्रवर्धन का अन्तःफलक बाहरी फलक की अपेक्षा अधिक लम्बा, मोटा और संकुचित है। इसका नीचे का भाग नीचे और बाहर की ओर को मुड़ा हुआ है। इसका सिरा, जो एक अंकुश की भाँति दीखता है, पादांकुश[3] कहलाता है। इस अंकुश के नीचे के पृष्ठ पर एक छोटी नलिका है जिसमें तालुतंसनी की कण्डरा रहती है। ऊपर जहाँ यह फलक बृहत्पक्ष के साथ जुड़ता है वहाँ से पीछे और बाहर के कोने से एक त्रिकोणाकार पिण्डक निकला हुआ है जो पादपिण्डक[4] कहलाता है। इस पिण्डक के ऊपर की ओर पादमूलनलिका का पश्चिमद्वार स्थित है। यहाँ से आगे और भीतर की ओर यह फलक अस्थिगात्र के अधःपृष्ठ पर, पतले पत्र के रूप में, जतूक त्रोटि के दोनों ओर दिखाई देते हैं। ये पतले पत्र बाहर की ओर अस्थि के साथ जुड़े हुए हैं किन्तु त्रोटि की ओर स्वतन्त्र हैं और परिवेष्टक प्रवर्धन[5] कहलाते हैं। त्रोटि और इन प्रवर्धनों के बीच में दोनों ओर हलकी सी परिखाएँ हैं जिनमें करोटि में सीरिका की पत्रधाराएँ रहती हैं। इस प्रकार आगे की ओर ये प्रवर्धन सीरिका से मिले रहते हैं किन्तु पीछे की ओर तात्वस्थि का जतूकीय प्रवर्धन सम्मेलन करता है। परिवेष्टक प्रवर्धनों के नीचे की ओर भी एक सूक्ष्म परिखा है। जब तात्वस्थि का जतूकीय प्रवर्धन इस स्थान पर सम्मेलन करता है तो उसकी सहायता से यह परिखा एक नलिका के रूप में परिणत हो जाती है जिसके द्वारा अन्तर्हानव्या धमनी की अनुग्रसनिका[6] शाखा और अनुग्रसनिका[7] नाड़ी जाती हैं। अन्तःफलक का समस्त मध्यस्थ पृष्ठ नासागुहा के पश्चिम द्वार की पार्श्विक भित्ति बनाने में भाग लेता है किन्तु फलक के बहिःपृष्ठ से चरणखात सीमित होता है। फलक की पश्चिमधारा के बीच से एक तीव्र नुकीला उत्सेध पीछे की ओर को निकला हुआ है जो बडिशकूट[8] कहलाता है। इस पर श्रोत्रीय नलिका का अनुग्रसनिक[9] भाग आश्रित रहता है। फलक की पतली पश्चात्धारा पर ग्रसनिका-वितान[10] लगता है और ग्रसनिकासङ्कोचनी ऊर्ध्वा[11] उसके निचले भाग से उदय होती है। फलक की पूर्वधारा तात्वस्थि के दीर्घपत्रक से मिलती है।

बहिश्चरणफलक अन्तःफलक की अपेक्षा पतला और चौड़ा है। इसका नीचे का भाग बाहर की ओर को अधिक मुड़ा हुआ है। इसका बहिःपृष्ठ शंखाधर खात के साथ मिला रहता है और इस पर हनुमूलकर्षणी बहिःस्था पेशी लगती है। फलक का अन्तःपृष्ठ चरणखात का एक भाग है। उस पर हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था पेशी लगती है।

जतूकीय कोटरच्छद में अस्थि के दो पतले मुड़े हुए त्रिकोणाकार पत्र हैं जो जतूकास्थि के गात्र के पूर्वभाग के नीचे और आगे की ओर रहते हैं और जतूकीय वायु-विवरों को नीचे और आगे की ओर से सीमित करते हैं। ये पत्र आगे की ओर चौड़े हैं किन्तु पीछे की ओर संकुचित हो जाते हैं। इनमें आगे की ओर एक छिद्र है जिसके द्वारा वायु-विवरों का नासागुहा के साथ सम्बन्ध होता है। इन पत्रों का ऊर्ध्वपृष्ठ, जो नतोदर है, विवरों की ओर रहता है किन्तु उन्नतोदर अधःपृष्ठ नासिकागुहा की छत बनाता है। ये पत्र आगे की ओर से झर्झरास्थि से और बाहर की ओर तात्वस्थि से सम्मेलन करते हैं। उनके पश्चिम त्रिकोणीय भाग के बाहर की ओर जतूकचरण का मूल और भीतर की ओर

---

१. Scaphoid fossa. २. Pterygoideus Internus. ३. Pterygoid hamulus. ४. Pterygoid Tubercle. ५. Vaginal Process. ६. Pharyngeal branch of Internal maxillary art. ७. Pharyngeal Nerve. ८. Processus tuberins. ९. Pharyngeal end of Auditary tube. १०. Pharyngeal aponeurosis (Pharyngobasilar fascia). ११. Constrictor pharyngis Superior.

जतूकत्रोटि रहते हैं। उनके नीचे सीरिका के पक्ष रहते हैं। कभी-कभी यह नेत्रगुहा की अन्तःभित्ति बनाने में भाग लेता है।

अस्थि-विकास—भ्रूणावस्था के आठवें मास तक जतूकास्थि दो भागों में विभक्त रहती है जिनको पूर्वजतूक[1] और पश्चाज्जतूक[2] कहते हैं। ककुदुत्सेध के आगे का भाग पूर्वजतूक कहलाता है। लघुपक्ष इसी भाग के साथ रहते हैं। ककुदुत्सेध के पीछे के भाग को पश्चाज्जतूक कहा जाता है।
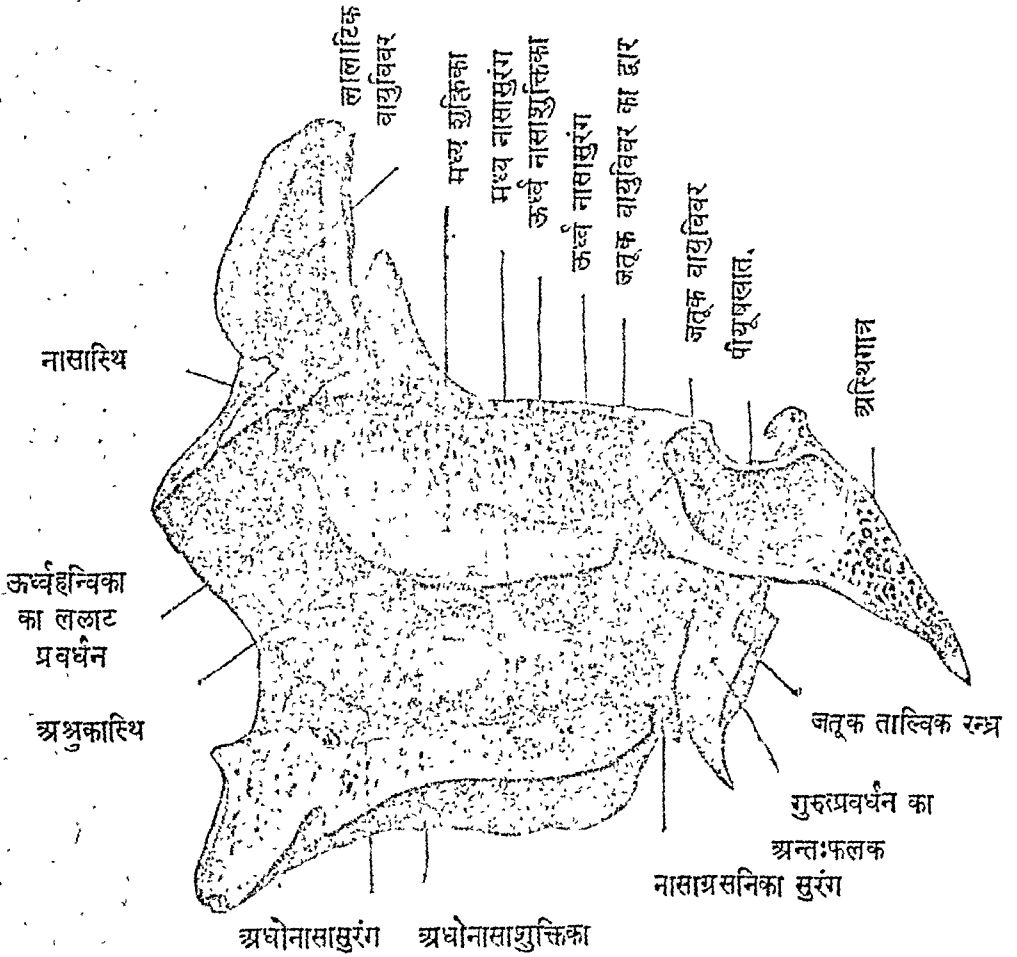
चित्र नं० १९३—जतूकास्थि का अन्य अस्थियों के साथ सम्मेलन

वृहत्पक्ष और जतूकचरण इस भाग में सम्मिलित हैं। समस्त अस्थि का विकास १४ केन्द्रों से होता है। ६ केन्द्र पूर्व जतूक और ८ केन्द्र पश्चाज्जतूक में उदय होते हैं।

पूर्वजतूक में दृष्टिनाड़ी-रन्ध्र के तनिक बाहर की ओर दोनों लघुपक्षों के लिए दो विकासकेन्द्र उदय होते हैं। इसके कुछ दिनों के पश्चात् पूर्वजतूक भाग के गात्र में दो केन्द्रों का विकास होता है। पाँचवें मास के लगभग कोटरच्छदों में दोनों ओर दो केन्द्र उदय होते हैं जिनसे उनका विकास होता है। तीसरे वर्ष में वे अपने वर्तमान स्वरूप में आते हैं और त्रिकोणाकार तथा नतोदर होकर चतुर्थ वर्ष में झर्झरास्थि और २५ वें वर्ष में जतूकास्थि से जुड़ते हैं।

---

१. Presphenoid. २. Postsphenoid.

पश्चाज्जतूक—विकास-केन्द्र सबसे पहले इस भाग में उदय होते हैं। बृहत्पक्ष, वृत्तविवर और जाम्बविवर के बीच में आठवें सप्ताह में दोनों ओर दो केन्द्र उदय होते हैं। नेत्रगुहा में रहनेवाला फलक, शंखखात में रहनेवाला अस्थि का भाग और जतूकचरण का बहिःस्थफलक भी इन्हीं केन्द्रों से विकसित होते हैं। किन्तु उनका विकास नाथा कला से होता है, मृत्तिका से नहीं। कुछ ही समय के पश्चात् पश्चिमजतूक के गात्र में ककुदुसेंध के दोनों ओर दो विकास-केन्द्र उदय होते हैं जो चौथे या पाँचवें मास में जुड़ जाते हैं। नवें या दसवें सप्ताह में जतूकचरण के अन्तःफलक में केन्द्र निकलता है। इस भाग का विकास भी कला से होता है। किन्तु पादांकुश तीसरे मास के पूर्व विकसित नहीं होता। चौथे मास में प्रत्येक ओर की जिह्विका में केन्द्र उदय होता है। जतूकचरण के दोनों फलक छठे मास के लगभग आपस में जुड़ते हैं।

जन्म के समय जतूकास्थि के तीनों भाग, गात्र और दोनों बृहत्पक्ष जतूकचरणों सहित पृथक् रहते हैं। जन्म के बाद गात्र और बृहत्पक्ष आपस में जुड़ जाते हैं और पूर्ण अस्थि बन जाती है। उस समय लघुपक्ष अस्थि के गात्र के ऊपर तक फैले रहते हैं और दोनों पक्षों के बीच में मिलने से एक उठा हुआ चिकना स्थान बन जाता है जो जतूकयुग्म[1] कहलाता है। पचीसवें वर्ष तक जतूकास्थि और पश्चात्कपालास्थि आपस में जुड़ जाती हैं।

सम्मेलन—जतूकास्थि का बारह अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है—पूर्वकपाल, पश्चात्कपाल, सीरिका, झर्झरास्थि, पार्श्वकपाल (२), शंखास्थि (२), गण्डास्थि (२) और तालवस्थि (२)।

झर्झरास्थि

यह अस्थि करोटि के तल में दोनों नेत्रगुहाओं के बीच में, नासिका के मूल में, रहती है। यह अत्यन्त हल्की होती है। इसके भीतर कई वायु विवर रहते हैं। इसका आकार एक घन के समान है।
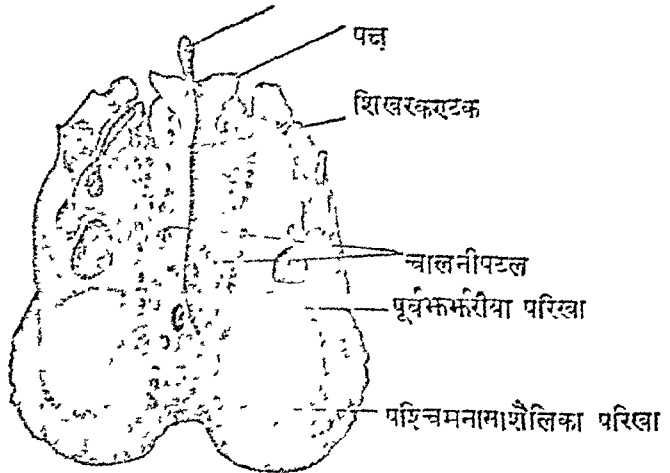
चित्र नं० १९४—झर्झरास्थि का ऊर्ध्वपृष्ठ

इसमें कई भिन्न-भिन्न भाग पहचाने जा सकते हैं। अस्थि के ऊपर की ओर बीच में एक अस्थि-पटल है जिसमें अनेकों छिद्र हैं। यह चालनी पटल कहलाता है जिसके आगे की ओर त्रिकोणाकार प्रवर्धित

[1]. Jugum Sphenoidale.

शिखरकण्टक स्थित है। यह पटल कपाल के तल बनाने में भाग लेता है। इस पटल के नीचे की ओर को एक फलक निकला हुआ है जो मध्यफलक कहलाता है। नासिकागुहा के विभाजक पटल बनाने में यह भाग लेता है। इसके दोनों ओर दो पार्श्वपिण्ड स्थित हैं जिनके भीतर बड़े बड़े वायु-विवर रहते हैं।

चालनीपटल[1] दोनों पार्श्वपिण्डों के बीच में ऊपर की ओर स्थित हैं। इनके द्वारा मध्यफलक पार्श्वपिण्डों से जुड़ा हुआ है। बीच में स्थित शिखरकण्टक दोनों पटलों को पृथक् करता है। इनके बाहर की ओर पुरःकपाल के नेत्रगुहाफलक रहते हैं। इनके ऊर्ध्वपृष्ठ कपालखात का तल और अधःपृष्ठ नासिकागुहा की ऊर्ध्वभित्ति बनाते हैं। प्रत्येक पटल में अनेकों छिद्र हैं जिनके कारण इनका नाम चालनी पटल पड़ा है। ध्यान से देखने पर विदित होगा कि पटल के बीच में जो छिद्र हैं वह बाहर और भीतर की ओर स्थित छिद्रों की अपेक्षा छोटे हैं। बीच के छोटे छिद्रों में होकर नासागुहा के छत की श्लैष्मिक कला पर वितरित होनेवाली सूक्ष्म नाड़ियाँ जाती हैं। इनके भीतर की ओर स्थित छिद्रों में होकर वे नाड़ियाँ जाती हैं जो नासागुहा के विभाजक पटल के ऊपरी भाग पर फैली हुई होती हैं। बाहर की ओर जो छिद्र हैं उनमें होकर नाड़ियाँ ऊर्ध्वशुक्तिफलक को जाती हैं।
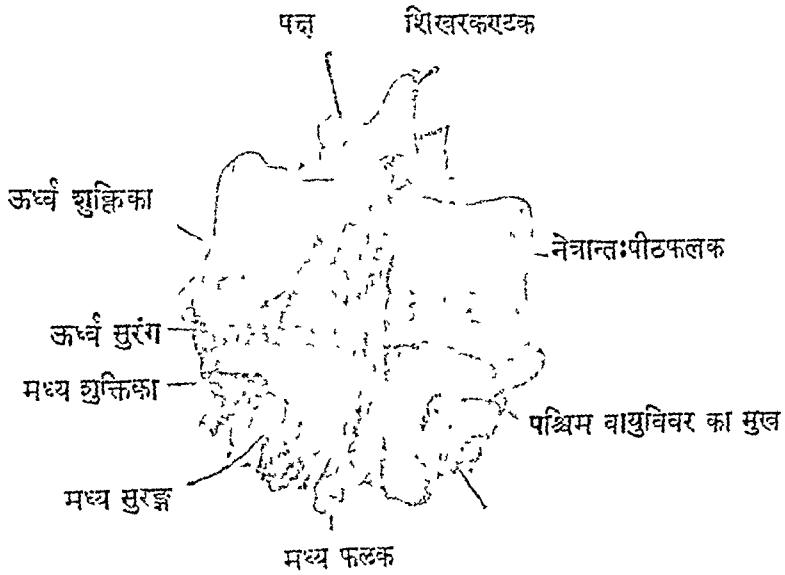
चित्र नं० १६५—झर्झरास्थि—पीछे की ओर से

समस्त पटल नीचे की ओर को कुछ दबा हुआ है जिससे उसका ऊर्ध्वपृष्ठ नतोदर और अधः-पृष्ठ उन्नतोदर हो जाता है। इस प्रकार उर्ध्वपृष्ठ पर एक परिखा बन जाती है जिस पर घ्राणपिण्ड[2] आश्रित रहते हैं।

पटलों के बीच में स्थित शिखरकण्टक[3] पीछे की अपेक्षा आगे की ओर चौड़ा है जहाँ पर उसके पूर्वधारा के अधोभाग में दो छोटे फलक दोनों ओर को निकले हुए हैं। ये कण्टक के पक्ष[4] कहलाते हैं। ये दोनों पक्ष पुरःकपाल के साथ लगते हैं। कण्टक की पश्चिम लम्बी चिकनी धारा पीछे और नीचे की ओर को मुड़ी हुई है। उस पर मस्तिष्कदात्रिका कला[5] लगती है। कण्टक के दोनों पृष्ठ चिकने हैं। जब उनके भीतर वायुकोष्ठ होते हैं तो वे दोनों ओर को विस्तृत हो जाते हैं।

---

१. Lamina Cribrosa. २. Olfactory bulb. ३. Crista galli. ४. Alar processes. ५. Falx Cerebri.

कण्टक के पत्रों के नीचे की ओर एक सूक्ष्म परिखा है जिसके बाहर की ओर एक रन्ध्र स्थित है। इसके द्वारा झर्झरिका नाड़ियाँ जाती हैं।

मध्यफलक[1] चालनी पटल से नीचे की ओर को निकला हुआ दोनों पार्श्वपिण्डों के बीच में स्थित है। यह एक पतला, दोनों ओर से चिकना चतुष्कोणाकार फलक है जिसको मध्यफलक कहते हैं। इसकी ऊर्ध्वधारा आगे की ओर शिखरकण्टक के रूप में चालनी पटल से ऊपर की ओर को निकली हुई है। किन्तु धारा का पश्चिम भाग चालनी पटल के अधःपृष्ठ पर ही लगा हुआ है। अधोधारा, जो पश्चात् धारा की अपेक्षा अधिक मोटी और दृढ़ है, नासागुहा के स्नक्कि-निर्मित विभाजक पटल के साथ मिली रहती है। पूर्वधारा पुरःकपाल के कण्टक और नासास्थियों की शिखा के साथ सम्मेलन करती है। पश्चिमधारा ऊपर की ओर जतूकशिखा और नीचे की ओर सीरिका से मिलती है। फलक के पृष्ठ चिकने हैं। किन्तु ऊपर की ओर जहाँ वे चालनी पटल के साथ जुड़ते हैं उनमें कई छिद्र और परिखा उपस्थित हैं। चालनी पटल के मध्यस्थ छिद्रों से घ्राणनाड़ियों के सूक्ष्म सूत्र इन छिद्रों और परिखाओं में आते हैं।

पार्श्वपिण्ड या गहनिका[2]—मध्यफलक और चालनी पटल के दोनों ओर पार्श्वपिण्ड स्थित हैं। ये अत्यन्त पतली अस्थि के बने हुए हैं। इनके भीतर वायुकोष्ठ तीन समूहों में स्थित हैं जो पूर्व, मध्य और पश्चिमसमूह कहलाते हैं। ये कोष्ठ बाहर की ओर एक पतले चिपटे फलक से परिमित हैं जिसको **नेत्रान्तःपीठफलक**[3] कहते हैं। ये फलक पिण्डों के पार्श्वपृष्ठ बनाते हैं और नेत्रगुहा की अन्तःभित्ति बनाने में भाग लेते हैं। यह फलक ऊपर की ओर पुरःकपाल के नेत्रगुहाफलक से, आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि के नेत्रीय पृष्ठ से, पीछे की ओर जतूका से और पश्चिमाधःकोण पर तालवस्थि के **नेत्राभिमुख प्रवर्धन**[4] से सम्मेलन करता है।

ऊपर और आगे की ओर देखने से वायुकोष्ठों के तीनों समूह ऊपर के भाग में टूटे हुए दीखते हैं। करोटि से अस्थि को पृथक् करते समय वायुकोष्ठों के ये भाग टूट जाते हैं। पिण्डों के ऊर्ध्वपृष्ठ पर जो वायुकोष्ठ दिखाई देते हैं वे करोटि में पुरःकपाल के नासिका भाग के किनारों पर स्थित अर्धकोष्ठों के साथ मिलकर सम्पूर्ण कोष्ठ बनाते हैं। इस पृष्ठ के पिछले भाग में दो परिखाएँ बाहर से भीतर की ओर को जाती हुई मालूम होती हैं और पुरःकपाल के साथ मिलकर पूर्णनलिका के रूप में परिणत हो जाती हैं। दोनों में आधी इंच के लगभग अन्तर है। ये पूर्व और पश्चिम **झर्झरीय नलिका**[5] कहलाती हैं और नेत्रगुहा के भीतर की ओर पहुँचकर अन्त होती हैं।

नेत्रान्तः पीठफलक के आगे की ओर कई टूटे हुए वायुकोष्ठ दिखाई देते हैं। यह अश्रु-पीठास्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थि के ललाटप्रवर्धन की सहायता से पूर्ण होते हैं।

पिण्डों के पश्चिम भाग में वायुकोष्ठों का पश्चिम समूह स्थित है। यह भाग पश्चिम पृष्ठ पर जतूकास्थि के गात्र के पूर्वपृष्ठ और तालवस्थि के नेत्राभिमुख प्रवर्धन से सम्मेलन करता है। इन अस्थियों की सहायता से इस भाग के वायुविवर पूर्ण होते हैं।

पिण्डों का अन्तःपृष्ठ विशेष महत्त्व का है। इस पृष्ठ पर झर्झरीय शुक्तिफलक दिखाई देते हैं जो साधारणतया दो होते हैं। ये दोनों एक दूसरे के ऊपर और नीचे स्थित हैं। जो ऊर्ध्व और मध्य **शुक्तिफलक**[6] कहलाते हैं। इन दोनों के बीच का स्थान **ऊर्ध्वसुरङ्ग**[7] कहलाता है। यह सुरङ्ग ऊपर से

---

१. Lamina perpendicularis. २. Lateral masses or labyrinth. ३. Lamina papyracea. ४. Orbital Process of Palatine Bone. ५. Anterior and Posterior Ethmoidal Canal. ६. Superior and middle nasal Concha'e, ७. Superior meatus of nose.
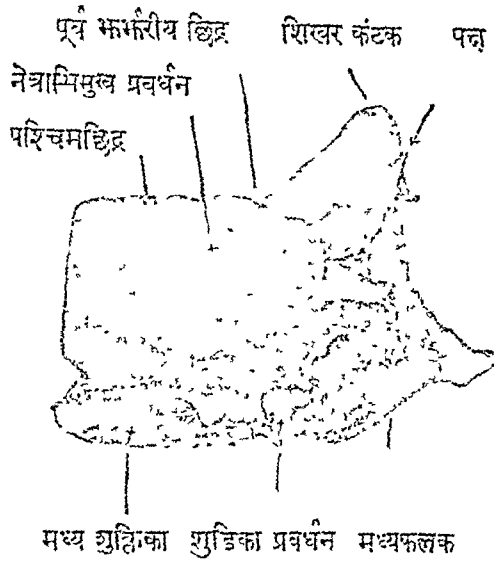
चित्र नं० १९६—झर्झरास्थि—पार्श्व की ओर से

आरम्भ होकर पीछे और नीचे की ओर को मुड़ती हुई अस्थि के पश्चिम भाग की ओर को चली जाती है। सुरङ्ग की छत ऊर्ध्व शुक्तिफलक के अधःपृष्ठ से और उसका तल मध्यशुक्तिफलक के ऊर्ध्वपृष्ठ से बनता है। पश्चिम वायु-विवर इस सुरङ्ग में छिद्र द्वारा खुलते हैं। यह सुरङ्ग पृष्ठ के केवल पिछले भाग में रहती है। उससे आगे की ओर मध्यस्थ पृष्ठ वायु-विवरों की मध्यस्थ भित्ति बनाता है। ऊर्ध्वशुक्ति-फलक के मध्यस्थ पृष्ठ पर ऊपर से नीचे और पीछे को जाती हुई अत्यन्त सूक्ष्म परिखाएँ दिखाई देती हैं। ऊपर की ओर ये परिखाएँ चालनी पटल के छिद्रों में जाकर खुलती हैं जिनमें से सूक्ष्म नाड़ियाँ इन परिखाओं में आती हैं।

ऊर्ध्वशुक्तिफलक के नीचे मध्यशुक्तिफलक का उन्नतोदर मध्यस्थ पृष्ठ दिखाई देता है। यह फलक पिण्डों के नीचे से प्रथम भीतर की ओर, तत्पश्चात् नीचे की ओर को मुड़ जाता है। और आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि की झर्झरीय शिखा और पीछे की ओर तालवस्थि की झर्झरीय शिखा से मिला रहता है। यह फलक ऊर्ध्वफलक से अधिक बड़ा है और पिण्डों की समस्त लम्बाई में फैला रहता है। फलक का पार्श्वपृष्ठ गहरा और नतोदर है और मध्यसुरङ्ग[1] बनाने में भाग लेता है। इसमें वायुकोष्ठों के मध्यसमूह का द्वार स्थित है। इसके आगे की ओर एक फूला हुआ गोल उत्सेध दिखाई देता है जो मध्य वायुकोष्ठों के कारण उत्पन्न होता है। यह झर्झरीय कन्द[2] कहलाता है। कन्द के नीचे और आगे की ओर एक सूक्ष्म परिखा है जो अर्धेन्दु परिखा कहलाती है। इसके आगे की ओर एक मुड़ा हुआ चौड़ा मार्ग, जिसको कूपिका[3] कहते हैं, ऊपर के पूर्वकोष्ठों तक जाता है। मध्यसुरङ्ग के आगे के भाग में मध्यस्थ भित्ति से एक पतला मुड़ा हुआ प्रवर्धन झर्झरीय कन्द तक आता है इसको अंकुशाकृति प्रवर्धन[4] कहते हैं।

अस्थि-विकास—झर्झरास्थि का तीन केन्द्रों से विकास होता है। एक केन्द्र प्रत्येक पार्श्व-पिण्ड के लिए और एक केन्द्र मध्यफलक के लिए उदय होता है। सबसे प्रथम पार्श्वपिण्ड में

---

१. Middle Meatus. २. Ethmoidal bulb. ३. Infundibulum.
४. Uncinate Process.

चित्र नं० १९७—झर्झरास्थि की स्थिति
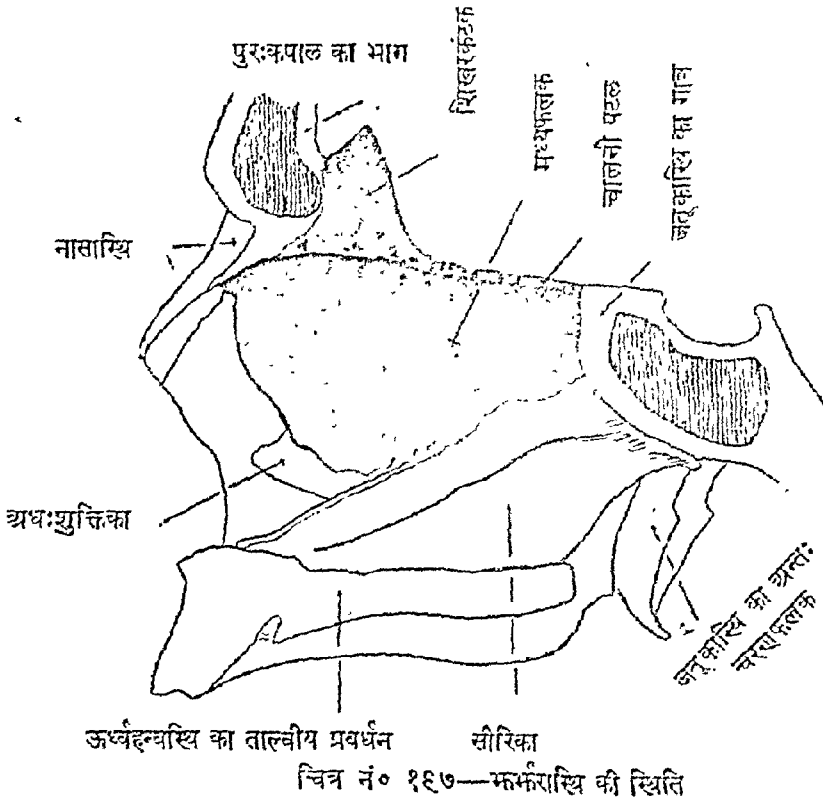
विकास आरम्भ होता है। नेत्रान्तःपीठफलक में भ्रूणावस्था के चौथे या पाँचवें मास में दोनों ओर एक-एक केन्द्र उदय होता है। यहाँ से विकास होना आरम्भ होता है और शुक्तिफलकों तक फैल जाता है। वायुविवर भी भ्रूणावस्था में बनने लगते हैं। मध्यफलक में दूसरा केन्द्र जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में निकलता है उससे सारा मध्यफलक और शिखर कण्टक विकसित होते हैं। दूसरे वर्ष में यह भाग पिण्डों के साथ जुड़ते हैं। चालनी पटल, मध्यफलक और पिण्ड दोनों के केन्द्रों से बनते हैं।

सम्मेलन—झर्झरास्थि का १५ अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है, जिनके नाम ये हैं—पुरःकपाल, जतूकास्थि, जतूकीय विवरच्छद (२), नासास्थि (२), ऊर्ध्वहन्वस्थि (२), अश्रुपीठास्थि (२), तालव्वस्थि (२), अधःशुक्तिका (२), सीरिका।

कपालचणकास्थि[1]

कपाल की अस्थियों के बीच में सीमन्तों में कभी-कभी विकास-केन्द्र उदय होकर अस्थियाँ बना देते हैं जो अन्य अस्थियों से भिन्न रहती हैं और क्रमहीन आकार की होती हैं। रन्ध्रों में, विशेषकर शिवरन्ध्र में और पश्चिम सीमन्त में ये अस्थियाँ अधिकतर पाई जाती हैं। उनका आकार या संख्या निश्चित नहीं है। प्रायः इस प्रकार की दो या तीन से अधिक अस्थियाँ नहीं पाई जातीं। किन्तु कभी-कभी १०० या १५० तक पाई गई हैं।

१. Wormian or sutural bones.

अधःशुक्तिका[1]

यह अत्यन्त कोमल और पतली अस्थि का पत्र है जो अपने ही अक्ष पर कुछ बाहर की ओर को मुड़ गया है। यह अस्थि नासिकागुहा की पार्श्विक भित्ति में रहती है। इसमें दो धाराएँ और दो पृष्ठ हैं।

अन्तःपृष्ठ उन्नतोदर और खुरदरा है और उस पर रक्त-नलिकाओं तथा नाड़ियों के लिए कई परिखाएँ दिखाई देती हैं।

बहिःपृष्ठ नतोदर है और अधः मुरङ्ग की मध्यस्थ सीमा बनाता है। इसका आगे का भाग, जहाँ नासाश्रवी नलिका रहती है, चिकना है।

ऊर्ध्वधारा क्रमहीन और उन्नतोदर है। यह कई अस्थियों के साथ मिली रहती है। धारा का पूर्व भाग ऊर्ध्वहन्वस्थि की शुक्तिशिखा और पश्चात् भाग तात्वस्थि के साथ मिला रहता है। इन भागों के बीच के तीसरे भाग में धारा एक तीव्र नुकीली शिखा के रूप में ऊपर की ओर को उठी हुई है। इस शिखा के अग्र भाग से ऊपर की ओर को निकला हुआ छोटा **अश्रुकूटक प्रवर्धन**[2] है जो अश्रुपीठास्थि के अधोगामी प्रवर्धन के साथ और ऊर्ध्वहन्वस्थि की नासाश्रविका नलिका के साथ मिल जाता है जिससे नलिका पूर्ण हो जाती है। इस प्रवर्धन के पीछे की ओर एक दूसरा क्रमहीन आकार का प्रवर्धन उठा हुआ दिखाई देता है जो **झर्झरकूटक प्रवर्धन**[3] कहलाता है। यह झर्झरास्थि के अंकुशाकृति प्रवर्धन से संयोग करता है। यहाँ से नीचे की ओर एक चौड़ा पतला फलक निकला हुआ है जो **हानव्य प्रवर्धन**[4] के नाम से पुकारा जाता है। यह प्रवर्धन नतोदर बहिःपृष्ठ के कुछ भाग को ढक लेता है और हानव्य वायुविवर को नासागुरङ्ग से भिन्न करने में सहायता देता है। **अधोधारा** ऊर्ध्वधारा की अपेक्षा मोटी है। यह स्वतन्त्र है, किसी अस्थि से उसका सम्मेलन नहीं होता। उसका बीच का भाग कुछ बाहर की ओर को मुड़ा हुआ दीखता है।
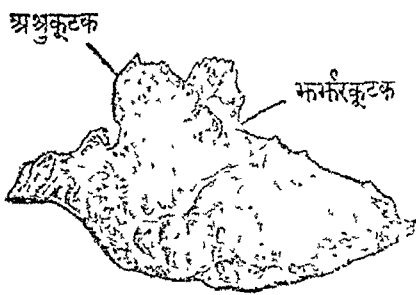
चित्र नं० १६८—अधःशुक्तिका, अन्तःपृष्ठ
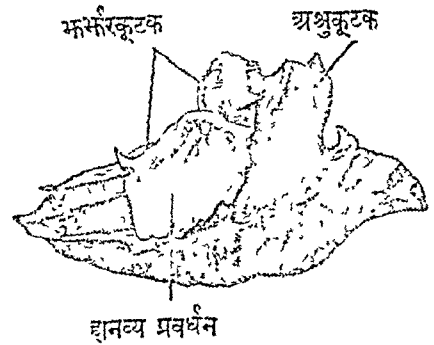
चित्र नं० १६६—अधःशुक्तिका, बहिःपृष्ठ

ऊर्ध्व और अधः धाराएँ पूर्व और पश्चात् कोण पर आसन्न में मिल जाती हैं। ये दोनों कोटि तीव्र और नुकीली हैं।

अस्थि-विकास—भ्रूणावस्था के पाँचवें मास में एक केन्द्र से इस अस्थि का विकास होता है।

---

१. Inferior Nasal Concha. २. Lacrimal process. ३. Ethmoidal process. ४. Maxillary process.

सम्मेलन—अधःशुक्तिका चार अस्थियों के साथ अपनी ऊर्ध्व धारा पर सम्मेलन करती है जिनके नाम ऊर्ध्वहन्वस्थि, अश्रुपीठास्थि, झर्झरास्थि और तालव्यस्थि हैं।

अश्रुपीठास्थि[1]

ये दो छोटी कोमल अस्थियाँ नेत्रगुहा की मध्यस्थ भित्ति में ऊर्ध्वहन्विका के ललाट-प्रवर्धन के पीछे की ओर उसके साथ मिली हुई रहती हैं। यह क्रमहीन अस्थि है जिसमें दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं।

बहिःपृष्ठ—नेत्रगुहा की ओर रहता है। यह पृष्ठ एक शिखा के द्वारा दो भागों में विभक्त है। यह पश्चिम आश्रवी शिखा[2] कहलाती है। इस शिखा के आगे की ओर एक परिखा है जिसकी पूर्वधारा ऊर्ध्वहन्वस्थि के ललाटप्रवर्धन की पश्चिमधारा से मिलकर आश्रवी परिखा[3] को पूर्ण बना देती है जिसके ऊपरी भाग में अश्रुकोष[4] और नीचे के भाग में नासाश्रविका नलिका[5] रहती है। इस परिखा के पीछे की ओर अथवा आश्रवी शिखा के पीछे और नीचे के भाग से अस्थि का एक प्रवर्धन नीचे की ओर को निकला हुआ है। यह अधोगामी प्रवर्धन[6] कहलाता है। यह प्रवर्धन आगे की ओर अधःशुक्तिका के साथ मिल जाता है और नासाश्रवी नलिका बनाने में सहायता देता है।

आश्रवी शिखा के नीचे के भाग से एक एक प्रवर्धन अंकुश के समान आगे की ओर को निकला हुआ है। इसको आश्रवांकुश[7] कहते हैं। यह ऊर्ध्वहन्वस्थि के आश्रवपिण्डक से मिला रहता है। इससे नासाश्रवी नलिका के ऊर्ध्वद्वार बनने में सहायता मिलती है। कभी-कभी यह भाग अश्रुपीठास्थि से पृथक् होता है और तब वह लघु अश्रुपीठास्थि[8] कहलाती है। शिखा के पीछे अस्थि का समतल चिकना भाग है जिससे नेत्रनिमीलिनी पेशी उदय होती है। यह भाग झर्झरास्थि के नेत्रान्तःपीठ फलक के साथ मिला रहता है।

चित्र नं० २००—अश्रविका
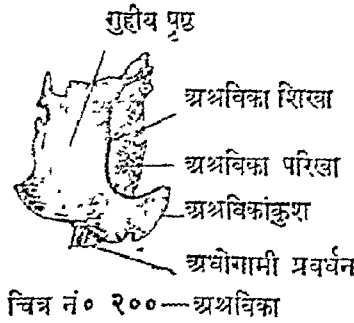
अन्तःपृष्ठ पर शिखा के पीछे की ओर एक गहरी परिखा है। परिखा के आगे का भाग नासागुहा के मध्यसुरङ्ग का एक भाग बनाता है। किन्तु उससे पीछे का भाग झर्झरास्थि के साथ मिला रहता है और कुछ वायुकोष्ठों को परिमित करता है।

धाराएँ—पूर्वधारा छोटी है और ऊर्ध्वहन्वस्थि के साथ मिली रहती है। पश्चिमधारा पतली और कोमल है और नेत्रान्तःपीठफलक के साथ मिलती है। ऊर्ध्वधारा का पुरःकपाल के साथ

---

१. Lacrimal Bones. २. Posterior lacrimal Crest. ३. Lacrimal Sulcus. ४. Lacrimal Sac. ५. Nasolacrimal duct. ६. Descending Process. ७. Lacrimal Hamulus. ८. Lesser lacrimal Bone.

सम्मेलन होता है। अधोधारा शिखा के द्वारा दो भागों में विभक्त है। शिखा से आगे का भाग, जो अधोगामी प्रवर्धन के स्वरूप में आगे की ओर को जाता है, अवःशुक्तिका के साथ मिलता है। शिखा के पीछे का भाग ऊर्ध्वहन्वस्थि के नेत्राभिमुख प्रवर्धन के साथ सम्मेलन करता है।

अस्थि-विकास—इस अस्थि का कला से विकास होता है। भ्रूणावस्था के १२वें सप्ताह के लगभग एक विकास-केन्द्र उदय होता है जिससे अस्थि विकसित होती है।

सम्मेलन—चार अस्थियों के साथ होता है जिनके नाम ये हैं—पुरःकपाल, झर्झरास्थि, ऊर्ध्वहन्वस्थि और अवःशुक्तिका।

नासास्थि[1]

ये दो अस्थियाँ होती हैं जो नासिका मे दोनों ओर रहती हैं और नासिका का सेतु बनाती हैं। दोनों अस्थियाँ नासिका की मध्य रेखा में एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई है। प्रत्येक अस्थि आकार में लम्बी होती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में इस अस्थि की लम्बाई-चौड़ाई भिन्न होती है। प्रत्येक अस्थि में दो पृष्ठ और चार धाराएँ होती हैं।

बहिःपृष्ठ ऊपर और नीचे की अपेक्षा बीच मे कुछ संकुचित है। पृष्ठ का ऊपरी भाग नतोदर है किन्तु नीचे का भाग उन्नतोदर है। पृष्ठ चौड़ाई की ओर भी उन्नतोदर है। पृष्ठ के बीच में एक सूक्ष्म छिद्र है जिसके द्वारा एक शिरा की शाखा बाहर निकलती है। यह पृष्ठ **भ्रूसंनमनी**[2] और **नासासङ्कोचनी**[3] पेशियों से ढका हुआ है।

अन्तःपृष्ठ खुरदरा और क्रमहीन है। पृष्ठ का ऊपरी भाग, जहाँ वह दूसरी ओर की अस्थि के साथ मिला रहता है, मोटा है। नीचे का भाग पतला और चौड़ाई में नतोदर है। इस पृष्ठ में
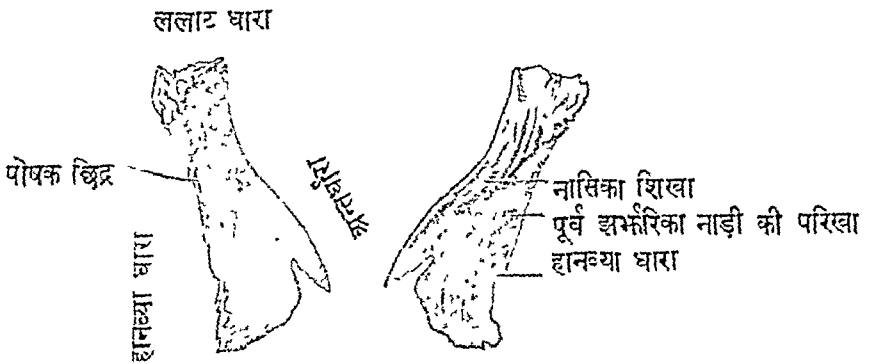
चित्र नं० २०१—नासास्थि—बहिः और अन्तः पृष्ठ

बहिर्धारा के पास एक सूक्ष्म परिखा ऊपर से नीचे की ओर को आती हुई दिखाई देती है जिसमें पूर्वझर्झरिका[4] नाड़ी रहती है।

धाराएँ—ऊर्ध्वधारा छोटी और मोटी है और उस पर पुरःकपाल के दाँतों के साथ मिलने के लिए दाँते हैं। अधोधारा लम्बी और पतली है। उसके साथ नासिका का शुक्तिनिर्मित भाग जुड़ा रहता है। उसके बीच में प्रायः एक कोटर होती है। मध्यस्थ या पूर्वधारा—इसका ऊपरी

१. Nasalis. २. Procerus. ३. Compressor Nares. ४. Anterior Ethmoidal Nerve.

भाग नीचे के भाग की अपेक्षा अधिक मोटा और दृढ़ है। अन्तःपृष्ठ की ओर यह धारा ऊपर के भाग में एक शिखा के रूप में उठी हुई है जो दूसरी ओर की अस्थि की समान शिखा के साथ मिल जाती है। इस दृढ़ शिखा का ऊपरी भाग पुरःकपाल के कण्टक से, बीच का भाग झर्झरास्थि के मध्यफलक से और नीचे का भाग नासिका के विभाजक सुक्ति-निर्मित फलक से मिला रहता है। बहिः या पार्श्वधारा—अन्य सब धाराओं की अपेक्षा अधिक लम्बी है। इसका नीचे का भाग पतला है। यह धारा ऊर्ध्वहन्वस्थि के ललाटप्रवर्धन से जुड़ी रहती है।

अस्थि-विकास—नासास्थि का केवल एक केन्द्र से विकास होता है। उससे पूर्व यह कला-निर्मित रहती है। भ्रूणावस्था के तीसरे मास में इसमें विकास-केन्द्र उदय होता है।

सम्मेलन चार अस्थियों के साथ होता है—पुरःकपाल और झर्झरास्थि ऊपर की ओर, दूसरी ओर की नासास्थि भीतर की ओर और ऊर्ध्वहन्वस्थि बाहर की ओर।

सीरिका[1]

यह अस्थि नासागुहा के बीच में विभाजक फलक के पिछले भाग में रहती है। यह पतली अस्थि है जो आकार में कुछ चतुष्कोण के समान है। इसमें दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं।

दोनों पृष्ठ प्रायः समतल हैं। उन पर रक्त-नलिकाओं के लिए परिखाएँ दिखाई देती हैं। दोनों पृष्ठों पर एक गहरी परिखा पीछे की ओर से आगे और नीचे की ओर को जाती है। यह नासा-तालुका परिखा[2] है जिसमें नासातालुगा नाड़ी, धमनी तथा शिराएँ रहती हैं।

धाराएँ—ऊर्ध्वधारा के दोनों ओर अस्थि के दो चौड़े पक्ष स्थित हैं जिनके बीच में एक स्पष्ट परिखा है। पक्षों के किनारों का पीछे का भाग जतूकास्थि के नीचे की ओर स्थित परिवेष्टक प्रवर्धन
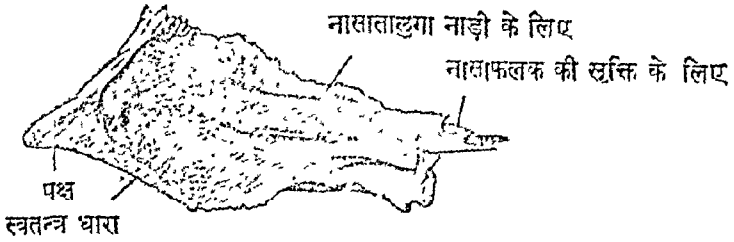
चित्र नं० २०२—सीरिका

और आगे की ओर तालव्वस्थि के जतूकीय प्रवर्धन से मिला रहता है। पक्षों के बीच की परिखा में जतूकतोटि रहती है। अधोधारा विशेषकर आगे की ओर कुछ चौड़ी हो जाती है। यह ऊर्ध्वहन्वस्थि और तालव्वस्थि के मिलने से बनी हुई नासाशिखा से मिलती है। पूर्वधारा अन्य सब धाराओं की अपेक्षा लम्बी है। इसका आगे का भाग दो ओष्ठों में विभक्त है, जो नासागुहा के विभाजक पटल की अधोधारा के साथ मिलते हैं। किन्तु ऊपर का भाग झर्झरास्थि के मध्यफलक के साथ जुड़ा रहता है। पश्चिमधारा छोटी और मुड़ी हुई है। इसका ऊपरी भाग दो ओष्ठों में विभक्त है। नीचे का भाग कुछ नतोदर है। यह धारा स्वतन्त्र है। नासागुहा के विभाजक पटल को यह धारा पीछे की ओर से परिमित करती है।

---

१. Vomer. २. Nasopalatine groove.

अस्थि की अग्रकोटि और कोण कुछ चिपटा है। यह ऊर्ध्वहन्वस्थि की छेदकीय शिखा के साथ मिलता है। वहाँ से एक सूक्ष्म प्रवर्धन छेदकीय छिद्रों के बीच में होता हुआ आगे तक चला जाता है।

अस्थि-विकास—सीरिका का विकास कला से होता है। प्रथम दोनों ओर दो पत्र होते हैं जिनमें भ्रूणावस्था के आठवें सप्ताह में दो विकास-केन्द्र उदय होते हैं जिनसे ये पत्र विकसित होते
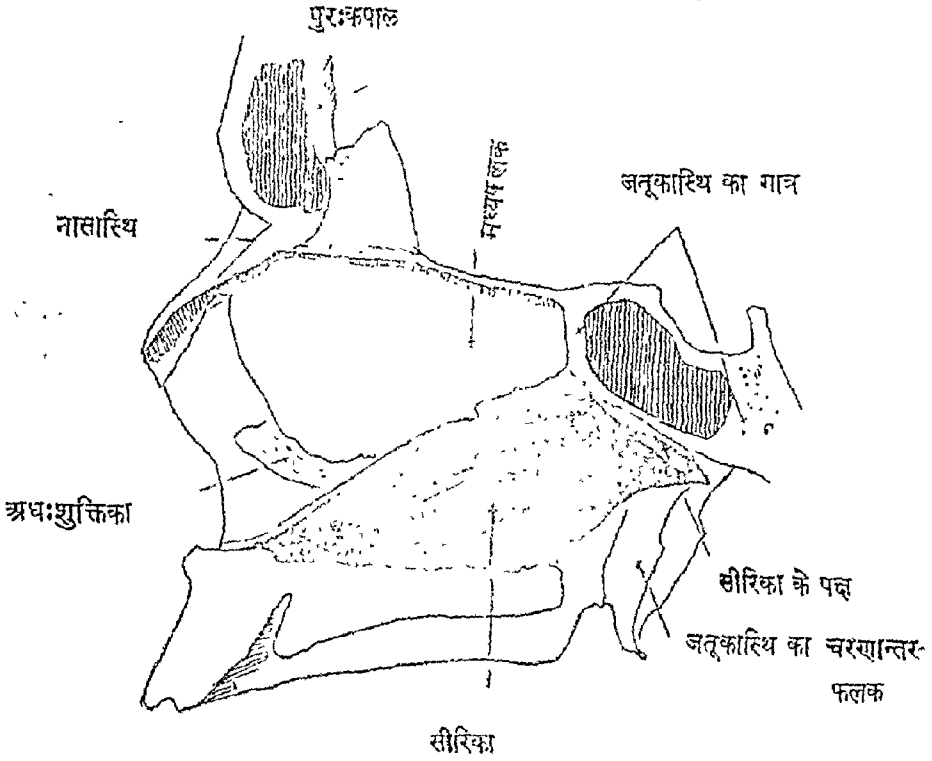
चित्र नं० १०३—सीरिका की स्थिति

हैं। तीसरे मास के समीप इन पत्रों के नीचे के भाग आपस में जुड़ जाते हैं। शनैः-शनैः आयु के अधिक होने पर ऊपर के भाग भी जुड़ने लगते हैं और युवावस्था तक दोनों फलकों के पूर्णतया जुड़ जाने से एक सीरिका अस्थि तैयार हो जाती है।

सम्मेलन छः अस्थियों के साथ होता है—तात्वस्थि (२), ऊर्ध्वहन्वस्थि (२), जतूका और झर्झरास्थि।

मुख की अस्थियाँ

ऊर्ध्वहन्विका[१]

यह अस्थि मुख के ऊर्ध्व भाग में रहती है और दूसरी ओर की समान अस्थि के साथ मिलकर ऊपरी जबड़ा बनाती है। प्रत्येक अस्थि में एक गात्र और चार प्रवर्धन होते हैं जिनको गण्डधरकूट, नासाकूट, दन्तोदूखलिक और तालुफलक कहते हैं।

---

१. Maxilla.

गात्र—अस्थि का गात्र क्रमहीन है। उसके नीचे का भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा कम चौड़ा है। इसमें चार पृष्ठ हैं जिनको पूर्व, पश्चात्, ऊर्ध्व या नेत्राभिमुख[1] और अन्तः या नासाभिमुख[2] पृष्ठ कहते हैं।

पूर्वपृष्ठ—यह पृष्ठ आगे और बाहर की ओर रहता है। इस पृष्ठ में नीचे की ओर दन्तमूलों से उत्पन्न हुए प्रवर्धन या तीरणिकाएँ दीखती हैं। पृष्ठ के नीचे के किनारे पर दन्तमूलों के कोटरों के द्वार दिखाई देते हैं। सबसे आगे की ओर बीच में कर्त्तनक दाँतों के ऊपर एक निम्न स्थान है जो **कर्त्तनकमूलखात**[3] कहलाता है। इस खात से नासावनमनी[4] पेशी का उदय होता है। इससे तनिक ऊपर और बाहर की ओर नासासङ्कोचनी[5] उदय होती है। खात के नीचे की ओर, जहाँ दाँत अस्थि में प्रवेश करते हैं, अधोधारा पर मुखमुद्रणी का कुछ भाग लगता है।

कर्त्तनकखात के बाहर की ओर रदनक दाँत के ऊपर की ओर एक चौड़ा निम्न स्थान है जिसको **रदनकमूलखात**[6] कहा जाता है। दोनों खातों के बीच में एक तीरणिका है जो अन्य पास के उत्सेधों से अधिक स्पष्ट है और ऊपर की ओर को भी अधिक दूर तक जाती है। यह **रदनक तीरणिका**[7] कहलाती है। यह रदनक खात कर्त्तनक खात की अपेक्षा अधिक चौड़ा और
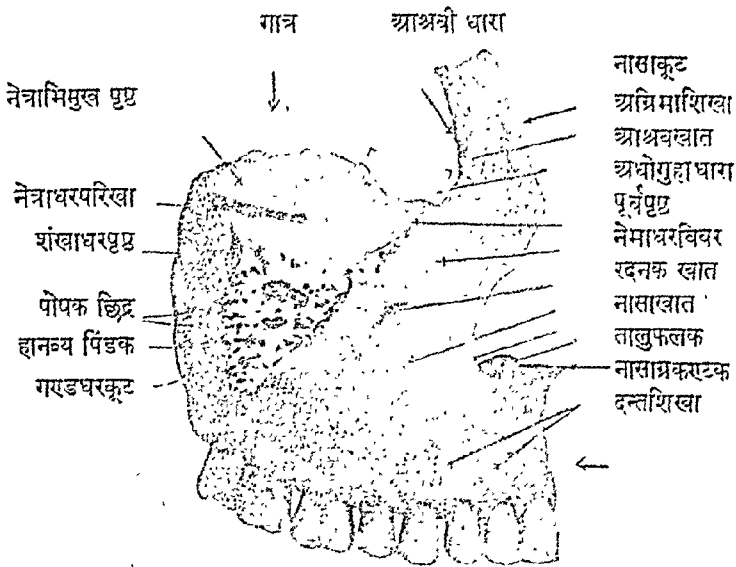
चित्र नं० २०४—ऊर्ध्वहन्वस्थि—सामने और पार्श्व की ओर से

चतुष्कोणाकार है। इससे सृक्कणी समुन्नमनी[8] पेशी उदय होती है। इस खात के बाहर की ओर पूर्वपृष्ठ को परिमित करती हुई एक तीरणिका गण्डकीय प्रवर्धन से नीचे दाँतों तक जाती हुई दीखती है। रदनक खात के ऊपर की ओर नेत्रगुहा की अधोधारा है जिस पर नासौष्ठकर्षणी[9] पेशी लगती है। इस धारा के नीचे की ओर एक छिद्र है जो **नेत्राधरीय विवर**[10] कहलाता है। यह नेत्राधर नलिका[11] का, जो इस छिद्र से ऊपर को अस्थि के भीतर जाती हुई दीखती है, बाहरी द्वार है। इसके द्वारा नेत्राधरीय नाड़ियाँ, धमनी और शिराएँ जाती हैं। पृष्ठ के भीतर की ओर एक बड़ा

---

१. Orbital. २. Nasal. ३. Incisive fossa. ४. Depressor septi. ५. Nasalis. ६. Canine fossa. ७. Canine eminence. ८. Caninus. ९. Quadratus labii superioris. १०. Infraorbital foramen. ११. Infraorbital Canal.

अर्धछिद्र दिखाई देता है जो दूसरी ओर की अस्थि के मिलने पर पूर्ण हो जाता है। यह नासाखात[1] कहा जाता है। इसके किनारे पर नासाविस्फारणी पश्चिमा[2] पेशी लगती है। इस विवर के नीचे की अस्थि एक शिखा से रूप में ऊपर को कुछ मुड़ गई है जिससे वहाँ एक प्रवर्धन उत्पन्न हो गया है। दूसरी ओर के समान प्रवर्धन के साथ मिलकर यह नासाग्रकण्टक[3] बनाता है।

पश्चिम या शङ्खाधर पृष्ठ[4]—यह पृष्ठ उन्नतोदर है और पीछे तथा बाहर की ओर रहता है। ऊपर की ओर यह नेत्रगुहा के गोल पश्चिम धारा से परिमित है। इसके आगे की ओर गण्डकीय
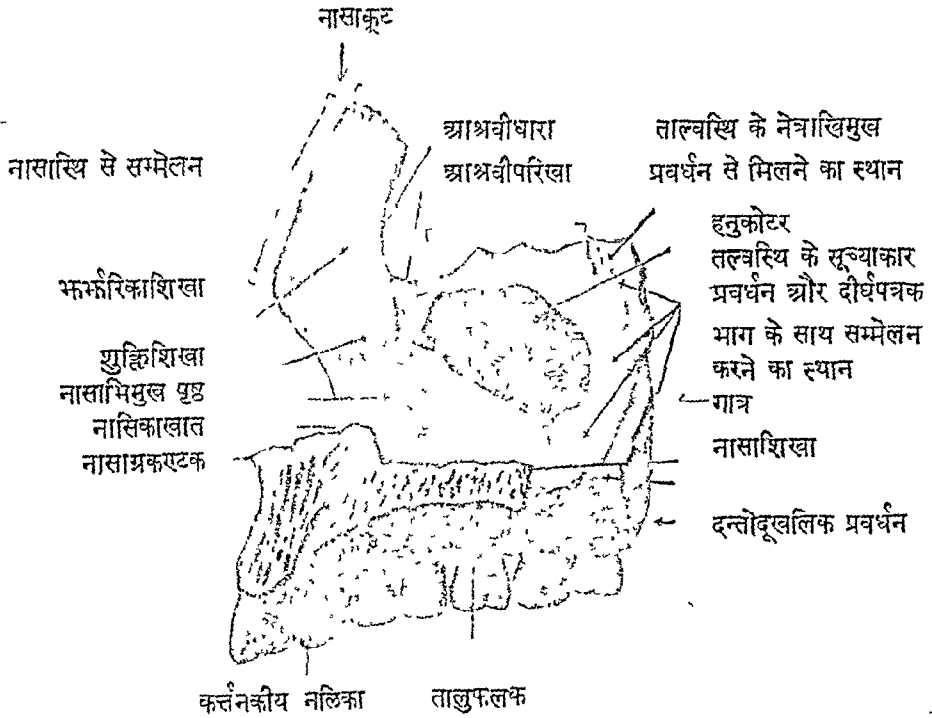
चित्र नं० २०५—ऊर्ध्वहन्वस्थि—भीतर की ओर से

प्रवर्धन और उससे नीचे को उतरनेवाली तीरणिका है। नीचे की ओर दाँतों से ऊपर उन्नत तीरणिकाएँ स्थित हैं। पीछे की ओर इस पृष्ठ की तीम्र धारा स्वतन्त्र है। यह ताल्वस्थि के साथ मिलती है और कभी-कभी जतूका के बहिःश्चरणफलक से भी सम्मेलन करती है। पश्चिमधारा के नीचे की ओर अस्थि का एक गोल भाग है जो हानव्य पिण्डक[5] कहलाता है। यह प्रज्ञादन्त के निकलने के पश्चात् विशेषतया स्पष्ट हो जाता है। इसके ऊपर और बाहर की ओर से हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था[6] के कुछ सूत्र उदय होते हैं। इससे ऊपर के चिकने स्थान में एक या दो छिद्र दिखाई देते हैं जो दन्तीय नलिकाओं के छिद्र हैं। इन छिद्रों से पीछे की ओर ऊर्ध्वहानव्या[7] नाड़ी की सूक्ष्म परिखा है जो ऊपर और बाहर की ओर को जाती हुई दिखाई देती है। पृष्ठ का पिछला भाग शंखाधर खात का एक भाग है जो तालुचरणिक खात की पूर्वसीमा बनाता है।

ऊर्ध्व या नेत्राभिमुख पृष्ठ—यह पृष्ठ चिकना और त्रिकोणाकार है। इससे आगे की ओर नेत्रगुहा की अधोधारा है जो पीछे और बाहर की ओर गण्डधरकूट और आगे की ओर नासाकूट के

---

१. Nasal Notch. २. Dilator naris Posterior. ३. Anterior nasal Spine. ४. Infratemporal surface. ५. Maxillary tuberosity. ६. Pteryogideus Internus. ७. Maxillery Nerve.

साथ मिल जाती है। पृष्ठ के पीछे की ओर अधोगुहारन्ध्र है जो पूर्व चिकनी गोल धारा से परिमित है। पृष्ठ की अन्तर्धारा के अगले भाग में एक कोटर है जिसको अश्रुपीठखात[1] कहते हैं जिसके पीछे की ओर अश्रुपीठास्थि और उसके पश्चात् नेत्रान्तःफलक अन्तःभाग से मिले रहते हैं। अश्रुपीठास्थि की अपेक्षा यह फलक धारा के अधिक भाग को घेरे हुए है। धारा का पश्चात् भाग, जो फलकसे मिलनेवाले भागसे छोटा है, तात्वस्थि के नेत्राभिमुख प्रवर्धन से संयोग करता है।

पृष्ठ के बीच में एक गहरी परिखा दिखाई देती है जो नेत्राधर परिखा[2] कहलाती है। यह परिखा आगे की ओर अस्थि के भीतर चली जाती है। उसका अग्रद्वार अधोगुहाधारा के नीचे पूर्वपृष्ठ पर स्थित है। पृष्ठ के ऊपर इस नलिका की ऊर्ध्वभित्ति नष्ट हो जाती है। पीछे की ओर परिखा पश्चिमपृष्ठ पर की परिखा के साथ मिली हुई है। यदि अस्थि को तोड़कर उसके भीतर इस नलिका का अन्वेषण किया जाय तो पूर्व और मध्य दन्तीय नलिकाओं के छिद्र इस नलिका में खुलते हुए पाये जायँगे जिनके द्वारा नाड़ी और धमनियाँ इत्यादि कर्त्तनक, रदनक और अग्रचर्व्वणक दाँतों को जाती हैं।

पृष्ठ के आगे के भाग में अश्रुपीठखात के तनिक बाहर की ओर एक नत स्थान है जहाँ से वक्राधोदर्शनी[3] पेशी उदय होती है।

अन्तः या नासाभिमुख पृष्ठ—यह पृष्ठ चतुष्कोणाकार है और नासागुहा की बहिःभित्ति बनाता है। आगे की ओर यह नासाखात की पार्श्वधारा से सीमित है जो ऊपर की ओर नासाकूट से मिल जाता है। पृष्ठ का अगला भाग भी इसी प्रवर्धन के मध्यस्थ पृष्ठ से मिला हुआ है। ऊर्ध्वधारा के अगले भाग में एक गहरी परिखा स्थित है जो ऊपर की ओर आश्रवी परिखा से मिली हुई है। इसके आगे की ओर अस्थि का एक चौड़ा, फलक के समान उठा हुआ, भाग है जो परिखा को भीतर की ओर से सीमित करता है। इसका पीछे की ओर का किनारा शुक्तिशिखा[4] के नाम से पुकारा जाता है। जब पृष्ठ के इस भाग में अश्रुपीठास्थि और अधःशुक्तिका अस्थि लगी रहती है तो अश्रुपीठखात नासाश्रवी नलिका के रूप में परिणत हो जाता है। इस विवर से पीछे की ओर ऊर्ध्वधारा, जो ऊर्ध्वपृष्ठ की मध्यस्थ धारा है, अश्रुपीठास्थि झर्झरास्थि के नेत्रान्तःपीठफलक और तात्वस्थि के नेत्राभिमुख प्रवर्धन से मिली रहती हैं जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

पृष्ठ के ऊपरी और पीछे के भाग में एक क्रमहीन छिद्र है जो हनुकोटर का द्वार है। यह एक बहुत बड़ा वायुविवर है जो अस्थि के समस्त गात्र के भीतर फैला हुआ है। करोटि में यह छिद्र मध्य सुरङ्ग के भीतर खुलता है और उसका आकार भी अश्रुपीठास्थि, झर्झरास्थि, तात्वस्थि और अधःशुक्तिका के चारों ओर लग जाने से छोटा हो जाता है। इस छिद्र के नीचे की ओर एक समतल नत स्थान है जो नासागुहा की भित्ति बनाने में भाग लेता है। पृष्ठ की पश्चात्धारा के लगभग बीच से प्रारम्भ होकर आगे और नीचे की ओर को जाती हुई एक परिखा दिखाई देती है जो इस नत स्थान को दो भागों में विभक्त कर देती है। जब तात्वस्थि इस अस्थि के साथ सम्मेलन करती है तो यह परिखा तालुचरणिका नलिका[5] के रूप में परिणत हो जाती है।

हनुकोटर[6]—इस कोटर का आकार बहुत बड़ा है। यह अस्थि के समस्त गात्र में फैला हुआ है। साधारणतया यह कोटर नीचे की ओर दन्तोदूखलिक प्रवर्धन तक फैला हुआ है। किन्तु बड़ा होने पर वह इससे भी नीचे की ओर फैल सकता है। विवर की भित्तियाँ सब स्थानों पर पतली हैं। गण्डकीय

---

१. Lacrimal notch. २. Infraorbital groove. ३. Obliquus inferior. ४. Conthal Crest. ५. Pterygopalatine Canal. ६. Maxillary air-sinus.
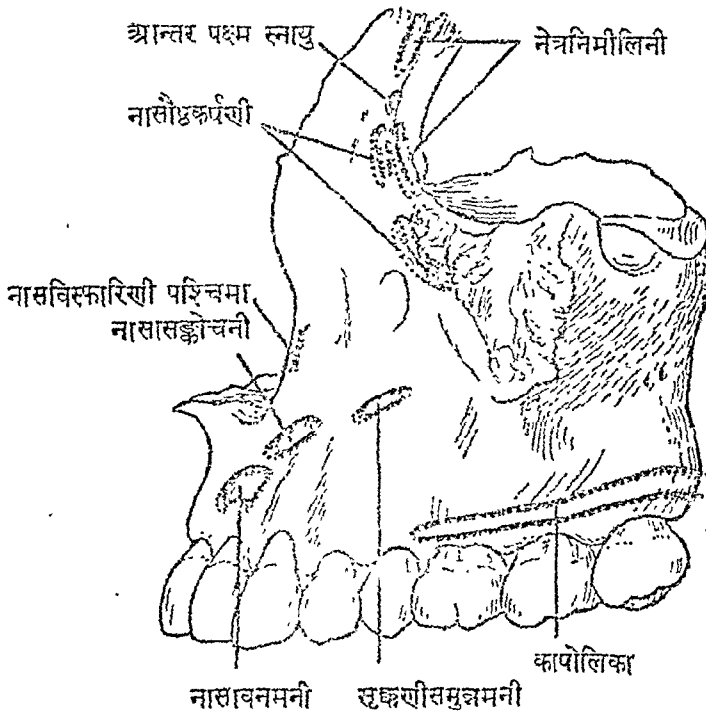
चित्र नं० २०६—ऊर्ध्वहन्वस्थि पर लगनेवाली पेशियाँ

प्रवर्धन के भीतर की ओर जो कोटर का कोण है वह उसका शिखर है और दन्तप्रवर्धन के ऊपर का चौड़ा पृष्ठ उसका तल है। विवर के भीतर की ओर धमनी या नाड़ियों के चिह्न दिखाई देते हैं। उसके तल में प्रथम और द्वितीय चर्वणक दाँतों के कारण उत्सेध मालूम होता है। कभी-कभी दन्तमूल अस्थि के द्वारा विवरके भीतर पहुँच जाते हैं। विवर के ऊपर की ओर ऊर्ध्वपृष्ठ पर नेत्राधरनलिका की परिखा के कारण एक तीरणिका भीतर की ओर को उठी हुई दीखती है जो ऊर्ध्वपृष्ठ से पूर्वपृष्ठ को जाती है। अन्तर्भित्ति पर स्थित कोटर का द्वार, जो करोटि से पृथक् हुई अस्थि में बड़ा और क्रमहीन होता है, अन्य अस्थियों के साथ सम्बन्ध होने पर छोटा हो जाता है और स्वाभाविक अवस्था में नासिका के मध्य सुरङ्ग में रहता है। जब अस्थियों पर से श्लैष्मिक कला हटा दी जाती है तो अस्थियों के बीच में दो छिद्र दिखाई देते हैं किन्तु श्लैष्मिक कला से आच्छादित हो जाने पर एक छिद्र कला के द्वारा ढक जाता है। इस कारण कोटर और सुरङ्ग का सम्बन्ध केवल एक ही छिद्र द्वारा होता है।

भिन्न-भिन्न करोटियों में और एक ही करोटि में दोनों ओर के कोटरों के आकार में भिन्नता पाई जाती है।

गण्डधर कूट या गण्डकीय प्रवर्धन[1]—यह एक छोटा दृढ़ त्रिकोणाकार प्रवर्धन है जो गण्डास्थि के साथ जुड़ा रहता है और ऊर्ध्व, पूर्व और पश्चिम पृष्ठ के सम्मेलन-स्थान से प्रवर्धन पीछे और बाहर की ओर को निकला रहता है। प्रवर्धन का पूर्वपृष्ठ सामने की ओर गात्र के पूर्वपृष्ठ से मिला रहता है। इसी भाँति पश्चिमपृष्ठ भी नतोदर है और गात्र के पश्चिमपृष्ठ के शंखाधरखात का एक भाग है। प्रवर्धन का ऊर्ध्वपृष्ठ खुरदरा और दाँतेदार है क्योंकि वह गण्डास्थि से संयोग करता है। प्रवर्धन के पूर्व और पश्चात् पृष्ठ नीचे की ओर आपस में मिल जाते हैं। यह स्थान एक तीरणिका के

१. Zygomatic Process.

समान है जिससे गात्र के पूर्व और पश्चात् पृष्ठ को विभक्त करती हुई एक तीरणिका नीचे की ओर को चली जाती है।

नासाकूट या ललाटप्रवर्धन[१]—गात्र के पूर्वभाग से यह प्रवर्धन ऊपर, पीछे और भीतर की ओर को निकला हुआ है। यह एक दृढ़ प्रवर्धन है जो ऊपर की ओर पुरःकपाल से, आगे की ओर नासास्थि से और पीछे की ओर अश्रुपीठास्थि से मिला हुआ है। इसका ऊपरी भाग नासागुहा की पार्श्विक भित्तियों के बनाने में भाग लेता है। प्रवर्धन का बहिःपृष्ठ चिकना और गात्र के पूर्वपृष्ठ से मिला हुआ है। पृष्ठ का ऊपरी भाग एक तीरणिका के द्वारा, जो अधोगुहाधारा के ऊपर की ओर केवल एक प्रलम्बन मात्र है, दो भागों में विभक्त हो गया है। यह अग्रिमा आश्रवी तीरणिका[२] कहलाती है। तीरणिका के पीछे का भाग अश्रवीपरिखा से मिला हुआ है। यह भाग पीछे की ओर अश्रुपीठास्थि के साथ मिलकर अश्रुकोष[३] के लिए खात बनाता है।

शिखा के आगे के भाग में एक या दो सूक्ष्म पोषक छिद्र दिखाई देते हैं। इसके ऊपर की ओर की धारा दाँतेदार है क्योंकि वह पुरःकपाल के नासिकाखात से मिली रहती है। इस भाग पर नासौष्ठकर्षणी[४] का मध्यस्थ शिर, नेत्रनिमीलनी[५] पेशी और आन्तरपक्ष्मस्नायु[६] लगते हैं।

तालव्यस्थि का लघु अनुप्रस्थ भाग
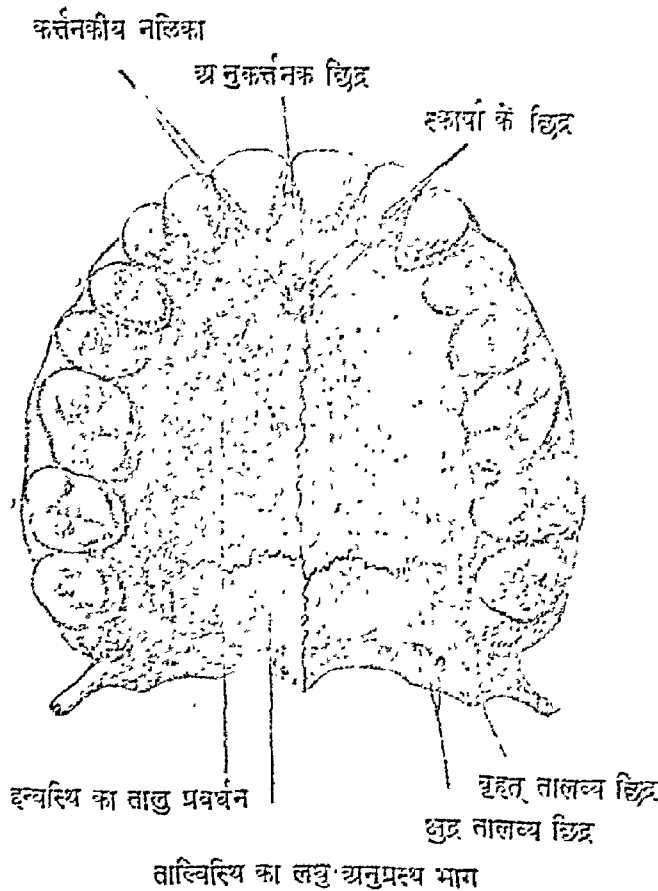
चित्र नं० २०७

---

१. Frontal Process. २. Anterior lacrimal crest. ३. Lacrimal Sac. ४. Angular head of quadratus labii superioris. ५. Orbicularis oculi. ६. Medial palpebral lig.

अन्तःपृष्ठ नासागुहा के भीतर रहता है और उसको बाहर की ओर से सीमित करता है। इस पृष्ठ की अग्रधारा के लगभग बीच से एक शिखा प्रारम्भ होकर पीछे और ऊपर को जाती है। यह झर्झरीय शिखा[1] कहलाती है। इस शिखा का पश्चिम भाग मध्यशुक्तिफलक से मिला रहता है। यह शिखा मध्य सुरङ्ग को ऊपर की ओर से परिमित करती है।

जहाँ पूर्व अश्रविका शिखा गात्र के ऊर्ध्वपृष्ठ से मिलती है वहाँ एक सूक्ष्म पिण्डक है जो अश्रविका-पिण्डक[2] कहलाता है।

दन्तीय प्रवर्धन[3]—अस्थि के गात्र से यह प्रवर्धन नीचे की ओर निकला हुआ है और आगे की ओर बीच में दूसरे ओर के समान प्रवर्धन के साथ मिलकर दन्तचाप[4] बनाता है जिसमें दाँतों के मूल अस्थि के भीतर धँसे रहते हैं। यह प्रवर्धन मोटा और दृढ़ है और आगे की अपेक्षा पीछे की ओर चौड़ा है। प्रवर्धन में नीचे की ओर भिन्न-भिन्न आकार की कोटरें हैं। ये सब कोटरें सूच्याकार[5] हैं। किन्तु उनकी चौड़ाई और गहराई में अन्तर है। पीछे की ओर स्थित चर्वणक दाँतों की कोटरें सबसे अधिक चौड़ी होती हैं। वे प्रायः सूक्ष्म पटलों द्वारा छोटी कोटरों में विभक्त होती हैं। भेदक दाँत की कोटर पतली किन्तु सबसे गहरी होती है। छेदक दाँतों की कोटरें संकुचित किन्तु गहरी होती हैं। वृद्धावस्था में जब दाँत घिस या टूट जाते हैं तो ये कोटरें भी आकर में छोटी होने लगती हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी यह भाग इतना घिस जाता है कि उसका अवशेष भी नहीं रहता और सारा भाग तालविकाप्रवर्धन के समतल दिखाई देता है। यह प्रवर्धन पीछे की ओर हनुपिण्डक[6] में समाप्त होता है। आगे की ओर दूसरी ऊर्ध्वहन्विका के साथ वह हन्विकान्तरिक सीमन्त[7] बनाता है। प्रवर्धन के बहिःपृष्ठ पर प्रथम चर्वणक के पीछे की ओर से कपोलिका[8] पेशी का कुछ भाग उदय होता है।

तालुप्रवर्धन[9]—दन्तप्रवर्धन के कुछ ऊपर की ओर अस्थि-गात्र के निचले भाग से यह प्रवर्धन पीछे और भीतर की ओर को निकला हुआ है। इसका अग्रभाग पिछले भाग की अपेक्षा मोटा और दृढ़ है। प्रवर्धन में दो पृष्ठ हैं जो ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ कहलाते हैं और बहिः, अन्तः और पश्चिम तीन धाराएँ हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ आगे से पीछे की ओर को उन्नतोदर किन्तु अनुपार्श्विक दिशा में नतोदर है। यह पृष्ठ नासागुहा के नीचे की ओर रहता है और उसकी अधःभित्ति बनाता है। अधःपृष्ठ नतोदर और खुरदरा है और उसमें कई छोटे-छोटे गढ़े दिखाई देते हैं। इस पृष्ठ पर अनेकों सूक्ष्म छिद्र हैं जिनके द्वारा धमनियों की शाखाएँ अस्थि के भीतर जाती हैं। इसके पिछले भाग में पार्श्वधारा के पास एक नलिका का कुछ भाग दिखाई देता है जो कभी-कभी केवल एक छिद्र के रूप में रह जाता है। इस नलिका के द्वारा अधोगामी तालवीय धमनी और शिराएँ[10] और पूर्वतालवीय नाड़ियाँ[11] आती हैं। पृष्ठ पर जो छोटे-छोटे गढ़े हैं उनमें तालवीय लसीका ग्रन्थियाँ रहती हैं।

जब दोनों ऊर्ध्वहन्विकाएँ मिली रहती हैं तब मध्यस्थ छेदक दाँतों के बीच में तनिक पीछे की ओर एक बड़ा छिद्र दिखाई देता है जो छेदक छिद्र[12] कहलाता है। ध्यान से देखने पर इस छिद्र के भीतर लगभग चार और छिद्र दिखाई देंगे। दो छिद्र पार्श्व में स्थित होते हैं जो दो नलिकाओं के, जिनको छेदकीय नलिका[13] कहते हैं, द्वार हैं। प्रत्येक नलिका के द्वारा अधोगामी तालवीय धमनी और नासातालवीय[14] नाड़ी जाती है। शेष दोनों छिद्र छेदकीय छिद्र की मध्यरेखा में आगे और पीछे स्थित हैं और स्कार्पा के छिद्र[15] कहलाते हैं। ये छिद्र सदा उपस्थित नहीं होते। इनके द्वारा नासातालवीय नाड़ियाँ जाती हैं।

---

१. Ethmoidal Crest. २. Lacrimal tubercle. ३. Alveolar Process. ४. Alveolar arch. ५. Pyramidal. ६. Maxillary tuberosity. ७. Intermaxillary suture. ८. Buccinator. ९. Palatine Process. १०. Descending Palatine Vessels. ११. Anterier Palatine Nerve. १२. Incisive foramen. १३. Incisive Canal. १४. Nasopalatine Nerve. १५. Foramina of Scarpa.

अन्तर्धारा अन्य धाराओं की अपेक्षा दृढ़ और स्पष्ट है। यह ऊपर की ओर को उठी हुई है और नासाशिखा[1] कहलाती है। यह शिखा दूसरी ओर की शिखा के साथ करोटि में मिल जाती है। इसके आगे का भाग शेष भाग की अपेक्षा ऊपर की ओर को अधिक प्रवर्धित है और छेदकीय शिखा[2] के नाम से पुकारा जाता है। यह शिखा आगे की ओर को एक नुकीले प्रवर्धन के रूप में प्रलम्बित है जो पूर्व नासाकण्टक[3] कहा जाता है।

पार्श्विक धारा अस्थि के साथ मिली हुई है। पश्चिमधारा पतली और दाँतेदार है। वह तालिवका अस्थि से मिली रहती है।

अस्थि-विकास—यह अस्थि कला से विकसित होती है। भ्रूणावस्था के छठे सप्ताह में दो विकास केन्द्र उदय होते हैं जो तीसरे मास तक आपस में जुड़कर एक हो जाते हैं। इस कारण कुछ लेखकों ने केवल एक ही केन्द्र का उदय होना लिखा है। किन्तु इन दोनों केन्द्रों से विकसित भागों के बीच में सीमन्त के चिह्न कभी-कभी युवावस्था तक रहते हैं।

सम्मेलन—ऊर्ध्वहन्विका नौ अस्थियों के साथ सम्मेलन करती है जिनके नाम ये हैं—पूर्विका, झर्झरास्थि, नासास्थि, गण्डिका, अश्रविका, अधःशुक्तिका, सीरिका, तालिवका और दूसरे ओर की ऊर्ध्वहन्विका।

अवस्था के अनुसार अस्थि का आकार-परिवर्तन

जन्म के समय इस अस्थि का आकार युवावस्था की अपेक्षा बहुत भिन्न होता है। उसकी ऊँचाई कम होती है। वायु-विवरों का विकास नाम मात्र को होता है। इस कारण दाँतों के मूल नेत्रगुहा के लगभग नीचे तक पहुँच जाते हैं। आयु की वृद्धि के साथ वायु-विवर और दन्तचाप दोनों में वृद्धि होती है। युवावस्था में अस्थि अपने स्वाभाविक रूप में आ जाती है। वृद्धावस्था में दन्तचाप और दन्त-प्रवर्धन छोटे हो जाते हैं। अस्थि की ऊँचाई कम हो जाती है और नीचे का भाग पतला पड़ जाता है।

गण्डिका[4] या कपोलास्थि

यह मुख की एक छोटी अस्थि है जो आकार में कुछ चतुष्कोण के समान है। नेत्रों के बहिःकोण के नीचे मुख में जो उत्सेध दीखता है वह इसी अस्थि से बनता है। नेत्रगुहा की तीव्र पार्श्वधारा और पार्श्व तथा अधोभित्ति का कुछ भाग इस अस्थि के द्वारा बनता है। इस अस्थि में दो पृष्ठ, दो धारा और चार प्रवर्धन हैं।

बहिः या कपोलीय पृष्ठ चिकना और उन्नतोदर है। इसके नीचे के भाग में एक गोल उत्सेध दिखाई देता है। जो गण्डकीय पिण्डक[5] कहलाता है। इसके ऊपर की ओर एक छिद्र है जो गण्डमौखिक छिद्र[6] कहा जाता है। इसके द्वारा गण्डमौखिकी नाड़ी, धमनी तथा शिराएँ जाती हैं। पिण्डक और उसके नीचे से सृक्कणी कर्षणी[7] पेशी उदय होती है।

अन्तः या शंखीय पृष्ठ—यह पृष्ठ नतोदर है और भीतर तथा पीछे की ओर को रहता है। इसके भीतर और आगे की ओर एक खुरदरा और त्रिकोणाकार स्थान है जो ऊर्ध्वहन्विका के साथ मिला रहता है। पीछे की ओर जो चिकना स्थान है उसके ऊपर का भाग शंखखात की पूर्व सीमा और नीचे का भाग शंखाधर खात का एक भाग बनाता है। पृष्ठ के बीच के भाग में और कभी-कभी ऊपर की ओर को हटकर एक छिद्र दिखलाई देता है जो गण्डशंखीय छिद्र[8] कहलाता है। इसके द्वारा गण्डशंखीय नाड़ी[9] निकलकर बाहर आती है।

---

१. Nasal crest. २. Incisive Crest. ३. Anterior Nasal spine. ४. Zygomatic or malar Bones. ५. Zygomatic tuberosity. ६. Zygomatico facial foramen. ७. Zygomaticus. ८. Zygomaticotemporal foramen. ९. Zygomaticotemporal Nerve.

पश्चिमाधः या गण्डकीय धारा मोटी, गोल और स्वतन्त्र है और शंखास्थि के गण्डकीय प्रवर्धन की अधोधारा के साथ मिली रहती है। इस पर हनुकूट-कर्पणी का कुछ भाग लगता है। **पूर्वोर्ध्व** या नेत्रीय **धारा** नतोदर, चिकनी और दृढ़ है और नेत्रगुहा की अधः और पार्श्व धारायें बनाती है। **पूर्वाधः** या हन्वीय **धारा** कुछ नतोदर, खुरदरी और दाँतेदार है। यह ऊर्ध्वहन्विका अस्थि के साथ सम्मेलन करती है। इस धारा
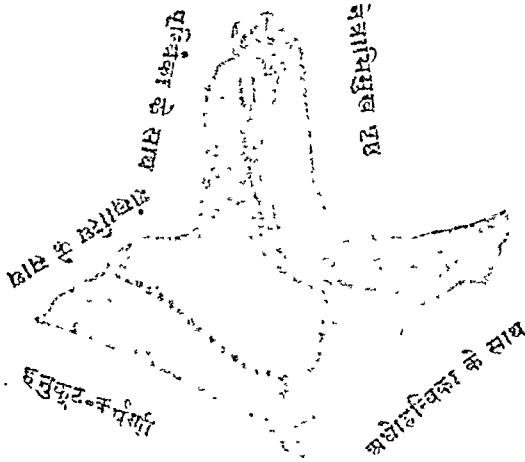
चित्र नं० २०८—गण्डिका का अन्तःपृष्ठ

के तनिक पीछे की ओर गण्डमौखिक छिद्र के तनिक नीचे से नासौष्ठकर्पणी[1] के गण्डकीय शिर का उदय होता है। **पश्चिमोर्ध्व या शंखीय** धारा बीच से भीतर की ओर को मुड़ी हुई है। ऊपर की ओर यह ललाटजतूकीय प्रवर्धन की पश्चिमधारा के साथ मिलकर पूर्विका पर शंखरेखा में प्रलम्बित हो जाती है।

ललाटजतूकीय प्रवर्धन[2] अस्थि की पूर्वोर्ध्व और पश्चिमोर्ध्व धारा के बीच से ऊपर की ओर को निकलता है। यह दृढ़ और चौड़ा प्रवर्धन है जो ऊपर और भीतर की ओर पूर्विका अस्थि के साथ मिलता
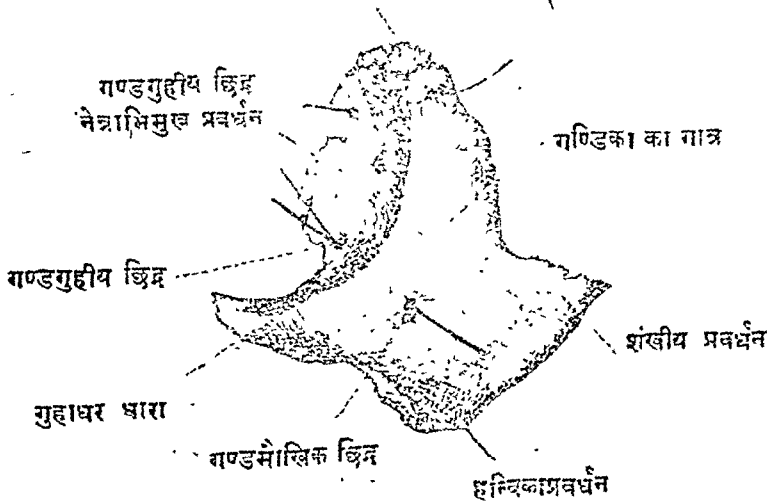
चित्र नं० २०९—गण्डिका—सामने की ओर से

Zygomatic head of Quadratus labii superioris. २. Frontosphenoidal Process.

है। सामने की ओर यह चौड़ा और समतल है और वहाँ पर एक या दो पोषक छिद्र दिखाई देते हैं। इसका आगे का किनारा गोल है जो नेत्रगुहा की पार्श्विक धारा बनाता है। प्रवर्धन की पश्चिम धारा गात्र की पश्चिमोर्ध्व धारा से मिली हुई है। इस धारा के ऊपरी भाग में एक पिण्डक है जिसको पश्चात् कूट कहते हैं। इस पृष्ठ के पीछे की ओर से एक चौड़ी तीरणिका नीचे की ओर को जाती हुई दिखाई देती है जो नेत्राभिमुख प्रवर्धन के साथ मिल जाती है। यह शिखा जतूकास्थि के साथ संयोग करती है।

गुहाधर अथवा हन्विकाप्रवर्धन[1]—यह एक पतला त्रिकोणाकार किन्तु दृढ़ मुड़ा हुआ अस्थि का भाग है जो उसके नीचे के भाग के पूर्व या मध्यस्थ कोण से निकला हुआ है। यह अपनी दाँतेदार नोक के द्वारा ऊर्ध्वहन्विका के साथ मिला रहता है।

शंखीय प्रवर्धन[2]—यह चौड़ा, दृढ़ प्रवर्धन गण्डिका से पीछे की ओर को निकला हुआ है और शंखास्थि के गण्डप्रवर्धन से संयोग करता है। इसके बहिः और अन्तः पृष्ठ तथा ऊर्ध्व और अधोधारायें गण्डक प्रवर्धन के समान पृष्ठ और धाराओं के साथ मिली रहती हैं।

नेत्राभिमुख प्रवर्धन[3]—गात्र की पूर्वोर्ध्व या नेत्रगुहा धारा से एक दृढ़ नतोदर त्रिकोणाकार फलक पीछे की ओर को निकला हुआ है जो नेत्राभिमुख प्रवर्धन कहलाता है। इसका पूर्व अथवा पूर्वान्तःपृष्ठ नतोदर और चिकना है। यह भाग नेत्रगुहा के बाहरी और पिछले भाग में रहता है। जब यह भाग ऊर्ध्वहन्विका के नेत्राभिमुख पृष्ठ और जतूका के बृहत् पक्ष के साथ मिल जाता है तो गुहा की पार्श्व और अधोभित्ति का बहुत बड़ा भाग बन जाता है। इस पृष्ठ में दो छिद्र स्थित हैं जो गण्डगुहीय[4] छिद्र कहलाते हैं जो इसी नाम की नलिकाओं के द्वार हैं। इनमें से एक नलिका द्वारा गण्डशंखीय नाड़ी शंखखात तक जाती है। दूसरी नलिका अस्थिगात्र के पूर्वपृष्ठ पर खुलती है और उसके द्वारा गण्डमौखिका नाड़ी बाहर निकलती है। प्रवर्धन का बहिःपश्चिमपृष्ठ, जो उन्नतोदर है, पीछे की ओर रहता है और शंखीय तथा शंखाधार खात का एक भाग बनता है। प्रवर्धन में चार धाराएँ दीखती हैं। छोटी ऊर्ध्वधारा, जो खुरदरी और चौड़ी है, पूर्विका के साथ सम्मेलन करती है। अधोधारा भी चौड़ी और दृढ़ है और हन्विका के साथ मिली रहती है। पूर्वधारा गोल और नतोदर है और गुहा के बहिः या अधोधारा के बनाने में भाग लेती है। पश्चिमधारा लम्बी, पतली और नुकीली है। यह जतूका के बृहतपक्ष और हन्विका के साथ मिलती है।

अस्थि-विकास दो केन्द्रों से होता है जो नेत्राभिमुख भाग और अस्थि के गात्र में भ्रूणावस्था के आठ से दसवें सप्ताह के बीच में उदय होते हैं और पाँचवें सप्ताह में मिलकर एक हो जाते हैं। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि अस्थि का विकास केवल एक ही केन्द्र से होता है। अस्थि कला से विकसित होती है।

सम्मेलन चार अस्थियों के साथ होता है। पूर्विका से ऊपर की ओर, शंखास्थि से पीछे और नीचे की ओर, ऊर्ध्वहन्विका से आगे की ओर और जतूका से ऊपर और भीतर की ओर।

तालिका[5]

यह अस्थि आकार में अत्यन्त क्रमहीन है और नासागुहा के पश्चाद्भाग में रहती है जहाँ वह गुहा की पार्श्वभित्ति के बनाने में भाग लेती है। इसके अतिरिक्त कठिन तालु का पिछला भाग, नेत्रगुहा और गरुत्ताल्वीय, शंखाधर और गरुत् खातों के बनने में भी यह अस्थि सहायता देती है। इस प्रकार शरीर की तीन मुख्य गुहाओं के बनाने में यह अस्थि भाग लेती है—नेत्रगुहा, नासिका और मुख।

---

१. Infraorbital or maxillary process. २. Temporal Proess. ३. Orbital Process. ४. Zygomaticoorbital foramen. ५. Palatine Bone.

इस अस्थि के दो मुख्य भाग हैं जिनमें से एक भाग खड़ा हुआ है जो नासागुहा की पार्श्विक भित्ति में रहता है। दूसरा नीचे का छोटा अनुप्रस्थ भाग है। इन दोनों भागों की स्थिति के कारण अस्थि का आकार L अक्षर के समान हो गया है। जहाँ पर दोनों भाग आपस में मिलते हैं वहाँ से एक क्रमहीन प्रवर्धन बाहर और पीछे की ओर को निकला हुआ है जो सूच्याकार प्रवर्धन[1] कहलाता है। खड़े हुए भाग के ऊपरी कोण से भी दो प्रवर्धन आगे पीछे को निकले हुए दिखाई देते हैं। पीछे का प्रवर्धन जतूकीय[2] और आगे का **नेत्राभिमुख प्रवर्धन**[3] कहलाता है। इन दोनों प्रवर्धनों के बीच में एक गहरा स्थान या छिद्र है जिसे **जतूक-तालवीय छिद्र**[4] कहते हैं।

ह्रस्वपत्रक[5]—यह भाग कठिन तालु के पीछे का लगभग तृतीयांश बनाता है। आकार में यह चतुष्कोणाकार है जिसमें दो पृष्ठ और चार धाराएं हैं।

ऊर्ध्वपृष्ठ नतोदर और चिकना है और नासागुहा की अधोभित्ति के पश्चिमभाग में रहता है। **अधः-पृष्ठ** कुछ उन्नतोदर है। इसके बीच से बाहर की ओर एक स्पष्ट तीरणिका दिखाई देती है जिस पर तालूत्तंसनी का वितान लगता है। **पूर्वधारा** पतली और दाँतेदार है और ऊर्ध्वहन्विका के तालविका प्रवर्धन से मिलती है। **पश्चिमधारा** नतोदर और पतली है। इस पर कोमल तालु लगता है। इस धारा का मध्यस्थ भाग जो दूसरी ओर के समान भाग से मिलता है तीव्र और नुकीला है। जब वह दूसरे ओर के समान भाग से मिल जाती है तो नुकीला **पश्चात् नासाकण्टक**[6] बन जाता है जिस पर शुण्डिकोत्कर्षनी[7] पेशी लगती है। अन्तर्धारा सब
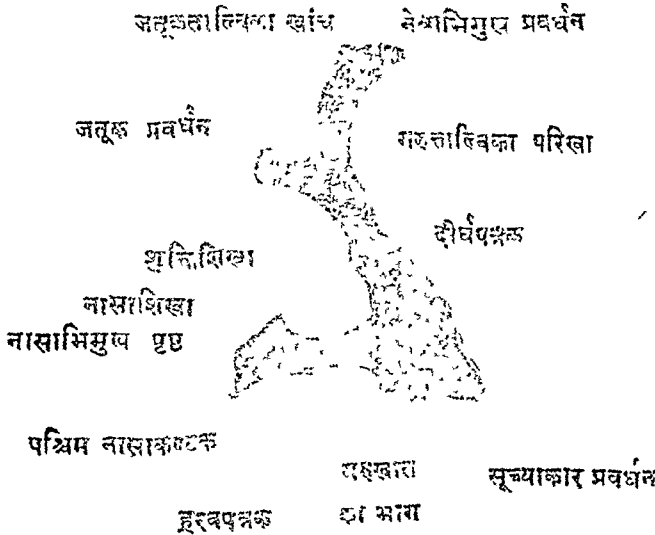
चित्र नं० २१०

धाराओं से मोटी और दाँतेदार है जो दूसरी ओर की समान धारा से मिली रहती है। इस धारा का ऊर्ध्व ओष्ठ ऊपर की ओर को उठा हुआ है और जब दूसरी ओर की अस्थि के समान ओष्ठ से मिल जाता है तो एक तीरणिका बन जाती है जो ऊर्ध्वहन्विका की नासाशिखा के साथ मिली रहती है। सीरिका की अधोधारा इस शिखा के साथ मिलती है। बहिर्धारा दीर्घपत्रक की अधोधारा से मिली हुई है और इस पर परिखा के रूप में गरुत्तालवीय परिखा का निचला भाग दिखाई देता है।

---

१. Pyramidal Process. २. Sphenoidal Process. ३. Orbital Process. ४. Sphenopalatine foramen. ५. Horizontal Part. ६. Posterior nasal spine. ७ Musculusa. Uvulxae.

दीर्घफलक[1]—इसकी लम्बाई चौड़ाई से कहीं अधिक है। इस भाग में दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं।

अन्तः या नासापृष्ठ में, जो ऊपर से नीचे की ओर को कुछ नतोदर है, दो तीरणिका और तीन परिखा दिखाई देती हैं। सबसे नीचे की ओर जो चौड़ी परिखा है वह नासिका के अधःसुरङ्ग का पिछला भाग बनाती है। इसके ऊपर की ओर एक स्पष्ट तीरणिका है जो शुक्तिशिखा[2] कहलाती है। यह शिखा अधःशुक्तिका के साथ मिलती है। शिखा के ऊपर दूसरी चौड़ी परिखा है जो मध्यसुरङ्ग का पश्चिमभाग है। यह परिखा ऊपर की ओर दूसरी शिखा द्वारा, जो प्रथम शिखा से कम स्पष्ट है, परिमित है। वह झर्झरीय शिखा[3] कहलाती है और मध्यशुक्तिफलक के साथ मिलती है। इस शिखा से ऊपर की ओर तीसरी परिखा, जो पूर्वोक्त दोनों परिखाओं से छोटी है, दिखाई देती है। यह ऊर्ध्वसुरङ्ग का पश्चिम भाग बनाती है।

बाहः या हन्विकापृष्ठ[4]—यह पृष्ठ क्रमहीन है। इसका मध्य भाग खुरदरा है जहाँ वह ऊर्ध्वहन्विका के साथ संयोग करता है। पृष्ठ के पीछे का भाग चिकना है। वह स्थान गरुत्ताल्विका खात[5] के बनाने में भाग लेता है। यहाँ पर एक परिखा ऊपर से नीचे की ओर को जाती हुई दीखती है। जब हन्विका के साथ अस्थि संयोग करती है तब यह परिखा गरुत्ताल्विका नलिका[6] में परिणत हो जाती है जिसके द्वारा अधोगामिनी ताल्वीय धमनियाँ और पूर्वतालुगा नाड़ी जाती है। पृष्ठ के आगे का भाग भी चिकना है। यह भाग हन्विका के वायु-विवर की मध्यस्थ भित्ति के पिछले भाग में रहता है।

धाराएँ—पूर्वधारा कोमल और लम्बी है। इसके बीच में शुक्तिशिखा के आगे के किनारे से एक सूक्ष्म प्रवर्धन आगे को निकल रहा है जो हन्वीय प्रवर्धन[7] कहलाता है। पश्चात्धारा भी कोमल, लम्बी और

चित्र नं० २११

नतोदर है। इसमें दाँते हैं। यह धारा जतूका के मध्यस्थ गरुत्फलक के साथ मिली रहती है। इस पर एक

---

१. Vertical part. २. Crista Conchalis. ३. Crista Ethmoidalis. ४. Maxillary surface. ५. Pterygopalatine fossa ६. Pterygopalatine Canal. ७. Maxillary process.

हलकी परिखा है जो गरुत्फलक से ढकी हुई है। ऊर्ध्वधारा के आगे की ओर से नेत्राभिमुख प्रवर्धन और पीछे की ओर से जतूकप्रवर्धन निकलते हैं। दोनों प्रवर्धनों के बीच में जो अपूर्ण छिद्र है वह जतूका के गात्र के अधःपृष्ठ द्वारा पूर्ण छिद्र बन जाता है, जो गरुत्ताल्विका छिद्र[१] कहलाता है। इसके द्वारा गरुत्ताल्वीय धमनियाँ[२], उर्ध्वताल्वीय[३] और नासाताल्वीय नाड़ियाँ[४] जाती हैं। यह छिद्र गरुत्ताल्वीय खात और नासिका की ऊर्ध्वसुरङ्ग के पश्चिम-भाग को मिलाता है। अधोधारा ह्रस्वपत्रक की बहिर्धारा से मिली हुई है।

सूच्याकार प्रवर्धन—दीर्घ और ह्रस्व पत्रकों के सम्मेलन-स्थान से यह प्रवर्धन बाहर और पीछे की ओर को निकलता है। इसके पश्चात् पृष्ठ पर एक रन्ध्र दिखाई देता है जिसके दोनों ओर दो तीरणिकाएँ हैं जो ऊपर की ओर जाकर आपस में मिल जाती हैं। ये तीरणिकाएँ गरुत्फलकों के साथ मिल जाती हैं और उनके बीच का स्थान गरुत्खात के बनाने में भाग लेता है। इस स्थान से हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था पेशी के कुछ सूत्रों का उदय होता है। इस प्रवर्धन का बहिःपृष्ठ खुरदरा है क्योंकि वह हन्वीय पिण्डक के साथ मिला रहता है। ऊपर की ओर यह दीर्घपत्रक के बहिःपृष्ठ से मिला हुआ है। प्रवर्धन में नीचे और पीछे की ओर एक चिकना त्रिकोणाकार स्थान है जो हन्वीय पिण्डक और बहिःगरुत्फलक के बीच में रहता है और शंखाधरखात का एक भाग बनाता है। इस प्रवर्धन के द्वारा ऊपर की ओर को लघुताल्वीय वाहनियाँ[५] जाती हैं। इनके द्वारा प्रवर्धन के मूल के नीचे की ओर, जहाँ वह ह्रस्वपत्रक से जुड़ता है, दो छिद्र दिखाई देते हैं। इनके द्वारा मध्य और पश्चिम ताल्वीय नाड़ियाँ जाती हैं।

नेत्राभिमुख प्रवर्धन एक घनाकार भाग है जो दीर्घपत्रक के ऊपरी अगले भाग से बाहर और आगे की ओर को निकला रहता है। यह भीतर से खोखला होता है और इसकी भीतरी भित्ति के टूटने से इसका छिद्र भीतर और पीछे की ओर को रहता है। इस प्रवर्धन में साधारणतया पाँच पृष्ठों की व्याख्या की जाती है जिनमें से तीन पृष्ठ अन्य अस्थियों के साथ सन्धि करते हैं। पूर्वपृष्ठ, जो आगे की ओर रहता है और बाहर और नीचे को झुका हुआ है, ऊर्ध्वहन्विका के साथ मिलता है। पश्चिमपृष्ठ पीछे, ऊपर और भीतर की ओर को मुड़ा रहता है। इस पृष्ठ पर प्रवर्धन के वायु-विवर का छिद्र स्थित है, जिसका जतूकीय वायु-विवर के साथ सम्बन्ध होता है। छिद्र के किनारे जतूका के वायुविवरच्छद के साथ मिले रहते हैं। अन्तःपृष्ठ झर्झरास्थि के पार्श्व-पिण्डों से मिलता है। ऊर्ध्वपृष्ठ जो ऊपर की ओर और पार्श्वपृष्ठ, जो गरुत्ताल्विका खात की ओर रहता है, किसी अस्थि से सम्मेलन नहीं करते। ऊर्ध्वपृष्ठ नेत्रगुहा के नीचे की भित्ति में पीछे की ओर रहता है।

जतूकीय प्रवर्धन—यह नेत्राभिमुख प्रवर्धन से छोटा है और पीछे और भीतर की ओर को निकला हुआ है। इसमें तीन पृष्ठ हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ गरुत्फलकों के मूल और वायु-विवरच्छदों के अधःपृष्ठ से मिलता है। इसके ऊपर एक हल्की सी नलिका है। अन्तःपृष्ठ नासागुहा की ओर रहता है। पार्श्वपृष्ठ दो भागों में विभक्त है। पीछे का खुरदरा भाग अन्तःगरुत्फलक के साथ जुड़ा रहता है। आगे का चिकना भाग दीर्घपत्रक के बहिःपृष्ठ के साथ मिलता है और गरुत्ताल्वीय खात की अन्तर्भित्ति बनाने में भाग लेता है।

अस्थि-विकास—ताल्विका का विकास कला से होता है। भ्रूणावस्था के छठे से आठवें सप्ताह में दीर्घ और ह्रस्व पत्रक के सम्मेलन-स्थान पर एक केन्द्र उदय होता है। यहाँ से विकास आरम्भ होकर अन्य सब भाग भी शनैः-शनैः विकसित हो जाते हैं। कुछ लेखकों ने चार केन्द्रों से विकास होना लिखा है। तीन केन्द्रों से तीन प्रवर्धन और एक केन्द्र से शेष भाग का विकसित होना उन्होंने माना है।

सम्मेलन—ताल्विका का छः अस्थियों के साथ सम्मेलन होता है जिनके नाम ये हैं—ऊर्ध्वहन्विका, सीरिका, अधःशुक्तिका, जतूका, झर्झरास्थि और दूसरे ओर की ताल्विका।

---

१. Pterygopalatine foramen. २. Pterygopalatine arteries. ३. Superior palatine and. ४. Nasopalatine Nerves. ५. Lesser Palatine Vessels.

अधोहन्विका[1]

यह अस्थि नीचे के जबड़े में रहती है और करोटि की अन्य सब अस्थियों की अपेक्षा बड़ी और दृढ़ है। इसके बीच का भाग, जो जबड़े में आगे और नीचे में रहता है, अस्थि का गात्र कहलाता है। गात्र के पीछे की ओर से दोनों ओर से चौड़े प्रवर्धन ऊपर की ओर को निकले हुए हैं, वे अस्थि के शृंग हैं।

गात्र—दोनों शृंगों के बीच के अस्थि भाग का नाम है। वास्तव में यह दोनों ओर रहनेवाले भागों के आगे की ओर बीच में जुड़ने से बना है। यह स्थान चिवुक-सन्धानिका[2] कहलाता है। जन्म के समय ये दोनों भाग केवल सौत्रिक धातु से जुड़े रहते हैं।

आकार में गात्र घोड़े की नाल की भाँति मुड़ा हुआ है। इसमें बहिः और अन्तः दो पृष्ठ हैं और ऊर्ध्व और अधः दो धाराएँ हैं।

बहिःपृष्ठ—गात्र के बहिःपृष्ठ पर आगे की ओर, जहाँ दोनों ओर के अस्थि के भाग मिलते हैं, एक हल्की तीरणिका छेदक दाँतों के बीच से नीचे की ओर को जाती हुई दिखाई देती है। यही **चिवुक-सन्धानिका** है जो नीचे की ओर दो भागों में विभक्त होकर नीचे और बाहर को चली जाती है जहाँ वह नीचे की धारा के पास दो पिण्डकों में समाप्त हो जाती है। ये चिवुकपिण्डक[3] कहलाते हैं। इन दोनों तीरणिकाओं के बीच का भाग त्रिकोणाकार और उठा हुआ है। यह चिवुकोत्सेध[4] कहलाता है।
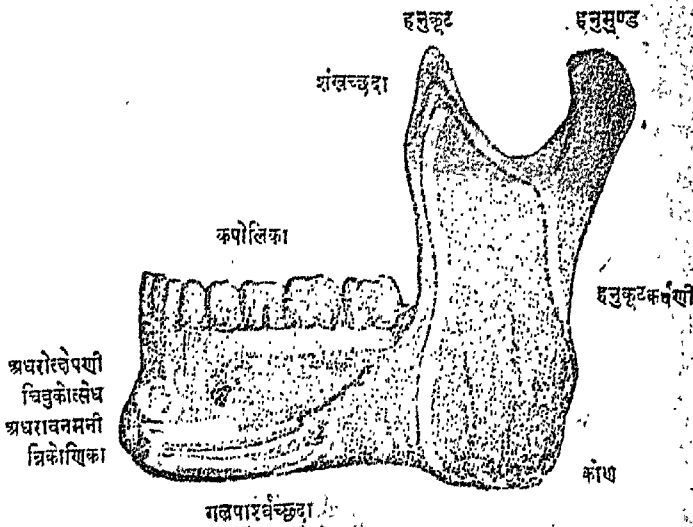
चित्र नं० २१२—अधोहन्विका का बहिःपृष्ठ

चिवुकसन्धानिका के दोनों ओर छेदक दाँतों के नीचे और चिवुकपिण्डकों को जानेवाली तीरणिकाओं से नीचे की ओर से परिमित एक गहरा स्थान है जो छेदकीय खात[5] कहलाता है जहाँ से अधरोत्क्षेपणी[6]

१. Mandible. २. Symphisis Mentii. ३. Mental tubercle ४. Mental Protuberance. ५. Incisive fossa. ६. Mentalis.

और मुखमुद्रणी[1] पेशी के कुछ भाग का उदय होता है। इन खातों के बाहर की ओर भेदक दन्तोदूखल के नीचे से एक सूक्ष्म रेखा नीचे की ओर को जाती हुई प्रतीत होती है। चिबुकपिण्डक से पीछे और ऊपर को जाती हुई एक लम्बी तीरणिका दिखाई देती है जो पीछे की ओर पहुँचकर शृंग की पूर्वधारा के साथ मिल जाती है। यह वक्ररेखा[2] कहलाती है। छेदकीय खातों के तनिक बाहर की ओर वक्ररेखा से कुछ ऊपर एक बड़ा छिद्र है जो चिबुकच्छिद्र[3] कहलाता है। इसके द्वारा चिबुकीय नाड़ी[4] और धमनी या शिरा[5] जाती है। वक्र रेखा पर अधरावनमनी[6] और त्रिकोणिका[7] या सूक्ष्मकर्णी नमनी पेशी लगती है। रेखा के नीचे गल-पार्श्वच्छदा[8] पेशी लगती है।

अन्तःपृष्ठ एक ओर से दूसरी ओर को नतोदर है किन्तु पृष्ठ के तल में कुछ स्थानों पर उत्सेध है। दोनों पार्श्वभागों के सङ्गमस्थान पर चिबुकसन्धानिका के पीछे की ओर ऊपर से नीचे को जाती हुई एक तीरणिका दिखाई देती है जिसके ऊपर कभी-कभी एक छिद्र भी रहता है। ये दोनों ओर के भागों के जुड़ने के अवशिष्ट चिह्न हैं। तीरणिका से नीचे की ओर को दो कण्टक दिखाई देते हैं जिनको चिबुककण्टक[9] कहते हैं। इनसे चिबुकजिह्विका[10] और चिबुककण्ठिका[11] का उदय होता है। कभी-कभी ये कण्टक मिलकर एक हो जाते हैं अथवा उसके स्थान पर एक क्रमहीन उत्सेध दिखाई देता है। इन कण्टकों के नीचे दोनों ओर चिबुक के पीछे दो छोटे खात हैं जिनसे द्विगुस्फिका के अग्रभाग का उदय होता है। यह द्विगुस्फिक खात[12] कहलाता है। इन खातों से तनिक ऊपर की ओर से एक तीरणिका ऊपर और पीछे की ओर को अन्तिम चर्वणक दन्त के पीछे तक जाती है। यहमुखभूमिककण्ठिका रेखा[13] कहलाती है। इस पर से मुखभूमिकण्ठिका[14] पेशी उदय होती है। इस पेशी के उदय-स्थान के पीछे की ओर रेखा पर ग्रसनिकासंकोचनी ऊर्ध्वा[15] पेशी का उदय होता है और गरुदयोहन्विका सीवनी[16] लगती है। इस रेखा के पिछले भाग के नीचे की ओर एक चौड़ा खात है जिसमें अधोहन्वीय ग्रन्थि[17] रहती है। रेखा के पूर्व भाग के ऊपर की ओर भी एक खात है। उसमें अधो-जिह्वीय[18] नामक लालाग्रन्थि रहती है।

ऊर्ध्वधारा चौड़ी है। इसमें प्रत्येक ओर आठ दन्तोदूखल दिखाई पड़ते हैं जिनमें दाँतों के मूल रहते हैं। छेदक और भेदक दाँतों के उदूखल गहरे और संकुचित हैं। चर्वणक दन्तोदूखल दो भागों में विभक्त है क्योंकि चर्वणक दाँतों के दोहरे मूल होते हैं। वृद्धावस्था में अथवा युवावस्था में भी दाँतों के गिरजाने के पश्चात् ये उदूखल भर जाते हैं और इनका कोई भी चिह्न नहीं रहता। चर्वणक उदूखलों के पीछे की ओर से बाहर की ओर कपोलिका[19] पेशी उदय होती है।

अधोधारा चौड़ी और मोटी है और ऊर्ध्वधारा की अपेक्षा अधिक लम्बी है। इसका आगे का भाग विशेषतया दृढ़ है। पीछे के भाग में शृंगों की, अधोधारा के मिलने के स्थान पर, प्रायः बहिर्हन्विका[20] धमनी के लिए एक परिखा होती है।

शृङ्ग[21]—गात्र के पश्चिम भाग से दोनों ओर दो चौड़े भाग ऊपर की ओर को निकले हुए हैं जो अस्थि के शृङ्ग कहलाते हैं। इनमें दो पृष्ठ और चार धाराएँ हैं। बहिःपृष्ठ समतल और चतुष्कोणाकार है। इसके नीचे के भाग में कुछ तीरणिकाएँ दीखती हैं जिन पर पेशीके सूत्र लगते है। यह सारा पृष्ठ हनुकूटकर्णी[22] पेशी से आच्छादित है। अन्तःपृष्ठ क्रमहीन है। इसके बीचमें एक बड़ा छिद्र है जिसको अधोहन्वीयछिद्र[23]

---

१. Orbicularis oris. २. Oblique line. ३. Mental foramen. ४. Mental Nerve. ५. Mental Vessels. ६. Quadratus labii Inferioris. ७. Triangularis. ८. Platysma. ९. Mental spine. १०. Genioglossus. ११ Geniohyoid. १२ Digastric fossa. १३. Mylohyoid line. १४. Mylohyoideus. १५. Constrictor Pharyingis Superior. १६. Pterygo mandibular raphe. १७. Submaxillary gland. १८. Sublingal gland. १९. Buccinator. २०. External maxillary artery. २१. Ramus. २२. Masseter. २३. Mandibular foramen.

कहते हैं[1]। इस छिद्र की धारा के ऊपर एक त्रिकोणाकार अस्थि का पत्र आगे को निकला हुआ दिखाई देता है जिसे हनुछिद्रजिह्विका[1] कहते हैं। इस पर जतुकहन्वीय[2] बन्धन लगता है। इस छिद्र के नीचे की ओर से एक परिखा अस्थि के ऊपर नीचे की ओर को जाती हुई मालूम होती है। यह मुखभूमिकण्ठिका परिखा[3] कहलाती है। इसमें मुखभूमिकण्ठिका[4] नाड़ी, धमनी तथा शिरा रहती हैं। अधोहन्वीय छिद्र से अधरदन्तिका[5] धमनी, शिरा और नाड़ी अधोहन्वीय नलिका के द्वारा अस्थि के भीतर जाती हैं। यह नलिका अधोहन्वीय छिद्र से आरम्भ होकर प्रथम नीचे और आगे की ओर को जाती है किन्तु आगे चलकर गात्र की अधोधारा के कुछ ऊपर से आगे की ओर को मुड़ जाती है। सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा इस नलिका का प्रत्येक दन्तोदूखल से सम्बन्ध रहता है जिनके द्वारा धमनी और नाड़ियों की शाखाएँ दाँतों में जाती हैं। छेदक दाँतों के पास पहुँचकर छेदकीय छिद्रों से आगेवाली नलिकाएँ भी इसी नलिका में मिल जाती हैं। मुखभूमिकण्ठिका परिखा के नीचे और पीछे की ओर एक चौड़ा स्थान है जहाँ पर हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था निवेश करती है।

धाराएँ—पूर्वधारा छोटी, ऊपर की ओर पतली किन्तु नीचे की ओर मोटी है और वक्ररेखासे मिली हुई है। पश्चिमधारा मोटी, गोल और चिकनी है। कर्णमूल ग्रन्थि[6] इस धारा के सम्पर्क में रहती है। ऊर्ध्वधारा छोटी और नतोदर है। इसके आगे की ओर हनुकुन्त और पीछे की ओर से हनुमुण्ड नामक प्रवर्धन निकले हुए हैं। दोनों प्रवर्धनों के बीच का कोटर अधोहन्वीय कोटर[7] कहलाता है। इस कोटर के द्वारा हनुकूटकर्षणीनाड़ी[8], धमनी और शिराएँ जाती हैं। अधोधारा छोटी, मोटी और गोल है। इसके पीछे के भाग में कुछ तीरणिकाएँ दिखाई देती हैं जिन पर हनुकूटकर्षणी के कुछ सूत्र लगते हैं। जहाँ पर यह धारा पश्चिमधारा से मिलती है वह स्थान अस्थि का कोण कहलाता है। इस स्थान पर बाहर की ओर हनुकूटकर्षणी और भीतर की ओर हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था पेशी लगी हुई हैं और दोनों पेशियों के बीच में कोण पर शिफाहन्वीय स्नायु[9] लगी हुई है।

हनुकुन्त[10]—एक छोटा त्रिकोणाकार प्रवर्धन है जो शृङ्ग के आगे की ओर से निकला हुआ है। इसका वहिःपृष्ठ चिकना है। उस पर शंखच्छदा और हनुकूटकर्षणी पेशियों का निवेश होता है। अन्तःपृष्ठ खुरदरा है। उसके बीच में एक तीरणिका शिखर के नीचे से आरम्भ होकर नीचे की ओर को उतरती है और अन्तिमचर्वणक दाँत के पीछे तक चली जाती है। इस तीरणिका और पूर्वधारा के बीच के स्थान के अधोभाग पर कपोलिका पेशी लगती है। इसके ऊपर और शेष समस्त पृष्ठ पर शंखच्छदा पेशी निवेश करती है। पूर्वधारा छोटी नुकीली और उन्नतोदर है। पश्चिमधारा नतोदर है।

हनुमुण्ड[11]—यह प्रवर्धन पूर्व प्रवर्धन की अपेक्षा अधिक चौड़ा और दृढ़ है। इसका ऊपरी चौड़ा भाग एक पिण्डक के आकार का है जिसके नीचे का संकुचित भाग ग्रीवा कहलाता है। हनुमुण्ड की अनुपार्श्विक चौड़ाई आगे से पीछे की ओर की अपेक्षा अधिक है। इसके ऊपर एक स्थालक है जो शंखास्थि के नीचे की ओर स्थित हनुखात में रहता है और शंखहन्वीय[12] सन्धि बनाता है। यह स्थालक उस सक्तिपत्र के, जो खात को ढके रहता है, सम्पर्क में रहता है। मुण्ड के बाहर की ओर एक छोटा सा पिण्डक है जिस पर शंखहन्वीय स्नायु लगती है।

---

१. Lingula mandibularis. २. Spheno-manadibular Lig. ३. Mylohyoid groove. ४. Mylohyoid Nerve and vessels ५ Inferior alvelar vessels and Nerve. ६. Parotid gland. ७. Mandibular Notch. ८. Masseteric Nerve and vessels. ९. Stylomandibular Lig. १०. Coronoid Precss. ११. Condyloid Process. १२. Temporomandibular joint.

ग्रीवा के पूर्व और पश्चिमपृष्ठ चिपटे हैं इसके पूर्वपृष्ठ पर ऊपर से नीचे की ओर जाती हुई है जिसके भीतर की ओर एक खात है! इस पर हनुमूलकर्षणी बहिःस्था पेशी लगती है कुछ उन्नतोदर है।
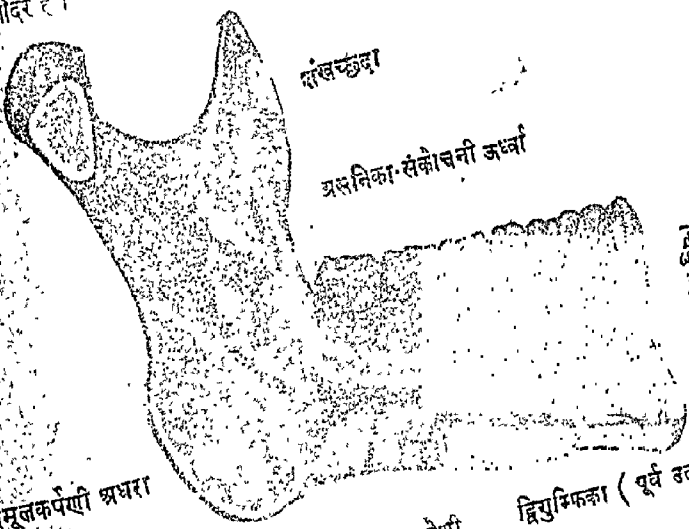
शंखच्छदा
हनुमूलकर्षणी उत्तरा
अलनिका-संकोचनी ऊर्ध्वा
चिबुकसंधानिका
चिबुककण्ठिका
हनुमूलकर्षणी अधरा
द्विगुम्फिका (पूर्व उदर)
मुखभूमिकण्ठिका पेशी

चित्र नं० २१३—अधोहन्विका का अन्तःपृष्ठ

अस्थि-विकास—अस्थि के अधिक भाग का विकास कला से होता है, शेष भाग सूक्ति से विकसित होता है। कला के नीचे सूक्ति का एक भाग रहता है। भ्रूणावस्था के छठे सप्ताह में चिबुकछिद्र के पास
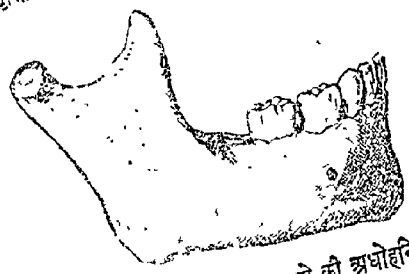
चित्र नं० २१४—चार वर्ष के बच्चे की अधोहन्विका

प्रत्येक ओर सूक्ति को आच्छादित करनेवाली कला में एक केन्द्र उदय होता है। दसवें सप्ताह तक इस सूक्ति के चारों ओर की कला अस्थि में परिणत हो चुकती है। कुछ समय के पश्चात् कई अन्य स्थानों में विकास आरम्भ हो जाता है। जन्म के समय अस्थि के दोनों भाग पृथक् रहते हैं। उनके बीच चिबुक-सन्धानिका के स्थान पर सौत्रिक धातु रहता है। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष में यह धातु भी अस्थि में परिवर्तित हो जाती है।

सम्मेलन—यह अस्थि दोनों ओर की शंखास्थियों के साथ सम्मेलन करती है।

आयु के अनुसार अस्थि के आकार में परिवर्तन—**जन्म के समय** दोनों ओर के भाग पृथक् होते हैं। उनके बीच में सौत्रिक धातु रहती है। अस्थि पतली होती है और उसमें दो छेदक, एक भेदक २ चर्वणक दाँतों के उदूखल होते हैं जो एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् नहीं होते। हन्वीय नलिका अस्थि

की अधोधारा के पास रहता है। चिबुकछिद्र भी नीचे की ओर प्रथम चर्वणक दाँत के नीचे रहता है। शृङ्ग छोटे होते हैं और वे पीछे की ओर को मुड़े रहते हैं। गात्र और शृङ्गों के बीच में १७५° अंश का बृहत् कोण बनता है। इस कारण हनुमुण्ड पीछे की ओर को झुक जाते हैं। उनका आकार बड़ा होता है। हनुकुन्त मुण्ड की अपेक्षा अधिक ऊँचे होते हैं।
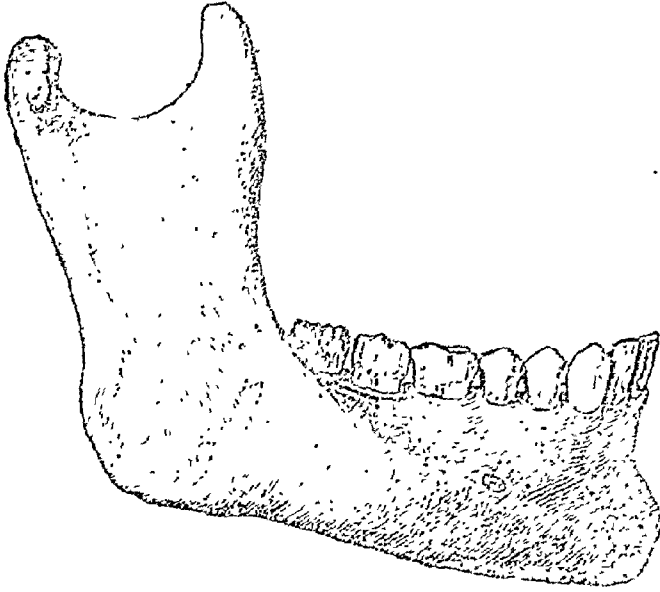
चित्र नं०—२१५ युवा पुरुष की अधोहन्विका

जन्म के पश्चात् गात्र की लम्बाई अधिक हो जाती है। चिबुकछिद्र के पीछे का भाग, विशेषकर लम्बाई में अधिक बढ़ता है क्योंकि उसमें तीन अग्रचर्वणदन्तोदूखल उत्पन्न होने लगते हैं। अस्थि के उदूखल-वाले भाग के अधिक गहरे होने के कारण अस्थि की चौड़ाई अधिक हो जाती है। साथ में अस्थि मोटी और दृढ़ हो जाती है। हन्वीय नलिका स्थायी दाँतों के निकलने के समय मुखभूमिकपिठका रेखा से ऊपर रहती है और चिबुकछिद्र भी अपनी साधरण स्थिति में आ जाता है। गात्र और शृङ्गों के बीच का कोण भी छोटा हो जाता है। दोनों ओर के भागों के बीच की सौत्रिक धातु अस्थिकृत हो जाती है।
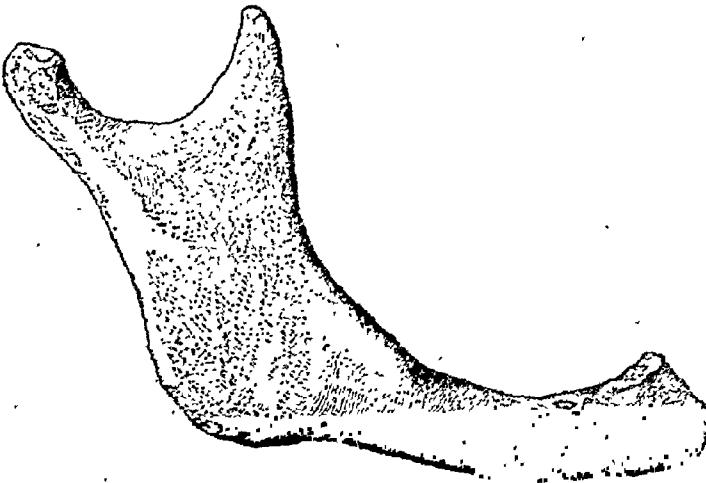
चित्र नं०—२१६ वृद्ध व्यक्ति की अधोहन्विका

युवावस्था—उदूखल और उससे नीचे के भाग की चौड़ाई लगभग बराबर होती है। शृङ्ग और गात्र के बीच का कोण लगभग ११०° का हो जाता है। हन्वीय नलिका मुखभूमिकण्ठिका रेखा के लगभग समतल हो जाती है और चिबुकछिद्र ऊर्ध्व और अधोधाराओं के बीच में आ जाता है।

वृद्धावस्था मे दाँतों के गिरने के पश्चात् उदूखलों की गहराई कम होने लगती है। इस कारण अस्थि की चौड़ाई कम हो जाती है। मुखभूमिकण्ठिका रेखा से ऊपर का भाग विशेषकर कम हो जाता है। हन्वीय नलिका और चिबुकछिद्र दोनों ऊर्ध्वधारा के पास पहुँच जाते हैं। शृङ्ग पीछे की ओर को झुक जाते हैं और शृङ्ग तथा गात्र के बीच का कोण बढ़कर फिर १४०° के लगभग हो जाता है। हनुमुण्ड की ग्रीवा भी पीछे की ओर झुक जाती है।

कण्ठिका[1]

यह छोटी अस्थि कण्ठ मे जिह्वा के नीचे की ओर रहती है और अँगुलियों द्वारा गले को दोनों ओर से दबाने से प्रतीत की जा सकती है। इसका आकार जूते की नाल के समान है। इसका बीच का चौड़ा भाग अस्थि का गात्र कहा जाता है। गात्र से पीछे की ओर दो प्रवर्धन बृहत् शृङ्ग और लघु शृङ्ग ऊपर की ओर को निकले हुए हैं।

गात्र कुछ चतुष्कोणाकार है। इसमे पूर्व और पश्चिम दो पृष्ठ तथा ऊर्ध्व और अधः दो धाराएँ हैं।

पूर्वपृष्ठ उन्नतोदर और आगे तथा ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है। इसके बीच मे एक अनुपार्श्विक तीरणिका दीखती है। किसी-किसी अस्थि में इस तीरणिका को बीच से विभाजित करती हुई एक दूसरी तीरणिका होती है जो गात्र की ऊर्ध्वधारा से अधोधारा की ओर जाती है। पूर्वपृष्ठ के अधिक भाग पर अनुपार्श्विक तीरणिका के ऊपर और नीचे दोनों ओर चिबुककण्ठिका[2] पेशी निवेश करती है। इस पेशी के बाहर की ओर उससे मिला हुआ जिह्वाकण्ठिका[3] का कुछ भाग लगता है। तीरणिका के नीचे प्रत्येक ओर
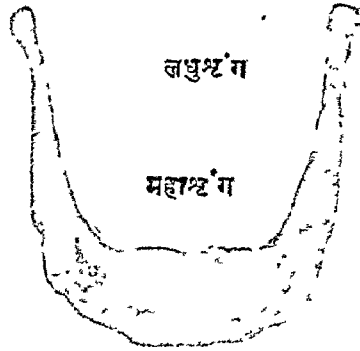
चित्र नं० २१७—कण्ठिका, सामने की ओर से

मुखभूमिकण्ठिका,[4] उरःकण्ठिका[5] और अंसकण्ठिका[6] पेशियों का निवेश होता है। पश्चिमपृष्ठ नतोदर है और पीछे तथा नीचे की ओर को मुड़ा हुआ है। इसके पीछे की ओर कण्ठावटुका[7] कला रहती है।

ऊर्ध्वधारा नतोदर है। उस पर कण्ठावटुका कला और चिबुकजिह्विका के वितान के कुछ सूत्र लगते हैं। अधोधारा पर उरःकण्ठिका और उसके बाहर की ओर अंसकण्ठिका पेशियों का निवेश होता है।

---

१. Hyoid Bone २. Geniohyoid. ३ Hyoglossus. ४. Mylohyoideus. ५. Sternohyoid. ६. Omohyoid. ७. Hyothyreoid membrane.

बृहत् या महाशृङ्ग—गात्र के दोनों पिछले कोणों से ये पीछे की ओर को निकले हुए हैं। इनके पिछले सिरे पिण्डकों के स्वरूप में अन्त होते हैं। इनमें ऊर्ध्व और अधः पृष्ठ हैं; बहिः और अन्तः धाराएँ हैं। ऊर्ध्वपृष्ठ पर कई पेशियाँ लगी हुई हैं। लगभग सारे पृष्ठ से जिह्वाकण्ठिका और ग्रसनिका-संकोचनी मध्यमा[1] पेशी उदत होती हैं। इनके आगे की ओर द्विगुम्फिका[2] और शिफाकण्ठिका[3] के कुछ भाग, शृङ्ग और गात्र के सम्मेलन के पास, निवेश करते हैं। अन्तर्धारा पर कण्ठावटुका कला लगती है। बहिर्धारा पर अवटुकण्ठिका[4] पेशी निवेश करती है।

लघुशृङ्ग—ये महाशृङ्ग और गात्र के सङ्गमस्थान से दो छोटे उत्सेधों के रूप में बाहर और आगे की ओर को निकले हुए हैं। ये अस्थि के साथ सौत्रिक धातु के द्वारा जुड़े रहते हैं। इनके ऊपरी सिरे पर शिफाकण्ठीय स्नायु[5] लगी रहती है। लघुशृङ्ग के बहिःपृष्ठ से ग्रसनिकासंकोचनी मध्यमा का उदय होता है।
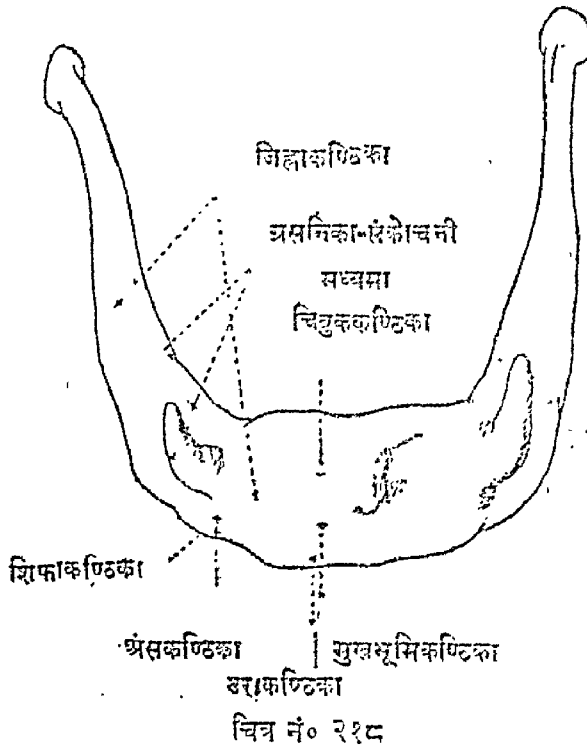
चित्र नं० २१८

अस्थि-विकास—कण्ठिका का छः केन्द्रों से विकास होता है। दो केन्द्र गात्र में और एक केन्द्र प्रत्येक शृङ्ग में उदय होता है। भ्रूणावस्था के अन्त में महाशृङ्गों में विकास-केन्द्र उदय होते हैं। तत्पश्चात् गात्र का और उसके पश्चात् लघुशृङ्ग का प्रथम या द्वितीय वर्ष में विकास होता है।

समग्र करोटि[6]

जिन अस्थियों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है वे सब करोटि में एक दूसरी के साथ जुड़ी रहती हैं जिससे उनके कई भाग छिप जाते हैं। इस कारण करोटि में उनका दृश्य बिलकुल परिवर्त्तित हो जाता है। अस्थियों के मिलने से कई पूर्ण नलिकाएँ या छिद्र बन जाते हैं जो अस्थियों के पृथक् होने पर केवल अर्धछिद्र या परिखा के रूप में दिखाई देते हैं। इन नलिकाओं या छिद्रों के द्वारा धमनियाँ या नाड़ियाँ कपाल में

---

१. Constrictor Pharyngis medius. २. Digastricus. ३. Stylohyoid ४. Thyerohid. ५. Stylohyoid Ligament ६. Sknll.

प्रवेश करती है और उससे बाहर निकलती है। इस कारण इस उमय करोटि का प्रत्येक ओर से अध्ययन करना आवश्यक है।

करोटि का ऊपर की ओर से दृश्य

ऊपर की ओर से देखने से करोटि का आकार जम्बु या वृत्त के समान ज्ञात होता है। बीच में से करोटि ऊपर की ओर को उन्नतोदर है। उसका सबसे ऊँचा स्थान करोटि की मध्य रेखा में बीच से तनिक पीछे की ओर स्थित है।

करोटि के इस पृष्ठ में चार अस्थियाँ दिखाई देती हैं। सबसे आगे की ओर पूर्विका का कुछ भाग है। उसके पीछे दोनों ओर पार्श्व में पार्श्विकाएँ और उनके पीछे की ओर पश्चादिका स्थित हैं। पूर्विका और पार्श्विकाएँ आपसमें जिस सीमन्त के द्वारा जुड़ी रहती है वह पुरःसीमन्त[1] कहलाता है। इसी प्रकार पश्चादिका भी पार्श्विकाओं के साथ पश्चिमसीमन्त[2] के द्वारा जुड़ी हुई है। दोनों पार्श्विकाओं के बीच का सीमन्त, जो पूर्व सीमन्त से पश्चिम सीमन्त तक जाता है, मध्य सीमन्त[3] कहलाता है।

जिस स्थान पर पूर्विका और दोनों पार्श्विकाएँ मिलती हैं वह पूर्वबिन्दु[4] कहलाता है। पार्श्विकाओं और पश्चादिका के संगमस्थान को पश्चिमबिन्दु[5] के नाम से पुकारा जाता है। यह स्थान भ्रूणकाल में केवल कलानिर्मित होते हैं और शिरश्चर्म से ढके रहते हैं। इस कारण इन स्थानों में स्पन्दन होता हुआ दिखाई देता है। हृदय की धड़कन के साथ ये स्थान एक बार ऊपर को उठते हैं और फिर नीचे बैठ जाते हैं। ये स्थान इतने बड़े होते हैं कि इनको, अँगुली से तनिक दबाने से, अस्थियों के किनारे सहज में प्रतीत किये जा सकते हैं। भ्रूण की करोटि में पूर्विका और पार्श्विकाओं के बीच का स्थान ब्रह्मरन्ध्र[6] और पार्श्विकाओं और पश्चादिका के बीच का स्थान शिवरन्ध्र[7] कहलाता है।

करोटि के ऊपर से मध्य सीमन्त के दोनों ओर पार्श्विकाओं के बीच में पार्श्विकोत्सेध दिखाई देते हैं। करोटि के आकार में भिन्नता के अनुसार इन उत्सेधों की स्थिति में भी भिन्नता पाई जाती है। इस पृष्ठ में पार्श्विकाओं की पश्चात्धारा के पास मध्य सीमन्त के दोनों ओर पार्श्विक छिद्र दिखाई देते हैं। इनके द्वारा एक सूक्ष्म धमनी शिरश्चर्म से कपाल के भीतर जाती है और एक शिरा बाहर निकलती है। सामने की ओर पूर्विकोत्सेध भी दिखाई देते हैं। इनसे नीचे की ओर भ्रूतीरणिका दिखाई देती हैं। इन तीरणिकाओं के बीच नासाबिन्दु से ऊपर को जाता हुआ पूर्विका के बीच में एक सीमन्त अथवा उसके कुछ अवशिष्ट चिह्न दिखाई दे सकते हैं। शंखरेखाओं का भी कुछ भाग दिखाई देता है।

करोटि का पूर्वपृष्ठ

करोटि को सामने की ओर से देखने से उसका आकार जम्बुवत् दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न करोटियों में आकार और आकृति दोनों में भिन्नता पाई जाती है। आयु, जाति, स्त्री या पुरुषों के अनुसार करोटि में अन्य पृष्ठों की अपेक्षा इस पृष्ठ में अधिक परिवर्तन पाया जाता है।

यदि इस पृष्ठ को एक मध्यस्थ सीधी रेखा द्वारा दो भागों में विभक्त कर दिया जाये तो करोटि के दोनों ओर के भाग एक दूसरे के बहुत कुछ समान होंगे, यद्यपि उनमें थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य रहेगा।

इस पृष्ठ के ऊपरी भाग में पूर्विका का ऊर्ध्वभाग रहता है। यह भाग चिकना और उन्नतोदर है। इसके नीचे करोटि में दोनों ओर दो नेत्रगुहाएँ स्थित हैं जिनके भीतर नेत्रगोलक रहते हैं। इन गुहाओं के बीच

---

१. Coronal suture. २. Lambdoidal suture. ३. Sagittal suture ४. Bregma, ५. Lambda. ६. Anterior fontanelle. ७. Posterior fontanelle.

में नासास्थियाँ और पूर्विका का कुछ भाग रहता है। इनसे नीचे की ओर बीच में नासागुहा का बृहत् आग्रव बहिर्द्वार दिखाई देता है जो दोनों ओर की ऊर्ध्वहन्विकाओं के मिलने से बनता है। इस गुहाद्वार के नीचे ऊर्ध्वहन्विका का वह भाग है जिसमें दन्तोदूखल रहते हैं। सबसे नीचे अधोहन्विका है जो करोटि के एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक फैली हुई है।

नेत्रगुहाओं के बाहर और नीचे के भाग में गण्डिका अस्थि रहती है जो कपोलों का उठा हुआ भाग बनाती है। इस अस्थि से पीछे की ओर को जाते हुए दोनों ओर चाप के समान प्रवर्धन दिखाई देते हैं जो पीछे की ओर शंखास्थि के साथ जुड़ जाते हैं। इन चापों का पिछला भाग शंखास्थि के गण्डकप्रवर्धन से और अगला भाग गण्डिकास्थि के शंखीय प्रवर्धन से बना हुआ है।

ललाटप्रान्त—यह समस्त प्रान्त पूर्विका की नेत्रगुहाओं से ऊपर के उन्नत भाग से बनता है। इस कारण यह प्रान्त पीछे की ओर करोटि के ऊर्ध्वपृष्ठ के साथ मिल जाता है। नीचे की ओर भ्रूतीरणिकाएँ
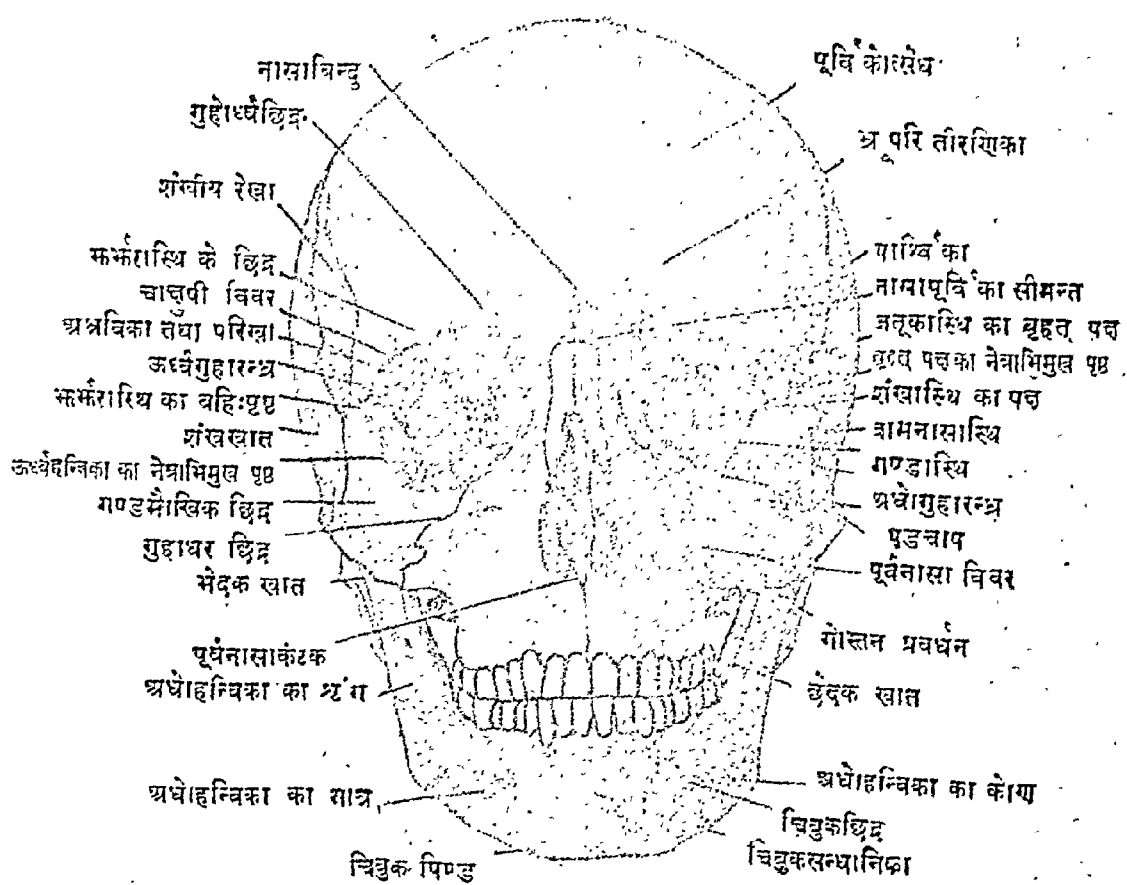
चित्र नं० २१६—करोटि का पूर्वपृष्ठ

स्थित हैं। पृष्ठ के लगभग बीच में दोनों ओर दो ललाटोत्सेध दिखाई देते हैं। नीचे की ओर दोनों भ्रूतीरणिकाएँ बीच में एक दूसरी से मिल जाती हैं। इसके नीचे की ओर ललाटसीमन्त के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं। इसके नीचे जहाँ पर दोनों नासास्थियाँ और पूर्विका आपस में मिलती हैं वह स्थान नासाबिन्दु कहा जाता है। भ्रू-तीरणिकाओं के नीचे की ओर नेत्रगुहाओं की ऊर्ध्व तीव्र धाराएँ स्थित हैं। इन धाराओं के मध्यस्थ भाग में ऊपर की ओर एक छिद्र या अर्धछिद्र स्थित है जो गुहोर्ध्वछिद्र कहलाता है। इसके द्वारा ऊर्ध्वगुहीया नाड़ी, धमनी या शिराएँ निकलती हैं। ऊर्ध्वगुहाधारा बाहर की ओर गण्डकप्रवर्धन में समाप्त

हो जाती है जो गण्डिका के साथ मिले हुए हैं। जहाँ ये दोनों अस्थियाँ मिलती हैं वहाँ से दो स्पष्ट रेखा और तीरणिका अस्थि के पार्श्व पर होती हुई पीछे की ओर को चली गई हैं। ये शंखरेखा कहलाती हैं और शंखखात को परिमित करती हैं।

दोनों नासागुहाओं के बीच में पूर्विका नीचे की ओर नासास्थियों और ऊर्ध्वहन्विकाओं से मिली हुई है। हन्विका के ललाट-प्रवर्धन के पीछे की ओर अश्रविका अस्थि स्थित है। जहाँ ये अस्थियाँ आपस में मिलती हैं वहाँ पर स्पष्ट सीमन्त पाये जाते हैं। दोनों नासास्थियों के बीच का सीमान्त भी बिलकुल स्पष्ट है। दोनों नासास्थियों का पूर्वपृष्ठ उन्नतोदर है। ऊर्ध्वहन्विका के ललाट-प्रवर्धन के ऊपरी भाग के साथ मिलकर यह नासिका का सेतु बनाती है।

नासागुहाद्वार—नासास्थियों के नीचे दोनों ओर से ऊर्ध्वहन्विकाओं द्वारा परिमित एक बड़ा अण्डाकार विवर है जो नासागुहा का अस्थिनिर्मित द्वार है। इसके आगे नासिका का सुक्तिनिर्मित भाग लगा रहता है। इस विवर का ऊपरी भाग संकुचित है किन्तु नीचे का भाग चौड़ा और दृढ़ है। नीचे के भाग में ऊर्ध्वहन्विका से ऊपर की ओर को उठा हुआ एक प्रवर्धन दिखाई देता है जो पूर्वनासाकण्टक कहलाता है। नासाविवर के द्वारा भीतर देखने से गुहा के बीच में उसको दो भागों में विभक्त करता हुआ एक पटल दीखता है। यह नासिका का विभाजक पटल है। इसके आगे का भाग सुक्ति के द्वारा बनता है। करोटि में इस विभाजक पटल का बहुत सा भाग अपूर्ण होता है। ये वही भाग हैं जो सुक्ति के बने हुए थे। इस पटल का ऊपरी भाग झर्झरास्थि के मध्यफलक से बना हुआ है जो प्रायः एक ओर को कुछ झुका हुआ रहता है। गुहा के पार्श्व में पूर्वनासाकण्टक के दोनों ओर अधःशुक्तिका दिखाई देती है। उसके कुछ ऊपर से मध्य-शुक्तिफलक भी गुहा में उठा हुआ दिखाई देता है। इस फलक के तनिक ऊपर की ओर देखने से ऊर्ध्व-शुक्तिफलक भी दिखाई देता है। ऊर्ध्व और मध्य शुक्तिफलक की अपेक्षा अधःशुक्तिफलकों में अधिक अन्तर है। इन फलकों के नीचे और बाहर का स्थान सुरङ्ग कहलाता है। इस प्रकार गुहा में ऊर्ध्व, मध्य और अधः सुरङ्गें होती हैं।

हन्विका प्रान्त—नासागुहाविवर के नीचे और बाहर की ओर हन्विका प्रान्त है। इस प्रान्त में नेत्रगुहाओं की अधोधाराओं के तनिक नीचे दो बड़े छिद्र स्थित हैं जो गुहाधर छिद्र कहलाते हैं। इनके द्वारा गुहाधर नाड़ी और धमनी इत्यादि निकलती हैं। हन्विका बाहर की ओर गण्डिका अस्थि से मिली हुई है। इस अस्थि के बीच में नेत्रगुहा के पार्श्व और अधोधारा के सङ्गम के तनिक नीचे की ओर एक सूक्ष्म छिद्र है जिसको गण्डमौखिक छिद्र कहते हैं। इसके द्वारा गण्डमौखिका नाड़ी निकलती है। गुहाधर छिद्र के नीचे एक चौड़ा खात है जो भेदकीय खात कहलाता है। इसके भीतर की ओर एक तीरणिका है। यह अस्थि के भीतर भेदक दन्तोदूखल को अङ्कित करती है। अस्थि के अधोभाग पर इस तीरणिका के समान अन्य तीरणिकाएँ भी दिखाई देती हैं जो दूसरे दाँतों के उदूखलों के बाहर की ओर स्थित हैं। भेदकीय तीरणिका के भीतर की ओर छेदक दाँतों के ऊपर नासाविवर से नीचे भेदकीय खात से छोटा एक खात है जो छेदक खात कहलाता है। इसके नीचे छेदक दाँत स्थित हैं। ऊर्ध्वहन्विकाओं की अधोधारा से जो दाँत निकलते हैं वे अधोहन्विका की ऊर्ध्वधारा से निकले हुए दाँतों के कुछ सामने रहते हैं।

सबसे नीचे की ओर अधोहन्विका का गात्र दीखता है। उसके बीच में चिबुक के प्रान्त में ऊपर से नीचे की ओर को जाती हुई एक तोरणिका दिखाई देती है। यह स्थान चिबुकसन्धानिका कहलाता है। वहाँ पर अधोहन्विका के दोनों ओर के समान भाग आपस में जुड़ते हैं। यह तोरणिका नीचे की ओर दो भागों में विभक्त हो जाती है जो कुछ बाहर और नीचे की ओर को मुड़ते हुए अधोहन्विका की अधोधारा पर पहुँचकर चिबुकपिण्डकों के रूप में समाप्त हो जाते हैं। तोरणिका की इन दोनों शाखाओं के बीच में

त्रिकोणाकार चिबुकोत्सेध स्थित है। अस्थि के गात्र के पूर्वपृष्ठ पर द्वितीय अग्रचर्वणक के नीचे चिबुकछिद्र स्थित है जिसके द्वारा चिबुकीय नाड़ी, धमनी इत्यादि निकलती हैं। इस छिद्र से आगे की ओर छेदकीय दाँतों के नीचे छेदकीय खात स्थित है। इस खात और चिबुकछिद्र के नीचे एक रेखा दिखाई देती है जो चिबुकपिण्डक से आरम्भ होकर पीछे और ऊपर की ओर को चली जाती है और अन्त को अस्थिशृंग की पूर्वधारा से मिल जाती है।

नेत्रगुहा—मुख में दोनों ओर नासागुहा के तनिक ऊपर दो नेत्रगुहाएँ स्थित हैं जो आकार में गोल और कुछ चतुष्कोण के समान हैं। गुहाओं का आगे का भाग, जो मुख पर रहता है, चौड़ा है। किन्तु पीछे
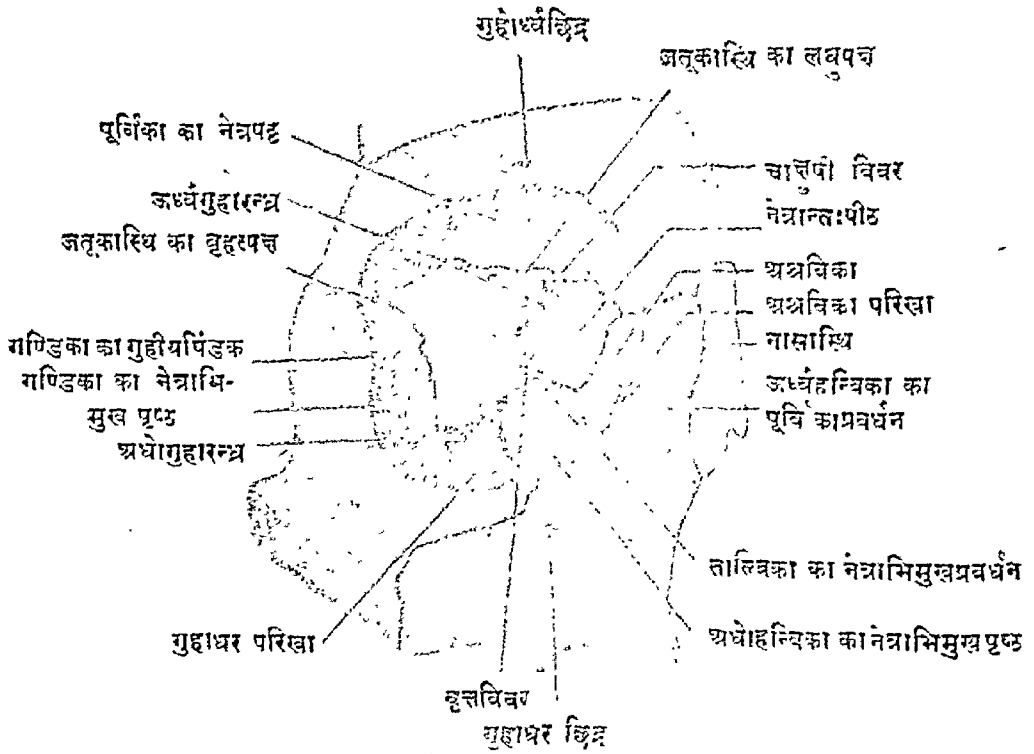
चित्र नं० २२० नेत्र गुहा का पूर्व ओर से दृश्य

के भाग की चौड़ाई अन्त तक बराबर कम होती चली जाती है। गुहाएँ करोटि में केवल अन्दर ही को नहीं जातीं किन्तु कुछ भीतर या करोटि के मध्यस्थ रेखा की ओर भी मुड़ जाती हैं। इसलिए यदि दोनों गुहाओं के अक्ष को पीछे की ओर प्रलम्बित किया जावे तो वे दोनों आपस में जतूकास्थि के गात्र पर मिल जावेंगे।

गुहाओं के आकार के कारण उनकी उपमा मीनार से दी जाती है। प्रत्येक गुहा में ऊर्ध्व, अधः, पार्श्व और मध्यस्थ भित्ति, आधार और शिखर माने जाते हैं।

शिखर—गुहा का शिखर पीछे की ओर जतूकास्थि में स्थित दृष्टिनाड़ीरन्ध्र पर माना जाता है। कुछ लेखक शिखर को ऊर्ध्वगुहारन्ध्र के मध्यस्थ भाग पर मानते हैं।

आधार—नेत्रगुहाओं के सामने के द्वार ही उनके आधार हैं। यह आधार, जो आकार में चतुष्कोण के समान है, कई अस्थियों के मिलने से बना हुआ है। ऊपर की ओर ललाटास्थि की ऊर्ध्वगुहाधारा रहती है जिसमें ऊर्ध्वगुहाछिद्र स्थित है। इसके द्वारा ऊर्ध्वगुहा नाड़ी या धमनियाँ इत्यादि जाती हैं। नीचे की

ओर गण्डिका और ऊर्ध्वहन्विका रहती हैं जो आपस में गण्डकहन्वीय सीमन्त[1] के द्वारा जुड़ी हुई हैं। भीतर की ओर गुहा का आधार पूर्विका और ऊर्ध्वहन्विका के ललाटप्रवर्धन से बनता है। ये दोनों अस्थियाँ भी ललाटहन्विक सीमन्त[2] से जुड़ी हुई हैं। बाहर की ओर गण्डिका और ललाटिका का गण्डक प्रवर्धन आधार को परिमित करता है। इन दोनों अस्थियों के बीच में ललाटगण्डकीय सीमन्त[3] स्थित है।

ऊर्ध्वभित्ति गुहा के ऊपर की ओर रहती है। इसके आगे के भाग में पूर्विका का नेत्रपट्ट रहता है। उसके पीछे की ओर जतूका का लघुपक्ष रहता है। किन्तु भित्ति का अधिक भाग पूर्विका का नेत्रफलक ही बनाता है। इस फलक और जतूका के लघुपक्ष के बीच में सीमन्त स्थित है। इस भित्ति के मध्यस्थ प्रान्त पर सूक्तिनिर्मित घिर्री के लगने का चिह्न है, जिस पर होकर वक्रोर्ध्वदर्शनी पेशी की कण्डरा जाती है। भित्ति के पार्श्व प्रान्त में अश्रुखात स्थित है जिसमें अश्रुग्रन्थि रहती है।

अधोभित्ति—ऊर्ध्वभित्ति से छोटी है और ऊपर तथा बाहर की ओर को मुड़ी हुई है। ऊर्ध्वभित्ति नतोदर है किन्तु अधोभित्ति उन्नतोदर है। इस भित्ति के बनाने में तीन अस्थियाँ भाग लेती हैं। भित्ति का सबसे बड़ा, आगे और भीतर की ओर का भाग ऊर्ध्वहन्विका के गुहाभिमुख पृष्ठ से बनता है। इसके बाहर की ओर गण्डिका का नेत्राभिमुख प्रवर्धन रहता है। पीछे की ओर तालिका का नेत्राभिमुख प्रवर्धन भी भित्ति का कुछ भाग बनाता है। इस भित्ति के मध्यस्थ भाग में ऊर्ध्वहन्विका के ललाटप्रवर्धन के तनिक पीछे की ओर एक छोटा सा खात है जहाँ से वक्राधोदर्शनी पेशी उदय होती है। इसके तनिक ऊपर और भीतर की ओर नासाश्रविका नलिका का द्वार है। भित्ति के बीच में एक परिखा स्थित है जो आगे की ओर गुहाधर नलिका में समाप्त हो जाती है। इस नलिका में होकर गुहाधार नाड़ी और धमनी जाती हैं। इसके बाहरी भाग में जहाँ ऊर्ध्वहन्विका गण्डिका के साथ मिलती है वहाँ दोनों अस्थियों के सम्मेलन-स्थान पर सीमन्त दिखाई देता है। इसी प्रकार पीछे की ओर ऊर्ध्वहन्विका और तालिका के नेत्राभिमुख प्रवर्धन के बीच में भी सीमन्त स्थित है।

मध्यस्थ भित्ति—इस भित्ति के बनाने में चार अस्थियाँ भाग लेती हैं। सबसे आगे ऊर्ध्वहन्विका का ललाटप्रवर्धन है। उसके पश्चात् अश्रविका रहती है। तत्पश्चात् झर्झरास्थि का नेत्रान्तः पीठफलक रहता है। सबके पीछे जतूका के गात्र का कुछ भाग रहता है। अतएव इन चारों अस्थियों के बीच में तीन सीमन्त, हन्वश्रविक[4], झर्झराश्रविक[5] और जतूझर्झरिक[6] सीमन्त भी इस पृष्ठ पर दिखाई देते हैं। ऊपर की ओर जहाँ मध्यस्थ भित्ति ऊर्ध्वभित्ति के साथ मिलती है वहाँ पर भी कई सीमन्त दिखाई देते हैं। सबसे आगे ललाटहन्विक[7] सीमन्त है। उसके पश्चात् अश्रविका और पूर्विका के बीच का ललाटाश्रविक[8] सीमन्त है। तत्पश्चात् ललाटझर्झरीय[9] सीमन्त है और उसके पीछे जतूका और पूर्विकाके बीच में जतूललाट[10] सीमन्त स्थित है।

इस भित्ति में सबसे आगे की ओर अश्रविका परिखा है जिसमें अश्रुकोश रहता है। यह नीचे की ओर अश्रुनलिका के रूप में चली जाती है। इस परिखा के पीछे की ओर पश्चात् अश्रविका शिखा है जिससे नेत्र-निमीलनी का कुछ भाग उदय होता है। इसके पीछे और ऊपर की ओर पूर्विका और झर्झरास्थि के बीच के सीमन्त में आगे-पीछे दो छिद्र स्थित हैं जो पूर्व और पश्चात् झर्झरिका-छिद्र कहलाते हैं। पूर्वछिद्र के द्वारा पूर्वनासाशैलिकी और पश्चात् छिद्र के द्वारा पश्चात् नासाशैलिकी नाड़ी और धमनियाँ इत्यादि जाती हैं।

---

१. Zygomaticomaxillary suture. २. Frontomaxillary suture. ३. Zygomatico-frontal suture. ४. Lacrimamoxillary suture. ५. Lacrimoethmoidal. ६. Sphenoethmoidal. ७. Frontomaxillary. ८. Frontolacrimal. ९. Frontoethmoidal. १०. Frontosphenoidal.

पार्श्विक भित्ति का अधिक भाग जतूकास्थि के नेत्राभिमुख पृष्ठ से बना हुआ है। आगे के थोड़े भाग में गण्डिका का नेत्राभिमुख प्रवर्धन रहता है। इन दोनों के बीच में जतूकगण्डकीय[1] सीमन्त है। भित्ति के आगे के भाग में एक छिद्र स्थित है जो गण्डिकछिद्र कहलाता है। इस छिद्र में होकर गण्डिका नाड़ी बाहर निकलती है। उनके साथ में अश्रविका धमनी की एक सूक्ष्म शाखा भी जाती है। कभी-कभी एक के स्थान में दो छिद्र होते हैं। इस भित्ति का अधिक भाग ऊर्ध्वभित्ति से ऊर्ध्वगुहारन्ध्र द्वारा भिन्न रहता है। बहिर्दर्शनी पेशी के दोनों शिर इस रन्ध्र के नीचे और भीतर के चौड़े भाग पर रहते हैं। रन्ध्र के द्वारा निकलनेवाली नाड़ियों, धमनियां इत्यादि में से कुछ इन पेशियों के शिरों के ऊपर होकर निकलती हैं। शेष उनके नीचे से जाती हैं। इन धमनियों और नाड़ियों इत्यादि के नाम पहले बताये जा चुके हैं। भित्ति के नीचे की ओर ऊर्ध्वगुहारन्ध्र के समान अधोगुहारन्ध्र स्थित है। इसमें होकर ऊर्ध्वहन्विका नाड़ी और उसकी गण्डकीय शाखा, जतूकतालिक नाड़ी, गण्ड की नेत्रीय शाखाएँ और गुहाधर धमनी तथा शिराएँ जाती हैं।

ऊपर के वर्णन से विदित होगा कि नेत्रगुहा में जो छिद्र या रन्ध्र होते हैं उनके नाम ये हैं—ऊर्ध्वगुहाछिद्र, दृष्टिनाड़ीरन्ध्र, ऊर्ध्वगुहारन्ध्र, अधोगुहारन्ध्र, गण्डकीय छिद्र, अधोगुहानलिका का द्वार, पूर्वझर्झरिकाछिद्र, पश्चात् झर्झरिकाछिद्र और नासाश्रविका नलिका।

करोटिपार्श्व

करोटि का पार्श्वपृष्ठ दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। ऊपर का बड़ा चिकना भाग कपाल की अस्थियों से बना हुआ है और वह कपाल में गिना जाता है। नीचे का भाग छोटा और क्रमहीन है और मुख का पार्श्वभाग बनाता है।

ऊपर का कपाल भाग उन्नतोदर और जम्बु के आकार का है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में इस भाग के आकार में भिन्नता पाई जाती है जिसका विशेष कारण करोटि का बड़ा और ऊँचा अथवा छोटा और नीचा होना, भ्रू-तीरणिकाओं का उत्सेध, पूर्विका, पार्श्विका और पश्चादिकाओं के उत्सेध का छोटा या बड़ा होना इत्यादि हैं।

यह पृष्ठ छः अस्थियों के मिलने से बनता है। आगे और ऊपर की ओर पूर्विका रहती है। उसके पश्चात् ऊपर की ओर पार्श्विका अस्थि है। नीचे की ओर पूर्विका और पार्श्विका से मिला हुआ जतूका के बृहत् पक्ष का पार्श्वपृष्ठ आगे की ओर और शंखास्थि पीछे की ओर रहती है। नीचे की ओर गण्डकीय चाप में गण्डिका का शंखीय प्रवर्धन और गण्डिका के गात्र के पूर्वपृष्ठ का भी कुछ भाग दिखाई देता है। पीछे की ओर पश्चादिका का कुछ भाग रहता है। ये सब अस्थियाँ आपस में सीमन्तों के द्वारा जुड़ी हुई हैं। पूर्विका और गण्डिका के बीच में ललाटगण्डिका सीमन्त[2] है, जो गण्डिकास्थि को पूर्विका के गण्डकप्रवर्धन से जोड़ता है। गण्डिका के नीचे और पीछे की ओर शंखीय प्रवर्धन को शंखास्थि के गण्डकीय प्रवर्धन से जोड़ता हुआ शंखगण्डिक सीमन्त[3] दिखाई देता है। पूर्विका और पार्श्विका के बीच में पूर्वसीमन्त स्थित है जो ऊपर की ओर को चला जाता है। इसी प्रकार पार्श्विका और पश्चादिका के बीच में पश्चिम सीमन्त है जिसके द्वारा ये दोनों अस्थियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं। इन दोनों सीमन्तों के बीच में पार्श्विका और शंखास्थि के बीच में पार्श्वसीमन्त[4] है जो आगे से पीछे की ओर को वृत्त के समान मुड़ता हुआ चला जाता है। यह सीमन्त पीछे की ओर पहुँचकर पश्चिमसीमन्त से मिल जाता है जहाँ से कर्णमूलपश्चादिका[5] सीमन्त शंखास्थि के कर्णमूल भाग और पश्चादिका को जोड़ता हुआ नीचे की ओर को जाता हुआ दिखाई देता है। इस सीमन्त

---

१. Sphenozygomatic suture. २. Zygomaticofrontal. ३. Zygomaticotemporal. ४. Squamosal. ५. Occipitomastoid.

के तनिक आगे की ओर शंखास्थि के कर्णमूल भाग में कर्णमूलछिद्र दिखाई देता है। जिस स्थान पर कर्णमूलपश्चादिकापार्श्व और पश्चिमसीमन्त आपस में मिलते हैं वह पार्श्वबिन्दु कहलाता है।

इन सीमन्तों के अतिरिक्त आगे की ओर तीन और सीमन्त हैं। गण्डिका और जतूका को मिलाता हुआ जतूकगण्डिक सीमन्त[1] है जो छोटा और मुड़ा हुआ है। इसके ऊपरी सिरे से पीछे की ओर जाता हुआ जतूकपार्शिवक[2] सीमन्त है जो जतूकास्थि और पार्शिवका के बीच में स्थित है। इस सीमन्त के पीछे के सिरे से शंखास्थि और जतूकास्थि के बीच का सीमन्त नीचे की ओर को जाता हुआ दिखाई देता है। यह शंखजतूक सीमन्त[3] कहलाता है। जतूका और पूर्विका के बीच के सीमन्त को जतूकपूर्विक[4] सीमन्त कहते हैं।

चित्र नं० २२१—करोटिका पार्श्व दृश्य

इस पृष्ठ पर कई उत्सेध और तोरणिकाएँ भी दिखाई देते हैं। सबसे आगे की ओर भ्रूतोरणिका है जिसके नीचे ऊर्ध्वगुहाधारा है। इस तोरणिका के ऊपर ललाटोत्सेध दिखाई देता है। पार्शिवका के मध्य में भी एक ऐसा ही उत्सेध है जो पार्शिवकोत्सेध कहलाता है। पश्चादिका के बीच से भी पीछे की ओर को एक उत्सेध निकला हुआ है। इस उत्सेध से ऊर्ध्वपश्चादिका रेखा बाहर की ओर को जाती हुई दिखाई देती है। इस पृष्ठ पर दो रेखाएँ, जो ऊर्ध्व और अधः शंखरेखाएँ कहलाती हैं, पूर्विका के

---

१. Zygomaticosphenoidal २. Sphenoparietal. ३. Sphenotempoil ४. Sphenofrontal suture.

पार्श्व पर होती हुई पार्श्विका के पार्श्व को पार करके शंखास्थि पर चली जाती हैं। ये रेखाएँ बहुत बड़े वृत्त बनाती हैं जिनका नीचे का भाग अपूर्ण होता है। इन रेखाओं के नीचे का समस्त चिकना समतल स्थान शंखखात कहलाता है और शंखच्छदा पेशी से ढका रहता है। इस पृष्ठ पर तीन खात स्थित हैं जिनको शंखखात, शंखाधरखात और गुरुतालिवकाखात कहते हैं।

शंखखात—इस खात के बनाने में कई अस्थियाँ भाग लेती हैं। आगे की ओर पूर्विका, ऊपर की ओर पार्श्विका, नीचे की ओर जतूका के बृहत्पक्ष का बहिःपृष्ठ और उसके पीछे की ओर शंखास्थि का फलक रहता है। इन चारों अस्थियों के मिलने से शंखखात बनता है। यह खात ऊपर की ओर से शङ्खरेखाओं से परिमित है जो पूर्विका के गण्डप्रवर्धन के बाहर की ओर से आरम्भ होकर प्रथम ऊपर को जाती हैं किन्तु पार्श्विका पर पहुँचकर पीछे की ओर मुड़ जाती हैं और अन्त में नीचे की ओर को उतरकर शंखास्थि पर पहुँचकर मूलोपरि तीरणिका के साथ मिलकर गण्डचाप के पश्चिममूल तक पहुँच जाती हैं। इस प्रकार पीछे, ऊपर और आगे की ओर ऊपरी भाग में ये खात शंखरेखाओं या तीरणिकाओं द्वारा परिमित हैं। खात के नीचे की ओर जतूका के बृहत्पक्ष पर स्थित शंखाधर शिखा और उसके साथ मिली हुई तीरणिका, जो उसके पश्चाद्भाग से गण्डचाप के पूर्वमूल तक चली जाती है, स्थित है। इनके द्वारा वह शंखाधर खात से पृथक् हो जाता है। आगे और नीचे की ओर खात नेत्रगुहा के साथ अधोगुहारन्ध्र के द्वारा सम्बन्धित होता है। खात के बाहर की ओर गण्डचाप वर्त्तमान है। गण्डिका के पीछे की ओर एक छिद्र स्थित है जिसको **गण्ड-शंखीय छिद्र** कहते हैं।

यह सारा खात शंखच्छदा पेशी से ढका रहता है। खात पर धमनी और शिराओं की परिखाएँ भी दिखाई देती हैं। एक परिखा प्रायः कर्णबहिर्द्वार के ऊपर आगे की ओर दिखाई देती है। इसमें मध्यशंखिका धमनी रहती है। खात के अगले भाग में भी दो परिखाएँ, जो बहुत स्पष्ट नहीं हैं, पाई जाती हैं। इनमें पूर्व और पश्चात् गम्भीरशंखिका धमनी[१] रहती है। इनके अतिरिक्त खात में गम्भीरशंखिका नाड़ियाँ, गण्डिका नाड़ी की गण्डशंखीय[२] शाखा और कुछ वसा रहती है। शंखच्छदा पेशी और ये सब धमनियाँ, नाड़ियाँ या शिराएँ शंखीय कला से ढकी हुई हैं। इस कला के ऊपर भी कुछ नाड़ी और धमनियाँ इत्यादि रहती हैं जिनमें मुख्य ये हैं—अनुशंखा उत्ताना[३] धमनी और शिराएँ; कर्णशंखिका[४] नाड़ी और मौखिका नाड़ी की शंखीय[५] शाखाएँ।

इस खात की गहराई और चौड़ाई शंखच्छदा पेशी के आकार पर निर्भर करती है।

गण्डीय चाप—यह चाप शंखिका के गण्डप्रवर्धन और गण्डिका के शंखप्रवर्धन के मिलने से बनता है। जहाँ ये दोनों प्रवर्धन मिलते हैं वहाँ उनके बीच में एक टेढ़ा सीमन्त स्थित है। यह समस्त कर्ण के ऊपरी कोने से आगे की ओर अँगुलियों से टटोलने से प्रतीत किया जा सकता है। शंखच्छदा पेशी की कण्डरा इस चाप के भीतर की ओर होती हुई नीचे जाकर अधोहन्विका के हनुकुन्त में निवेश करती है।

इस चाप के पीछे की ओर जहाँ वह शंखास्थि पर से आरम्भ होता है शंखास्थि के गण्डप्रवर्धन के दो मूल देखे जा सकते हैं। पश्चिममूल चौड़ा, कुछ नतोदर और ऊपर की ओर को मुड़ा हुआ है। यह मूल पीछे की ओर मूलोपरि तीरणिका से मिल जाता है जो कर्णबहिर्द्वार के ऊपर की ओर होती हुई पीछे को चली जाती है। पूर्वमूल मोटा और दृढ़ है और हनुखात के आगे मूल के बाहरी भाग में सन्धिपिण्डक

---

१. Ant. and post deep temporal arteries. २. Zygomaticotemporal branch of zygomatic N. ३. Superficial temporal art. ४. Auriculo temporal N. ५. Temporal branches of facial Nerve.

स्थित है। पिण्डक के पीछे की ओर हनुखात है जिसमें हनुमुण्ड रहता है। यह खात एक रन्ध्र के द्वारा दो भागों में विभक्त है। चाप की ऊर्ध्वधारा पर शंखीय कला लगी हुई है और अधोधारा और अन्तःपृष्ठ से हनुकूटकर्षणी पेशी उदय होती है।

कर्णबहिर्द्वार—हनुखात के पीछे और चाप के पश्चिममूल या मूलोपरि तीरणिका के नीचे एक बड़ा गोल या अण्डाकार छिद्र है जो कर्णबहिर्द्वार कहलाता है। स्वाभाविक अवस्था में इसके आगे सुक्ति-निर्मित बहिःकर्ण भाग लगा रहता है। इस द्वार के ऊपर और पीछे की ओर मूलोपरि तीरणिका के नीचे एक छोटा त्रिकोणाकार नत स्थान दीखता है। यह कर्णद्वारोपरि त्रिकोण या खात कहलाता है। शरीर में कर्ण-शष्कुली को भली भाँति आगे और नीचे की ओर को खींचकर कर्णद्वार या शुष्कुली के ऊपर और पीछे की ओर अँगुली से प्रतीत किया जा सकता है। इस त्रिकोण के लगभग आध इंच अस्थि के भीतर कर्णकुहर रहता है। उसमें रोग उत्पन्न हो जाने पर इसी त्रिकोण के द्वारा शस्त्रकर्म करना होता है। कभी-कभी इस त्रिकोण के ऊपरी भाग से निकला हुआ एक कण्टक दिखाई देता है जो कर्णद्वारोपरि कण्टक कहलाता है। कर्णद्वार के आगे की ओर हनुखात के बीच में जो रन्ध्र है उसको श्रोत्रीयाश्मरन्ध्र कहते हैं। खात के अगले भाग में हनुकूट और रन्ध्र से पीछे के भाग में कर्णमूलग्रन्थि रहती है। हनुखात के पीछे की ओर स्थित श्रोत्रभागों से शिफाप्रवर्धन नीचे और आगे की ओर को निकला हुआ दिखाई देता है। इस पर वे सब पेशियाँ और बन्धन लगे हुए हैं जिनका प्रथम उल्लेख किया जा चुका है। श्रोत्रभागों के पीछे की ओर शंखास्थि से पीछे और नीचे की ओर को निकला हुआ कर्णमूल पिण्ड है। इस पर कई पेशियाँ लगी हुई हैं जिनका शंखास्थि के सम्बन्ध में कर्णमूलपिण्ड की व्याख्या करते समय वर्णन किया जा चुका है।

शंखाधर खात—यह स्थान शंखखात और गण्डचाप के नीचे की ओर स्थित है और ऊपर की ओर जतूकास्थि के वृहत् पक्ष पर स्थित शंखाधरशिखासे परिमित है। इसके नीचे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि की अधोधारा, जिस पर दन्तोदूखल और उनके कारण उत्पन्न हुई तीरणिकाएँ दीखती हैं, स्थित है। खात के आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि का पश्चिम या शंखाधर पृष्ठ और गण्डास्थि के पूर्व कोण से हन्वस्थि की अधोधारा तक जानेवाली तीरणिका स्थित है। पीछे की ओर से खात शंखास्थि के सन्धिपिण्डक और जतूका के कोणीय कण्टक द्वारा सीमित है और इसके भीतर की ओर बहिश्चरणफलक रहता है।

इस खात के भीतर कई विशेष रचनाएँ हैं। इसके पिछले भाग में जाम्बवविवर और कोणछिद्र दिखाई देते हैं। इनका वर्णन प्रथम किया जा चुका है। शंखच्छदा पेशी का नीचे का भाग, हनुमूलकर्षणी बहिःस्था और अन्तःस्था पेशी इसी खात में रहती हैं। इनके अतिरिक्त अन्तर्दानव्या धमनी और शिरा तथा ऊर्ध्व और अधोहानव्या नाड़ियाँ रहती हैं। खात के अगले भाग में एक चौड़ा मुड़ा हुआ विवर दिखाई देता है। यह विवर अर्धचन्द्र या नैपाली शस्त्र खुखड़ी के आकार का है। इसका ऊपरी भाग जो ऊपर और बाहर की ओर को मुड़ा हुआ है अधिक चौड़ा है। विवर का यह ऊपर का चौड़ा भाग अधोगुहारन्ध्र और नीचे का पतला भाग हनुचरणिकरन्ध्र कहलाता है।

अधोगुहारन्ध्र या **हनुजातूकरन्ध्र**—ऊर्ध्वगुहारन्ध्र की भाँति यह रन्ध्र भी विशेष महत्त्व का है। इसके ऊपर की ओर जतूकास्थि के वृहत्पक्ष के नेत्राभिमुख पृष्ठ की अधोधारा है, नीचे की ओर तालव्वस्थि का नेत्रा-भिमुख प्रवर्धन और ऊर्ध्वहन्वस्थि के नेत्राभिमुख पृष्ठ की बहिर्धारा स्थित है। रन्ध्र के बाहर की ओर गण्डास्थि का कुछ भाग रहता है। भीतर या पीछे की ओर यह हनुचरणिकरन्ध्र से मिल जाता है। इस रन्ध्र के द्वारा कई विशेष नाड़ियाँ तथा धमनियाँ कपाल के भीतर से बाहर निकलती हैं या कपाल के भीतर जाती हैं। उनमें विशेष ये हैं—**हानव्या नाड़ी** और उसकी **गण्डिका शाखा, नेत्राधरा धमनी** या शिराएँ, **तालुजातूक नाड़ीगण्ड** की **ऊर्ध्वगामी** शाखाएँ और **अधरचाक्षुषी शिरा** तथा चरणिकशिराजाल को संयुक्त करनेवाली

एक सूक्ष्म शिरा। इस रन्ध्र के द्वारा नेत्रगुहा का शंखखात, शंखाधर खात और तालुचरणिक खात से सम्बन्ध होता है।

हनुचरणिक रन्ध्र[1]—इसके आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि का पश्चात् पृष्ठ और पीछे की ओर बहिःस्थ चरणफलक का नीचे का भाग रहता है। ऊपर की ओर यह रन्ध्र अधोगुहारन्ध्र से मिला हुआ है। यह त्रिकोणाकार अन्तराल है। इसके द्वारा अन्तर्हानव्या धमनी जाती है और शंखाधर खात का तालुचरणिक खात से सम्बन्ध होता है।

तालुचरणिक खात[2]—यह एक छोटा सा त्रिकोणाकार स्थान है जो हनुचरणिक और अधोगुहारन्ध्रों के सङ्गम-स्थान पर पीछे और भीतर की ओर स्थित है। अन्य खातों की भाँति यह भी चारों ओर से सीमित है। इसके ऊपर की ओर जतूकागात्र का अधःपृष्ठ और तात्वस्थि का जातूक प्रवर्धन है। आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि का शंखाधर पृष्ठ स्थित है। पीछे की ओर खात चरणप्रवर्धन के मूल और जतूकास्थि के बृहत् पक्ष के पूर्व पृष्ठ द्वारा परिमित है। खात के भीतर की ओर तात्वस्थि का दीर्घपत्रक और जातूक और नेत्राभिमुख प्रवर्धन स्थित हैं। उसके नीचे की ओर नेत्रगुहा का शिखर है।

इस खात में पाँच छिद्र तथा विवर दिखाई देते हैं। पीछे की ओर सबसे ऊपर वृत्तविवर है। इससे नीचे और भीतर की ओर **पादमूलनलिका** और **ग्रसनिकानलिका** के द्वार स्थित हैं। रन्ध्र की मध्यस्थ भित्ति पर **तालुजातूकछिद्र** है और उसके नीचे **तालुचरणिका नलिका** का द्वार है। इस खात का नेत्रगुहा से **अधोगुहारन्ध्र** द्वारा, नासागुहा से **तालुजातूकछिद्र** द्वारा और शंखाधर खात से **हनुचरणिकरन्ध्र** द्वारा, सम्बन्ध होता है। खात में **हानव्या नाड़ी, तालुजातूक नाड़ीगण्ड** और **अन्तर्हानव्या** धमनी का अन्तिम भाग रहता है।

करोटि का पश्चिमपृष्ठ

पीछे की ओर से देखने से करोटि उन्नतोदर और एक बड़े चाप या अर्धवृत्त के समान आकारवाली दीखती है। इस पृष्ठ में दोनों ओर के पार्श्वकपाल और पश्चात्कपाल का कुछ भाग और शंखास्थि का पीछे की ओर का कर्णमूल भाग दिखाई देता है। पार्श्विकोत्सेध जो ऊर्ध्वपृष्ठ में दिखाई देते हैं इस पृष्ठ पर भी दृष्टिगोचर होते हैं।

पृष्ठ के ऊपरी भाग में मध्य सीमन्त का पिछला भाग दिखाई देता है जो पीछे की ओर पश्चिमसीमान्त से मिल जाता है। दोनों पार्श्वकपाल आपस में मध्यसीमन्त द्वारा और पश्चात्कपाल से पश्चिमसीमन्त द्वारा मिले हुए हैं। यह सीमन्त शंखास्थि के ऊपर पहुँचकर **पार्श्वशीर्षिक** और **पश्चिमशीर्षिक** सीमन्त के साथ मिल जाता है जो पार्श्वकपाल और शंखास्ति तथा पश्चात्कपाल और शंखास्थि के कर्णमूल भाग को जोड़ता है। पार्श्व कपाल के पिछले भाग का छिद्र भी इस पृष्ठ पर दिखाई देता है।

पीछे की ओर पश्चात्कपाल के बीच में पश्चिमोत्सेध दिखाई देता है। इस उत्सेध से दोनों ओर पार्श्व की ओर जाती हुई मध्यतीरणिका रेखा या तीरणिका है। इस रेखा के ऊपर की ओर ऊर्ध्वतीरणिका रेखा है जो मध्य रेखा से कम स्पष्ट है। पश्चिमोत्सेध से नीचे की ओर को महाविवर की पश्चिम धारा तक एक तीरणिका जाती है जो पश्चात्कपाल के फलक के बहिःपृष्ठ को दो पार्श्वभागों में विभक्त कर देती है। इसे मध्यालिका रेखा कहते हैं। ऊर्ध्वपश्चादिका रेखा से ऊपर का अस्थिफलक का भाग शिरश्छदा पश्चिमा पेशी से ढका हुआ है। तीरणिका रेखाओं के ऊपर और नीचे की ओर जो पेशियाँ निवेश करती हैं अथवा वहाँ से उदय होती हैं उनका उल्लेख प्रथम ही किया जा चुका है। रेखा या तीरणिकाओं पर कुछ बन्धन या कला लगती

1. Pterygomaxillary fissure. 2. Pterygopalatine fossa.

हैं। पश्चिमपृष्ठ के दोनों ओर शंखास्थि के कर्णमूल पिण्ड दिखलाई देते हैं जो बाहर की ओर से उन्नतोदर हैं किन्तु उनके भीतर की ओर एक परिखा है। इस भाग में एक छिद्र है जो कर्णमूलछिद्र कहलाता है। कर्णमूल प्रवर्धन के पीछे की ओर से जो पेशियाँ उदय होती हैं या वहाँ पर निवेश करती हैं उनका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

इस पृष्ठ में पश्चिमोत्सेध और मध्यतोरणिका रेखा के नीचे का भाग भी दिखाई देता है। वह वास्तव में करोटि के अधःपृष्ठ का भाग है और उसी के सम्बन्ध में उसका विचार किया जायगा।

करोटि का अधःपृष्ठ या तल

अधःपृष्ठ के अध्ययन के लिए करोटि को उलटकर सामने रख लेना चाहिए जिससे उसका तल ऊपर को ओर हो जायगा। किन्तु अध्ययन करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि उलटी हुई करोटि में जो रचनाएँ तथा अस्थि के भाग हम ऊपर की ओर देख रहे हैं वे स्वाभाविक अवस्था में नीचे की ओर रहते हैं।

चित्र नं० २२२—करोटितल का अधःपृष्ठ
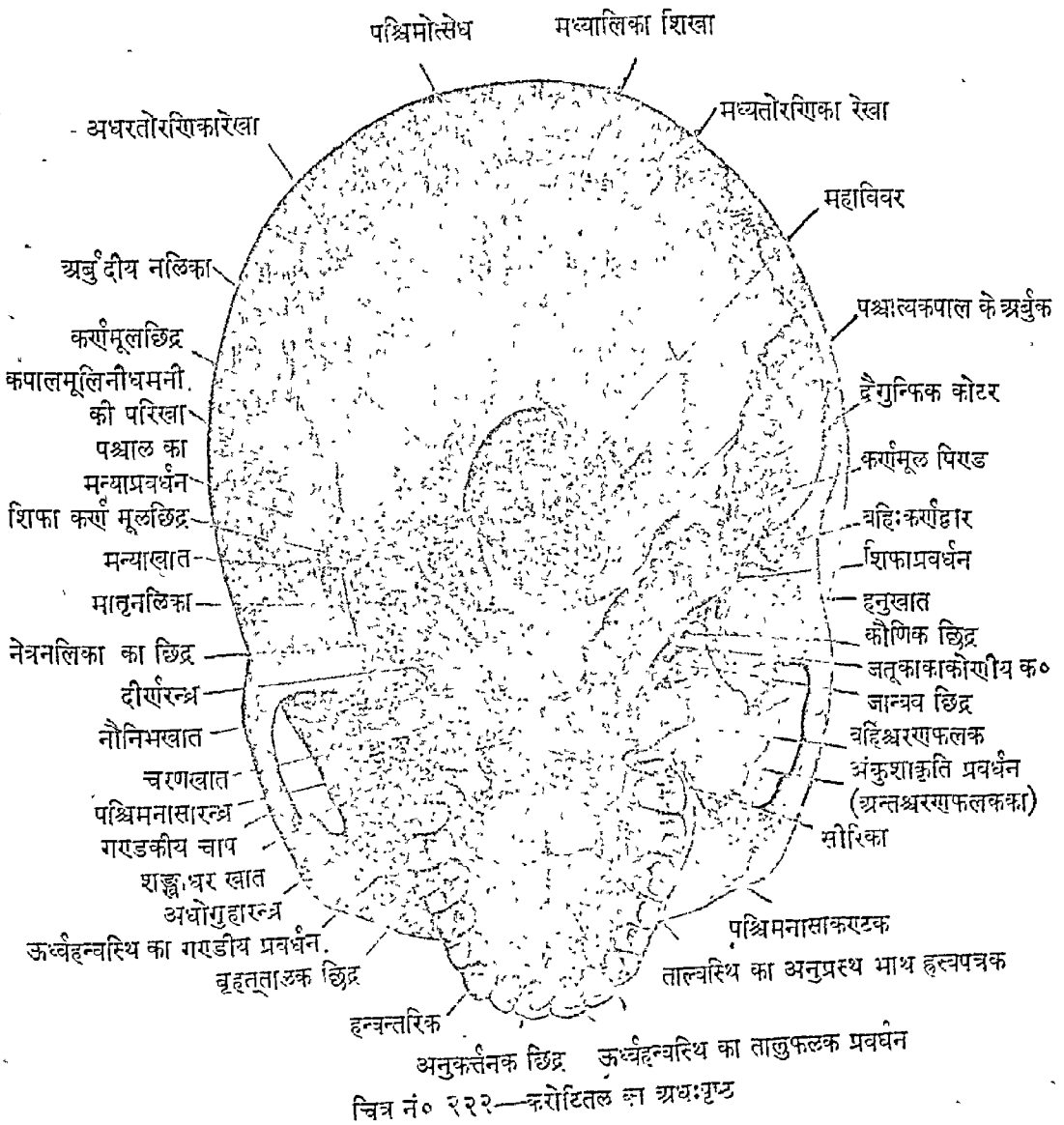
यह पृष्ठ अत्यन्त विषम है। इसका कोई भी भाग समतल और चिकना नहीं है। इसके बनाने में कई अस्थियाँ भाग लेती हैं। सबसे आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालुफलक प्रवर्धन का अधःपृष्ठ रहता है। उसके पीछे की ओर तात्वस्थि का लघुपत्रक जुड़ा हुआ है। जहाँ दोनों ओर के लघुपत्रक जुड़ते हैं उनके पीछे की ओर सीरिका अस्थि की पश्चिमधारा दिखाई देती है जिसके दोनों ओर दो बृहत् छिद्र हैं। सीरिका की ऊर्ध्वधारा से निकले हुए दोनों पक्ष ऊपर की ओर जतूकास्थिगात्र के अधःपृष्ठ पर लगे हुए हैं। जतूका के बृहत् पक्ष का अधःपृष्ठ और चरणप्रवर्धन भी पृष्ठ के बनाने में भाग लेते हैं। इन भागों के पीछे की ओर जतूका का कण्टकप्रवर्धन भी दिखाई देता है। जतूकास्थि पीछे की ओर पश्चात्कपाल के साथ जुड़ी हुई है। यहाँ से पीछे का समस्त भाग पश्चात्कपाल ही से बना हुआ है। जतूका और पश्चात्कपाल के सङ्गम से बाहर की ओर शंखास्थि का अश्मकूट और उसके बाहर की ओर शङ्खास्थि के फलक का अधःपृष्ठ दिखाई देता है। उसके पीछे कर्णमूलपिण्ड स्थित है जो भीतर की ओर कर्णमूल भाग के द्वारा पश्चात्कपाल से संयुक्त है।

पृष्ठ की सीमा भी अत्यन्त स्पष्ट है। इस पृष्ठ को पीछे की ओर ऊर्ध्वतोरणिका रेखा और उसके सिरे से कर्णमूलपिण्ड तक खींची हुई एक काल्पनिक रेखा सीमित करती है। बाहर की ओर वह कर्णमूल-पिण्ड से गण्डचाप तक खींची हुई काल्पनिक रेखा और गण्डचाप द्वारा परिमित है। पृष्ठ के आगे की ओर गण्डास्थि की अधोधारा और ऊर्ध्वहन्वस्थि की अधर या दन्तीय धारा स्थित हैं।

अन्य सब पृष्ठों की अपेक्षा इस पृष्ठ के छिद्र, नलिकाएँ तथा खात अधिक महत्त्व के हैं। इनमें से बहुत सी नलिकाएँ तथा छिद्र करोटि के भीतर तल के ऊपर की ओर खुलते हैं। उनका वर्णन करोटि को भीतर की ओर से अध्ययन करते समय किया जावेगा। यहाँ पर केवल इसी पृष्ठ की रचनाओं की परीक्षा करना आवश्यक है।

पृष्ठ का आगे का भाग ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालुफलक प्रवर्धन का बना हुआ है। इस भाग के आगे की ओर दन्तीय प्रवर्धन नीचे की ओर को निकला हुआ है। इस समस्त प्रवर्धन में सोलह दाँतों के उदूखल उपस्थित हैं। किन्तु यदि करोटि से दाँत पृथक् नहीं हुए हैं तो उसमें सोलह दाँत उपस्थित मिलेंगे। इनमें से आठ-आठ दाँत प्रत्येक ओर की हन्वस्थि में उपस्थित रहते हैं। सबसे आगे दो छेदक या कर्त्तनक, तत्पश्चात् एक भेदक या रदनक, उसके पीछे दो अग्रचर्वण और सबके पीछे तीन चर्वण दाँत होते हैं। उदूखलों में भेदक दाँत का उदूखल सबसे गहरा और लम्बा है चर्वण दाँतों के उदूखल दो भागों में विभक्त हैं क्योंकि इन दाँतों में दो मूल होते हैं। ये उदूखल चौड़े भी अधिक हैं।

आगे की ओर छेदक दाँत और उदूखलों के पीछे की ओर मध्यरेखा में एक बड़ा अण्डाकार छेदक या अनुकर्त्तनक छिद्र स्थित है। इस छिद्र में ध्यान से देखने से चार नलिकाओं के द्वार दिखाई देते हैं। दो द्वार, जो छोटे-छोटे छिद्र हैं, छेदक छिद्र के पूर्व और पश्चिम सिरे पर स्थित हैं। पूर्वछिद्र के द्वारा वामानासातालुगा नाड़ी और पीछे की ओर स्थित छिद्र के द्वारा दक्षिण नासातालुगा नाड़ी जाती हैं। ये स्कार्पा के छिद्र भी कहलाते हैं। इन छिद्रों के पार्श्व में अथवा छेदक छिद्र में दोनों ओर पार्श्व पर स्थित छिद्र या नलिकाद्वार स्टेंसन के छिद्र कहे जाते हैं। इनके द्वारा अवरोहणी तालुगा धमनी की पूर्व शाखाएँ जाती हैं। कभी-कभी स्कार्पा के छिद्र उपस्थित नहीं भी होते। उस समय नासातालुगा नाड़ियाँ भी स्टेंसन के छिद्रों द्वारा जाती हैं।

इस छिद्र से पीछे की ओर दोनों ओर की ऊर्ध्वहन्वस्थि के तालुफलक प्रवर्धन और उनके पीछे की ओर तात्वस्थि के लघुपत्रकों के बीच में एक मध्यसीमन्त के चिह्न दिखाई देते हैं जो अनुकर्त्तनक छिद्र के पश्चिम भाग से कठिन तालु के अन्त तक चला जाता है। दोनों लघुपत्रकों और तालुफलक प्रवर्धनों के बीच में भी एक इसी प्रकार का सीमन्त दिखाई देता है। बाल्यकाल में एक सीमन्त प्रायः सामने के दोनों छेदक दाँतों

के बीच से अन्तिम छेदक और भेदक दाँतों के बीच तक जाता हुआ दिखाई देता है। बहुत से छोटी श्रेणी के जन्तुओं में यह एक भिन्न अस्थि होती है जो **पूर्वहन्वस्थि** कहलाती है। ऊर्ध्वहन्वस्थि के इस भाग का विकास भिन्न होता है। समस्त कठिन तालु असम है। इसमें कुछ छोटे-छोटे गढ़े दिखाई देते हैं जिनमें तालव्या ग्रन्थियाँ रहती हैं।
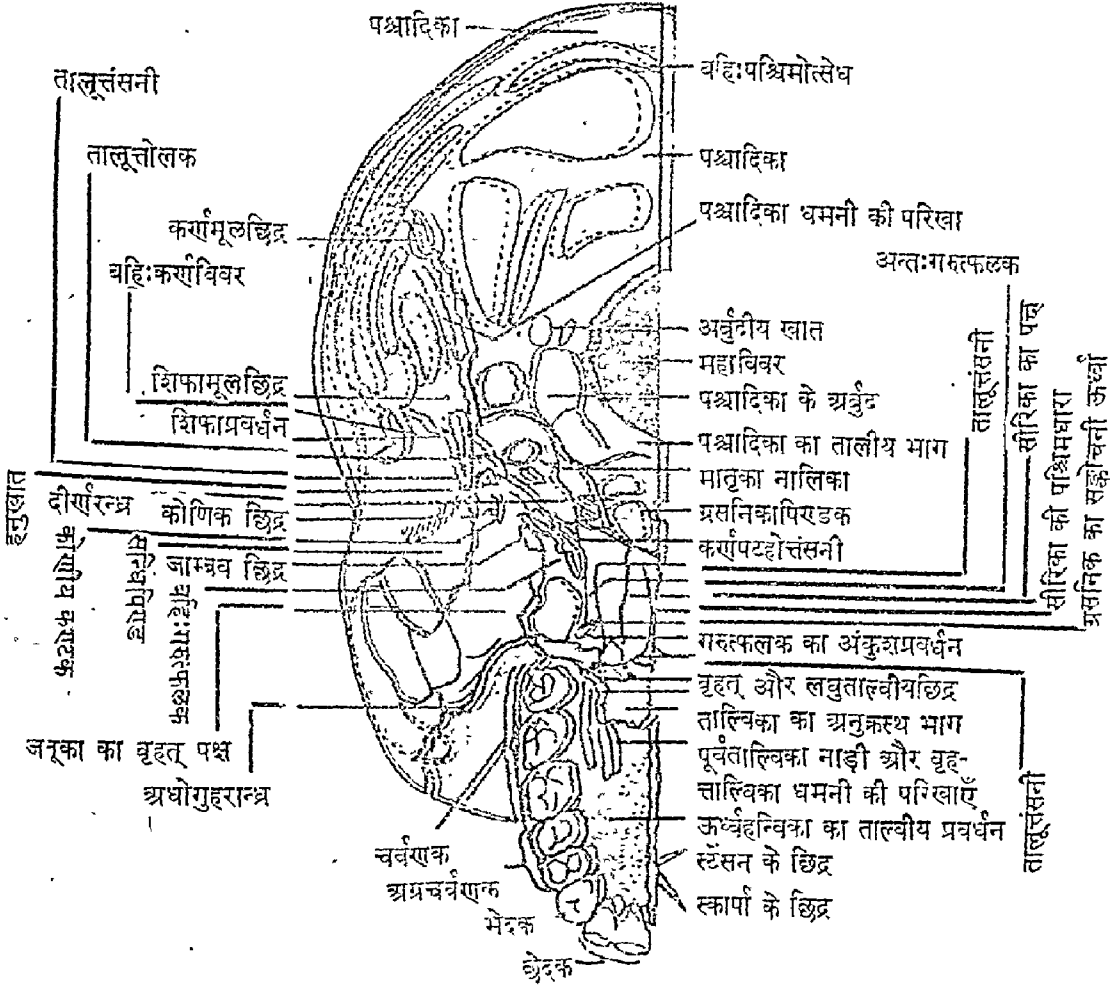
चित्र नं० २२३—करोटि का तल

१. पृष्ठच्छदा, २. पृष्ठार्धशिरस्का, ३. शिरच्छदा पश्चिमा, ४. उरःकर्णमूलिका, ५. शिरोग्रीवविवर्तनी उत्तरा, ६. पृष्ठदण्डिका शिरोयुजा, ७. द्विगुम्फिका, ८. तिरश्चीना उत्तरा, ९. शिरःपृष्ठदण्डिका गुर्वी, १०. शिरःपृष्ठदण्डिका लघ्वी, ११. शिरःपार्श्वदण्डिका, १२. शिरःपूर्वदण्डिका, १३. दीर्घशिरस्का, १४. हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था, १५. हनुकूटकर्षणी।

कठिन तालु की पश्चिमधारा पतली, स्वतंत्र और नुकीली है। इसके बीच से एक छोटा त्रिकोणाकार प्रवर्धन, जिसको **पश्चिमनासाकण्टक** कहते हैं, पीछे की ओर को निकला हुआ है। इससे शुण्डिकोन्नमनी पेशी उदय होती है। कठिन तालु की पश्चिमधारा पर कोमल तालु लगता है। जहाँ उसकी पश्चिमधारा हन्वस्थि के दन्तीय प्रवर्धन से मिलती है उसके तनिक आगे की ओर एक छोटा छिद्र है जो **लघुतालव्य छिद्र** कहलाता है। जिस स्थान पर यह छिद्र स्थित है वह तालवस्थि का सूच्याकार प्रवर्धन है।

यह छिद्र प्रायः दो होते हैं, किन्तु कभी-कभी केवल एक ही दिखाई पड़ता है। ये छिद्र **लघुतालव्या नलिकाओं** के द्वार हैं जो बृहत्तालव्या नलिका की शाखा हैं। इन नलिकाओं के द्वारा महातालव्या धमनी और नाड़ी की शाखाएँ कोमल तालु में जाती हैं। इन छिद्रों के आगे की ओर एक छोटी पतली शिखा दिखाई देती है। यह तालव्या शिखा कहलाती है। इसके आगे की ओर बृहत्तालव्य छिद्र स्थित है। इस प्रकार यह शिखा लघुछिद्रों को बृहदछिद्रों से भिन्न करती है। इस शिखा पर तालूत्तंसनी पेशी की कण्डरा का वितान लगता है।

तालु के पीछे और ऊपर की ओर दो बड़े-बड़े विवर हैं जिनको **नासापश्चिमद्वार** कहा जाता है।

ये दोनों विवर सीरिका अस्थि के द्वारा पृथक् रहते हैं। विवरों का आकार जम्बु के समान है। इनकी ऊँचाई एक इंच और चौड़ाई आधी इंच के लगभग है। इनमें होकर दो अँगुलियों के अग्रभाग भीतर डाले जा सकते हैं। विवरों के ऊपर की ओर जतूका के गात्र का अधःपृष्ठ रहता है। नीचे की ओर ताल्वस्थि का लघुपत्रक स्थित है। बाहर की ओर अन्तप्रवरण फलक रहते हैं और भीतर की ओर दोनों विवरों को भिन्न करती हुई सीरिका है जिसके पक्षों के बीच में ऊपर की ओर जतूकाकोटि लगती है।

इन बृहत् विवरों के द्वारा नासिकागुहा के भीतर की ओर देखने से गुहा के भीतर की रचना स्पष्टतया दीखती है और ऊपर बताई हुई सब अस्थियाँ दिखाई देती हैं। दोनों विवरों के बीच में विभाजक पटल बनानेवाली सीरिका, जो आगे और ऊपर की ओर झर्झरास्थि के मध्यफलक और नासापटल के सूक्ति-निर्मित भाग से मिली रहती है, दिखाई देती है। इसकी दोनों बहिर्भित्तियों से गुहा की ओर को निकले हुए तीनों शुक्तिफलक दिखाई देते हैं। मध्यशुक्तिफलक के पश्चिम भाग के तनिक ऊपर की ओर तालुजातूक छिद्र खुलता है। ऊर्ध्वफलक मध्यफलक के तनिक ऊपर की ओर खुलता है और मध्यफलक की अपेक्षा बहुत छोटा है।

सीरिका के पक्षों के तनिक बाहर की ओर चरणप्रवर्धनों के मूल के पास एक पतली नलिका स्थित है जिसको **ग्रसनिकानलिका** कहते हैं। इसका अग्रद्वार तालुचरणिक खात में खुलता है किन्तु पश्चिमद्वार विवरों की ऊर्ध्वभित्ति पर जतूका के परिवेष्टक प्रवर्धनों पर स्थित है। तालुजातूक नाड़ीगण्ड और अन्तर्हानव्या धमनी की शाखाएँ इस नलिका में होती हुई ग्रसनिका की ऊर्ध्वभित्ति में जाती हैं। यह नलिका सूक्ष्म होती है और कोमल भागों पर स्थित होने के कारण उन करोटियों में, जिनको अधिक प्रयोग में लाया गया है, नहीं पाई जाती, क्योंकि वे अस्थिभाग जिन पर नलिका स्थित होती है टूट जाते हैं।

नासापश्चिमद्वारों के बाहिर की ओर अन्तःगरुत्फलक स्थित है। यह एक पतला फलक है जो जतूका गात्र से नीचे की ओर को निकला रहता है। इसकी पश्चिमधारा से गरुत्पिण्डक निकला हुआ है। इसका निचला भाग एक अंकुश के रूप में नीचे और पीछे की ओर मुड़ा हुआ है। यह गरुदंकुश कहलाता है।

शरीर में मुख के भीतर अँगुली डालकर कठिन और कोमल तालु के सङ्गम पर बाहर की ओर दबाने से इसको प्रतीत किया जा सकता है। इस फलक की पश्चिमधारा ऊपर की ओर दो तीरणिकाओं में विभक्त है जिनके बीच में नौनिभखात स्थित है। इससे तालूत्तंसनी उदय होती है।

अन्तश्चरणफलक के बाहर की ओर बहिश्चरणफलक स्थित है जो अन्तःफलक की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। दोनों फलकों के बीच में जो त्रिकोणाकार खात है वह चरणखात कहलाता है और हनुमूलकर्षणी अन्तःस्था और तालूत्तंसनी से आच्छादित रहता है। बहिःस्थ फलक का बहिःपृष्ठ शंखाधर खात की ओर रहता है और उस पर हनुमूलकर्षणी बहिःस्था पेशी लगती है।

बहिःस्थ चरणफलक के बाहर की ओर जतूकास्थि का शंखाधर पृष्ठ है। यह पृष्ठ आगे की ओर अधोगुहारन्ध्र से पीछे की ओर हनुखात तक फैला है जहाँ वह एक त्रिकोणाकार प्रवर्धन के रूप में, जो **कोणीय फलक** कहलाता है, हनुखात के भीतर की ओर रहता है। बाहर की ओर का पृष्ठ शंखाधर शिखा से परिमित है। इस पृष्ठ के पश्चिमभाग में जाम्बवविवर और कोणछिद्र स्थित हैं। इनके द्वारा

जो नाड़ियाँ और धमनियाँ जाती हैं उनका उल्लेख किया जा चुका है। कभी-कभी विजलियस का छिद्र भी जाम्ब्रवविवर के आगे की ओर स्थित दिखाई देता है।

जतूक कोणकण्टक के आकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। इस पर भीतर की ओर एक हलकी सी परिखा है जिसमें एक नाड़ी रहती है। इस पर हनुजतूका स्नायु और तालूत्तंसनी पेशी लगती हैं।

जतूकास्थि के शंखाधर पृष्ठ के बाहर की ओर शंखास्थि का शंखाधर पृष्ठ है। इसके पीछे की ओर हनुखात स्थित है। इस खात के पूर्व पार्श्वकोण पर, जहाँ से गण्डचाप आरम्भ होता है, एक पिण्डक है जो सन्धिपिण्डक कहलाता है। यह खात को आगे की ओर से परिमित करता है और हनुमुण्ड को आगे की ओर भ्रष्ट होने से रोकता है। हनुखात के बीच में अश्मश्रोत्रीयरन्ध्र दिखाई देता है जो खात को दो भागों में विभक्त करता है। इनमें से अगले भाग में हनुमुण्ड और पिछले भाग में कर्णमूल ग्रन्थि का कुछ भाग रहता है। खात के पीछे की ओर श्रोत्रीय भाग स्थित है जिसके शिफापरिवेष्टक प्रवर्धनों के बीच से शिफाप्रवर्धन निकला हुआ है। इस प्रवर्धन के मूल के समीप **शिफाकर्णमूलान्तरीयछिद्र** स्थित है जिसके द्वारा मौखिकी नाड़ी निकलती है और शिफाकर्णमूलान्तरीया धमनी भीतर जाती है जो पश्चिमकर्णिका धमनी की शाखा है। यह छिद्र वास्तव में एक नलिका का द्वार है जो अस्थि के भीतर होती हुई कपाल में चली जाती है। शिफाप्रवर्धन पर कई पेशी और स्नायु लगते हैं। शंखास्थि के सम्बन्ध में उनका वर्णन किया जा चुका है। इस प्रवर्धन और शिफाकर्णमूलछिद्र के पीछे और बाहर की ओर श्रोत्रीय भाग और कर्णमूलपिण्ड के बीच में पतला श्रोत्रीयकर्णमूलिकरन्ध्र स्थित है जिसके द्वारा दसवीं मस्तिष्कीय नाड़ी की कर्णिका शाखा बाहर निकलती है। इस रन्ध्र के पीछे कर्णमूल भाग का कर्णमूलपिण्ड दिखाई देता है। यह एक मोटा चौड़ा दृढ़ प्रवर्धन है जो नीचे की ओर को निकला हुआ है। इसके पीछे की ओर द्विगुम्फिकाखात है जिससे द्विगुम्फिका पेशी का एक भाग उदय होता है। इस खात के भीतर की ओर दो सूक्ष्म तोरणिकाओं के बीच में कपालमूलिनी नलिका या परिखा स्थित है जिसमें कपालमूलिनी धमनी रहती है।

पृष्ठ के पार्श्विक भाग का अध्ययन कर चुकने के पश्चात् पश्चिमनासाद्वारों की ओर लौटना आवश्यक है। इन द्वारों के ऊपर और पीछे की ओर पश्चात्कपाल का मूलभाग स्थित है जो करोटि में जतूका के गात्र के पश्चाद्भाग से जुड़ा हुआ है। यह भाग चतुष्कोण के समान है। इसके बीच में, महाविवर के लगभग आध इंच सामने की ओर, एक पिण्डक है जो **ग्रसनिकापिण्डक** कहलाता है। इस पर सौत्रिक ग्रसनिका सीवनी लगती है। इस पिण्डक के दोनों ओर पेशियों के लगने के लिए नत स्थान हैं। शरीर में अस्थि का यहाँ से आगे का भाग ग्रसनिका के ऊपरी भाग की कला से ढका रहता है।

इस भाग के दोनों ओर दो छिद्र, जो आकार में कुछ त्रिकोण के समान हैं, स्थित हैं। इनको **दीर्णरन्ध्र**[1] कहते हैं। इसके आगे की ओर जतूकास्थि, बाहर और पीछे की ओर शंखास्थि का अश्मकूट और भीतर की ओर पश्चात्कपाल का मूल भाग रहता है। यह रन्ध्र मध्यकपालखात में खुलता है। इसके आगे की ओर एक छोटा गोल पिण्डक है जो **चरणपिण्डक** कहलाता है। इस पिण्डक के तनिक ऊपर और उसके द्वारा कुछ छिपा हुआ पादमूलनलिका का पश्चिम द्वार है। उसका पूर्व द्वार खात में खुलता है। दीर्णरन्ध्र के पीछे की ओर मातृका नलिका द्वार है। इसके द्वारा अन्तर्मातृका धमनी कपाल में जाती है। शरीर में इस रन्ध्र का नीचे का भाग सक्ति से संयुक्त रहता है।

दीर्णरन्ध्र के बाहर की ओर शंखास्थि के अश्मकूट और जतूकास्थि के वृहत्पक्ष के पश्चाद्भाग के सम्मेलन पर **श्रोत्रीय परिखा**[2] स्थित है। मध्यस्थ चरणफलक के पास से आरम्भ होकर यह नलिका पीछे और बाहर की ओर को चली जाती है और अस्थिकृत श्रोत्रीय या पटध्मूरणिका नलिका के साथ, जो शंखास्थि के

---

1. Foranen lacerum. 2. Sulcus tubae awditivae,

भीतर श्रोत्रीय भाग और अश्मकूट के बीच में स्थित है, मिल जाती है। नलिका के इस भाग का छिद्र श्रोत्रीय परिखा के पीछे की ओर बाहरी कोण में स्थित है। श्रोत्रीय परिखा में सूक्ति-निर्मित नलिका रहती है जो पीछे की ओर अस्थिकृत नलिका के द्वार से मिली रहती है। यह भीतर की ओर मध्यकर्ण तक चली जाती है। मातृका नलिका का ऊर्ध्वगामी भाग अस्थिकृत श्रोत्रीय नलिका के पीछे और भीतर की ओर रहता है।

श्रोत्रीय परिखा के तल में अश्मकूट और जतूका के बृहत्पक्ष के बीच में एक रन्ध्र है जिसको **अश्मजातूकरन्ध्र** कहते हैं।

इस रन्ध्र के भीतर की ओर अश्मकूट के अधःपृष्ठ के अगले भाग पर वह खुरदरा चतुष्कोणाकार स्थान है जिस पर तालूत्तोलनी पेशी लगती है। यह स्थान मातृका नलिका के नीचे के द्वार और दीर्णरन्ध्र के बीच में स्थित है।

मन्याविवर और मन्याखात के आगे और चतुष्कोणाकार भाग के पीछे **मातृका नलिका** का नीचे का **द्वार** स्थित है। यहाँ मातृका नलिका अश्मकूट के भीतर कुछ दूर तक सीधी ऊपर की ओर को जाती है, किन्तु वहाँ से अकस्मात् आगे और भीतर की ओर को मुड़ जाती है। फिर करोटि के मध्यखात में अपने ऊपरी द्वार के द्वारा खुलती है जहाँ नलिका का कुछ भाग जतूका के गात्र पर रहता है। इस द्वार का नीचे की ओर दीर्णरन्ध्र से सम्बन्ध होता है। मान्याविवर के मातृका नलिका के द्वार के पीछे स्थित होने के कारण जिस समय मातृका धमनी और मन्याशिरा करोटि के भीतर प्रवेश करती हैं उस समय धमनी शिरा के आगे रहती है। अस्थि के भीतर नलिका या धमनी का ऊर्ध्वगामी भाग अन्तःकर्ण और मध्यकर्ण के आगे और नीचे की ओर रहता है। जब कभी उत्तेजना या कठिन परिश्रम के पश्चात् सिर में धड़कन सुनाई देने लगती है। तब उसका कारण इस धमनी का स्पन्दन होता है। अन्तः और मध्य कर्ण धमनी के पास ही स्थित होते हैं। अतएव स्पन्दन के कारण कर्ण द्वारा श्रवण का अनुभव होने लगता है।

मातृका नलिका के पीछे चतुष्कोणाकार भाग के भीतर की ओर वह गढ़ा है जहाँ से कोकिला नलिका आरम्भ होती है।

मातृका नलिका के पीछे और भीतर की ओर मन्याविवर स्थित है। इसके बाहर की ओर शिफाप्रवर्धन है। विवर का आकार जम्बुवत् है। विवर का आगे का भाग शंखास्थि के अश्मकूट से और पीछे का भाग पश्चात्कपाल के मन्यार्धछिद्र से बना हुआ है। दाहिनी ओर का विवर बाईं ओर के विवर से प्रायः बड़ा होता है। कभी-कभी यह विवर तीन भागों में विभक्त पाया जाता है जिनमें से पूर्व भाग के द्वारा अश्मतटिनी शिराकुल्या अधरा, मध्यभाग के द्वारा जिह्वाग्रसनिका, दसवीं और ग्यारहवीं नाड़ियाँ और पश्चिमभाग के द्वारा अनुपार्श्विक शिराकुल्या, कपालमूलनी और अन्नद्वारणी उर्ध्वगा धमनियों की मस्तिष्कच्छदा शाखाएँ जाती हैं। अनुपार्श्विक शिराकुल्या से मन्याशिरा प्रारम्भ होती है। उसका प्रारम्भिक भाग अधिक चौड़ा है और वह कन्द कहलाता है। यह कन्द मन्याखात नामक नत स्थान में रहता है।

यह विवर अस्थि के द्वारा ऊपर और पीछे को होता हुआ करोटि के पश्चिम खात में खुलता है।

मन्याविवर और मातृका नलिका के बीच में श्रोत्रानुनलिका अधरा स्थित है जिसके द्वारा जिह्वाग्रसनिका नाड़ी की श्रावणी शाखा जाती है।

मन्याविवर की भित्ति पर बाहर की ओर शिफाप्रवर्धन के मूल के पास कर्णमूलनलिका का छिद्र स्थित है। मन्याविवर से दीर्णरन्ध्र तक जाता हुआ अश्मकूट और पश्चात्कपाल के मूल भाग के बीच में अश्मकपालमूलक दिखाई देता है। शरीर में इस रन्ध्र में सूक्ति भरी रहती।

मन्याविवर के भीतर की ओर पश्चात्कपालार्बुदों से तनिक ऊपर की ओर एक चौड़ी नलिका का द्वार है। यह **अधोजिह्विका नलिका** कहलाती है और इसके द्वारा अधोजिह्विका नाड़ी बाहर जाती है। करोटि के सीधे रखने पर नलिका के ये द्वार पश्चात्कपालार्बुदों से छिप जाते हैं। इस पृष्ठ पर नलिका के केवल बहिर्द्वार

दिखाई देते हैं। नलिका यहाँ से आरम्भ होकर अस्थि के भीतर होती हुई करोटि के भीतर की ओर पश्चिम खात में पश्चात्कपालार्बुदों के ऊपर की ओर खुलती है।

अधोजिह्विका नलिका के ऊपर दोनों ओर दो बड़े अण्डाकार पिण्डक हैं जो पश्चात्कपालार्बुद कहलाते हैं। ये पृष्ठवंश के सबसे ऊपर के प्रथम ग्रैवेयक कशेरुक के पार्श्वपिण्डों से सम्मेलन करते हैं। इस कारण दोनों अर्बुदों पर उन्नतोदर स्थालक स्थित हैं जो प्रथम कशेरुक के नतोदर स्थालकों से मिलते हैं।

शिर को आगे और पीछे की ओर हिलाने के समय इस सन्धि की गति होती है। स्थालकों का पिछला भाग पूर्वभाग की अपेक्षा कम चौड़ा है।

दोनों ओर के अर्बुदों के बीच में एक बड़ा गोला या अण्डाकार छिद्र स्थित है जो महाविवर कहलाता है। इसके आगे के भाग में दोनों पश्चात्कपालार्बुदों पर भीतर की ओर दो छोटे पिण्डक स्थित हैं जिन पर एक स्नायु लगा रहता है। इसमें सुषुम्नाशीर्षक, जो मस्तिष्क का अन्तिम भाग है, रहता है। इसके नीचे से सुषुम्ना प्रारम्भ होती है। सुषुम्नाशीर्षक के साथ उसकी आच्छादक कलाएँ, सौषुम्निक नाड़ियों के मूल, रसायनियाँ और अन्य धमनी तथा शिराएँ और बन्धन इत्यादि भी इस विवर के द्वारा कपाल के भीतर प्रविष्ट होते हैं या बाहर निकलते हैं। इनका उल्लेख पूर्व ही पश्चात्कपाल के साथ किया जा चुका है।

पश्चात्कपालार्बुद के पीछे और महाविवर के पार्श्व में दो गहरे खात हैं जो अर्बुदखात कहलाते हैं। इनके तल में अर्बुदनलिका के द्वार दिखाई देते हैं। ये नलिकाएँ इन खातों के तल से आरम्भ होकर ऊपर और आगे की ओर को अस्थि के द्वारा होती हुई करोटि के भीतर पहुँचकर खुलती हैं। इनके द्वारा अनुपार्श्विक शिराकुल्या की एक शिरा जाती है।

पश्चात्कपालार्बुदों से बाहर की ओर को पश्चात्कपाल का जो भाग महाविवर के पीछे होता हुआ कर्णमूल भाग तक जाता है वह मन्याप्रवर्धन कहलाता है। इस पर शिरःपार्श्वदण्डिका पेशी और कपाल मूल चूडिका कला लगती है।

महाविवर के पीछे की ओर उसके बीच से एक तोरणिका अस्थिफलक को दो पार्श्वभागों में विभाजित करती हुई ऊपर एक उत्सेध तक चली जाती है जो फलक के प्रायः बीच में स्थित है। यह पश्चिमोत्सेध कहा जाता है। इसके दोनों ओर दो मुड़ी हुई रेखाएँ पश्चिमोत्सेध से बाहर की ओर को जाती हुई दिखाई देती हैं। ये मध्य और अधः तोरणिका रेखा कहलाती हैं। इन रेखाओं के बीच में और उनसे नीचे की ओर अस्थि पर जो पेशियाँ लगी हुई हैं उनका उल्लेख पश्चात्कपाल के साथ किया जा चुका है।

करोट्याभ्यन्तर और मस्तिष्कगुहा

करोटि का आभ्यन्तर देखने के लिए करोटि के ऊपरी भाग को काटकर पृथक् कर देना पड़ता है। करोटि कपालोत्सेध के स्थान से पीछे की ओर को इस प्रकार काटी जाती है जिससे वह पीछे पश्चिमोत्सेध से लगभग एक इंच ऊपर कटती है जिससे करोटि का ऊपरी भाग एक खप्पर के स्वरूप में अलग हो जाता है और मस्तिष्कगुहा भली भाँति दिखाई देने लगती है।

मस्तिष्कगुहा करोटि के भीतर स्थित एक बड़ी गुहा है जिसमें मस्तिष्क रहता है। करोटि को काटने से इस गुहा का पूर्ण अध्ययन हो सकता है। इस गुहा को कई अस्थियाँ मिलकर बनाती हैं जिनके नाम ये हैं— पुरःकपाल, झर्झरास्थि, जतूका, पार्श्वकपाल, शंखास्थि और पश्चात्कपाल। शरीर में इस गुहा के चारों ओर अस्थियों पर भीतर की ओर कला चढ़ी रहती है जो मस्तिष्कच्छदा कला कहलाती है।

मस्तिष्कगुहा की ऊर्ध्वभित्ति

करोटि का काटा हुआ ऊपरी भाग मस्तिष्क के ऊपर की ओर रहता है। इस कारण इस भाग की भीतरी भित्ति, जो मस्तिष्क की ओर रहती है मस्तिष्कगुहा की ऊर्ध्वभित्ति बनाती है। इस भाग के भीतर का स्थान समस्त गुहा का ऊपरी भाग है। अतएव इस भाग का अन्तःपृष्ठ नतोदर है और उसमें कई स्थानों पर खात और लम्बी परिखाएँ दिखाई देती हैं। खातों में मस्तिष्क के भाग रहते हैं और परिखाओं में धमनी या शिरा रहती हैं। ये रक्तनलिकाएँ मस्तिष्कच्छदा कला के ऊपर चारों ओर फैलकर एक जाल सा बना देती हैं। मस्तिष्कच्छदा कलाओं का इन्हीं रक्तनलिकाओं के द्वारा पोषण होता है। पृष्ठ के पीछे की ओर पश्चात्सीमन्त और आगे की ओर पूर्वसीमन्त के चिन्ह दिखाई देते हैं। इन दोनों को जोड़ता हुआ पृष्ठ के बीच में मध्यसीमन्त के दोनों ओर पार्श्विकाओं की धाराओं के पास दोनों ओर उठी हुई तीरणिका दिखाई देती हैं जिनके बीच-में एक चौड़ी परिखा है। इस परिखा में दीर्घिका उत्तरा शिराकुल्या रहती है। तीरणिकाओं पर मस्तिष्कच्छदा कला का कुछ भाग लगता है। पीछे की ओर पार्श्वकपालों में पर्शिवकछिद्र दिखाई देते हैं।

करोटि में आगे की ओर पुरःकपाल के पश्चात् पृष्ठ पर बीच में एक लम्बी तीरणिका है। यह ललाट-शिखा कहलाती है।

मस्तिष्कगुहा का तल अथवा करोटितल का ऊर्ध्वपृष्ठ

यह पृष्ठ अत्यन्त विषम है। इसमें उन बहुत से विवर और छिद्रों के, जिनको अधःपृष्ठ में देख चुके हैं, द्वार दिखाई देते हैं। यह सारा पृष्ठ तीन बड़े खातों में विभक्त है जो पूर्व, मध्य और पश्चिम खात कहलाते हैं।

पूर्वखात—इस खात में मस्तिष्क के पूर्वभाग पुरःकपाल के नेत्रफलकों पर आश्रित रहते हैं। यह खात पुरः कपाल के नेत्रफलक, झर्झरास्थि के दोनों चालनी पटल और जतूकास्थि के लघुपक्षों के ऊर्ध्वपृष्ठ और गात्र के कुछ भाग से बना है। झर्झरास्थि का भाग खात के बीच में रहता है; पुरः कपाल के नेत्रफलक उसके पार्श्व में दोनों ओर रहते हैं और जतूका के पक्ष खात का पश्चिम भाग बनाते हैं। जिन स्थानों पर ये अस्थियाँ एक दूसरी से मिलती हैं वहाँ उनके बीच में सीमन्त दिखाई देते हैं। झर्झरस्थि और पुरः कपाल के सम्मेलन-स्थान पर ललाट-झर्झरीय[1] सीमन्त है। जतूकास्थि के लघुपक्ष और पुरः कपाल के नेत्रफलक आपस में ललाटजतूक[2] सीमन्त द्वारा जुड़े हुए हैं। जतूका और झर्झरास्थि दोनों ओर के नेत्रफलकों के बीच में जतूकझर्झरीय[3] सीमन्त है।

खात के बीच में सामने की ओर पुरःकपाल पर ललाटशिखा का कुछ भाग दिखाई देता है। इसके नीचे की ओर एक त्रिकोणाकार तीव्र कण्टक ऊपर की ओर को उठा हुआ है। यह प्रवर्धन झर्झरास्थि के ऊर्ध्वपृष्ठ के बीच से निकला हुआ है और शिखरकण्टक कहलाता है। इस पर मस्तिष्कच्छदा कला का कुछ भाग लगता है। इस कण्टक के दोनों ओर झर्झरास्थि के चालनीपटल स्थित हैं जिनमें अनेकों सूक्ष्म छिद्र हैं। इन छिद्रों के द्वारा घ्राण-नाड़ियों की सूक्ष्म शाखाएँ नीचे की ओर नासागुहा में जाकर नासाविभाजक पटल के ऊपर वितीर्ण होती हैं। चालनीपटल और उसके पास का थोड़ा सा पुरःकपाल का भाग नासागुहा के ऊपर की ओर रहता है। चालनीपटलों के ऊर्ध्वपृष्ठों पर उनके मध्यभागों के नीचे की ओर को नत होने के कारण दोनों ओर परिखाएँ बन गई हैं जो घ्राणपरिखाएँ कहलाती हैं। इन परिखाओं में मस्तिष्क के घ्राणविभाग और कन्द रहते हैं। दोनों ओर के चालनीपटलों के बीच में शिखरकण्टक और उसका पश्चिम भाग स्थित है।

---

१. Frontoethmoidal. २. Frontosphenoidal. ३. Sphenoethmoidal.

आगे की ओर शिखरकण्टक और ललाटशिखा के बीच में एक सूक्ष्म छिद्र है जो अन्धछिद्र कहलाता है। इसके द्वारा एक शिरा उत्तरा शिराकुल्या को जाती है।
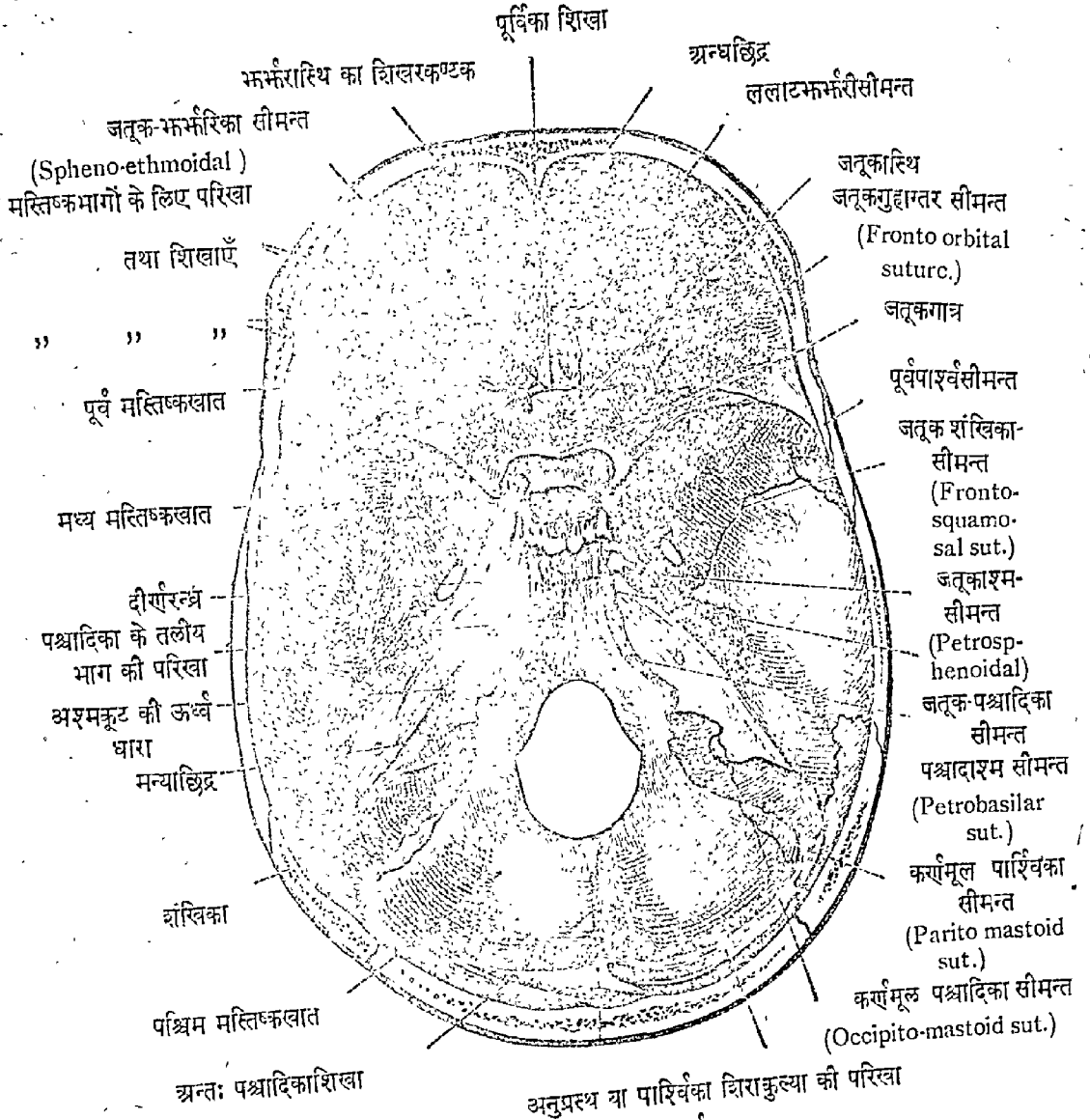
चित्र नं० २२४—करोटितल का ऊर्ध्वपृष्ठ

घ्राणपरिखा के तनिक बाहर की ओर पूर्व पश्चिम झर्झरीय नलिकाओं के छिद्र स्थित हैं। पूर्वनलिका का छिद्र परिखा के बाहर की ओर बीच के लगभग स्थित है। उसके द्वारा पूर्व झर्झरीय रक्त-नलिकाएँ और झर्झरिका नाड़ी जाती हैं। पश्चिमछिद्र, जहाँ पश्चात् नलिका आरम्भ होती है, परिखा के पश्चात् भाग के पीछे रहता है और प्रायः जतूका के आगे की ओर से निकले हुए एक पतले पत्र से ढका रहता है। उसके द्वारा पश्चिम झर्झरीय रक्त नलिकाएँ और नाड़ी जाती हैं। पूर्वनलिका पश्चिमनलिका से बड़ी है। शिखर-कण्टक के पीछे की ओर जतूका के ऊर्ध्वपृष्ठ के बीच से एक त्रिकोणाकार कण्टक आगे की ओर को निकला हुआ है। यह झर्झरीय कण्टक कहलाता है और शिखरकण्टक के साथ मिला रहता है।

खात के पार्श्वभाग में पुरःकपाल के चौड़े नेत्रफलक स्थित हैं। उन पर कई लम्बे-लम्बे चिह्न दिखाई देते हैं। इन पर मस्तिष्क के चक्राङ्ग रहते हैं। इस भाग में जो लम्बी-लम्बी परिखाएँ हैं उनमें धमनियाँ रहती हैं। दोनों फलक नेत्रगुहा में ऊपर की ओर रहते हैं और गुहाओं की ऊर्ध्वभित्ति या छत बनाते हैं। उनका मध्यस्थ भाग झर्झरास्थि के पार्श्वपिण्ड और नासागुहा के ऊपर रहता है। इस प्रकार यह फलक नेत्रगुहा, नासागुहा और झर्झरीय वायुविवरों को मस्तिष्कगुहा से पृथक करते हैं।

खात के पीछे की ओर जतूकास्थि के लघुपक्ष स्थित हैं। उनका ऊर्ध्वपृष्ठ समतल और चिकना है। मध्य रेखा की ओर ये चौड़े हैं किन्तु बाहर की ओर पतले और नुकीले प्रवर्धनों के स्वरूप में पूर्वखात की पश्चिमधारा बनाते हैं। इनके पश्चात् और मध्यस्थ भाग से त्रिकोणाकार प्रवर्धन पीछे की ओर दृष्टिनाड़ी-रन्ध्र के ऊपर को निकले हुए हैं। ये पूर्वगुलिका-प्रवर्धन कहलाते हैं। इन पर मस्तिष्कच्छदा कला लगी रहती है।

मध्यखात—यह खात पूर्वखात की अपेक्षा बड़ा है। यह तीन भागों में विभक्त है। जतूका के गात्र द्वारा निर्मित बीच का भाग संकुचित है किन्तु दोनों ओर के पार्श्वभाग गहरे और बाहर की ओर अधिक चौड़े हैं। ये दोनों भाग समान हैं।

इस खात के बनाने में जतूका और शंखास्थियाँ भाग लेती हैं। आगे की ओर जतूका के लघुपक्षों का पश्चिम भाग रहता है। जतूका के बृहत्पक्ष खात के नीचे और बाहर की ओर रहते हैं। ये पक्ष बाहिर और ऊपर की ओर पार्श्वकपालों से मिले हुए हैं। इस कारण पार्श्वकपाल इस खात से बाहर रह जाती है। खात के पीछे की ओर शंखास्थि के अश्मकूट का पूर्वपृष्ठ रहता है और उसकी ऊर्ध्वधारा खात को पीछे की ओर से परिमित करती है। मध्यस्थ भाग और पार्श्वभागों के बीच में आगे की ओर पूर्वगुलिकाप्रवर्धन स्थित हैं। जतूका के बृहत् पक्ष और अश्मकूट के बीच में शंखफलक रहता है जो खात को बाहर की ओर से परिमित करता है। इन अस्थियों के सङ्गम-स्थान पर जो सीमन्त हैं वे इसी खात में दृष्टिगोचर होते हैं। इस कारण पार्श्वशंखिक शंखजातूक, अश्मजातूक और पार्श्वजातूक सीमन्त दिखाई देते हैं।

खात का मध्यभाग सम्पूर्णतः जतूका के गात्र से बना हुआ है। इस भाग में सबसे आगे की ओर दृष्टिपरिखा है जिसके ऊपर मस्तिष्क का दृष्टिनाड़ी-संयोजक भाग रहता है। इस परिखा के दोनों ओर उसको परिमित करती हुई तीरणिकाएँ हैं। पश्चिम तीरणिका की अपेक्षा पूर्व तीरणिका अधिक स्पष्ट है। यह परिखा दोनों ओर लघुपक्षों के पश्चिमभाग के नीचे स्थित दृष्टिनाड़ीरन्ध्र तक चली जाती है। इन रन्ध्रों के द्वारा दृष्टिनाड़ी और चाक्षुषी धमनी नेत्रगुहा में जाती हैं और उनके ऊपर पूर्वगुलिकाप्रवर्धन पीछे की ओर को निकले हुए दिखाई देते हैं जिन पर मस्तिष्कदात्रिका कला लगती है। दृष्टिपरिखा के पीछे की ओर ककुदुत्सेध स्थित है। इस उत्सेध के पीछे पर्याणनिम्नका है। इस निम्नका का सबसे गहरा भाग पीयूष या पोषणिका खात कहलाता है जिसमें मस्तिष्क की पीयूषिका या पोषणिका ग्रन्थि रहती है। इस खात के आगे की ओर दोनों ओर के कोणों से दो छोटे प्रवर्धन या पिण्डक निकले हुए हैं जो मध्यगुलिकाप्रवर्धन कहे जाते हैं। खात के पीछे की ओर से एक चतुष्कोणाकार अस्थि का प्रवर्धित भाग खात को छत्र के समान ऊपर से आच्छादित किये हुए दीखता है। बहुत सी करोटियों में यह भाग टूटकर पृथक् हो जाता है और इस कारण करोटि में उपस्थित नहीं होता। इसको पर्याणिकापृष्ठ कहते हैं। इन प्रवर्धन के दोनों कोणों से बाहर और पीछे की ओर को दो मुड़े हुए छोटे प्रवर्धन निकले हुए हैं। ये पश्चात्गुलिकाप्रवर्धन कहलाते हैं। इनके पीछे की ओर एक परिखा या नलिका है जिसके द्वारा छठी शीर्षक नाड़ी जाती है। इन प्रवर्धनों के नीचे पर्याण-निम्निका के दोनों ओर गात्र के पार्श्व पर दो लम्बी अँगरेजी के f अक्षर के समान एक चौड़ी परिखा है जो मातृकानलिका या परिखा कहलाती है। यह पीछे की ओर दीर्णरन्ध्र से आरम्भ होती है और आगे की ओर पूर्वगुलिकाप्रवर्धन के नीचे जाकर समाप्त होती है। इस परिखा में त्रिकोणिका 'शिराकुल्या रहती है। इसके

ऊपर अन्तर्मातृका धमनी जिसके चारों ओर स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल का जाल रहता है, स्थित है। पीछे की ओर, जतूका गात्र के पार्श्व पर यह परिखा आरम्भ होती है। वहाँ अस्थि का एक छोटा सा प्रवर्धन है जो जिह्विका कहलाता है।

खात के पार्श्वभाग गहरे और विस्तृत हैं। उनमें कई स्थानों पर गढ़े और सूक्ष्म परिखाएँ हैं। इन गढ़ों में मस्तिष्क के शंखीय विभाग के छोटे छोटे अङ्ग रहते हैं। खात के आगे और पीछे की ओर जो दो स्पष्ट परिखा स्थित हैं उनमें वृत्तिगा मध्यमा की पूर्व और पश्चिम शाखाएँ रहती हैं। इन परिखाओं का और इनमें रहनेवाली धमनियों का पूर्ण मार्ग ऐसी करोटि में, जो मध्यसीमन्त के द्वारा ऊपर से नीचे की ओर को काटी गई हो जिससे करोटि दो समान पार्श्वभागों में विभक्त हो जावे, उत्तम प्रकार से देखा जा सकता है। विद्यार्थी को इसी प्रकार की कटी हुई करोटि में इन धमनियों का परिचय प्राप्त करना चाहिए।

मुख्य परिखा कोणछिद्र के पास से आरम्भ होती है और शंखफलक के अन्तःपृष्ठ पर आगे और ऊपर की ओर को जाती है जहाँ वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। यदि करोटि के बाहर की ओर कर्णबहिर्द्वार और नेत्रगुहा की पश्चात् धारा के मध्य बिन्दु को गण्डचाप की ऊर्ध्व धारा पर अङ्कित कर दें तो वह बिन्दु प्रायः भीतर की परिखा और धमनी के दो भागों में विभक्त होने के स्थान को दर्शायगा। कभी-कभी यह स्थान कुछ आगे और पीछे भी हट जाता है। इस स्थान से परिखा की शाखाओं का मार्ग एक दूसरे के विरुद्ध हो जाता है। परिखा और उसके साथ साथ वृत्तिगा मध्यमा की पूर्वशाखा आगे और ऊपर पार्श्वकपाल के पूर्वाधःकोण की ओर जाती है। पार्श्वकपाल पर पहुँचने से पूर्व और लगभग आधी इंच पार्श्वकपाल पर भी यह परिखा गहरी होती है और ऊपर की ओर अस्थि के प्रवर्धित भाग से ढकी रहती है। इससे आगे परिखा फिर चौड़ी और उथली हो जाती है। यहाँ से परिखा अनेक शाखाओं में विभाजित होती हुई ऊपर और पीछे की ओर जाती है। उसकी मुख्य शाखा पार्श्वकपाल के ऊपरी धारा की ओर करोटि के नासा और पश्चात् बिन्दु के लगभग बीच में पहुँच जाती है। पश्चिम शाखा शंखफलक के अन्तःपृष्ठ पर पीछे और ऊपर की ओर को मुड़ती हुई चली जाती है। इससे भी कई शाखाएँ निकलती हैं। मुख्य शाखा पीछे पश्चिम सीमन्त की ओर मुड़ जाती है।

वृत्तिगा मध्यमा और उसकी शाखाएँ मस्तिष्कच्छदा कला के बाहर अस्थि के सम्पर्क में रहती हैं। इस कारण कपाल की अस्थियों के भग्न होने में इस धमनी और उसकी शाखाओं के क्षत हो जाने का बहुत भय रहता है। जहाँ परिखा अधिक गहरी है वहाँ क्षत का अधिक भय होता है जिससे मस्तिष्क में रक्त-स्राव होकर मृत्यु हो सकती है।

इन परिखाओं के अतिरिक्त खात में कई छिद्र हैं। जतूकागात्र के पार्श्व में और आगे की ओर ऊर्ध्वगुहारन्ध्र याने पक्षान्तराल स्थित है। उसके ऊपर की ओर जतूका के लघुपक्ष हैं। भीतर की ओर जतूका का गात्र स्थित है। बाहर की ओर जतूका के बृहत्पक्ष हैं और ऊपर तथा बाहर की ओर बृहत् और लघु पक्षों के बीच में पूर्वकपाल का कुछ भाग रहता है। रन्ध्र का नीचे का भाग ऊपरके भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। इसके द्वारा जो धमनी, नाड़ी और शिरा इत्यादि जाती हैं, उनका पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है।

इस रन्ध्र के तनिक नीचे की ओर एक गोल छिद्र है जिसको वृत्तविवर कहते हैं। इसमें होकर ऊर्ध्वहानव्या नाड़ी जाती है। वृत्तविवर के कुछ दूर पर पीछे की ओर जाम्बवविवर स्थित है जिसके द्वारा अधोहानव्या नाड़ी, वृत्तिगा अनुमध्यमा धमनी और अश्मकूटनी हस्वोत्ताना नाड़ी निकलती है। इस विवर के पीछे और बाहर की ओर कोणछिद्र स्थित है जिसके द्वारा वृत्तिगा मध्यमा धमनी और अधोहानव्या नाड़ी की एक आवर्तक शाखा जाती है। जाम्बवविवर के भीतर की ओर दीर्णरन्ध्र है जिसके किनारे क्रमहीन हैं। इसके आगे की ओर जतूका और पीछे की ओर शंखास्थि का अश्मकूट भाग है। यह वास्तव में एक चौड़ी नलिका है जिसको करोटि के तल पर देखा जा चुका है। इसके बाहरी भाग में मातृनलिका द्वार है जिसमें

होकर मातृका धमनी जतूका के गात्र पर स्थित मातृका परिखा में पहुँचती है। इसके पीछे की ओर से जिह्विका नामक प्रवर्धन निकलकर कभी कभी पीछे की ओर अश्मकूट भाग तक पहुँचकर दीर्णरन्ध्र की बहिःसीमा बना देता है। इस रन्ध्र का नीचे का भाग शरीर में सूक्ति से भरा रहता है। धमनी केवल ऊपरी भाग के द्वारा जाती है। रन्ध्र के अगले भाग मे आगे की ओर तूत्तिगा का पीछे का द्वार है। पादमूलनलिका में रहने वाली नाड़ी और ऊर्ध्वगा ग्रसनिका धमनी की शाखा सूक्ति में होकर ऊपर जाती हैं। इस रन्ध्र के कुछ आगे किन्तु जाम्बवविवर के भीतर की ओर कभी-कभी वैजेलियस का सूक्ष्म छिद्र भी दिखाई देता है।

दीर्णरन्ध्र के पीछे की ओर अश्मकूट के शिखर के पास एक छोटा खात या गढ़ा है जिसमें अर्ध-चन्द्राकार नाड़ीगण्ड रहता है। इसके पीछे की ओर, अस्थि के बीच से तनिक पीछे एक स्पष्ट उत्सेध दिखाई देता है जो स्रोतच्छदिकूट कहलाता है। इसके नीचे अस्थि के भीतर ऊर्ध्व अर्धवृत्ताकार नलिका रहती है। कभी-कभी यह स्पष्ट नहीं होता, फैला हुआ होता है। इसके उत्सेध के तनिक नीचे और बाहर की ओर अश्मकूट के पूर्वपृष्ठ पर एक नत स्थान है जिसके नीचे श्रोतीय कुहर स्थित है। इस श्रोतीय कुहर और मस्तिष्कगुहा के बीच में अस्थि का जो भाग है वह पतला है और उसका ऊर्ध्वपृष्ठ नत, चिकना और समतल है। इस कारण अन्तःकर्ण के रोग सहज में मस्तिष्क मे पहुँच सकते हैं। इस स्थान के तनिक नीचे और आगे की ओर एक सूक्ष्म परिखा है जो पीछे की ओर मौखिकनलिका के द्वार तक चली जाती है। इस नलिका के द्वारा एक छोटी नाड़ी, जिसको अश्मकूटनीदीर्घोत्ताना कहते हैं, जाती है। इस द्वार से परिखा आगे की ओर दीर्णरन्ध्र तक चली जाती है। इसके नीचे उसके अत्यन्त सन्निकट एक सूक्ष्म छिद्र है जिसके द्वारा अश्मकूटनी ह्रस्वोत्ताना नाड़ी अस्थि के भीतर प्रवेश करती है।

पश्चिमखात—यह खात पूर्व और मध्य दोनों खातों से अधिक बड़ा और गहरा है। इसमें मस्तिष्क के पश्चिम भाग अर्थात् लघु मस्तिष्क, सेतु और सुषुम्नाशीर्षक रहते हैं। खात के बनाने में जतूकास्थि, शंखास्थि का अश्मकूट और कर्णमूलभाग, पश्चात्कपाल और पार्श्वकपाल अस्थियाँ भाग लेती हैं। आगे की ओर बीच में जतूका का पर्याणकपृष्ठ रहता है जिसके पीछे जतूका के गात्र पर प्रपातक स्थित है। यह भाग नीचे और पीछे की ओर पश्चात्कपाल के मूल भाग से मिल जाता है। खात का समस्त पीछे और नीचे या पार्श्व का कुछ भाग पश्चात्कपाल से बनता है। पर्श्व और ऊपर के भाग में दोनों ओर जतूकागात्र और पश्चात्कपालमूल से मिले हुए शंखास्थि के अश्मकूट भाग हैं। पश्चात्कपाल और शंखास्थि के बीच में पार्श्व-कपाल का पश्चिमाधःभाग रहता है। इन सब अस्थिओं के सम्मेलन स्थान पर सीमन्त स्थित हैं। इस प्रकार खात में अश्मजातूक सीमन्त[1] जो पीछे की ओर मन्याविवर तक जाता है; पश्चिमशंखीय सीमन्त[2] जो पश्चात्कपाल और शंखास्थि के कर्णमूल भागों के बीच में रहता है; पश्चिमसीमन्त[3] जो पश्चात्कपाल और पार्श्वकपाल के बीच में और पार्श्विक सीमन्त[4] पार्श्वकपाल और शंखास्थि के बीच में दिखाई देते हैं। जतूका और पश्चात्तकताल के मूलभाग आपस मे अस्थि द्वारा जुड़े होते हैं। बाल्यावस्था में ये दोनों भाग भिन्न होते हैं। किन्तु २५ वर्ष के लगभग पर्याणिकापृष्ठ के मूल से एक इञ्च नीचे दोनों अस्थियाँ आपस में जुड़ जाती हैं।

इस खात की ऊपरी सीमा अत्यन्य स्पष्ट है। आगे की ओर पर्याणिकापृष्ठ है। उससे बाहर और पीछे की ओर जाती हुई अश्मकूट की ऊर्ध्वधारा दिखाई देती है। यह धारा पीछे की ओर पार्श्वकपाल के पश्चिमाधःकोण पर स्थित एक तीरणिका और चौड़ी परिखा से मिल जाती है। यह परिखा पार्श्वकपाल के कोण से आरम्भ होकर पीछे की ओर पश्चात्कपाल के मध्य में स्थित अन्तःपश्चिमोत्सेध तक जाती है जहाँ वह दूसरे ओर की समान परिखा से मिलती है। इस परिखा में अनुपार्श्विक शिराकुल्या रहती है। अश्मकूट की ऊर्ध्वधारा पर अश्मतटशिराकुल्य उत्तरा स्थिति है।

---

१. Petrosphenoidal. २. Occipito temporal. ३. Lambdoidal ४. Sqnamosal.

खात के बीच में महाविवर स्थित है जिसके द्वारा सुषुम्ना पृष्ठवंश की नलिका में जाती है। विवर के अग्रभाग में दोनों ओर अर्बुदों के अन्तःपृष्ठ का कुछ भाग दीखता है। इस विवर का पूर्ण वर्णन पूर्व ही किया जा चुका है। इस विवर के तनिक ऊपर पार्श्वकी ओर अधोजिह्विका नलिका का द्वार है। इसके द्वारा अधोजिह्विका नाड़ी और एक वृत्तिगा धमनी जाती है। बहुधा यह छिद्र दो भागों में विभक्त होता है। उस समय नाड़ी के सूत्र दो भागों में छिद्र के द्वारा निकलकर आपस में मिल जाते हैं। अथवा एक छिद्र के द्वारा नाड़ी और दूसरे छिद्र के द्वारा धमनी जाती है। इस नलिका के ऊपर दोनों ओर दो पिण्डक हैं, जो मन्या-पिण्डक या अर्बुद कहलाते हैं, जिनके तनिक पीछे और बाहर की ओर एक परिखा है जिसमें नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं मस्तिष्कीय नाड़ियाँ रहती हैं। महाविवर के आगे की ओर जतूका के गात्र और पश्चात्कपाल के मूल भाग पर चौड़ी परिखा दिखाई देती है। वास्तव में वह भाग बीच से गहरे हो गये हैं जिससे यह परिखा बन गई है। जतूका के गात्र का यह भाग प्रपातक कहलाता है। इस सारे भाग पर सेतु और सुषुम्नाशीर्षक रहते हैं। साथ में कई नाड़ियाँ, धमनियाँ और शिराजाल भी रहते हैं। प्रपातक के दोनों ओर अश्मकूट और प्रपातक के बीच में एक सीमन्त है जो चौड़ा होने के कारण रन्ध्र के समान दिखाई देता है। पीछे की ओर यह रन्ध्र मन्याविवर में अन्त हो जाता है। शरीर में इस रन्ध्र में सूक्ति भरी रहती है और उस पर अश्मतट-शिराकुल्या अधरा रहती है।

मन्याविवर अधः पृष्ठ पर देखा जा चुका है। वह बहुधा तीन भागों में विभक्त होता है जिनके द्वारा जानेवाली नाड़ी धमनी इत्यादि का अधःपृष्ठ के सम्बन्ध में वर्णन किया जा चुका है। मन्याविवर के अग्रभाग के ऊपर की ओर अश्मकूट के पश्चात् पृष्ठ पर अन्तःकर्ण विवर दिखाई देता है। यह एक छोटी नलिका है जो इस विवर से बाहर की ओर थोड़ी दूर तक चली जाती है और अन्त में एक पटल के द्वारा अन्तःकर्ण से पृथक् रहती है। इस विवर के द्वारा मौखिकी और श्रावणी नाड़ियाँ और कर्णान्तरिक धमनियां जाती हैं। इस विवर के पीछे की ओर छोटा सा लम्बे आकार का झिरी के समान एक छिद्र है जिससे एक नालिका अन्तःकर्ण के एक विशेष भाग-तक चली गई है। इसके द्वारा अन्तर्लसीका वाहिनी जाती है।

महाविवर के पीछे दोनों ओर दो चौड़े खात हैं। ये ऊपर की ओर दो तीरणिकाओं से जो बीच में अन्तः पश्चिमोत्सेध पर मिलती हैं, परिमित हैं। इनमें लघुमस्तिष्क के दोनों भाग रहते हैं। तीरणिकाओं के ऊपर एक चौड़ी परिखा है जो ऊपर की ओर भी एक तीरणिका से परिमित है। वास्तव में दोनों तीरणिका और उनके बीच की परिखा एक ही उत्सेध पर दिखाई देती हैं। परिखाओं में अनुपार्श्विक शिराकुल्या रहती हैं। जहाँ ये तीरणिकाएँ बीच में पश्चिमोत्सेध पर मिलती हैं वहाँ एक तीरणिका नीचे की ओर महाविवर की पश्चात् धारा तक और दूसरी तीरणिका पीछे ऊपर की ओर को चली जाती है। इस प्रकार चार खात बन जाते हैं जो एक दूसरे से तीरणिकाओं या शिखाओं द्वारा भिन्न रहते हैं। नीचे के दोनों खातों के बीच की तीरणिका, जो पश्चिमोत्सेध से महाविवर तक जाती है, कपालमूलान्तरिक कपालमूलिनी शिखा कहलाती है। इसमें पश्चात्कपाल शिराकुल्या रहती है और उसके दोनों किनारों पर दात्रिकाकुल्या लगी रहती है। अनुपार्श्विक शिराकुल्या पश्चात्कपाल की अनुपार्श्विक तीरणिका पर होती हुई बाहर की ओर पहुँचकर पार्श्वकपाल के पश्चिमाधः कोण पर स्थित छोटी, नीचे की ओर मुड़ी हुई परिखा में होती हुई शंखास्थि के कर्णमूल भाग के अन्तः पृष्ठ पर स्थित परिखा में होकर नीचे की ओर अश्मकूट और कर्णमूल भाग के सम्मेलन स्थान तक चली जाती है। वहाँ से वह आगे की ओर को मुड़कर मन्याविवर में जाकर खुलती है। इस समस्त मार्ग में कुल्या की चौड़ी परीखा दिखाई देती है। कर्णमूल भाग के नीचे पश्चात्कपाल पर पहुँचकर यह परिखा एक गहरी नलिकाके रूप में परिणत हो जाती है। अश्मकूट का कुछ भाग इस स्थान पर परिखा को ऊपर की ओर से ढके रहता है। कर्णमूल भाग पर परिखा में कर्णमूलछिद्र और पश्चा-त्कपाल पर उसके अन्त होने के तनिक पूर्व अर्बुद-नलिका का द्वार दिखाई देता है।

नासागुहा[1]

मुख की मध्यरेखा के दोनों ओर दो नासागुहाएँ स्थित हैं। उनके बीच में एक विभाजक पटल है जो दोनों गुहाओं को पृथक् करता है। ये दोनों गुहाएँ आगे नासाद्वारों से करोटितल पर स्थित नासापश्चिमद्वार तक और ऊपर की ओर करोटि के अधःपृष्ठ से कठिन तालु के ऊर्ध्व पृष्ठ तक फैली हुई हैं। इस प्रकार नासागुहा और मुख-कुहर या गुहा के बीच में केवल कठिन और कोमल तालु रहते हैं। इसके पीछे नासागुहाएँ पश्चिमद्वार के द्वारा मुखगुहा से मिल जाती हैं। यह स्थान ग्रसनिका[2] कहलाता है। गुहाओं के ऊपर की ओर करोटि में पूर्व और मध्य खात और पुरःकपाल तथा जतूका के वायु विवर स्थित हैं। ये गुहाएँ आगे की अपेक्षा पीछे की ओर और ऊपर की अपेक्षा नीचे की ओर अधिक चौड़ी हैं। इनका बीच का भाग संकुचित है।

प्रत्येक नासागुहा के ऊपर की ओर ऊर्ध्वभित्ति या छत, नीचे की ओर अधोभित्ति या फ़र्श, बाहर की ओर बहिर्भित्ति और भीतर की ओर अन्तर्भित्ति हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक गुहा में पूर्व और पश्चिम द्वार हैं।

पूर्वद्वार आकार में कुछ जम्बुवत् है। इसका नीचे का भाग अधिक चौड़ा है किन्तु ऊपर की ओर नासास्थियों के बीच में यह एक त्रिकोणाकार रन्ध्र के समान है। इसकी ऊपर से नीचे की ओर की लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा कहीं अधिक है। इसके ऊपर की ओर नासास्थियों की अधोधाराएँ हैं। बाहर की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि की पूर्व और नासापृष्ठ के बीच की धारा इस द्वार को परिमित करती है। नीचे की ओर भी यही धारा भीतर की ओर को मुड़कर पूर्वनासाकण्टक बना देती है जो द्वार को नीचे की ओर से सीमित करता है।

पश्चिमद्वार करोटि के अधःपृष्ठ के सम्बन्ध में देखे जा चुके हैं। उनके ऊपर की ओर जतूकागात्र का अधःपृष्ठ और सीरिका के पक्ष रहते हैं। नीचे तात्वस्थि के लघुपत्रक की पश्चिमधारा द्वार को परिमित करती है। दोनों द्वारों के बीच में सीरिका की पश्चिम धारा रहती है। बाहर की ओर अंतः श्रवण फलक स्थित हैं।

ऊर्ध्वभित्ति या छत अनुपश्विक दिशा में अत्यन्त सङ्कुचित है। उसका बीच का भाग सम है। किन्तु आगे का भाग आगे और नीचे की ओर को और पीछे का भाग पीछे और नीचे की ओर को ढलवाँ है। इस कारण बीच के भाग की ऊँचाई सबसे अधिक है। उसका अग्रभाग नासास्थि और पुरःकपाल के नासाकण्टक से बना हुआ है। बीच के सम भाग में झर्झरास्थि का चालनी पटल रहता है। पीछे का भाग, जो अत्यन्त ढलवाँ है, जतूकगात्र के अधःपृष्ठ जतूकीय वायुविवरच्छद, सीरिका के पक्ष और तात्वस्थि के जतूकीय प्रवर्धन से बना है। इस भित्ति के मध्य भाग में, जो झर्झरास्थि के चालनी पटल से बना हुआ है, बहुत से छिद्र हैं जिनके द्वारा घ्राणनाड़ियों की शाखाएँ पटलपर आती हैं। इन छिद्रों के आगे की ओर पूर्वझर्झरिका नाड़ी के लिए छिद्र स्थित है। इस भित्ति के पिछले भाग में जतूकीय वायु विवरों के द्वार दिखाई पड़ते हैं।

अधोभित्ति या फ़र्श के बनाने में केवल दो अस्थियाँ भाग लेती हैं। आगे की ओर ऊर्ध्वहन्वस्थि का तालव्य प्रवर्धन रहता है और उसके पीछे तात्वस्थि का लघुपत्रक है। भित्ति के अगले भाग में कर्त्तनकीय नलिका का द्वार दिखाई देता है। यह भित्ति ऊर्ध्वभित्ति से अधिक चौड़ी है और पूर्व और पश्चिम भागों की अपेक्षा बीच का भाग अधिक चौड़ा है। किन्तु इस भित्ति की लम्बाई ऊर्ध्वभित्ति से कम है।

---

१. Nasal CaVity. २. Pharynx.

मध्यस्थ भित्ति या विभाजक पटल—यह पटल प्रायः किसी एक ओर को झुका हुआ रहता है। ऊपर की ओर पटलका सबसे बड़ा भाग झर्झरास्थि के मध्यफलक से बना हुआ है। फलक के आगे की ओर नासास्थियों की शिखा और पुरःकपाल का नासाकण्टक रहता है। पटल का पश्चात् भाग नीचे की ओर सीरिका के अग्रभाग, ऊर्ध्वहन्वस्थि और तालव्वस्थि की पूर्वनासाशिखा से बनता है जिसके साथ सीरिका नीचे की ओर जुड़ी रहती है। सामने की ओर सीरिका और झर्झरास्थि के मध्यफलक के बीच में एक त्रिकोणाकार अन्तर रह जाता है जो जीवित अवस्था में सुक्ति के एक पत्र द्वारा पूर्ण हो जाता है। इस पटल पर नाड़ियों और धमनियों की परिखाएँ दिखाई देती हैं।

बहिः भित्ति कई अस्थियों के मिलने से बनी है। यह अत्यन्त असम है। इस भित्ति में सबसे आगे नासास्थि और उसके पीछे ऊर्ध्वहन्वस्थि का ललाटप्रवर्धन एवं अश्रुपीठ अस्थि हैं। उसके पीछे झर्झरास्थि, ऊर्ध्वहन्विस्थि तथा अधःशुक्तिका स्थित हैं। सबसे पीछे का भाग तालिवस्थि के दीर्घपत्रक और अन्तःगरुत्फलक से बना है। ध्यान से देखने से वे सब अस्थियाँ और उनके भाग देखे जा सकते हैं।

इस भित्ति से भीतर की ओर को तीन पतले फलक या प्रवर्धन निकले हुए दिखाई देते हैं। ये उनकी स्थिति के अनुसार ऊर्ध्व, मध्य और अधः शुक्तिफलक कहलाते हैं। सबसे नीचे अधःशुक्तिफलक स्थित है। वह भित्ति से भीतर की ओर को निकलकर नीचे को मुड़ा हुआ है। यह एक भिन्न अस्थि होती है जो कभी-कभी शुष्क करोटियों से टूटकर पृथक् हो जाती है। मध्यशुक्तिफलक अधःफलक से लगभग एक इंच ऊपर स्थित है। यह फलक भिन्न अस्थि नहीं है। झर्झरास्थि से निकल कर यह भाग नीचे की ओर को मुड़ा हुआ है। इसी प्रकार ऊर्ध्वफलक भी झर्झरास्थि से निकलता है। किन्तु वह मध्य और अधः दोनों फलकों से छोटा और मध्यफलक के पश्चिमोर्ध्व भाग के ऊपर रहता है।

इन तीनों फलकों के बीच के स्थान को नासासुरङ्ग[1] कहते हैं। ऊर्ध्व और मध्य फलक के बीच का स्थान ऊर्ध्व सुरङ्ग कहलाता है। यह सुरङ्ग अन्य सुरङ्गों से छोटी है। इसमें ऊर्ध्वफलक के तनिक पीछे की ओर तालुजातूकछिद्र स्थित है। सुरङ्ग से आगे की ओर झर्झरीय वायु-विवरों के पश्चात् समूह का द्वार है जिसके द्वारा सुरङ्ग और वायुविवरों का सम्बन्ध होता है। ऊर्ध्वफलक के पीछे की ओर जतूकझर्झरीय अन्तराल है जिसमें जतूकीय वायुविवर खुलते हैं।

मध्य और अधः शुक्तिफलक के बीच में मध्यसुरङ्ग स्थित है। यह ऊर्ध्व सुरङ्ग से बड़ी है। इसमें झर्झरास्थि के अधःपृष्ठ से एक मुड़ा हुआ पतला प्रवर्धन नीचे और पीछे की ओर को निकला हुआ है। यह अंकुशाकृति प्रवर्धन है। इसके ऊपर की झर्झरास्थि के नीचे से एक मोटा फूला हुआ भाग निकलता है जो झर्झरीय कन्द कहलाता है। यह कन्द झर्झरीय वायुविवरों के मध्यसमूह के कारण उत्पन्न होता है। कन्द और अंकुशाकृति प्रवर्धन के बीच में मुड़ा हुआ रन्ध्र अर्ध (अर्धेन्दु परिखा) वृत्ताकार रन्ध्र कहलाता है। इसके आगे और ऊपर का भाग कूपिका कहाजाता है जिसका रन्ध्र के द्वारा मध्यसुरङ्ग से सम्बन्ध है। झर्झरीय वायुविवरों का पूर्व समूह कूपिका के एक छिद्र के द्वारा खुलता है। अधिकांश करोटियों में कूपिका से एक सूक्ष्म नलिका पुरःकपाल के वायुविवरों तक चली जाती है और नासापूर्विका नलिका कहलाती है। कभी-कभी यह नलिका कूपिका में न खुलकर मध्यसुरङ्ग के पूर्वभाग में खुलती है। अंकुशाकृतिप्रवर्धन के बाहर की ओर और इस कारण उससे छिपा हुआ ऊर्ध्वहन्वस्थि के वायुविवर का छिद्र है। इस छिद्र के ऊपर की ओर कन्द स्थित है।

अधःशुक्तिफलक के नीचे का स्थान अधःसुरङ्ग कहा जाता है। यह अन्य सुरङ्गों की अपेक्षा बड़ा और विस्तृत है। इसका आगे का भाग पिछले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा है। नासाश्रवी नलिकाद्वार इसके अग्रभाग में स्थित है।

1. Meatus

शुक्तिफलकों के पीछे का नासागुहा का जितना भाग है वह नासाग्रसनिकासुरङ्ग कहलाता है। फलकों और विभाजक पटल के बीच का स्थान सामान्य सुरङ्ग के नाम से पुकारा जाता है।

ऊपर के वर्णन से विदित होगा कि नासागुहा में निम्नलिखित छिद्र या विवर पाये जाते हैं—नासापूर्व द्वार जिनसे जीवितावस्था में नासारन्ध्र नासिका के अन्त तक जाते हैं; नासापश्चिमद्वार, नासाश्रवी नलिका, जतूकीय, झर्झरीय, ललाटीय और ऊर्ध्व हानव्य वायुविवरों के छिद्र। जतूकीय विवरों का छिद्र जतूक-झर्झरीय अन्तराल में स्थित है। झर्झरास्थि के वायुविवरों का पश्चात् समूह ऊर्ध्वसुरङ्ग में और मध्य और पश्चात् समूह तथा ललाटीय विवर कूपिका में खुलते हैं ऊर्ध्वहानव्य वायुविवरों का द्वार मध्यसुरङ्ग में स्थित है। इन छिद्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी छिद्र हैं जो जीवितावस्था में श्लैष्मिक कला से ढके रहते हैं किन्तु करोटि के शुष्क होने पर स्पष्ट हो जाते हैं। वे ये हैं—तालुजातूक छिद्र, जो तालुचरणिक की ओर से जतूकझर्झरीय अन्तराल में खुलता है; मध्य सुरङ्ग में ऊर्ध्वहानव्य वायुविवर के छिद्र के साथ कभी कभी एक और छिद्र पाया जाता है। कर्त्तनकीय नलिका गुहा की अधोभित्ति में आगे की ओर शिखा के नीचे से आरम्भ होकर अस्थि में होती हुई बीच के दोनों कर्त्तनक दाँतों के बीच में कठिन तालु पर कर्त्तनकीय छिद्र के रूप में खुलती है। गुहा की ऊर्ध्वभित्ति के बीच में स्थित चालनी पटल में कई सूक्ष्म छिद्र होते हैं जिनके द्वारा नाड़ियाँ इत्यादि मस्तिष्क को जाती हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क के कई विशेष विवरों और भागों से नासिका का सम्बन्ध है। इस कारण नासिका का शोथ सहज में ऊपर की ओर विवरों या अन्य भागों तक फैल सकता है।

करोटि की शैशवकालीन आकार-विभिन्नता

बच्चे की करोटि कङ्काल के अन्य भागों की अपेक्षा तुलनात्मक दृष्टि से आकार में बड़ी होती है। किन्तु करोटि का तलीय और मौखिक भाग छोटा दिखाई देता है। इस समय ललाटोत्सेध और पार्श्विकोत्सेधों के
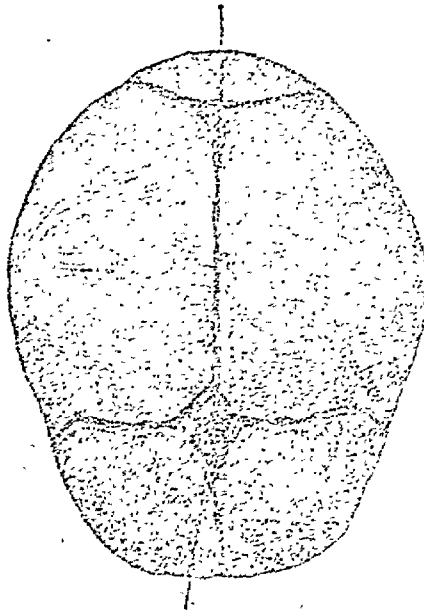
चित्र नं० २२५—शैशव करोटि का ऊर्ध्वपृष्ठ

उन्नत होने के कारण तथा भ्रू-तीरणिका और कर्णमूलप्रवर्धन के स्पष्ट न होने से करोटि का दृश्य ऊपर की ओर से देखने पर आकार में पञ्चकोणाकार दिखाई पड़ता है।

पश्चात्कपाल, पुरःकपाल, पार्श्वकपाल, शंखास्थि और जतूका के भाग कुछ विशिष्ट स्थानों में अविकसित होने के कारण कलामय ही रह जाते हैं। ये स्थान बिन्दु कहलाते हैं। इनकी संख्या छः होती है। पूर्वबिन्दु सबसे बड़ा और चतुष्कोणाकार है। यह मध्यसीमन्त, पूर्वसीमन्त और ललाटसीमन्त के सम्मेलन स्थान पर स्थित है। पश्चात् बिन्दु त्रिकोणाकार है और मध्यसीमन्त तथा पश्चात् सीमन्त के सम्मेलन स्थान पर स्थित है। जातूक बिन्दु छोटा और विषम है और पूर्वसीमन्त और पार्श्वसीमन्त के मिलने के स्थान पर स्थित है। कर्णमूल बिन्दु भी छोटा और विषम है और जहाँ पश्चात् सीमन्त और पार्श्वसीमन्त मिलते हैं वहाँ स्थित है।

चित्र नं० २२८—शैशव करोटि का पार्श्व

ये कलामय भाग भी अन्त में भिन्न-भिन्न समय पर अपने चारों ओर की अस्थियों के बढ़ जाने अथवा स्वतन्त्र विकास-केन्द्र से विकसित होकर अस्थि में परिणत हो जाते हैं।

पश्चिम और जातूक बिन्दु जन्म के बाद दो या तीन महीने में, कर्णमूलीय बिन्दु लगभग प्रथम वर्ष के अन्त में और पूर्वबिन्दु द्वितीय वर्ष के मध्य तक अस्थिकृत हो जाते हैं।

करोटि के मौखिक भाग के छोटे होने का कारण अधोहन्वस्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थि की प्राथमिक अवस्था, जिसमें उनका आकार छोटा होता है, दाँतों का न निकलना और हानव्य वायुविवर तथा नासागुहा का छोटा होना माना गया है। जन्म के समय नासागुहा इतनी छोटी होती है कि वह दोनों नेत्रगुहाओं के बीच में ही स्थित ज्ञात होती है और नासापूर्वद्वार की अधोधारा भी नेत्रगुहा से कुछ ही नीचे दिखाई देती है।

इसके बाद जब से बच्चे के अस्थायी दाँत निकलने आरम्भ होते हैं तभी से उसके मुख और जबड़े में वृद्धि होने लगती है और यह परिवर्तन स्थायी दन्तोद्गम तक होता रहता है। सातवें वर्ष तक यह परिवर्तन बड़ी जल्दी होता है। किन्तु उसके बाद धीमा पड़ जाता है और उसके परिणाम-स्वरूप युवावस्था तक पहुँचते-पहुँचते यह शैशवकालीन विभिन्नता नष्ट हो जाती है।